# मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य में यथार्थबोध

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद, की पी-एच. डी (हिन्दी) उपाधि के लिए प्रस्तुत

**शोध-प्रबन्ध**

2002


प्रस्तुतकर्त्री

**सी. एच. चारुमति देवी**

एम. ए., एम. फिल.

निर्देशक एवं विभागाध्यक्ष

**प्रो. शशि मुदीराज**

डी. लिट.

हिन्दी विभाग

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद-500 046.

Department of Hindi
School of Humanities
University of Hyderabad
HYDERABAD 500 134

Dated: 30.12.2002.

This is to certify that I, Ch. Charumathi Devi have carried out the research embodied in the present thesis for the full period prescribed under Ph.D. ordinances of the University.

I declare to the best of my knowledge that no part of this thesis was earlier submitted for the award of research degree of any University.

Ch. Charumathi Devi 30/12/02
(Signature of the Candidate)
Name: Ch. CHARUMATHI DEVI
Enrollment No: 98HHPH07

30/12/02
Signature of the Supervisor

30/12/02
Head of the Department

31-12-02

Dean of the School.

DEAN
SCHOOL OF HUMANITIES
University of Hyderabad
Hyderabad 500 134.

# भूमिका

जीवन की सच्ची अनुभूति यथार्थ है और इसका कलात्मक अभिव्यक्ति कारण यथार्थवाद है। यथार्थवाद की सृष्टि निराशावादी बनाने के लिए नहीं होती बल्कि इसकी सृष्टि आशा को दृढ़तर बनाने के लिए की जाती है। यथार्थ वह है जो साहित्य में समाज के वास्तविक चित्रण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

यथार्थवाद वह है जो साहित्य के किसी भी विधा के क्षेत्र में यथार्थ चित्रण पर बल देता है और उसके प्रति निरंतर आग्रहशील रहता है। इसलिए यथार्थवादी साहित्यकार अपनी रचनाओं में मानव-समाज और मानव-जीवन का जो चित्रण प्रस्तुत करता है, उसका आधार भावना या कल्पना का जगत न होकर भौतिकवादी जगत होता है। वह साहित्य को केवल मानसिक परितृप्ति और भावात्मक अनुभूति का विषय न मानकर जीवन और समाज के विकास के लिए एक सशक्त माध्यम मानता है। यथार्थवाद, साहित्य का बाह्य आवरण है तो यथार्थ उसका प्राण।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में प्रायः सभी विधाओं के अंतर्गत यथार्थवाद का प्रारंभ और विकास आधुनिक युग में ही हुआ। भारतेन्दु युग में जिन साहित्यिक विधाओं का आधुनिक रूप में विकास हुआ है, वे क्रमशः यथार्थ की ओर उन्मुख प्रतीत होते हैं। यूरोप की भांति हिन्दी साहित्य में इसका आरंभ एक विचारान्दोलन के रूप में नहीं हुआ। इसके विपरीत पाश्चात्य सभ्यता और साहित्य के प्रभाव के बढ़ने के साथ हिन्दी के साहित्यकारों ने यूरोपीय भाषाओं में सुविकसित यथार्थवादी आन्दोलन से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण किया।

प्रस्तावित शोध का प्रतिपाद्य है, मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में यथार्थबोध। कथा साहित्य अर्थात् कहानी और उपन्यास। यथार्थ से प्रमुखतः प्रातिबद्ध माने गये हैं। वस्तुतः कहानी और उपन्यास की संरचना ही ऐसी होती है कि उनमें देश काल, पात्र और घटना के माध्यम से यथार्थ का प्रकटीकरण अनिवार्य हो जाता है। आधुनिक कथा-साहित्य में यथार्थ का प्रस्तुतीकरण एक

सहज प्रक्रिया है। ऐसी स्थिति में आधुनिक युग के सजग और संवेदनशील कथाकार होने के नाते मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में व्यंजित और कथा-साहित्य के विधायक तत्व के रूप में यथार्थ बोध का विवेचन और विश्लेषण, शोध और आलोचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण है।

मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में तीन उपन्यास और पाँच कहानी-संग्रहों को शोध का विषय बनाया गया है। उनका विवरण निम्नांकित है।

1. मैं हार गई(कहानी संग्रह)........... अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
    1. ईसा के घर इन्सान — संस्करण: 1957
    2. गीत का चुम्बन
    3. जीती बाजी की हार
    4. एक कमजोर लड़की की कहानी
    5. सयानी बुआ
    6. अभिनेता
    7. शमशान
    8. दीवार, बच्चे और बरसात
    9. पंडित गजाधर शास्त्री
    10. कील और कसक
    11. दो कलाकार
    12. मैं हार गई
2. एक इंच मुस्कान (उपन्यास)....... राजेन्द्र यादव, मन्नू भण्डारी राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1962
3. यही सच है(कहानी संग्रह).......... अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 1966
    1. क्षय

2. तीसरा आदमी

3. सजा

4. नकली हीरे

5. नशा

6. इन्कमटैक्स और नींद

7. रानी माँ का चबूतरा

8. यही सच है

4. एक प्लेट सैलाब(कहानी संग्रह)..... अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 1968

1. नई नौकरी

2. बंद दराजों का साथ

3. एक प्लेट सैलाब

4. छत बनानेवाले

5. एक बार और

6. संख्या के पार

7. बाहों का घेरा

8. कमरे, कमरा और कमरे

9. ऊँचाई

5. आपका बंटी(उपन्यास).............. अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 1971

6. मेरी प्रिय कहानियाँ(कहानी संग्रह)... राजपाल एण्ड सन्ज,कश्मीरी गेट, दिल्ली, तीसरा संस्करण:1977

1. अकेली

2. मजबूरी

3. नई नौकरी

4. बंद दराजों का साथ

5. एखाने आकाश नाई

6. यही सच है

7. सजा

8. आते-जाते यायावर

9. शायद

7. श्रेष्ठ कहानियाँ(कहानी संग्रह)....... अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 1977

1. रानी माँ का चबूतरा

2. चश्मे

3. अकेली

4. मैं हार गई

5. क्षय

6. एखाने आकाश नाई

7. यही सच है

8. सजा

8. त्रिशंकु(कहानी संग्रह) ............ अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 1978

1. आते जाते यायावर

2. दरार भरने की दरार

3. स्त्री सुबोधिनी

4. शायद

5. त्रिशंकु

6. रेत की दीवार

7. तीसरा हिस्सा

8. अ-लगाव

9. एखाने आकाश नाई

9. महाभोज(उपन्यास)............... राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लि. 2, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002, 1979

मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में यथार्थबोध का प्रस्तुतीकरण, जीवन-स्थितियों और समस्याओं के रूप में हुआ जिसे पात्रों, घटनाओं और कथा-रचना के अन्य उपादानों द्वारा जीवन्त और विश्वसनीय बनाया गया है।

मन्नूजी ने अपने कथा-साहित्य में जिन समस्याओं को उठाया है, उनका कोई स्पष्ट हल उन्होंने प्रस्तुत नहीं किया, परंतु उन समस्याओं पर जिस एकाग्रता से दृष्टि रखकर उन्हें प्रस्तुत किया है, वह वर्तमान जीवन के विभीषिका का निदर्शन करने में पूर्णतः सफल है। इतना निर्विवाद रूप से सत्य है कि मन्नू जी ने जो भी लिखा है, वह उनका देखा-परखा और भोगा हुआ यथार्थ है। इन सबसे ही जीवन का अनुभव प्राप्त करके उन्होंने जिन प्रश्नों का, विसंगतियों और भ्रष्टताओं का चित्रण अपने लेखन द्वारा करने का प्रयास किया है, वे ही उनके साहित्य में प्रस्तुत विभिन्न समस्यायें हैं।

यथार्थबोध का परिचय मन्नू जी के कथा साहित्य में चित्रित जीवन स्थितियों से भी होता है, जो मुख्यतः स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज और जीवन से संबंधित है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारतीय समाज में और जीवन-मूल्यों में जितने भी परिवर्तन हुए हैं, या समाज और राष्ट्र जितने भी परिस्थितियों से गुजरा है, उन सबका आभास मन्नू जी के साहित्य में यत्र-तत्र द्रष्टव्य है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन है, उसके जीवन-दर्शन का बदलाव। हमारे समाज में पहले समष्टिगत मूल्यों को अधिक महत्त्व प्राप्त था। परंतु पाश्चात्य जगत के व्यक्ति वादी जीवन-दर्शन का प्रभाव इस पर भी पड़ने लगा। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ही जीवन-दर्शन में इस परिवर्तन के आसार सीखने लगे थे, परंतु स्वतंत्रता के बाद तो यह दर्शन शीघ्रता से जन मानस में फैलने लगा। संयुक्त परिवार की जगह स्वतंत्र परिवार निर्मित होने लगे। सारी परंपरायें, मान्यतायें और धार्मिक विश्वास - जो समष्टिहित में हमारे समाज में बसे हुए थे, भर-भराकर टूटने लगे और स्वतंत्र विचारधाराओं व मूल्यों की पैठ जनमानस में होने लगी। इन सबका चित्रण मन्नू भण्डारी के साहित्य में हुआ है।

नकली हीरे, यही सच है, नई नौकरी, बन्द दरवाजों का साथ, एक बार और, संख्या के पार, ऊँचाई, आते-जाते यायावर, दरार भरने की दरार, स्त्री सुबोधिनी आदि अनेक कहानियाँ व एक इंच मुस्कान तथा आपका बंटी जैसे उपन्यास कम-अधिक रूप से इस स्थिति का आभास दे जाते हैं। व्यक्ति के महत्व के कारण पति-पत्नी के बंधनों में भी सरलता आ गई है। जबर्दस्ती बंधन निभाने की अपरिहार्यता आज के युग में नहीं है। इस स्थिति को भी कई कहानियाँ चित्रित करती हैं।

इस युग का दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन है - नारी जागरण का। पहले नारी को पुरुष की तुलना में कोई स्थान नहीं था। लेकिन अब वह प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष की बराबरी कर रही है। अब वह न पराधीन है न आर्थिक रूप से दुर्बल। मन्नू जी की अधिकांश रचनाओं में नारी जीवन का यह परिवर्तन दृष्टिगत होता है। इन कहानियों की नारियाँ नौकरी-पेशा और आर्थिक रूप से सफल नारियाँ हैं। पति से अलगाव की स्थिति में वह झट संबंधों को तोड़कर स्वतंत्र जीवनयापन करने लगती है या स्वतंत्र जीवनयापन के लिए उद्यत हो उठती है। आपका बंटी की शकुन, एक इंच मुस्कान की रंजना और अमला, ऊँचाई की दर्शना आदि नारी पात्र, नारी की इस स्वतंत्रता का चित्र प्रस्तुत करते हैं। युवतियों को आज इस सीमा तक स्वतंत्रताएँ प्राप्त हैं कि वे घर से दूर नौकरी करती हैं, प्रेम संबंध बनाती है, पुरुष मित्रों के साथ घूमती-फिरती हैं। ये सारी बातें भी मन्नू जी की अधिकांश रचनाओं में देखी जा सकती है।

हमारा समाज जैसे-जैसे सभ्यता के सोपान लाँघता जा रहा है, वैसे-वैसे उसका जीवन यांत्रिक, बौद्धिक और क्लिष्ट बनता जा रहा है। आज प्रतिद्वन्द्विता के आयाम बढ़ गये हैं। क्षय, सजा, नकली हीरे, नई नौकरी, बंद दराजों का साथ, एक प्लेट सैलाब, कमरे, कमरा और कमरे, आते-जाते यायावर, दरार भरने की दरार, तीसरा हिस्सा, एंखाने आकाश नाई, एक इंच मुस्कान, आपका बंटी, महाभोज आदि अनेक रचनायें वर्तमान युग की इसी स्थिति का आभास देती हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों के अतिरिक्त, युग-जीवन का चित्र प्रस्तुत करने वाली मन्नू जी महत्वपूर्ण कृति महाभोज उपन्यास है। सन् 1975 में श्रीमती इंदिरा गाँधी के शासन काल में देश में आपात्कालीन स्थिति लागू कर दी गई थी। आपात्कालीन स्थिति के दौरान, जन-साधारण पर अनेक अत्याचार हुए, निरपराध लोगों को जेलों में ठूँस दिया गया, समाचार-पत्रों पर बंदिश लगा दी गई। तदनन्तर आपात्कालीन स्थिति के बाद जनता लहर ने जनता पार्टी को सत्ता सौंपी। आपात्काल के बाद के आम चुनाव का परिणाम ऐसे तूफान के रूप में सामने आया कि बड़े-बड़े नेता धराशायी हो गये। उसके बाद जनता पार्टी के शासन में मनमाना भ्रष्टाचार समाज में व्याप्त हो गया। नैतिक-अनैतिक हथकण्डे अपनाये जाने लगे। मंत्री पद के मोल-भाव सरे आम होने लगे। दल-बदलुओं का बाजार गर्म हो गया। कुर्सी के लिए सभी एक-दूसरे के पैर खींचने लगे। किसान रैली जैसी रैलियाँ आयोजित की जाने लगीं। इस स्थिति का यथावत चित्रण मन्नू जी ने महाभोज उपन्यास में किया है।

यथार्थबोध, जहाँ लेखक को वस्तुचयन और प्रतिपादन की दृष्टि देता है, वहीं उसके प्रस्तुतीकरण की शैली भी निर्धारित करता है। इस दृष्टि से मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में भाषा-शैली, कथोपकथन, चरित्र-चित्रण, वातावरण निर्माण आदि के माध्यम से उनके यथार्थबोध को विवेचित किया जा सकता है। संक्षेप में मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में प्रस्तुत यथार्थ जीवन और यथार्थबोध का विवेचन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक आधारों पर किया जा सकता है।

ज्ञान और शोध तो अनन्त है ... प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध संभव है एक बाल-सुलभ जिज्ञासा और समझ ही साबित हो। फिर भी मुझे गर्व है, इसकी पूर्णता पर, अपनी निदेशिका डॉ. शशि मुदीराज पर, हिन्दी-विभाग के उन तमाम गुरुजनों पर जिन्होंने समय-समय पर मेरा मार्ग दर्शन किया, उन सभी के प्रति मैं आभारी हूँ।

उन सभी को सादर,

(सी.एच. चारुमति देवी)

**विषय प्रवेश :-**

हिन्दीतर प्रदेश और अहिन्दी भाषी परिस्थितियों से गुजरते हुए, उपलब्ध कथा-साहित्य का अध्ययन करते हुए, मुझे श्रीमती मन्नू भण्डारी के जीवन के बारे में सिर्फ कुछ पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा ही जानकारी प्राप्त हुई। मैं महसूस करती हूँ कि मन्नू भण्डारी के व्यक्तित्व को जानने और समझने के लिए उनकी रचनाएँ एक सफल और सबल साधन का काम करती हैं। इन रचनाओं के माध्यम से मन्नू जी ने जीवन के यथार्थ को उकेरा है खुद "यथार्थ" को भोगते हुए। "मन्नू भण्डारी"- के साहित्य का अध्ययन करते हुए कई महीनों तक मैं ने स्वयं उनकी रचनाओं में उनके व्यक्तित्व का साक्षात्कार किया है और स्वयं को उनके अनुभवों में हिस्सेदारी पायी है। मैं अपनी ओर से, अपने प्रयत्नों से और मुख्यतः मन्नू जी के "साक्षात्कार और स्वगत कथनों" से उनके जीवन के संबंध में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से जितना भी जान सकी हूँ, उसी का एक क्रमबद्ध विवरण इस अध्याय में प्रस्तुत है।

श्रीमती मन्नू भण्डारी का जन्म 3 अप्रैल 1931 को मध्यप्रदेश के भानपुरा नामक गाँव में हुआ। अपने माता-पिता की पाँचवी संतान। दो बड़े भाई और दो बड़ी बहनों का स्नेह बाल्यावस्था से इन्हें आज तक प्राप्त है। मन्नू जी ने जिस परिवार में जन्म लिया, वह जैनी-मारवाड़ी परिवार था। इस परिवार के मुखिया और मन्नू जी के पिता श्री सुख-संपतराय भंडारी आर्य समाजियों की बीच दीक्षित हुए थे और बहर आर्यसमाजी तथा अपने समय के समाज सुधारक थे। अतः कुछ स्वतंत्रता सभी बच्चों को प्राप्त हो गई थी।

मन्नू जी अपने जिस रूप और व्यक्तित्व को लेकर हिंदी-जगत के सम्मुख आई; उनके उस व्यक्तित्व के निर्माण में उनके पिता का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अपने पिता के संबंध में स्वयं मन्नू भण्डारी जी कहना है, "...पिताजी इंदौर में थे, जहाँ उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी, सम्मान था, नाम था। कांग्रेस के साथ-साथ वे समाज-सुधार के कामों से भी जुड़े हुए थे। शिक्षा का वे केवल उपदेश ही नहीं देते थे, बल्कि उन दिनों आठ-आठ, दस-दस विद्यार्थियों को अपने घर रख कर

पढ़ाया है... वे बेहद कोमल और संवेदनशील व्यक्ति थे तो दूसरी ओर बेहद क्रोधी और अहंवादी। (हंस-जनवरी-फरवरी 2000)। मन्नू जी के अनुसार, उन्होंने अपने जीवन का एक भी दिन अपने लिए नहीं जिया। अपना सारा जीवन पहले ससुराल वालों के लिए, फिर पति के लिए और फिर बच्चों के लिए जीती रहीं। आज उनकी आयु लगभग 71 वर्ष की है और वे वैसा ही शांत एवं निर्लिप्त जीवन यापन कर रही हैं। उन्हें इस बात का लेशमात्र भी रंज नहीं कि उनके जीवन का एक भी दिन उनका अपना न हुआ।

माता-पिता के इस परस्पर विरोधी स्वभाव और मिले-जुले संस्कारों से ही मन्नू जी का व्यक्तित्व बना है। नवीं-दसवीं कक्षा से ही नेतृत्व करने की लालसा उनमें उत्पन्न हो गई थी। अपनी क्षमतानुसार मन्नू जी ने भी इस लड़ाई में हिस्सा लिया। जुलूस निकालना, प्रभात-फेरियों में घूमना, भाषण देना-आदि बातें उनकी इस आयु का अविस्मरणीय अंग बनकर रह गई। 1946 में जब आज़ाद हिंद फौज का मुकदमा चल रहा था-तब भी उन्होंने पूरे जोश-खरोश से उस आंदोलन में भाग लिया।

मन्नू जी की प्रारंभिक शिक्षा अजमेर के सावित्री स्कूल में हुई। यहीं अजमेर में ही उन्होंने इंटर की परीक्षा उत्तीर्ण की। इंटर के बाद वे अपने बड़े भाई-बहनों के पास कलकत्ता चली आईं और वहीं कलकत्ता विश्वविद्यालय से 1949 में उन्होंने बी.ए. किया। लेकिन मुख्य विषय है कि बी.ए. में उनका विषय हिंदी नहीं था और हिंदी में जब एम.ए. किया तब इस विषय में उनकी सहायता और दिशा-निर्देश भी किसी ने नहीं किया।

मन्नू जी की पहली कहानी सन् 1955 के लगभग प्रकाशित हुई थी। यानी कि उनकी पहली रचना 24-25 वर्ष की आयु में प्रकाशित हुई थी। साहित्य के क्षेत्र में उनका पदार्पण "मैं हार गई" कहानी से हुआ। "मैं हार गई" श्री भैरव प्रसाद गुप्त के संपादन में निकलने वाली "पत्रिका" में प्रकाशित हुई- जो अत्यंत चर्चित हुई। उन प्रशंसकों के कारण मन्नू जी का उत्साह बढ़ गया। पहली कहानी के

प्रकाशन के बाद 1957 में पहला कहानी संग्रह "मैं हार गई" नाम से ही प्रकाशित हुआ।

एम.ए. के बाद मन्नू जी ने कलकत्ता के एक स्कूल में अध्यापन का कार्य प्रारंभ किया और वहीं उसी स्कूल के माध्यम से उनका परिचय श्री राजेंद्र यादव से हुआ। कथाकार राजेन्द्र यादव से परिचय, प्रगाढ़ता और विवाह के सम्बन्ध में स्वयं मन्नू भण्डारी ने "हंस" जनवरी-फरवरी 2000 के अंक में "एक कहानी यह भी" के अन्तर्गत लिखा है, "सात-आठ कहानियाँ लिख लेने के बाद राजेन्द्र से मेरा परिचय हुआ.... पर औपचारिक परिचय हुआ "बालीगंज शिक्षा सदन" के पुस्तकालय के लिए पुस्तकों की सूची बनवाने में। दो-चार मुलाकातों के बाद यह परिचय में बदल गया, जिसका मुख्य आधार था लेखन।" ....पुस्तकालय की सूची बनवाते-बनवाते, बकौल मन्नू भण्डारी, "राजेन्द्र की मित्रता धीरे-धीरे दूसरी दिशा में मुड़ चली तो लेखकीय उत्साह-उमंग में रोमानी रंग भी भरने लगे..." और अंततः इस "रोमानी रंग" ने अपना असर दिखाया और वे दोनों विवाह बंधन में बंधे फिर सन् 1964 में कलकत्ता छोड़कर दोनों दिल्ली में जा बसे। दोनों को दिल्ली में प्रस्थापित करने में श्री यादव के मित्रों का पूरा सहयोग मिला बाद में, श्री यादव अपने-अपने मित्रों के सहयोग से दिल्ली में "अक्षर प्रकाशन" स्थापित कर स्वयं भी पूरी तरह दिल्ली में ही जम गए।

कहना न होगा कि एक लम्बे समय से राजेंद्र यादव और मन्नू भण्डारी के वैवाहिक जीवन में दरार है। शायद इसलिए कुछ दिनों तक मन्नू जी, राजेंद्र यादव से अलग भी रही। इन दोनों के अलगाव की बात जानकर लोगों में एक प्रकार का तूफान भी उठा। लेकिन वास्तविक रूप में मन्नू भण्डारी "आपका बंटी" नामक उपन्यास की रचना करने के लिए अलग रह रही थीं क्योंकि घर के काम के साथ लेखन का काम करना उनके लिए बहुत कठिन था।

सन् 1961 में मन्नू जी ने एक पुत्री टिंकू को जन्म दिया। उस समय "एक इंच मुस्कान" धारावाहिक रूप से ज्ञानोदय में प्रकाशित हो रहा था। मन्नू जी को श्री राजेंद्र से सदा यह शिकायत रही है कि वे केवल पति होने की भूमिका मात्र

निभाते हैं, घर के किसी काम-काज या व्यवस्था में उनसे किसी भी प्रकार का सहयोग प्राप्त नहीं होता। मन्नू जी की अपने पति से यह शिकायत आज भी बरकरार है।

...शिकवे-शिकायत, आरोप-प्रत्यारोप, स्वप्न और हकीकत, कुंठा-संत्रास, पलायन-विभाजन, सच-झूठ आदि तमाम "यथार्थों" का यथार्थबोध कराता है - मन्नू भण्डारी का कथा-साहित्य!

एक संघर्ष, ललक और महत्वाकांक्षाओं से लबालब बचपन से शुरू हुआ मन्नू भण्डारी का जीवन और उसका लेखकीय "यथार्थ", "रोमानी संसार", "वैवाहिक-स्वप्न", "आपका बंटी", "महाभोज", "एखाने आकाश नाई" से गुजरती हुई "मैं हार गई" तक पूरा जीवन और साहित्य एक "यथार्थ" है। "हंस"(जनवरी-फरवरी-दोहजार) में एक मन्नू भण्डारी ने अपने कथा और जीवन के अन्दरूनी पृष्ठों को खोलते हुए लिखा है, "मैं यथार्थ के धरातल पर कहानियाँ लिखती थी और सपनों की दुनिया में जीती थी।"

इसी सच और यथार्थबोध के कारण ही मैं, श्रीमती मन्नू भण्डारी जी के कथा-साहित्य से जुड़ी। अपनी समझ और सामर्थ्य से जितना जुटा-जोड़ पाई समर्पित है!

# विषय सूची

**अध्याय एक : यथार्थ, यथार्थवाद, यथार्थबोध**

1.1. यथार्थ

1.2. यथार्थवाद

1.3. यथार्थबोध

**अध्याय दो: हिन्दी कथा-साहित्य में यथार्थबोध: परंपरा और प्रवृत्ति**

**2.1. पूर्व प्रेमचन्द युग:**

राजनीतिक पृष्ठभूमि
सामाजिक पृष्ठभूमि
आर्थिक पृष्ठभूमि
साहित्यिक पृष्ठभूमि

**पूर्व प्रेमचन्द युगीन कथा-साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ और यथार्थबोध:**

सामाजिक कथा साहित्य :यथार्थबोध
ऐतिहासिक कथा साहित्य: यथार्थबोध
धार्मिक व पौराणिक कथा साहित्य: यथार्थबोध
रहस्यात्मक कथा साहित्य: यथार्थबोध
मनोवैज्ञानिक कथा साहित्य: यथार्थबोध
आदर्शोन्मख कथा साहित्य: यथार्थबोध

**2.2. प्रेमचन्द युग:**

राजनीतिक पृष्ठभूमि
सामाजिक पृष्ठभूमि
आर्थिक पृष्ठभूमि

**प्रेमचन्द युगीन कथा-साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ और यथार्थबोध:**

सामाजिक कथा-साहित्य और यथार्थबोध
ऐतिहासिक कथा-साहित्य और यथार्थबोध
धार्मिक व पौराणिक कथा-साहित्य और यथार्थबोध

मनोवैज्ञानिक कथा-साहित्य और यथार्थबोध
आदर्शोन्मुख कथा-साहित्य और यथार्थबोध

## 2.3. प्रेमचन्दोत्तर युग:

राजनीतिक पृष्ठभूमि
सामाजिक पृष्ठभूमि
आर्थिक पृष्ठभूमि
साहित्यिक पृष्ठभूमि

### प्रेमचन्दोत्तर युगीन कथा-साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ और यथार्थबोध:

सामाजिक कथा-साहित्य और यथार्थबोध
ऐतिहासिक कथा-साहित्य और यथार्थबोध
धार्मिक व पौराणिक कथा-साहित्य और यथार्थबोध
मनोवैज्ञानिक कथा-साहित्य और यथार्थबोध
आदर्शोन्मुख कथा-साहित्य और यथार्थबोध

## 2.4. स्वातंत्र्योत्तर युग:

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
सामाजिक पृष्ठभूमि
आर्थिक पृष्ठभूमि
राजनैतिक पृष्ठभूमि
साहित्यिक पृष्ठभूमि

### स्वातंत्र्योत्तर युगीन कथा-साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ और यथार्थबोध:

सामाजिक कथा-साहित्य और यथार्थबोध
ऐतिहासिक कथा-साहित्य और यथार्थबोध
धार्मिक व पौराणिक कथा-साहित्य और यथार्थबोध
मनोवैज्ञानिक कथा-साहित्य और यथार्थबोध
आदर्शोन्मुख कथा-साहित्य और यथार्थबोध

### स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी का स्वरूप:

आलोच्य कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
आलोच्य युगीन सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति
आलोच्य युगीन मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति

आलोच्य युगीन राजनैतिक कहानी की प्रवृत्ति
आलोच्य युगीन धार्मिक कहानी की प्रवृत्ति
आलोच्य युगीन ऐतिहासिक कहानी की प्रवृत्ति
आलोच्य युगीन सांस्कृतिक कहानी की प्रवृत्ति
सामाजिक पृष्ठभूमि
राजनैतिक पृष्ठभूमि
आर्थिक पृष्ठभूमि
सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

**स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों का स्वरूप और प्रवृत्तियाँ:**

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की प्रवृत्ति
सांस्कृतिक उपन्यास की प्रवृत्ति
ऐतिहासिक उपन्यासों की प्रवृत्ति
राजनैतिक उपन्यासों की प्रवृत्ति
सामाजिक उपन्यासों की प्रवृत्ति

**अध्याय तीन:**

**मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में पारिवारिक यथार्थबोध**

**अध्याय चार:**

**मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में सामाजिक यथार्थबोध**

**अध्याय पाँच:**

**मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में राजनैतिक यथार्थबोध**

**अध्याय छह:**

**मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में मनोवैज्ञानिक यथार्थबोध**

**अध्याय सात:**

**उपसंहार**

**ग्रंथ सूची**

## अध्याय एक

# यथार्थ, यथार्थवाद और यथार्थबोध

1.1. यथार्थ

1.2. यथार्थवाद

1.3. यथार्थबोध

## 1.1. यथार्थ :

"यथार्थ" जीवन की सच्ची अनुभूति है। जिसमें हम अपने जीवन में घटित होनेवाले राग-विराग, सुख-दुःख और अन्य भावनाओं का अनुभव करते हैं। अपनी इन्द्रियों के द्वारा समाज में होनेवाली सभी प्रकार के क्रिया-कलापों का अनुभव करना ही यथार्थ है। इस यथार्थ अनुभूति के कारण लेखक अपने अनुभव करते हैं। समाज में घटित होने वाली घटनाओं की अनुभूति के साथ स्वयं को "मधुमती भूमिका" में ढालकर उसका आकलन, विवेचन और वर्णन करना ही "यथार्थ" है।

यथार्थ की अनुभूति के कारण ही हर लेखक का अपना-अपना अनुभव ज्ञान और दृष्टिकोण होता है। इन सभी अनुभवों, ज्ञान और दृष्टिकोणों को वह "सैद्धांतिक विचारधारा" पर कसता है। साहित्य में वास्तविकता के रूप में अभिव्यक्त स्वरूप ही "यथार्थ" है।

साहित्य की किसी भी विधा के क्षेत्र में "यथार्थ" का चित्रण और "यथार्थ" को निरूपित किए जाने के प्रति रचनाकार सदा सचेत रहता है।

यथार्थ वह है जो भौतिक पदार्थों का वास्तविक रूप दिखाता है। यथार्थ क्या है, इसके बारे में अनेक विद्वानों ने अपने मत व्यक्त किए हैं। यथार्थ का कोशंगत अर्थ सत्य, प्रकृत, उचित आदि हैं। इसे जैसा-का तैसा, विभिन्न कल्पनाओं का यथार्थ आधार हो सकता है, मगर साथ ही निराधार कल्पना भी होती है।

वस्तुतः यथार्थ का चित्रण साहित्य में दो रूपों में किया जाता है एक स्थल रूप में जिसके अंतर्गत वास्तविकता के बाह्य पक्ष का चित्रण किया जाता है और दूसरा सूक्ष्म जिसमें यथार्थ के आंतरिक पक्ष का चित्रण किया जाता है। स्थूल चित्रण में अधिकतर रचनाकार यथातथ्य का ज्यों का त्यों या फोटोग्राफिक चित्रण करने की होड़ में लगे रहते हैं। इस प्रकार के चित्रण में समाज के नग्न कुरूप, कुत्सित रूप का वर्णन अधिक होता है। इस प्रकार बाह्य यथार्थ का चित्रण करनेवाले रचनाकार समाज के एक पक्ष को ही उभारते हैं जिससे ऐसे साहित्य को

पढ़नेवाले पाठक में समाज के प्रति घृणा और भय की भावना उत्पन्न होती है। वास्तव में यथार्थवादी लेखक को समाज के दोनों पक्षों, अच्छे और बुरे का चित्रण करना चाहिए।

(यथार्थ का दूसरा रूप सूक्ष्म यथार्थ है। यह लेखक की समझ पर आधारित रहता है)। इसमें मात्र यथातथ्य का फोटोग्राफिक चित्रण करना नहीं होता बल्कि पात्रों और परिस्थितियों को समकालीन युगीन परिवेश के अनुकूल निर्माण करना पड़ता है। इसके लिए रचनाकार में अनुभव, ज्ञान और दृष्टिकोण के व्यापक स्तर पर आवश्यकता होती है। क्योंकि यह केवल वर्तमान स्थिति या परिवेश पर आधारित नहीं रहता बल्कि पीछे अतीत तथा आगे भविष्य भी उसे प्रभावित करनेवाले होते हैं। अतः रचनाकार को यथार्थ का चित्रण करते समय अपने परिवेश का गहन अध्ययन करना अत्यंत आवश्यक है। "यथार्थ" साहित्य की आत्मा होती है और यथार्थवादी उसका शरीर।

अज्ञेय के अनुसार यथार्थ का साहित्य में अर्थ है-"जो अर्थ है, उसको यथावत् प्रस्तुत करना अथवा जो यथा स्थिति है, उसकी अर्थवान प्रस्तुति।"[1] ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से जगत् के और जगत् की वस्तुओं को जाना जाता है। उनसे परिचित हुआ जाता है। जगत् ज्ञेय है और ज्ञाता मनुष्य अपनी इंद्रियों की सहायता से दुनिया और उसकी वस्तुओं का सीधा ज्ञान प्राप्त करता है। हम अपनी आँख, कान और नाक, मुँह जीभ त्वचा आदि ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से दुनिया की वस्तुओं के संपर्क में आते हैं। उन वस्तुओं की छाप हमेशा हमारे मन पर पड़ती है। मनुष्य की चेतना पर बाह्य जगत् की वस्तुओं का जो प्रभाव पड़ता है वह उस मन पर अंकित होता है। एक तरह से मन संसार के व्यापारों का अद्‌भुत कोशागार है, जिसमें चेतना ने बाह्य जगत् की अनंत तस्वीरें इकट्ठी कर रखी हैं। हमारे मन का निर्माण बाह्य जगत् से हमारी चेतना के संपर्क का फल है। हमारा मन बाह्य जगत् से निरपेक्ष नहीं रह सकता है। बाह्य जगत् अगर न हो तो मानव

---

1 छोड़ा हुआ रास्ता (अज्ञेय की संपूर्ण कहानियाँ:-1) भूमिका से-पृ.सं.9

मन की सत्ता भी न रहे। हमारी चेतना बाह्य वस्तुओं को संपर्क में आती है तब हमारा मन उसे ही कई रूपों में अभिव्यक्त करता है। साहित्य उस अभिव्यक्ति का एक माध्यम है। जगत् और जगत् की वस्तुओं के प्रत्यक्ष ज्ञान को यथार्थ कहते हैं। यथार्थ का सीधा मतलब होता है जैसा है। यानी कि दुनिया जैसी है, उसका उसी प्रकार का ज्ञान यथार्थ है। बाबू गुलाब राय के अनुसार-"यथार्थ वह है जो नित्य प्रति हमारे सामने घटता है। उसमें पाप-पुण्य, सुख-दुःख की धूप-छाँह का मिश्रण रहता है। यह सामान्य भाव भूमि के समतल पर रहकर वर्तमान की वास्तविकता से सीमाबद्ध रहता है। स्वर्ग के स्वर्णिम सपने उसके लिए परी देश की वस्तुएँ है जो उसकी पहुँच से बाहर हैं। वह संसार की कलुष-कालिमा पर भव्य आदरण नहीं डालना चाहता। वह स्वर्ग को भी मिट्टी के कणों से मिश्रित देखना चाहता है।"[1]

साहित्य हमेशा से यथार्थ चित्रण का माध्यम रहा है। संसार के प्राचीन साहित्य और कला रूपों को देखने से मालूम होता है कि सूचनाकार और कलाकार कभी यथार्थ विमुख नहीं रहे। साहित्य और कला में यथार्थ का अभिव्यक्ति और यथार्थ का चित्रण हमेशा हुआ। जयशंकर प्रसाद ने लिखा है-"जाति में जो धार्मिक और साम्प्रदायिक परिवर्तनों के स्तर आवरण स्वरूप बन जाते हैं, उन्हें हटाकर अपनी प्राचीन वास्तविकता को खोजने की चेष्टा भी साहित्य में तथ्यवाद की सहायता करती है। फलतः आरंभिक साहसपूर्ण और विचिलता से भरी आख्यायिकाओं के स्थान पर जिनकी रचनाएँ राजकुमारों से ही संबद्ध होती थी- मनुष्य के वास्तविक जीवन का साधारण चित्रण आरंभ होता है। भारत के लिए उस समय दोनों ही वास्तविक थे-यहाँ के दरिद्र जन-साधारण और महाशक्तिशाली नरपति। किंतु जन-साधारण और उनकी लघुता के वास्तविक होने का एक रहस्य है। भारतीय नरेशों की उपस्थिति भारत के साम्राज्य को बचा नहीं सकी। फलतः उनकी वास्तविक सत्ता में अविश्वास होना सकारण था। धार्मिक प्रवचनों ने पतन में और विवेक दम्भपूर्ण आडम्बरों ने अपराधों में कोई

---

1 द्वारका प्रसाद मित्तल की पुस्तक-"हिंदी साहित्य के वाद" में उद्धृत, पृ.सं.234

रुकावट नहीं डाली। तब राजसत्ता का कृत्रिम और धार्मिक महत्व व्यर्थ हो गया और साधारण मनुष्य जिसे पहले लोग अकिंचन समझते थे, वही क्षुद्रता में महान् दिखलाई पड़ने लगा। उस व्यापक दुःख संबलित मानवता को स्पर्श करने वाला साहित्य यथार्थवादी बन जाता है। उस यथार्थवादिता में अभाव, पतन और वेदना के अंश प्रचुरता से होते हैं।"[1]

दूसरे शब्दों में रचनाकार का निजी यथार्थबोध ही इस भिन्नता का आधार है। हर देश और हर भाषा के साहित्य में प्रारंभिक काल से ही यथार्थ का चित्रण होता रहा है। संसार का यथार्थ साहित्य का मुख्य विषय है। इसलिए वह यथार्थ चित्रण से बच नहीं सकता। वही साहित्य बचा रहता है, जिसमें जीवन का यथार्थ रहता है। प्रेमचंद ने लिखा है-"आजकल के लेखक अनोखे चरित्रों के वर्णन में अपनी शक्ति नष्ट करते हैं। उन्होंने स्वयं अपने को जीवन से पृथक कर लिया है। उनको छोड़ो और वहाँ जाओ जहाँ स्त्री और पुरुष रहते हैं। रोज का जीवन रोज मिलने वाले मनुष्यों को दिखाओ। जीवन गहरे समुद्र से भी गहरा और प्रशस्त है। हममें जो सबसे तुच्छ है, उसकी आत्मा भी अनंत है। यह अनंत प्रत्येक मनुष्य में है, जो अपने को सीधा-सादा मनुष्य समझता है। प्रेमी में, मित्र में, उस नारी में जो शिशु जन्म के उज्जवल गौरव का मूल्य प्रसव वेदना से चुकाती है-हरेक स्त्री और हरेक मनुष्य में जो ज्ञात बलिदानों में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। यही जीवन की धारा है जो प्राणों में प्रवाहित होती है, घूमती है, चक्कर लगाती है। इन्हीं सीधे-सादे मनुष्यों की सीधी-सादी कथा लिखो, उनके अपनेवाले दिनों और रातों के सुखद काव्य की रचना करो। जीवन का विकास जैसा सरल होता है, वैसी ही सरल तुम्हारी कथा होनी चाहिए। शब्दों और अक्षरों और सूक्ष्म व्याख्यानों पर समय मत नष्ट करा जो वर्तमान कलाकारों की शक्ति का दुरुपयोग कर रही है। तुम सर्व साधारण के लिए रखते हो, सर्व साधारण की भाषा में लिखो। शब्दों में अच्छे-बुरे, शिष्ट और जाति का भेद नहीं है, न शैली में सौम्य और असौम्य का भेद है। हाँ, ऐसे शब्द, ऐसी शैलियाँ अवश्य हैं जो उन भावों को नहीं खोलती जो

---

1 काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ.सं.120-121

वह खोलना चाहती है। जो कुछ लिखो एक चित्त होकर लिखो, वही लिखो जो तुम सोचते हो। वही करो जो तुम्हारे मन को लगता है। अपने हृदय के सामंजस्य को अपनी रचनाओं में दर्शाओ, शैली ही आत्मा है।"[1]

साहित्य में यथार्थ चित्रण तो प्रारंभ से ही होता आया है लेकिन यह चित्रण एक जैसा नहीं रहा। मुख्य रूप से इस चित्रण के दो आयाम हैं। यथार्थ चित्रण का पहला आयाम सहज और स्वाभाविक चित्रण है। अभी इस दृष्टि से हर तरह के साहित्य में यथार्थ होता है। हाँ! कई बार यथार्थ का जो रूप होता है, वह यथार्थ कम उसका अभ्यास अधिक होता है। यथार्थ चित्रण के दूसरे आयाम के अंतर्गत एक सुचिंतित दृष्टि सक्रिय होती है। यह दृष्टि वैज्ञानिक निष्कर्षों से और तर्कों से बनी होती है। यथार्थ और यथार्थ युक्त सही पहचान करने में यह दृष्टि विवेक, तर्क और वैज्ञानिक निष्कर्षों का सहारा लेती है। इस तरह के दृष्टिकोण को वैज्ञानिक दृष्टिकोण कहा जा सकता है। इस तरह की दृष्टि से संपन्न साहित्यिक रचनात्मक दृष्टि सबसे पहली पश्चिम में शुरु हुई है। पश्चिम से यह संसार में फैली। इस दृष्टि के कारण यथार्थ और यथार्थ को देखने की जो विशेष पद्यधति अपनायी गयी है, उसे यथार्थवादी के रूप में जाना जाता है।

एक प्रश्न यह उठाया जा सकता है कि साहित्य जब स्वाभाविक रूप से यथार्थ परक होता है यानी कि उसकी प्रकृति ही यथार्थ जीवी होती है, तब अलग से साहित्य यथार्थ चित्रण की बात करना कहाँ तक सार्थक है। ऊपरी तौर पर यह प्रश्न सरल और सहज है। लेकिन वास्तविक अर्थ में यह यथार्थ के वर्गीय दृष्टिकोण का और यथार्थ चित्रण का विरोधी है। शिवकुमार मिश्र ने लिखा है:"बात ऊपर से जितनी सरल प्रतीत होती है, वस्तुतः वैसी है नहीं। साहित्य एवं कला-जगत में प्रारंभ से लेकर आज तक जो भी उपलब्धियाँ हुई हैं, उन पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि ऐसा बहुत कुछ सामने आया है, और आता रहा है, जो इस आधारभूत सत्य की अवहेलना करता रहा है कि मन से स्वतंत्र जो यह बाह्य जगत है, वही साहित्य एवं कलाओं का एकमात्र विषय बन सकता है। दूसरे,

---

1 साहित्य का उद्देश्य, पृ.सं.142

यदि बाह्य जगत् को अभिव्यक्ति का विषय बनाया भी गया है, तो इस रूप में कि उसने उसके अपने यथार्थ को क्षतिग्रस्त ही किया है। ये तथा अन्यान्य कारण हैं; जो बावजूद इस तथ्य के कि साहित्य एवं कलाएँ स्वभावतः यथार्थवादी होती है, हमें उनके अंतर्गत चित्रित यथार्थ के स्वरूप की पड़ताल करने को प्रेरित करते है।"[1]

## 1.2. यथार्थवाद

"यथार्थवाद" शब्द अंग्रेज़ी "रियलिज़्म" शब्द का हिंदी पर्याय है। इसमें जीवन की वास्तविकताओं का अंकन होता है। यह वाद भौतिक वस्तु को यथातथ्य रूप में चित्रित करता है। यथार्थवाद साहित्य की एक विशिष्ट चिंतन पद्धति है। इसके अनुसार साहित्यकार संसार के गुण-दोषों का तथा समाज में घटित होनेवाली घटनाओं अथवा जिस रूप में जो वस्तु रहती है उसका उसी रूप में वर्णन करता है। साहित्य में यथार्थ की अवधारणा बहुत पहले से है लेकिन यथार्थ को प्रस्तुत करने के दृष्टिकोण में भिन्नता आधुनिक युग की देन है। यथार्थ को लेकर जब खास तरह की दृष्टि विकसित हुई, तब "यथार्थवाद" का जन्म हुआ। "वाद" का मतलब ही होता है कोई एक सिस्टम। जब कोई एक विचार या दृष्टि एक सिस्टम में ढलकर व्यवस्थित रूप धारण कर लेती है तो उसे वाद कहा जाने लगता है। यथार्थ को देखने का जब खास सिस्टम विकसित हुआ और एक खास दृष्टि के तहत उसे देखने का आग्रह प्रबल हुआ। हिंदी साहित्य कोश के अनुसार "साहित्य की एक विशिष्ट चिंतन-पद्धति जिसके अनुसार कलाकार को अपनी कृति में जीवन के यथार्थ रूप का अंकन करना चाहिए। यह दृष्टिकोण वस्तुतः आदर्शवाद का विरोधी माना जाता है। पर वस्तुतः तो आदर्श उतना ही यथार्थ है जितना कि कोई यथार्थवादी परिस्थिति। जीवन में अयथार्थ की कल्पना दुष्कर है। किंतु अपने पारिभाषिक अर्थ में यथार्थवाद जीवन की समग्र परिस्थितियों के प्रति ईमानदारी का दावा करते हुए भी प्रायः सदैव मनुष्य की

---

[1] यथार्थवाद, डॉ.शिवकुमार मिश्र, पृ.सं.155

हीनताओं तथा कुरूपताओं का चित्रण करता है। यथार्थवादी कलाकार जीवन के सुंदर अंश को छोड़कर असुंदर अंश का अंकन करना चाहता है। यह एक प्रकार से उसका पूर्व ग्रह है।

यथार्थवादी प्रवृत्तियाँ सब देशों के साहित्य में विभिन्न कालों में मिलती हैं। वस्तुतः यथार्थवाद सुधारक साहित्य का प्रथम अस्त्र है। किसी भी सामाजिक स्थिति के प्रति विद्रोह करते समय साहत्यकार उसका यथार्थवादी चित्र उपस्थित करता है। इस प्रकार वह अपने पाठक के मन में उस आक्रोश को जन्म देना चाहता है, जिसके बिना किसी भी सुधार, परिवर्तन अथवा क्रांति की कल्पना नहीं की जा सकती। हिंदी साहित्य में यथार्थवादी प्रवृत्तियाँ मध्यकाल से ही दिखाई देने लगती हैं। कबीर एक प्रकार से हिंदी के प्रथम यथार्थवादी कवि है। उनके समाज में जो खोकलापन घर कर गया था उसका अत्यंत सशक्त चित्रण उन्होंने अपने काव्य में किया है। जीवन की विकृतियाँ तथा कुरूपताएँ सर्वत्रा उनके आक्रोश का लक्ष्य बनी हैं। कबीर के उपरांत तुलसी में भी किसी हद तक यथार्थवादी प्रवृत्ति दिखाई देती है। अपने दृष्टिकोण में आदर्शवादी होते हुए भी वे सामाजिक जीवन की कटुताओं की ओर से अपनी आँखें नहीं फेर सके थे।

यथार्थवाद आधुनिक युग की उपज है। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यथार्थवाद का जन्म पश्चिम में हुआ। विज्ञान के नये आविष्कारों, औद्योगिक क्रांति तथा समाज और जगत् के देखने की नयी दृष्टियों के कारण यथार्थ संबंधी समझने वाद का रूप लिया और यथार्थवाद का जन्म हुआ। इसके पहले साहित्य में यथार्थ की स्थिति वाद या आंदोलन के रूप में न थी। साहित्य में यथार्थ के प्रति आग्रहशीलता .रचनाकार के सहज नैसर्गिक झुकाव के कारण बढ़ी। तब रचनाकारों का यथार्थ के प्रति सहज आकर्षण था। उनके यथार्थबोध में जीवन और जगत् के सच्चे चित्र चाहे वह बाहरी हो या भीतरी पूरी सच्चाई के साथ व्यक्त हुए। इन रचनाकारों का यथार्थबोध किसी वाद से आंदोलित नहीं था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यथार्थ के प्रति सहज अभिरुचि ने यथार्थवाद का रूप धारण किया। औद्योगिक क्रांति से नये-नये वैज्ञानिक आविष्कार तथा

क्रांतिकारी दार्शनिकों के नये विचारों के कारण जीवन और जगत् को देखने की नयी दृष्टि विकसित हुई। बीसवीं शताब्दी में इसका पूर्ण विकास हुआ और वाद के रूप में इसने संपूर्ण संसार के साहित्य को प्रभावित किया है।

यथार्थवाद साहित्य कलावादी दृष्टि के विरोध में पैदा हुआ। बहुत से विचारकों और लेखकों का मत था कि "कला कला के लिए है" इस धारणा के विरोध में यथार्थवादी चेतना विकसित हुई और यह मत विकसित हुआ कि "कला समाज के लिए है"। यथार्थवाद के साथ एक बहुत ही मजबूत वैज्ञानिक और वैचारिक दृष्टि काम कर रही थी। इसलिए उसमें एक नया आकर्षण था और उसका तेजी से प्रचार-प्रसार हुआ।

यथार्थवाद का जन्म पश्चिम में हुआ और यथार्थवाद संबंधी विवेचन का विकास भी वहीं हुआ। यथार्थ की अवधारणा का एक क्षेत्र दर्शन है। दूसरा साहित्य तथा कला। इस संसार का अस्तित्व वास्तविक है और यह किसी लोकोत्तर सत्ता की देन नहीं है। इस मत के प्रतिपादन में यथार्थवाद का विकास हुआ। डॉ. शिवकुमार मिश्र ने लिखा है कि - "समग्रतः यथार्थवादी रचनाकार और यथार्थवाद दार्शनिक दोनों यह मानकर चलते है कि बाह्य जगत् का अस्तित्व हमारे मन अथवा हमारी इच्छा-अनिच्छा से परे "एक ठोस वस्तुगत अस्तित्व" है। साहित्य और कला का संबंध भी इसे बाह्य जगत् और उसके नाना रूप व्यापारों से है। यथार्थवादी दर्शन और यथार्थवादी कला चिंतन तथा साहित्य दोनों का ही एक लंबा और संपन्न इतिहास है जिसके क्रम में यथार्थवादी दर्शन और यथार्थवादी चिंतन तथा कला के न केवल समय-समय पर अनेक पहलू उद्घाटित हुए हैं, एकदम नई मान्यताएँ भी सामने आती रही हैं।"[1]

यथार्थवाद संबंधी साहित्य और कला चिंतन के क्षेत्र में अनेक चिंतकों का महत्वपूर्ण योगदान है। इसे चिंतकों ने यथार्थ संबंधी अपने नये चिंतन के जरिए

---

1 यथार्थवाद:पृ.सं.02

यथार्थ के प्रति नई दृष्टि विकसित की और यथार्थ संबंधी नये धरातल का उद्घाटन किया ऐसे चिंतकों में अंर्स्ट फिशर का नाम प्रमुखता से लिया जाता है।

अंर्स्ट फिशर ने यथार्थ का वाद संबंधी समझ को बहुत विकसित किया और उसे सही पटरी पर बिठाने काम किया उनके अनुसार यथार्थ न सिर्फ एक दृष्टिकोण है बल्कि एक नयी शैली या पद्धति है। दोनों के बीच की विभाजित रेखा बहुत धुंधली है। हम जैसा देखते हैं उतना ही यथार्थ नहीं है। यथार्थबोध को सिर्फ बाह्य जगत् तक सीमित नहीं करना चाहिए। मानव चेतना से स्वतंत्र जो कुछ अस्तित्व में है - वास्तविक जड़ पदार्थ, उस जड़ पदार्थ को देखने का तरीका बहुत ही संशिलष्ट होना चाहिए। वे मानते हैं कि यथार्थ का निर्धारण रचनाकार की व्यक्तिगत तथा सामाजिक दृष्टिकोण से होता है। यथार्थ संबंधी धारणा में भूत वर्तमान और भविष्य संबंधी हमारे अनुभव तथा इच्छा-अनिच्छाएँ शामिल होती हैं। फिशर के अनुसार हमारे यथार्थबोध के कारण सारी कलाएँ यथार्थ कला होती हैं।

फिशर यथार्थ के चित्रण को एक विशिष्ट पद्धति मानते हैं। लेकिन बाद में यथार्थ संबंधी फिशर की दृष्टि का विकास दूसरे चिंतकों ने किया। बाद के चिंतकों का मानना था कि फिशर ने यथार्थबोध की रूप-रेखा को निहायत सामान्य बना दिया है। दूसरे चिंतकों ने यथार्थ को केवल पद्धति न मानते हुए उसे पद्धति और दृष्टिकोण दोनों माना। ऐसे चिंतकों में सर्वप्रथम नाम जार्ज लुकाच को लिया जा सकता है। जो पद्धति और दृष्टिकोण दोनों को यथार्थवाद का विशेष आधार मानते हैं।

यथार्थवाद चूँकि एक प्रेरित सिद्धांत और साहित्य निर्माण को दिशा देनेवाले सौंदर्य शास्त्रीय प्रतिमान के रूप में मान्य हुआ, इसलिए यथार्थवाद रचना में सिर्फ यथार्थ चित्रण भर नहीं है वह रचनाकार का लक्ष्य है जो उसे अनुशासित करता है। शिवकुमार मिश्र का कहना है-"यथार्थवाद की यह दृष्टि मूलतः दार्शनिकता वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर स्थित एक शुद्ध दृष्टि है। इस दृष्टि से युक्त

विषयवस्तु के चुनाव में अतिमानवीय, अति प्राकृतिक तथा विज्ञान द्वारा अमान्य घटनाओ, स्थितियों तथा तथ्यों के संपूर्ण बहिष्कार की मांग भी करता है। यथार्थवाद संबंधी इस दृष्टि के निर्माण में ऊपर हमने जिन दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक निष्पत्तियों का उल्लेख किया है उनके पुरस्कर्ताओं में सेंट साइमन, आगस्टी काम्टे, फायरबाख, डार्विन, मार्क्स, एंगेल्स आदि के साथ-साथ बेलिस्की, हर्जन, यानिशवस्की तथा द्रोब्रोल्युबोव जैसे प्रसिद्ध रूसी दार्शनिक विचारकों एवं तमाम अन्य नामों की गणना की जा सकती है।"[1]

यथार्थवाद का जन्म आदर्शवाद के विरोध में हुआ। आदर्शवाद लेखक की कल्पना की दुनिया से निर्मित होता था जिसमें सब कुछ अच्छा होता था। लेकिन यथार्थवाद कल्पित अच्छाई की जगह जमीनी सच्चाई तथा जीवन और जगत् का सच्चा चित्र पेश करता है। इससे साहित्य में कल्पना की जगह वास्तविकता को अधिक महत्व मिला है। जीवन और जगत् में जो कुछ अच्छा और बुरा है वह सामने आया है। इस क्रम में जीवन की वे सच्चाइयाँ भी सामने आयी हैं, जिन्हें पहले आदर्शवादी रचनाकार असुंदर और असाहित्यिक मानकर अपनी रचना में प्रमुखता नहीं देते थे। हिंदी साहित्य कोशकार ने यथार्थवाद के इस पक्ष की चर्चा करते हुए लिखा है-"साहित्य की एक विशिष्ट चिंतन पद्धति, जिसके अनुसार कलाकार को अपनी कृति में जीवन के यथार्थ रूप का अंकन करना चाहिए। यह दृष्टिकोण वस्तुतः आदर्शवाद का विरोधी माना जाता है। पर वस्तुतः तो आदर्श उतना ही यथार्थ है जितनी कि कोई भी यथार्थवादी परिस्थिति।"[2]

बाबू गुलाब राय के अनुसार "यथार्थ वह है जो नित्य प्रति हमारे सामने घटता है। उसमें पाप-पुण्य, सुख-दुःख की धूप छाँह का मिश्रण रहता है। यह सामान्य भाव भूमि के समतल पर रहकर वर्तमान की वास्तविकता से सीमाबद्ध रहता है। स्वर्ग के स्वर्णिम सपने उसके लिए परी देश की वस्तुएँ हैं जो उसकी

---

1 "यथार्थवाद" पृ.सं.5

2 डॉ. शिवकुमार मिश्र,यथार्थवाद पृ.सं. 5

पहुँच से बाहर है। वह संसार की कलुष-कालिमा पर भव्य आवरण नहीं डालना चाहता। वह स्वर्ग को भी मिट्टी के कणों से मिश्रित देखना चाहता है।"[1]

"जयशंकर प्रसाद" के विचार से "यथार्थवाद जीवन की अभिव्यक्ति और आदर्शवाद अभावों की पूर्ति है"

डॉ. नन्द दुलारे बाजपेयी का कथन है कि "यथार्थवाद तथा आदर्शवाद" दोनों ही चित्रण शैली के दो स्थूल विभाग मात्र है। दोनों ही शैलियाँ लेखक के दृष्टिकोण पर अवलंबित रहती है। कला की सौंदर्य सत्ता की ओर दोनों का झुकाव रहता है। आदर्शवाद में विशेष या इष्ट के आग्रह द्वारा इष्ट ध्वनित होता है। यथार्थवाद में सामान्य व अभीष्ट के चित्रण द्वारा इष्ट की व्यंजना होती है।"[2]

डॉ.भगीरथ मिश्र लिखते हैं कि "प्रगतिवाद (यथार्थवाद) हमारे अंतर्गत सामाजिक और नैतिक चेतना जागृत करता है। समाज के दुखों की ओर हमारा ध्यान ले जाता है और जीवन समस्याओं को, सामाजिक विषमताओं को विकराल रूप में जैसा कि हम नित्य के जीवन में देखते हैं-उपस्थित करता है।"

शिवदान सिंह ने आदर्शवाद को पलायनवाद माना है। प्रगतिवादी लेखक यथार्थवाद को ही सच्चा मानते हैं। दैनिक जीवन का चित्रण इस प्रकार है कि यथार्थवादी कलाकार शिव, अशिव तथा सुंदर-असुंदर का ध्यान नहीं रखता, अपितु नित्य प्रति में देखें, सुने, सतत साहचर्य में आए सभी चरित्रों एवं परिस्थितियों का चित्रण करता है। यथार्थवादी वस्तुओं की पृथक-पृथक सत्ता का समर्थन करता है। उसकी प्रवृत्ति समष्टि की ओर न रहकर व्यष्टि की ओर रहती है। यथार्थवादी प्रत्यक्ष वस्तु जगत से संबंध रखता है। वह सत्य का खोजी है और उसका सत्य अपनी इंद्रियों से जाना हुआ सत्य है। यथार्थवाद का संबंध वैज्ञानिक दृष्टि से है। उसका उद्देश्य यथार्थ, स्वाभाविक, सरल, स्पष्ट, मूर्त एवं वर्तमान जीवन से प्रेम रखनेवाले चित्रों को प्रस्तुत करना है। वास्तव में जो कुछ नित्य हमारे सामने घटता है वही यथार्थ है, जीवन और जगत का वास्तविक तथ्य

---

1 डॉ. द्वारका प्रसाद मीतल-हिन्दी साहित्य के वाद पृ.सं. 234

2 डॉ. द्वारका प्रसाद मीतल-हिन्दी साहित्य के वाद, पृ.सं. 234

वही है। उसी में हमको पाप पुण्य, आशा-निराशा, जय-विजय, सत्य-असत्य, सुख-दुख आदि सभी यथार्थ रूप में देखने को मिलता है। यथार्थवादी-कलाकार सत्य का उपासक होता है। वह उस वास्तविक सत्य से परे स्वर्णिम लोक में विचारने की कामना नहीं करता। वह सत्य पर असत्य का आवरण नहीं डालना चाहता। वह असत्य साधनों से असुंदर को सुंदर बनाने की कामना नहीं रखता। वह कठोर और अप्रिय सत्य को भी दिखाना चाहता है। वह संसार तथा समाज के नग्न दृश्यों को चित्रण करता है। वह किसी चित्र को अस्वाभाविकता से और असुंदर को कल्पना से रंजित नहीं करना चाहता। यथार्थवाद दर्पण का कार्य करता है और जीवन के वास्तविक स्वरूपों को हमारे सम्मुख रखता है।

डॉ.बच्चन सिंह ने यथार्थवाद को पश्चिम की देन माना है। वे लिखे हैं- "हिंदी में "यथार्थवाद" अंग्रेजी के "रियलिज्म" के अनुवाद के रूप में प्रयुक्त हुआ है। लेकिन इसके प्रयोग का ऐतिहासिक संदर्भ लगभग वही है जो पश्चिम में था। एक विशेष प्रकार के उपन्यासों को यथार्थवादी उपन्यास की संज्ञा दी गयी। यथार्थ का अभिप्राय है-यथा+अर्थ, यानी जैसा है वैसा अर्थ। किंतु इसे समझने के लिए दर्शन की भूमिका में प्रवेश करना होगा।

पश्चिम में इस शब्द का लंबा इतिहास है। तत्वदर्शन (मेटाफ़िजिक्स), ज्ञान मीमांसा (एपिस्टेमोलॉजी) और प्रत्ययवाद (कांस्पेचुअलिज्म) में यह अलग-अलग अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। तत्वदर्शन के अनुसार यथार्थवाद का अर्थ है कि सामान्य (यूनिवर्सल) की सत्ता विशेष के पूर्व होती है। सामान्य (यूनिवर्सल) भागवत चेतना है और सृष्टि उस चेतनाकी प्रतिकृति है। प्लेटो का अनुकृति सिद्धांत इसी दर्शन पर आधारित है। इसी को वह यथार्थवाद कहता है। ज्ञान-मीमांसा में ज्ञेय की सत्ता ज्ञाता से भिन्न और स्वतंत्र होती है। यदि पदार्थ का ज्ञान ज्ञाता के चित्त पर आश्रित रहता है तो उसे ज्ञान संबंधी चिद्वाद (एपिस्टेमोलॉजिकल आइडियलिज्म) कहा जाता है। साहित्यिक यथार्थवाद का

संबंध ज्ञान-मीमांसा के यथार्थवाद यानी ज्ञाता से भिन्न ज्ञेय की स्वतंत्र सत्ता से है।"[1]

जीवन का वास्तविक यथातथ्य स्वरूप हमारे रखने के कारण यथार्थवादी साहित्य को जीवन का दर्पण कहा जा सकता है। यथार्थवादी का कथन है कि साहित्य की सत्यता और यथार्थता जीवन में भी वास्तविकता ला सकते हैं। वह स्पष्ट और निर्भीक कलाकार हैं। यथार्थवादी कवि का सिद्धांत है कि सत्य ही प्रकाश है, सत्य ही सुख है। सत्य अटल, सत्य अजर और सत्य अमर है। प्रकृति की समस्त वस्तुएँ सत्य के ही आश्रित हैं। यथार्थवादी के अनुसार सत्य ही गति, प्रगति और सत्य ही रहस्य है। उसके अनुसार सत्य ही दर्शन है। इतिहास का आधार भी सत्य है और विज्ञानका आधार भी सत्य है। उसके जीवन का परम कर्तव्य सत्य का अन्वेषण है। साहत्य में सत्यं, शिवं, सुंदरम् का होना श्रेयस्कर है।

यथार्थवाद निरावरण सत्य को प्राथमिकता देता है। उसे शिव तथा सुंदरम् से कोई विरोध नहीं। यथार्थवादी कलाकार चाहता है कि उसके साहित्य में भी शिवं तथा सुंदरम को भी स्थान प्राप्त हो परंतु उसकी दृष्टि में सत्यं की अपेक्षा इनका स्थान गौण होता है। इसके लिए शिवं तथा सुंदरम सत्य के अनुगामी हैं। यथार्थवाद पर विज्ञान का तथा आधुनिक युग का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। प्रसाद जी यथार्थवाद के पनपने के कारण बताते हुए लिखते हैं, "जाति में जो धार्मिक और साम्प्रदायिक परिवर्तनों के स्तर आवरण स्वरूप बन जाते हैं, उन्हें हटाकर अपनी प्राचीन वास्तविकता को खोजने की चेष्टा भी साहित्य में तथ्यवाद की सहायता करती है। फलतः आरंभिक साहसपूर्ण और विचित्रता से भरी आख्यायिकाओं के स्थान पर जिनकी रचनाएं राजकुमारों से ही संबद्ध होती थीं- मनुष्य के वास्तविक जीवन ही वास्तविक थे-यहाँ के दरिद्र जन-साधारण और महाशक्तिशाली नरपति। किंतु जन-साधारण और उनकी लघुता के वास्तविक होने का एक रहस्य है। भारतीय नरेशों की उपस्थिति भारत के साम्राज्य को बचा

---

1 आधुनिक हिंदी आलोचना के बीज शब्द, पृ.सं.83-84, लेखकः बच्चन सिंह।

नहीं सकी। फलतः उनकी वास्तविक सत्ता में अविश्वास होना सकारण था। धार्मिक प्रवचनों ने पतन में और विवेक दम्भपूर्ण आडंबरों में कोई रुकावट नहीं डाली। तब राजसत्ता का कृत्रिम और धार्मिक महत्व व्यर्थ हो गया और साधारण मनुष्य जिसे पहले लोग अकिंचन समझते थे, वही क्षुद्रता में महान दिखलाई पड़ने लगा। उस व्यापक दुःख संवलित मानवता को स्पर्श करनेवाला साहित्य यथार्थवादी बन जाता है। उस यथार्थवादिता में अभाव, पतन और वेदना के अंश प्रचुरता से होते हैं।"[1]

यथार्थवाद में हम अपना प्रतिबिंब देखते हैं। इसमें वे भी गुण और अवगुण समाविष्ट हरते हैं जिन्हें जन-साधारण देखते हैं। यथार्थवादी की धारणा रहती है कि समाज में जो कुछ बुरा है, घृणित है, हीन है, असत है उसी को साहित्य में स्थान मिलना चाहिए क्योंकि उत्तम, सुंदर तथा सत तो केवल कल्पना लोक की वस्तुएँ है। वास्तविक जीवन में हम इनके दर्शन नहीं करते। प्रत्येक देश तथा काल में दुष्टों, अनाचारियों, पापियों और अत्याचारियों की विजय होती आई है। संसार में जो कोई बढ़ा है, वह दूसरों को दबाकर ही बढ़ा है। जो विजय होता है वही धर्मात्मा समझा जाता है और जो पराजित होता है वही दुष्ट और पापी समझा जाता है। शक्तिहीन व्यक्ति जिन कर्मों को छिपकर करना चाहता है और जो पाप कहलाता है यदि समाज का बड़ा भाग उन्हें उचित और व्यवहार्य घोषित कर दे तो वही उचित एवं धर्म मान लिया जाता है। शक्तिवान की बात को धर्म और शक्तिहीन की बात को अधर्म कहा जाता है। समाज में यह विषमता सदैव से चली आई है। इसलिए सत्य और यथार्थ का चित्रण करना ही यथार्थवादी का कार्य है।

आदर्शवादी हमको व्यक्ति की आरे उन्मुख करता है जब कि यथार्थवादी हमारी दृष्टि को समाज की ओर मोड़ता है। तुलसी के राम जैसे व्यक्ति संसार में नहीं मिलते परंतु होरी जैसे व्यक्ति ग्रामों में अनेक पाये जाते हैं। राम का चरित्र आदर्शवादी है जो हमको राम जैसा बनने की प्रेरणा देता है और हम अपने व्यक्तित्व की आरे केवल सचेत होकर रह जाते हैं परंतु होरी को देखकर हमारे

---

1 काव्य और कला तथा अन्य निबंध - पृ.सं. 120

सम्मुख अनेक समस्याएँ आ जाती हैं। हम सोचने लगते है कि होरी के समान गाँव के व्यक्तियों की समस्याओं को कैसे सुलझाया जाए। राम का चित्रण हमारी सामाजिक भावना को नहीं उभार सकता केवल हम उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर स्वयं में ही सीमित होकर रह जाते हैं। होरी में हम समाज का यथार्थ चित्रण देखते हैं और उसमें वे भी गुण अवगुण मौजूद है जो जन साधारण में मिलते हैं।

यथार्थवाद में स्वाभाविक, सरल एवं स्पष्ट चित्रण रहता है तो आदर्शवाद का उद्देश्य सत्य, नीति तथा न्याय की विजय कामना है। यथार्थवादी साहित्य में यथावत् चित्रण करता है परंतु आदर्शवादी उसमें मनोनुकूल परिवर्तन कर देते हैं। विषय का जहाँ तक संबंध है दोनों यथार्थ का चित्रण करते हैं परंतु अंतर इतना है कि यथार्थवादी जीवन की साधारणता का दिग्दर्शन कराता है। आदर्श केवल गुणों का चित्रण कर भव्य रूप हमारे सम्मुख रखता है जबकि यथार्थ गुण और अवगुण सबको हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। व्यक्तियों को हम दो प्रकार की श्रेणियों में रख सकते हैं-एक श्रेणी तो वह होती है जो सदैव गुणों की ओर दृष्टिपात करते हैं, दूसरी श्रेणी के व्यक्ति केवल अवगुणों को ही देखते हैं। आदर्शवादी में काल्पनिक शक्तियों की प्रबलता रहती है और वह गुणों की आरे ही उन्मुख रहता है। परंतु यथार्थवादी का दृष्टिकोण गुण अवगुण सबकी ओर एक सा रहता है।

यथार्थवादी प्रायः अवगुणों को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। कुछ लोगों का कथन है कि यथार्थवादी कलाकार मानवीय दुर्बलताओं, कुवासनाओं, दुश्चरित्रता या सच्चरित्रता को यथार्थ या नग्न रूप में सामने रखता है। इस चित्रण का समाज पर बुरा प्रभाव पड़ता है अथवा अच्छा उससे उसका कोई प्रयोजन नहीं। वह अपने उत्तरदायित्व को भूल जाता है। गोदान और तितली यथार्थवादी उपन्यास है परंतु इनका साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में बात यह है कि सच्चा यथार्थवादी साहित्यिक सामाजिक चेतना का सदैव ध्यान रखता है। उसका चित्रण केवल चित्रण के लिए नहीं होता अपितु वह एक अमर संदेश वहन किए हुए होता है।

बाबू गुलाब राय लिखते हैं, "वास्तविक यथार्थवाद तो गुण और दोषों को उचित अनुपात में दिखाना है, किंतु प्रायः लोग यथार्थवाद के नाम पर मनुष्य की बुराइयों और दुर्बलताओं का उद्घाटन करते हैं। इसमें भी यदि बुराइयों का उद्घाटन इसलिए किया जाए तब तो वह क्षम्य हो जाता है किंतु जब बुराइयों का उद्घाटन लोगों की कुरुचि से लाभ उठाने अथवा उसके आधार पर उपन्यास की बिक्री बढ़ाने अथवा मानव समाज से अपना बदला लेने के लिए किया जात है तब वह निन्द्य हो जाता है।"[1] डॉ.रांगेय राघव यथार्थवाद के संबंध में लिखते हुए उसका विश्लेषण इस प्रकार करते हैं, "वही यथार्थवाद श्रेष्ठ है जो संकुचित सीमाओं के अंतर्विरोधियों को प्रकट करके मनुष्य को कुत्सित मनोवृत्ति से उबारकर उसे व्यापकतम दृष्टिकोण देता है, किंतु व्यापकत्व के आकाश को देखने की दौड़ में धरती को भुला नहीं देता।"[2] प्रगतिवादी साहित्य यथार्थ चित्रण का पोषक है। आज प्रगतिवाद युग की पुकार है। वह सामाजिक विषमताओं का उन्मूलन कर समानता के पक्ष में है। वह समाज का वास्तविक रूप हमारे सम्मुख रखता है, लेकिन प्रगतिवाद के अंतर्गत हमको केवल वासनामय कुत्सित चित्रणों को ही नहीं लेना चाहिए। जब प्रगतिवाद के साथ यथार्थवाद की मांग उठी तो कुछ साहित्यकार मनोविज्ञान आदि का आश्रय लेकर अति बीभत्स एवं उत्तेजनापूर्ण चित्रण करने लगे। जयशंकर प्रसाद के अनुसार "यथार्थवाद की विशेषताओं में प्रधान है, लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात। उसमें स्वाभावतः दुख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है। लघुता से मेरा तात्पर्य है साहत्य के माने हुए सिद्धांत के अनुसार महत्ता के काल्पनिक चित्रण से अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन के दुःख और अभावों का वास्तविक उल्लेख।"[3]

यथार्थवादी साहित्य व्यापक दुःख संचालित मानवता को स्पर्श करने वाला होता है। यथार्थवाद में अभाव, पतन और वेदना के अंश प्रचुर मात्रा में

---

1 साहित्य में यथार्थवाद, डॉ. रांगेय राघव, पृ.सं.

2 काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ.सं.

3 काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ.सं.120, जयशंकर प्रसाद

देखने को मिलते है। यथार्थवाद मानता है कि मानव में दुर्बलताएँ होती हैं और यथार्थ चित्र में पतन का उल्लेख वांछनीय है। पतन के मुख्य कारण क्षुद्रता और निंदा की सत्ता भी दूसरे रूप में दिखाई देती है। यथार्थवाद में व्यक्ति की दुर्बलताओं के कारणों को खोजकर व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक अवस्था का भी चित्रण रहता है। यथार्थवादी वेदना से प्रेरित होकर जन साधारण के अभाव की आरे दृष्टिपात करता है और वास्तविक स्थिति तक पहुँचने का प्रयास करता है। वह व्यक्ति के पीड़न कष्ट और अपराधों से समाज को परिचित कराने का प्रयत्न करता है। यथार्थवादी साहित्य में अपरोधों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न कर सामाजिक परिवर्तन के सुधार की भावना अंतर्निहित रहती है। प्रसाद के शब्दों में "यथार्थवाद क्षुद्रों का ही नहीं अपितु महानों का भी है। वस्तुतः यथार्थवाद का मूल भाव है वेदना। जब सामूहिक चेतना छिन्न-भिन्न होकर पीड़ित होने लगती है, तब वेदना की निवृत्ति आवश्यक हो जाती है।"[1]

यथार्थवादी साहित्य लोक-सामान्य की भावना का प्रकटीकरण करता है। इसके मूल में वेदना की निवृत्ति की भावना रहती है। साहित्यिक यथार्थवाद के दो रूप होते हैं। एक वर्णनात्मक और दूसरा भावात्मक। वर्णनात्मक यथार्थ में वस्तु वर्णन की प्रधानता रहती है। यदि किसी कृषक का वर्णनात्मक चित्र प्रस्तुत करना है तो उसके हल, बैल, खान पान आदि सभी बातों का ध्यान रखना पड़ेगा। भावात्मक यथार्थ में उसके वैयक्तिक जीवन की आंतरिक अवस्था का परीक्षण रहता है। उसकी भावनाओं, आकांक्षाओं और कल्पनाओं को समझने की चेष्टा रहती है। भावात्मक यथार्थ में जीवन की दयनीय स्थितियों का भरपूर चित्रण रहता है। आधुनिक साहित्य यथार्थवाद के अधिक अनुरूप है। जहाँ तक भाषा का संबंध है यथार्थवादी लोक प्रचलित भाषा को अपनाने के पक्ष में हैं। वे ऐसे शब्दों का चयन करते है जो मार्मिक और सूक्ष्म अर्थ प्रकाशन कर सकें। आदर्शवादियों की भाषा और शब्दों के प्रयोग में भावुकता तथा नाद सौंदर्य अधिक मिलता है लेकिन यथार्थवादी अर्थ का सूक्ष्म चुनाव करते हैं। यथार्थवादी मनोरंजक,

---

[1] काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ.सं.122, जयशंकर प्रसाद

विनोदात्मक बौद्धिक और तार्किक शैलियों को अपनाता है जबकि आदर्शवादी कल्पना प्रधान और भावुकतापूर्ण शैलियों को अपनाता है। आदर्शवादियों की रचनाओं में व्यंग्य तथा कर्कशता नहीं मिलती।

मार्क्सवाद के अनुसार प्रगतिवादी और प्रतिक्रियावादी तत्वों का पारस्परिक संघर्ष सृष्टि के विकास के मूल में कार्य करता है। प्रगतिवादी तत्वों की विजय के साथ ही विश्व का विकास होता है। मार्क्सवादी दुनिया को जानना ही नहीं चाहता अपितु उसे बदलना चाहता है। वह चाहता है कि असंतोष, शोषण, विषमता आदि के मूल कारणों का उन्मूलन कर विश्व का पुनर्निर्माण करे। पूँजीवादी संसार के विकास का रोड़ा है। इस आर्थिक वैषम्य को दूर कर साम्यवाद की स्थापना से विषमता का नाश संभव है। मार्क्सवाद का उद्देश्य सर्वहारा वर्ग के शोषण को समाप्त कर एक वर्गहीन समाज को स्थापित करना है। अर्थ का असमान विभाजन ही सामाजिक विषमता का मुख्य कारण है। मार्क्सवाद इस विषमता और उसके परिणामों का यथार्थ चित्रण करनेवाले साहित्य का सृजन चाहता है। इस प्रकार मार्क्सवाद यथार्थवादी चित्रण को महत्व प्रदान करता है।

इसके विपरीत कुछ आलोचकों की धारणा है कि जो साहित्य लोक कल्याण तथा सामाजिकता पर आधारित नहीं वह प्रगतिशील हो ही नहीं सकता। डॉ.रांगेय राघव फ्रायडियन यथार्थवाद का विरोध करते हुए लिखते हैं-"यौनवाद के समर्थक कहते हैं कि क्या हमारे समाज में समस्यायें नहीं हैं? उनके लिए उत्तर है, "हैं" परन्तु नग्न चित्रण यदि रस लेकर भावनाओं को विकृत करने के लिए है तो वह हमें शरीर की उन परिधियों से घेर लेता है जो समाज की सामाजिकता के स्थान पर व्यक्तिगत उलझनों में डालता है। वह व्यक्तिगत उलझनें पथ को प्रशस्त नहीं करतीं, भाग्यवाद को स्थान देती हैं। इस समाज में दिगम्बर नहीं रहते । समाज ने हमारे लिए अथवा यों कहिये, हमने समाज में रहने के लिए कुछ नियम बनाए हैं, उन्हें हमको देखना है, उनकी जाँच करनी है, यौन समस्यायें भी उन्हीं के अन्तर्गत हैं। समाज केवल यौन समस्याओं का ही भंडार नहीं है। यौन समस्याओं का उतना ही रूप श्रेयस्कर है। सामाजिक यथार्थवाद में यौन

समस्या को अन्य समस्याओं का एक भंग मानकर ही विचार किया जाता है, जो अपने सापेक्ष रूप में उचित और स्वस्थ है।"[1] फ्रायडियन यथार्थवाद के संबंध में डॉ.विश्वम्भरनाथ उपाध्याया लिखते हैं, "अतः यौनवाद या प्रकृतवाद या फ्रायडियन यथार्थवाद अवैतनिक, अवैज्ञानिक,क्रान्ति विरोधी और अनुपयोगी है। वह मूलतः पूँजीवादी मनोविज्ञान है क्योंकि वह मनोविज्ञान के नाम पर व्यक्ति के सारे व्यक्तित्व को काम वासना में बन्द कर देता है। वह यथार्थ नहीं, यथार्थ को भुलाने की छलना है।"[2]

प्रसाद आदर्शवाद और यथार्थवाद का साहित्य में स्थान निर्धारित करते हुए लिखते हैं, "कुछ लोग कहते हैं कि साहित्यकार को आदर्शवादी होना ही चाहिए और सिद्धान्त से ही आदर्शवादी धार्मिक प्रवचनकर्ता बन जाता है। वह समाज को कैसा होना चाहिए यही आदेश करता है और यथार्थवादी सिद्धांत से ही इतिहासकार से अधिक कुछ नहीं ठहरता, क्योंकि यथार्थवाद इतिहास की संपत्ति है। वह चित्रित करता है कि समाज कैसा है या था, किंतु साहित्यकार न तो इतिहासकर्ता है और न धर्मशास्त्र प्रणेता। इन दोनों के कर्तवय स्वतंत्र हैं। साहित्य इन दोनों के अभाव को पूर्ण करने का काम करता है। साहित्य समाज की वास्तविक स्थिति क्या है, इसको दिखाते हुए भी उसमें आदर्शवाद का सामंजस्य स्थिर करता है। दुःख-दग्ध जगत् और आनंदपूर्ण स्वर्ग का एकीकरण साहित्य है, इसलिए असत्य अघटित घटना पर कल्पना को वाणी महत्वपूर्ण स्थान देती है, जो निजी सौंदर्य के कारण सत्य पद पर प्रतिष्ठित होती है। उसमें विश्व मंगल की भावना ओतप्रोत रहती है।"[3]

यथार्थवाद का अभिप्राय यह कदापि नहीं कि समाज में जो जैसा है अथवा हृदय में जैसी बातें उठती हैं बिना समाज के कल्याण की चिंता के उनका यथावत् चित्रण कर दयिा जावे। यथार्थवाद का यह अभिप्राय कदापि नहीं कि हम जो कुछ

---

1 साहित्य में यथार्थवाद, डॉ.रांगेय राघव

2 हिन्दी साहित्य के प्रमुख वादः विश्वम्भर नाथ उपाध्याय

3 काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ.सं.122-123, जयशंकर प्रसाद

जिस रूप में देखते हैं उसका वैसा ही नग्न चित्रण कर दें। यदि यथार्थवादी कलाकार बिना किसी उद्देश्य के यथार्थ का नग्न चित्रण करता है और उसमें सामाजिक मर्यादाओं का ध्यान नहीं रखता हो वह कुत्सित भावनाओं को ही जगाएगा। यथार्थवाद का वास्तविक उद्देश्य यह है कि वह सामाजिक विषमताओं और उसकी बुराइयों आदि का चित्रण कर पाठकों में उनके प्रति विरक्ति की भावना उत्पन्न करे जिससे कि वे उनको त्याग दें। इसका सर्वोत्तम उदाहरण रूस के उपन्यासकार अलेक्जेण्डर कुप्रिन का यामा दी पिट yama the pit नामक उपन्यास है। जिसका हिंदी में "गाड़ीवालों का कटरा" नाम से अनुवाद हुआ है। इस उपन्यास में रूस की वेश्याओं का जीवन चरित्र है। इसमें अश्लीलता भी है। परंतु पूरा उपन्यास पढ़ने पर पाठकों के मन में वेश्याओं के प्रति वेदना और सहानुभूति ही जागृत होती है। वह सोचने लगता है कि इस वृत्ति को प्रोत्साहन देना समाज के लिए घातक है। यथार्थवादी कलाकार के सम्मुख समाज के कल्याण का भी उद्देश्य होता है।

डॉ. रांगेय राघव का कथन है कि "इस यथार्थवाद ने दो विशेष रूप पकड़े। एक की बुनियाद में मार्क्स का चिन्तन था, दूसरे की बुनियाद में फ्रायडवाद का चिन्तन। यथार्थवादी ने समाज पक्ष में मार्क्सवाद को पकड़ा और व्यक्ति पक्ष में फ्रायडवाद को।"[1] यथार्थवादी कलाकार को यथार्थ स्वरूप चित्रण करना अभीष्ट होता है। जब यथार्थस्वरूप के चित्रण के साथ मानव के रागात्मक संबंध की व्यंजना आवश्यक होती है तब कलाकार यथार्थस्वरूप चित्रण करना चाहता है। यह आवश्यकता दो कारणों से होती है एक सामाजिक दूसरी आर्थिक।

समाज की व्यवस्था निश्चित होने पर कुछ नियम ऐसे होते हैं जो सम्पूर्ण समाज की दृष्टि में हितकर होते हैं। वे काल विशेष तक हितकर होते हैं और यह भी संभव है कि कालान्तर में भी उनकी उपयोगिता बनी रहे। यह भी संभव है कि

---

1 हिन्दी साहित्य के वाद( काव्य-यथार्थ और प्रगति, डॉ.रांगेयराघव)

व्यक्ति का निजी स्वार्थ समाज के नियमों से टक्कर खाता रहे अथवा समाज के अधिक भाग को अप्रिय रूप से प्रभावित करने लगे। इन दोनों दिशाओं में नियम कष्टकर लगते हैं और कष्टकारिता अधिक बढ़ जाने पर कलाकार नियम विशेष के दूषित अंशों को उपस्थित करना चाहता है। हिन्दी के आदिकाल में "राजयशो", रायसो, देखने से पता चलता है कि राजपूतों ने अपनी तुनकमिजाजी के कारण मुसलमानों के लिए भारत वर्ष के द्वार खोल दिए। राजपूत वीर थे तथा आन-बान के रक्षक थे परन्तु राजनैतिक दृष्टि का अभाव उनमें था। राजपूत राज शक्ति के लिए युद्ध न करके समाज व्यवस्थागत क्षत्रिय धर्म के मिथ्याभिमान से प्रेरित होकर युद्ध किया। भक्ति काल में भी तत्कालीन परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। कबीर के उपदेश और तुलसी का कलियुग वर्णन यथार्थवादी ही है। आधुनिक युग के व्यक्ति और समाज के संघर्ष चित्र वर्तमान कालीन यथार्थवादी साहित्य के अन्तर्गत आते हैं।

यथार्थवादी साहित्य का दूसरा दृष्टिकोण आर्थिक है। अंग्रेजी शासन से यह आर्थिक दृष्टिकोण प्रारंभ हुआ। इससे पूर्व भारत में कार्य के विभाजन ने इस समस्या का समाधान कर रखा था। भारतवर्ष में संपत्ति भी प्रभूत मात्रा में थी और सम्पत्ति की विभाजन-व्यवस्था भी व्यवस्थित थी। प्रत्येक व्यक्ति जीवन निर्वाह की सामग्री भी सुलभता से पा लेता था। अंग्रेजी शासन के प्रारंभ से यहाँ जमींदार, व्यापारी और साधारण श्रम जीवियों के तीन वर्ग हो गये। श्रमजीवी आर्थिक समस्या के केन्द्र बिन्दु बने और देश की दरिद्रता बढ़ती गई तथा आर्थिक व्यवस्था जटिल होने लगी। पराधीनता के साथ आर्थिक व्यवस्था बढ़ती गई और उसने एक समस्या का रूप धारण कर लिया जिसके चित्रण ने यथार्थवाद को जन्म दिया। वर्गगत सामाजिक अव्यवस्था को करूण और व्यंग्य दो रूपों में चित्रित किया जा सकता है। यथार्थवादी करूण रूप से हमारे हदय में पात्र के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करता है और व्यंग्य रूप से दुखद और अव्यवस्थित स्थितियों को उत्पन्न करने वाली व्यवस्थाओं का उपहासात्मक चित्र उपस्थित करता है।

इंगलैण्ड में यथार्थवाद का विकास प्रधान रूप से सत्रहवीं शताब्दी से हुआ यद्यपि वहाँ धनिक और निर्धन दो वर्ग सदैव देखने में आते हैं। डैनियल डिफो (Daniel Defox) का गुलिवर्स ट्रैवैल (Gullivers Travel) एक व्यंग्य चित्र है। डान क्विकजोट (Don Quixote) भी एक सुंदर व्यंग्य चित्र है। एलिजाबेथ काल में भी मनोरंजनात्मक यथार्थवादी नाटक देखने को मिलते हैं । हार्डी का जूड दि आब्सक्योर (Jude the obscure) करूण यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। हार्डी के मेयर आव कैस्टरब्रिज (Mayour of Casterbridge) में करूण और मनोरंजन का सामंजस्य है। डिकेन्स के "डेवेड कापरफील्ड" (David Copperfield) में भी तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के यथार्थ चित्र देखने को मिलते हैं। गार्ल्सवर्दी, शा, थैकरे ने भी जनजीवन के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किये।

यदि यथार्थ चित्रण को ही यथार्थवाद मान लिया जावे तो हिन्दी साहित्य में इसकी अभिव्यक्ति सुंदर अतीत में देखी जा सकती है। संस्कृत काव्याचार्यों के एक विशेष वर्ग ने स्वभावोक्ति अलंकार को काव्य का मुख्य गुण माना है। "स्वभावोक्ति रसश्चारूः तथावत् वस्तु वर्णनम्" अर्थात् किसी वस्तु का यथावत् दूसरे शब्दों में यथार्थ चित्रण ही सरसता है। इस प्रकार यथार्थवाद भारतीय साहित्य की मौलिक विचारधारा है। रामायण काल में महाराज, दशरथ बहु पत्नियों के कारण राम-वनवास तथा राजा के स्वर्गवास आदि की कथायें यथार्थवाद के चित्र प्रस्तुत करती हैं। महाभारत काल में द्यूत क्रीड़ा के दुर्व्यसन तथा कौरव वंश की उत्तराधिकार परंपरा के कारण भीषण महाभारत के युद्ध का वर्णन यथार्थ चित्रण है।

वीरगाथाकाल में भारत की सामूहिक शक्ति का ह्रास, राजाओं के परस्पर मनोमालिन्य तथा स्वयंवर आदि प्रथाओं के कारण गृह युद्ध तथा यवनों के प्रवेश का वर्णन यथार्थवाद से संबंध रखता है। वीरगाथाकाल में भारत के सामाजिक पतन एवं मिथ्याभिमानी राजाओं की अपूर्ण राजनीतिक दृष्टि तथा अदरदर्शिता का यथार्थ चित्रण हुआ है परन्तु हिन्दी साहित्य में यथार्थवाद का जो स्वरूप आज

दृष्टिगोचर होता है उस पर रूसी तथा पश्चिमी साहित्य का प्रभाव दिखाई देता है।

जयशंकर प्रसाद के उपन्यास तितली में गहरा यथार्थ बोध है।तितली के यथार्थवाद के संबंध में डॉ.रामविलास शर्मा लिखते हैं-"तितली का यथार्थवाद हिंदी कथा साहित्य के विकास में एक महत्त्वपूर्ण कदम है। न केवल प्रेमचंद वरन् प्रसाद, निराला आदि उसी मार्ग पर बढ़ रहे थे। यह यथार्थवाद स्वाधीनता ही न चाहता था, वह सामाजिक न्याय भी चाहता था। वह देश की उस चेतना को प्रकट करता है जो समाज के पुराने ढांचे को ही बदलना चाहती थी। यह हिंदी की अपनी जातीय परंपरा थी।"[1] प्रेमचंद ने भी यथार्थवाद का सजीव चित्रण समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया है। उनके पात्र प्रायः काल्पनिक न होकर यथार्थ की भित्ति पर खड़े हैं इस हेतु वे सदैव स्मृति पटल पर अंकित रहते हैं। रंगभूमि का सूरदास और गोदान का होरी अपने सम्पूर्ण गुण और अवगुणों के साथ हमारे सामने आते हैं। व्यक्ति और वर्ग दोनों की विशेषताओं का समन्वय उनके चरित्र में है। कथा-साहित्य में यथार्थवादी परंपरा नागार्जुन, रांगेय राघव, यशपाल आदि में देखने का मिलती है।

यथार्थवादी सिद्धांततः इतिहासकार से कुछ अधिक नहीं ठहरता। यथार्थवाद इतिहास की संपत्ति है। यथार्थवादी साहित्य में यथार्थता, स्वाभाविकता, सरलता, स्पष्टता, मूर्तता और वर्तमान जीवन से प्रेम दृष्टिगोचर होता है। इनकी पूर्ति के लिए नग्न चित्रण का ही आश्रय नहीं लिया जाता। भविष्य के प्रति मोह होने के कारण उसमें कल्पना का भी थोड़ा बहुत योग रहता है।

यथार्थवाद में सत्य और विज्ञान का नाम लेकर होनेवाली उच्छृंखल और अस्वास्थ्यकर रचनाएँ साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि की नहीं कही जा सकती। यथार्थवादी प्रतीकों और उपमानों का प्रयोग करता है जो उसकी दमित चेतना से आविर्भूत होते हैं। यथार्थवादियों की दृष्टि में कविता कल्पना या भावना का

---

1 हिंदी साहित्य में विविध वाद-पृ.248, 249 डॉ.प्रेमनारायण शुक्ल

व्यापार न होकर उसका संबंध किसी सामाजिक आदर्श या स्थिति से होता है। वह कवि के हृदय के उद्‌गार है। यथार्थवाद में नितांत भिन्न जीवन दृष्टियों का प्रवेश मिलता है और काव्य के मूल्य और भाव संबंध में कोई समता या एकात्मकता नहीं मिलती।

कहना न होगा कि यथार्थवाद के संबंध में हिंदी साहित्य कोशकार की यह टिप्पणी शास्त्रीय साहित्य को आदर्श मानकर की गयी है। जीवन और जगत में जो कुछ है वह मनुष्य की चिंता और आवश्यकता का क्षेत्र है। सुंदर और असुंदर के रूप में बटवारा करके हम बहुत सारी सच्चाइयों से साहित्य को वंछित कर देते हैं। हमारे प्राचीन साहित्य में आदर्श की मात्रा अधिक है। उसमें जीवन का सुंदर पक्ष ही आया है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि इसमें जीवन का दूसरा पक्ष आया ही नहीं है। वास्तव में हमारी पुरानी रुचि आदर्श को अधिक पसंद करने की रही है। इसलिए हम उसे ही प्रमुखता देते रहे हैं। दूसरी बात यह कि यथार्थवाद आधुनिक युग और जीवन की आवश्यकता के अनुरूप विकसित हुआ। हम पुरानी कसौटी के आधार पर उसका मूल्यांकन नहीं कर सकते हैं। चूंकि यथार्थवादी साहित्यिक आंदोलन ने परंपरा से प्राप्त साहित्य और उसे संचालित करने वाली आदर्शवादी चिंतन को आघात पहुंचाया साथ ही स्वच्छंदतावादी साहित्यिक प्रवृत्ति को भी पिछली वस्तु साबित कर दिया। इसलिए उनके समर्थक साहित्यकारों द्वारा यथार्थवाद का विरोध सहज स्वाभाविक है। असल में यथार्थवाद के मूल में वह आधुनिक चेतना है, जो विज्ञान और मनुष्यता के नये रूपों से बनी है। 1789 ई. में फ्रांसीसी राज्य क्रांति ने स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसी घोषणाओं ने स्वच्छंदतावादी चेतना को निर्मित किया। इस चेतना ने पश्चिम से साहित्य निर्माण की नयी दिशाएँ तय की। लेकिन आगे चल कर काल्पनिकता, कृत्रिमता और अस्पष्टता से ग्रस्त होने के कारण स्वच्छंदतावादी आंदोलन मद्धिम पड़ गया और उसकी भूमिका समाप्त होने लगी। ऐसी ही परिस्थितियों ने यथार्थवादी साहित्य के लिए जमीन तैयार की। प्रेमचंद ने यथार्थवाद के साथ आदर्श को भी जोड़ा था और उन्होंने लिखा है-"यथार्थवाद यदि हमारी आँखे खोल देता है तो आदर्शवाद

हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में बिठा देता है। लेकिन जहाँ आदर्शवाद में यह गुण है, वहाँ इस बात की भी शंका है कि हम ऐसे चरित्रों को न चित्रित कर बैठें जो सिद्धांतों के मूर्ति मात्र हों, जिनमें जीवन न हों। किसी देवता की कल्पना करना मुश्किल नहीं है लेकिन उस देवता में प्रतिष्ठा करना मुश्किल है। इसलिए वही उपन्यास उच्च कोटि के समझे जाते हैं जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया हो। उसे आप आदर्शोन्मुख यथार्थ कह सकते हैं।"[1]

हाँ चूँकि कुछ विद्वानों ने इस धारणा का विरोध किया है और दोनों को अलग माना है। नंद दुलारे वाजपेयी का इस संबंध में विचार है-"कोई कलाकार या तो आदर्शवादी हो सकता है या यथार्थवादी ही। ये दोनों परस्पर विरोधी विचारधाराएँ और कला शैलियाँ हैं। इनका मिश्रण किसी एक रचना में संभव नहीं। साहित्यिक निर्माण में यथार्थोन्मुख आदर्शवाद या आदर्शोन्मुख यथार्थवाद नाम की कोई वस्तु नहीं हो सकती। आदर्श और यथार्थ को मिलाने वाला कोई पृथकवाद नहीं है। यह तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता, क्योकि दो परस्पर विरोधी दर्शनों और कला-परिपाटियों में एकत्व की कल्पना ही कैसे की जा सकती है।"[2] डॉ.नगेंद्र का भी विचार कुछ ऐसा ही है। वे लिखते हैं-"आदर्शवाद और यथार्थवाद में मूल विरोध है। पहले का आधार भागवत दृष्टिकोण है और दूसरे के लिए वस्तुगत दृष्टिकोण अनिवार्य है। आदर्शवादी यथार्थवादी नहीं होगा, उसके लिए रोमानी होना सहज है, परंतु यह भी अनिवार्य नहीं है। वह कल्पना विलासी और स्वप्न द्रष्टा न होकर व्यावहारिक भी हो सकता है। उसके आदर्श कल्पना अथवा अतीन्द्रीय लोक के स्वप्न न हो कर व्यवहार जगत की समस्याओं के नैतिक समाधान भी हो सकते हैं। प्रेमचंद के आदर्शवाद का यही रूप है। वह रोमानी आदर्शवादी नहीं है, व्यावहारिक आदर्शवादी है। परंतु यथार्थवादी नहीं है क्योंकि वह आवश्यक नहीं है, वह यथार्थ ही हो।"[3] यह कहना मुश्किल है कि

1 साहित्य का उद्देश्य-पृ.सं.57

2 प्रेमचंद-साहित्यिक विवेचन-पृ.सं.21

2 काव्य चिंतन, लेखक डॉ. नगेन्द्र -पृ.सं.97

यथार्थवाद की शुरुआत कब हुई। मोटे तौर पर यह माना जाता है कि 1830 ई. की फ्रांसीसी क्रांति के पश्चात इसका विकास हुआ। इस क्रांति से नई चेतना की शुरुआत हुई और साहित्य तथा कला के क्षेत्र में नयी दृष्टि विकसित हुई। इसने फ्रांस समेत पूरे पश्चिमी साहित्य को प्रभावित किया है। आगे चलकर इसका प्रचार और प्रसार दूसरे देशों में भी हुआ। एक साहित्यिक प्रवृत्ति के रूप में यथार्थवाद अधिक दीर्घजीवी रहा और सभी देशों की सभी भाषाओं में इसे मान्यता मिली। इसका कारण यह है कि दूसरे साहित्यिक आंदोलनों की तुलना में यह ठोस वैचारिक आधारों पर प्रतिष्ठित है और साहित्यिक चिंतकों ने अपने चिंतन से इसके सैद्धांतिक आधार को पुष्ट किया। यथार्थवाद को ठोस वैचारिक आधार देने में मुख्य भूमिका मार्क्सवादी साहित्य चिंतकों की है, जिनके कारण सिद्धांत और व्यवहार दोनों ही क्षेत्रों में उसे भरपूर सफलता मिली है। अनेक मार्क्सवादी और समाजवादी विचारकों ने इसे विकसित किया। समाजवादी विचारधारा के प्रचार-प्रसार के साथ यथार्थवाद का भी प्रचार-प्रसार हुआ। चूँकि इसका उद्देश्य बड़ा था और इसके मूल में मार्क्सवादी वैचारिक दृष्टिकोण था इसलिए उसका प्रचार और प्रसार भी हुआ और वह दीर्घ जीवी भी हुआ। विश्व कथा साहित्य में यथार्थवाद के कारण दृष्टि संबंधी बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ और बहुत सी विश्वस्तरीय कथा कृतियों की रचना में यथार्थवादी दृष्टि की प्रमुख भूमिका रही। यथार्थवादी साहित्य सिद्धांत के निर्माण में मार्क्स, एंग्लेस और लेनिन के अलावा लेखानोव किस्टोफर काडवेल, रायल फाक्स, जार्ज लुकात, अन्सर्ट फिशर, ग्रामसी आदि प्रमुख हैं। इन सभी चिंतकों ने समाजवादी या यथार्थवादी सौंदर्य शास्त्र का विकास किया। यह सौंदर्यशास्त्र पुराने सौंदर्यशास्त्र से भिन्न और जीवन की सच्चाइयों से टकराकर पैदा हुआ था।

जैसा कि यथार्थवाद अपने समस्त रूप में एक ही है लेकिन दृष्टिगत और शैलीगत आधारों पर उसकी भिन्नताएँ सामने आती हैं। मुख्य रूप से इसकी दो दिशाओं की चर्चा होती है। यथार्थवाद के विकास क्रम में ये दोनों दिशाएँ विकसित हुईं। ये दो दिशाएं हैं 1. आलोचनात्मक यथार्थवाद (क्रिटिकल रियलिज़म) 2.

समाजवादी यथार्थवाद। "नैचुरलिसम" को भी यथार्थवाद के अंतर्गत कुछ लोग गिनते है लेकिन उस पर व्यापक मतभेद है। प्रकृतिवाद के साथ ही, अंतश्चेतनावादी यथार्थ का मनोवैज्ञानिक यथार्थ और अति यथार्थवाद की भी चर्चा होती है। लेकिन मान्य यथार्थवादी चिंतकों ने इन्हें यथार्थवाद मानने से इन्कार किया है। यथार्थवाद बाह्य जगत की वास्तविकता को स्वीकार करता है। उसके अनुसार बाह्य जगत मानव मन से स्वतंत्र है और अपने नियमों से परिचालित है। यथार्थवादी दर्शन में माना गया है कि बाहरी जगत और जगत की वस्तुओं से हमारा संपर्क ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से होता है। उन्हीं के माध्यम से हम बाहरी जगत का अनुभव कर पाते हैं। जो कुछ बाहर देखते है उसका प्रभाव हमारे मन पर पड़ता है। माना गया है कि हमारा मन और कुछ नहीं बाह्य जगत का ही संधानित रूप है। साहित्य रचना हमारे मन पर पड़े प्रभावों की पुनर्रचना है।

रचना मानव-मन का सबसे अधिक रचनात्मक क्रिया व्यापार है। संसार की वस्तुओं का अनुभव हम बिंबों और रूपों में करते हैं। जब हम बाह्य जगत को देखते है तो उसका बिंब और रूप हमारे मन पर अंकित होता रहता है। एक रचनाकार उन्हीं बिंबों और रूपों को पुनः प्रस्तुत करता है। यही रचना का यथार्थ है।

ज्ञान और सत्य की खोज 19 वी शताब्दी के यथार्थवादी लेखन की विशेषताएँ है। पूँजीवादी समाज की विकृतियों से घृणा करनेवाले और मेहनत कर जनता से प्यार करनेवाले लेखकों ने पूँजीपति समाज की निर्मम आलोचना की। उन्होंने अपने साहित्य में भावी समाज की कोई रूप-रेखा तो नहीं रखी। लेकिन तत्कालीन समाज की इतनी निर्मम आलोचना की जिससे उस समाज के विकृतियाँ जनता के सामन अस्पष्ट हो गईं। यथार्थवाद के इतिहास में उनके यथार्थ चित्रण को आलोचनात्मक यथार्थवाद के नाम से जाना जाता है। आलोचनात्मक यथार्थवाद की प्रमुख लेखकों में वालजाक डिकेन्स, दास्तोवस्की, गोगल, टामस हार्डी, तोल्स्तोय, मोपांसा, विक्टर ह्यूगो का नाम प्रमुखता से लिया

जाता है। ये सभी लेखक विश्वसाहित्य में आज क्लासिक्स का दर्जा प्राप्त कर चुके हैं।

20 वीं सदी में आलेचनात्मक यथार्थवाद की साहित्यिक धारा प्रवाहित होती रही बर्नाडशा, अनातोले फ्रांस, रोमरोला तुर्गनिव, चैरवव, अर्नेसटहेमिंग्वे आदि लेखकों के नाम इस काल के आलोचनात्मक यथार्थवाद के सम्मानित लेखकों में लिया जाता है। इन लेखकों ने अपनी रचनाओं में पूँजीवादी अंतर्विरोधों का जमकर चित्रण किया है। वर्ग संघर्ष, और उसकी परिणाम भी इनकी रचनाओं में दिखाई पडी। इसी सदी में नयी समाजवादी व्यवस्था का जन्म हुआ। जिससे नयी समाज रचना के लिए नयी दृष्टि मिली। इस दृष्टि ने भी इस काल के लेखकों को प्रभावित किया और साहित्य को नयी दिशा दी।

20 वीं सदी क्रांति की सदी मानी जाती है। इस सदी में पूँजीवादी व्यवस्था की समाप्ति करके नयी समाजवादी व्यवस्था की नींव रखी गई। समाजवादी व्यवस्था में यथार्थ के रूपांतरण की नयी स्थिति थी। इसलिए यथार्थ संबंधी नये दृष्टिकोण का भी विकास हुआ। समाजवादी विचारधारा ने विकास की जो वैज्ञानिक दृष्टि प्रस्तुत की उससे यथार्थवाद संबंधी समझ को नयी दिशा मिली। 1917 में रूस में जारशाही को समाप्त करके समाजवादी व्यवस्था की नयी शुरुआत हुई। नयी समाज रचना के लिए मार्क्स ऐंग्लेस के वैज्ञानिक समाजवाद से मदद ली और राजनीतिक, सामाजिक एवं सास्कृतिक विकास की नयी दृष्टि का विकास हुआ। उस क्रांति ने आलोचनात्मक यथार्थवाद संबंधी धारणा में परिवर्तन किया और यथार्थवाद संबंधी नये दृष्टिकोण का जन्म हुआ। जयशंकर प्रसाद ने यथार्थवाद को वेदना से जोड़कर देखा। उन्होंने लिखा हैं - "यथार्थवाद क्षुद्रों का ही नहीं अपितु महानों का भी है। वस्तुतः यथार्थवाद का मूल भाव है वेदना। जब सामूहिक चेतना भिन्न-भिन्न होकर पीड़ित होने लगती है, तब वेदना की निवृत्ति आवश्यक हो जाती है।"[1]

---

[1] काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ.सं. 122, लेखक जयशंकर प्रसाद।

रूस में समाजवादी क्रांति की सफलता के बाद यथार्थवाद के संबंध में जो नया चिन्तन हुआ उसने समाजवादी यथार्थ के रूप में नये समाजवादी सौंदर्यशास्त्र का आधार तैयार किया। टालस्टाय की रचनाओं को लेनिन ने सोवियत क्रांति का दर्पण कहा था, लेकिन मैक्सिम गोर्की के रचनाओं में क्रांति की जो रूप-रेखा थी उसके आधार पर समाजवादी यथार्थवाद की प्रस्थावना की गई। मैक्सिम गोर्की के अलावा शोलोखोव, अस्त्रावस्की, लेवनोव, फेदिन आदि लेखकों की गणना समाजवादी यथार्थवाद के प्रमुख लेखकों में जाती है।

यथार्थवाद के समानांतर प्रकृतिवाद का भी विकास हुआ। प्रकृतिवाद अंग्रेजी के नेचरिल्जम का हिन्दी पर्याय है। जैसे यथार्थवाद मूल रूप में दर्शन का शब्द है वैसे ही प्रकृतिवाद भी है। जिसे यथार्थवाद में साहित्यिक अर्थ देकर उसे साहित्यिक चिन्तन तथा सर्जन से जोड़ दिया गया है। उसी तरह प्रकृतिवाद से भी। प्रकृतिवादी चिन्तनों के अनुसार प्रकृति परम सत्य है। उनके कार्यों को जानने के लिए किसी बाह्य शक्ति की सहायता लेने की आवश्यकता नहीं है। चूँ कि प्रकृति ही संपूर्ण सच्चाई है इसलिए किसी अलौकिक शक्ति की न तो जरूरत है न उसका अस्तित्व है। प्रकृतिवाद की चर्चा 19 वीं शताब्दी में शुरू हुई है। प्रकृतिवाद शब्द का प्रयोग उन दार्शनिक विचारों के लिए किया गया जो मूल रूप से डार्विन के सिद्धांतों से ही पैदा हुए। साहित्य के क्षेत्र में प्रकृतिवादी लेखक जीवन के प्रति भौतिकवादी दृष्टि अपनाते थे। प्रकृतिवादी लेखक आमतौर से निराशावादी और नियतिवादी माने जाते हैं। वह मानते हैं कि प्रकृति सर्वोपरि है मनुष्य इन शक्तियों का अतिक्रमण नहीं कर सकता। प्रकृति और समाज उसकी स्वतंत्रता में बाधक है। प्रकृतिवादी मनुष्य को मात्र बयलोजिकल जीव मानते हैं जिसके कारण मनुष्य की स्वतंत्र इच्छा का कोई महत्व नहीं रह जाता है। मानव का स्वभाव और मानव की नियति का निर्धारण प्रकृति के दो आधार भूत नियमों वंशानुक्रम (हेरिडेटि) और परिवेश (इन्वयरमेन्ट) द्वारा हुआ है। इसलिए नैतिक दायित्व और विवेक सम्मत आचरण का प्रकृतिवादी चिन्तकों के लिए कोई महत्व नहीं है। प्रकृतिवादी चिन्तक मानते हैं कि मनुष्य में पाशविक प्रवृत्तियँ

मौजूद हैं। उसके भीतर सेक्स और भूख जैसी आदिम वृत्तियाँ हैं, जो उसे परिचालित करती हैं, ऐमिलजोल, जार्जमूर, थियोडोर डीयर आदि प्रसिद्ध प्रकृतिवादी लेखक माने जाते हैं। ऐमिलजोला के कथा-साहित्य में प्रकृतिवाद का सर्वाधिक निखरा हुआ रूप प्रस्तुत हुआ है। जोला की चर्चा करते हुए जॉर्ज लुकाच ने कहा है- "जोला ने सदैव इस बात का विरोध किया कि उसने किसी नयी कला रूप का आविष्कार किया है और उसने सदैव अपने को अपने पूर्ववर्ति बाल्जाक तथा स्टेंढल जैसे महान् यथार्थवादियों का उत्तराधिकारी तथा अनुकर्त्ता घोषित किया। किन्तु द्रष्टव्य यह है कि बावजूद इसके जोला ने अपने पूर्ववर्तियों को ऐसे आदर्श के रूप में भी स्वीकार नहीं किया कि उनका आँख बंद करके अनुकरण किया जाय। अपने ढंग से उस समय यह प्रयास किया कि पूर्ववर्ती यथार्थवाद के जड़ तथा निष्प्राण तत्वों को परे हटाते हुए एक ऐसी रचनात्मक पद्धति का निकास किया जाय जो यथार्थवाद की महान् परंपरा में एक नयी कड़ी बन सकी है। ध्यान देने की बात है कि यह सारी चर्चा करते हुए जोला ने कभी यथार्थवाद का नाम नहीं लिया उसने जब भी बात की प्रकृतिवाद की ही बात की।"[1]

जोला ने यथार्थवाद से प्रकृतवाद को अलग किया। उसका कहना था कि यथार्थवादी लेखक अपने चरित्रों को बड़ा महान् बनाकर प्रस्तुत करता है जबकि प्रकृतिवादी ऐसा नहीं करता। प्रकृतिवादी लेखक सामान्य को महान् बनाने में विश्वास नहीं करता। वह सामान्य को सामान्य की तरह चित्रित करने में विश्वास करते है। जोला के अनुसार प्रकृतिवादी लेखक औसत् आदमी की औसत् जिंदगी का चित्रण करता है। जोला का कहना था कि इस युग में किसी महान् चरित्र नायक की रचना सही अर्थों में संबंध है। इसलिए आदमी जैसा है वह उसी रूप से देखने का हिमायती था। जोला की देन पर टिप्पणी करते हुए अर्न्स्ट फिशर ने अपनी पुस्तक "नेस्सिटी आफ आर्ट" में लिखा है कि जोला ने भले भविष्य की भागडोर अपने हाथों में न ली हो लेकिन उसके शब्द मसाल की तरह प्रकाशित

---

1 यथार्थवाद से उद्धृत पृ.सं. 73

हैं। जोला ने कहा था "अपने को सत्ता पर स्थापित रखने के लिए, अपने पूंजीवादी सुविधाओं और लाभों के संरक्षण हेतु बुर्जुआ वर्ग अपने क्रांतिकारी अतीत के साथ धोखा कर रहा है। सत्ता हथिया लेने के उपरांत अब वह जनता के पक्ष में सिंहासन से उतर जाने को प्रस्तुत नहीं है। यह तय है कि बुर्जुआ वर्ग अब शनैःशनैः एक "फासिल" के रूप में परिणत हो जाएगा। वह प्रतिक्रियावाद, सैनयवाद तथा पंडा-पुरोहितवाद के साथ नई-सांठ-गांठ कर रहा है। मैं इस बात को बार-बार स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि बुर्जुआ वर्ग की समताएँ निःशेष हो चुकी हैं। अपनी सत्ता तथा अपनी पूँजी की रक्षा हेतु वह प्रतिक्रियावाद के हाथों बिक गया है। अब भविष्य की शक्तियों पर ही हमारी सारी आशा केंद्रित है, कारण ये वे शक्तियाँ हैं जो जन के साथ, जन की अपनी शक्तियाँ हैं।"[1]

प्रकृतिवाद का चर्चा का उद्देश्य यह है कि उसे यथार्थवाद से अलग समझा जाय। कई बाद प्रकृतिवाद और यथार्थवाद को एक ही मान लिया जाता है। प्रकृतिवाद की तुलना में यथार्थवाद मानव के विकास की दिशा में ज्यादा विकसित है और साहित्य सृजन के क्षेत्र में भी उसका महत्व स्पष्ट है।

ऊपर आलोचनात्मक यथार्थवाद और समाजवाद की यथार्थवाद की चर्चा की गयी इन दोनों के कथ्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है। रूस में समाजवादी यथार्थवाद की स्थापना के बाद जिस नई सच्चाई का जन्म हुआ उसके कारण दुनिया के दूसरे देशों में चल रहे निर्णायक संघर्षों को नई समाजवादी दृष्टि से देखने की आवश्यकता महसूस हुई। गोर्की के नेतृत्व में 1934 में सोवियत लेखकों का पहला अधिवेशन हुआ जिसमें गोर्की ने समाजवादी यथार्थवाद की घोषणा की।

आलोचनात्मक यथार्थवाद के अंतर्गत लेखकों ने अपनी यथार्थ दृष्टि तथा चित्रण शैली के बल पर समाज और मनुष्य को उसकी संपूर्णता में उसकी सारी प्रतिनिधि विशेषताओं के साथ चित्रित किया। समाज की विकास संबंधी वैज्ञानिक

---

1 यथार्थवाद से उद्धृत, पृ.सं. 76

दृष्टि के अभाव के बावजूद अपनी सहज तथा प्रखर यथार्थवादी चेतना से अनुप्राणित लेखकों ने जीवन और जगत् को जितने आयामों में देखा वह उनकी प्रतिभा का उदाहरण है। शिवकुमार मिश्र ने आलोचनात्मक यथार्थवादी लेखकों पर टिप्पणी करते हुए लिखा है - " कहीं व्यंग्य, कहीं प्रत्यक्ष चित्रण, कहीं एकदम शांत, स्थित इन्होंने अपनी शैली को नई-नई दिशाओं में संचालित करते हुए उल्लेखनीय उपलब्धियाँ की हैं। कुछ ने अपनी मानवीय संवेदना को अत्यंत गहरे धरातलों पर पहुँचकर प्रत्यक्ष उभारा है, और कुछ ने प्रकारांतर से व्यवस्था का स्वरूप उद्‌घाटित करते हुए उसे अभिव्यक्ति दी है। अपनी वस्तुपरखता, संवेदनीयता तथा युग जीवन के प्रामाणिक चित्रण की दृष्टि से इनकी कृतियाँ यथार्थवादी कला को उसकी महत संभावनाओं में साकार करती हैं। सामान्य जनजीवन के चित्रण के प्रति इन लेखकों की निष्ठा, जनता के दुखी जीवन के प्रति इनकी पीड़ा व्यवस्थाजन्य विकृतियों और उनका पोषण करनेवाले सुविधाभोगी वर्गों के प्रति इनके वज्रप्रहार परिवेश के आक्रांतकारी स्वरूप के प्रति इनका उत्कट असंतोष, फलतः परिवर्तन की आकांक्षा, वे बाते हैं, जो इन रचनाकारों की यथार्थ चेतना का साथक बनाती है, ऐसे महत आयाम देती हैं । ये उसे महज तथ्यों के संकलन और उसके निष्प्रभ प्रस्तुतीकरण में ही सीमित नहीं हो जाने देती।"[1]

आलोचनात्मक यथार्थवाद के अंतर्गत जिन लेखकों को रखा जाता है वे लेखक बुर्जुआ सभ्यता से घृणा करते थे। और उसके प्रति कठोर विद्रोह की भावना रखते थे। वे अपनी रचनाओं में बुर्जुआ समाज की निर्मम आलोचना करते थे। वे चाहते थे कि यह समाज समाप्त हो लेकिन उनके पास उसका कोई विकल्प नहीं था। वे नहीं जानते थे कि उसकी समाप्त कैसे होगी। इनके पास प्रश्न तो थे लेकिन उनके पास उत्तर नहीं थे। इसलिए उन्होंने कई बार सुधारवादी और आदर्शवादी समाधान प्रस्तुत किये। समाज के विकास के नियमों की न तो उनके पास पूरी जानकारी थी और न उससे निर्मित दृष्टि। उन्होंने मानव समाज के दुःख को तो पहचाना इससे सहानुभूति भी दिखलायी लेकिन इससे मुक्ति के लिए

---

1 शिवकुमार मिश्र के यथार्थवाद, पृ.सं. 49

कोई मार्ग न सुझाया। बावजूद इसके उनकी कृतियाँ इतनी महान् हैं कि उनके जरिये बुर्जुआ समाज की असलियत ईमानदारी के साथ चित्रित होती है। उसमें करुणा का महान् संदेश छिपा है। मनुष्यता गरीबों के प्रति सहानुभूति ईमानदारी सजीव चित्रण आदि ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके बल पर यह साहित्य अमर है।

सोवियत संघ में समाजवादी यथार्थवाद की स्थापना होने के बाद यथार्थवाद संबंधी जिस नये चिन्तन का जन्म हुआ उसे समाजवादी यथार्थवाद के नाम से जाना गया है। इसके प्रस्ताविक मैक्सिम गोर्की थी। समाजवादी यथार्थवाद आलोचनात्मक यथार्थवाद का अगली मंजिल है। वह आलोचनात्मक यथार्थवाद की उपलब्धियों को अपनी विरासत मानता है। शैली और चित्रण के रूप में वह आलोचनात्मक यथार्थवाद को अपना सगा मानता है लेकिन मनुष्य समाज और जीवन को देखने का उसका नजरियाँ भिन्न हैं। समाजवादी यथार्थवाद दृष्टिकोण के स्तर पर मनुष्य और उसकी नियति को संचालित करनेवाली शक्तियों की पहचान करता है और उसे बदलने की शक्ति देता है। समाजवादी यथार्थवाद के मूल में मार्क्स ऐंग्लेस तथा लेनिन द्वारा प्रतिपादित द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी सिद्धांत है जो परिवर्तन की गति को तीव्र करते हैं। समाजवादी यथार्थवाद का समर्थक लेखक समाज विकास के प्रति ऐतिहासिक और द्वन्द्वात्मक दृष्टि रखता है। समाजवादी यथार्थवादी चिन्तन के मूल में यह धारणा है कि समाज विकास के प्रति द्वन्द्वात्मक दृष्टि रखकर ही सही अर्थों में यथार्थ चित्रण किया जा सकता है। समाजवादी यथार्थवाद की मान्यता है कि लेखकों को वस्तुगत सच्चाइयों को उसकी संपूर्णता में देखना चाहिए। लेखक का काम जड़ यथार्थ का चित्रण न होकर गतिशील यथार्थ का चित्रण है।

समाजवादी यथार्थवाद के अंतर्गत यह माना गया है कि लेखक के ऐतिहासिक समझ साफ होनी चाहिए। उसे यह जानना चाहिए कि पुराना जब नष्ट होता है तभी नया पैदा होता है। यह काम वर्ग संघर्ष के लिए की जरिए होता है। लेखक का काम वर्ग संघर्ष को तेज करना है, अस्वीकार करना नहीं। लेखक का काम नई आर्थिक सामाजिक शक्ति का समर्थन करना और पुरानी का विरोध

करना है। समाजवादी यथार्थवाद का लेखक चूँकि वैज्ञानिक दृष्टि का वाहक होता है इसलिए जीवन और जगत् का अध्ययन करते वक्त इसकी दृष्टि प्रगतिशील शक्तियों पर होती है। समाजवादी यथार्थवाद के अंतर्गत कला के साथ विचारधारा के सामंजस्य पर बल दिया जाता है। इसके अंतर्गत यथार्थ का चित्रण कलात्मक रूप से नयी विचारधारा के आलोक में होना चाहिए। इसलिए समाजवादी यथार्थवाद के चिन्तकों का जोर इस बात पर था कि विचारधारा की परिष्कृति के साथ कला की परिष्कृति भी आवश्यक है। बिना विचारधारा की कलात्मक परिष्कृति की कोशिष के लेखक को उपयोगितावादी दृष्टि में भटका सकती है। इसलिए यथार्थ और कला के साथ विचारधारा का दबाव आवश्यक है। इसलिए समाजवादी यथार्थवाद के अंतर्गत सक्रिय नायक( पोजटीव हीरो ) की कल्पना की जाती है। गोर्की के विश्वविख्यात उपन्यास "मदर" का नायक पावेल सक्रिय हीरो का सबसे अच्छा उदाहरण है। ऐसा नायक उस जनता का प्रतिनिधि होता है जो कल्पना की समाज व्यवस्था के लिए संघर्षरत है। यह नायक सक्रिय एवं कर्मट होने के साथ दायित्व चेतना से संपन्न होते हैं।

लेकिन 1991 में सोवियत व्यवस्था के ढह जाने के कारण समाजवादी यथार्थवाद की अवधारण पर प्रश्न् चिहन् लग गया है। समाजवाद के विरोधी जैसे समाजवाद के आलोचना करते हैं वैसे ही समाजवादी यथार्थवाद किन्तु जब तक समाज में विषमता है और शोषण है तब तक मनुष्य का संघर्ष चलता रहेगा। ऐसी स्थिति में सक्रिय नायक पैदा होते रहेंगे हम उनके संघर्ष को समाजवादी यथार्थवाद नाम दें या कोई दूसरा इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

यथार्थवाद को कई बाद दूसरे वादों का पर्याय भी मान लिया जाता है। कई बार उसे दूसरे वादों के अस्वीकार का वाद माना जाता है। यह सही है कि यथार्थवाद का जन्म आदर्शवाद और स्वच्छंदतावाद की विरोध के फलस्वरूप हुआ। लेकिन यथार्थवाद मात्र निषेध या अस्वीकार नहीं है। यथार्थवाद अवश्य ही आदर्शवादी और स्वच्छंदतावादी विचारधारों को अस्वीकार करता है। लेकिन उसकी विधेयात्मक तत्वों का स्वीकार भी करता है। कई बार आदर्श और

यथार्थवाद, यथा तथ्यता और यथार्थ कल्पना तत्त्व और यथार्थ, आदि में लोग फर्क नहीं करते हैं। फलस्वरूप कई तरह की भ्रांतियाँ जन्म लेती हैं।

**आदर्श और यथार्थ:-**

दार्शनिक शब्दों के आधार पर आदर्शवाद के विरोध स्वरूप यथार्थवाद का जन्म हुआ है। यथार्थवाद आदर्शवादी दर्शन को अस्वीकार करता है। लेकिन उसका अर्थ यह नहीं है वह हर तरह के आदर्शों को भी अस्वीकार करता है। यथार्थवाद यथार्थ जगत् की अनुभव को महत्त्व देता है । यथार्थ गतिशील है और उसकी गतिशीलता का ध्यान निश्चित रूप से उसे आदर्श से आगे ले जायेगा। यथार्थवादी रचनाकार अपनी वैज्ञानिक और ऐतिहासिक समझ के साथ यथार्थ को देखता है। वह यथार्थ को गतिशील रूप में स्वीकार करता है। इसलिए उसकी दृष्टि सिर्फ वर्तमान पर केन्द्रित नहीं रखती बल्कि भविष्य पर भी केन्द्रित रहती है। इस अर्थ में वह यथार्थ द्रष्टा होता है। वह वर्तमान में खड़ा होता है। उसकी दृष्टि भविष्य में होती है और उसकी पीट बीते हुए कल की ओर इसलिए इसके चिन्तन में भूतवर्तमान और भविष्य तीनों एक साथ जुडे होते हैं। एक अर्थ में वह आशावादी होता है। उसका विश्वास मनुष्यता की विजय में होता है। इसलिए वह आदर्श से सर्वथा अलग नहीं होता लेकिन उसका आदर्श यथार्थपरक होता है। बुराइयों से संघर्ष और अच्छाइयों की जीत मनुष्य का आदर्श है। इस आदर्श की प्राप्ति के लिए यथार्थवादी लेखक हमेशा सक्रिय रहता है। वह यथार्थवाद की जमीन पर खड़ा रहकर भविष्य को देखते हुए यथार्थ का चित्रण करता है। इस तरह उसका चित्रण कोरा आदर्श नहीं होता है। वह ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक प्रक्रिया का सहज विकास होता है। जो आदर्श यथार्थवाद से विमुख होता है। वह एक तरह से फलायनवादी होता है। यथार्थवाद फलायनवाद का विरोधी है। इसी अर्थ में वह आदर्शवाद का भी विरोध है। शिवकुमार मिश्र ने लिखा है- "यथार्थवाद को किसी प्रकार के आदर्श से

सर्वथा रहित, मात्र वर्तमान केंद्रित विचारधारा मान लेने का ही एक तार्किक परिणाम उसकी नितांत भ्रममूलक व्याख्याओं में दिखाई पड़ता है। जब प्रस्थान बिंदु ही गलत है, तो स्वाभाविक है कि भ्रांतियों का एक सिलसिला सामने आएगा।"[1] निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यथार्थवाद अपना आदर्श है। लेकिन वह भाववादी आदर्शवाद का विरोधी है।

हिन्दी के कई लेखकों ने आदर्शवाद और यथार्थवाद में एकता स्थापित की है। वे उसे विरोधी नहीं मानते। जयशंकर प्रसाद ने लिखा है-"कुछ लोग कहते हैं कि साहित्यकार को आदर्शवादी होना ही चाहिए और सिद्धांत से ही आदर्शवादी धार्मिक प्रवचनकर्ता बन जाता है। वह समाज को कैसा होना चाहिए यही आदेश करता है और यथार्थवादी सिद्धांत से ही इतिहासकार से अधिक कुछ नहीं ठहरता, क्योंकि यथार्थवाद इतिहास की संपत्ति है। वह चित्रित करता है कि समाज कैसा है या था; किंतु साहित्यकार न तो इतिहास कर्ता है और न धर्मशास्त्र प्रणेता। इन दोनों के कर्तव्य स्वतंत्र हैं। साहित्य इन दोनों के अभाव को पूर्ण करने का काम करता है। साहित्य समाज की वास्तविक स्थिति क्या है, इसको दिखाते हुए भी उसमें आदर्शवाद का सामंजस्त स्थिर करता है। दुःख-दग्ध जगत् और आनंदपूर्ण स्वर्ग का एकीकरण साहित्य है। इसलिए असत्य अघटित घटना पर कल्पना को वाणी महत्वपूर्ण स्थान देती है, जो निजी सौंदर्य के कारण सत्य पद पर प्रतिष्ठित होती है। उसमें विश्व मंगल की भावना ओतप्रोत रहती है।"[2]

प्रेमचंद ने भी आदर्श और यथार्थवाद के संबंध स्थापित किया है और लिखा है-"यथार्थवाद हमारी आँखें खोल देता है तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान पर पहुँचा देता है। लेकिन जहाँ आदर्शवाद में यह गुण है, वहीं इस बात की भी शंका है कि हम ऐसे चित्रों को न चित्रित कर बैठें जो सिद्धांतों की मूर्ति

---

1 शिवकुमार मिश्र जी यथार्थवाद, पृ.सं. 205

2 काव्य कला तथा अन्य निबंध, पृ.सं.122-123, जयशंकर प्रसाद

मात्र हों, जिनमें जीवन न हो। किसी देवता की कामना करना मुश्किल नहीं है, लेकिन उस देवता में प्राण-प्रतिष्ठित करना मुश्किल है।"[1]

**यथार्थ और यथातथ्यता** :-

यथातथ्यता का मतलब है कि सांसारिक तत्व जैसा है उसे उसी रूप में देखना। यह एक बहस का विषय है कि रचनाकार दुनिया के तथ्य को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करता है या उसकी पुनर्रचना करता है। रचनाकार इस जीवन और जगत् की सिर्फ नकल नहीं करता। वह उसकी पुनर्रचना करता है। यह बात आज स्थापित हो चुकी है। यथार्थवाद के विरोधी यह मानकर चलते हैं कि यथार्थवादी रचनाकार की रचना यथार्थ जगत् की मात्र फोटो होती है। यथार्थवाद के चिंतकों और समर्थकों ने इस धारणा का खण्डन किया है और बताया है कि यथार्थ चित्रण का मतलब तथ्यों की यथावत् प्रस्तुति नहीं है।

यह सही है कि यथार्थवादी रचनाकार जीवन और जगत् के यथार्थ का आग्रही होता है। वह दुनिया में जो सत्य है उसे प्रस्तुत करना चाहता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि वह अपने स्तर पर सक्रिय नहीं है। वह सत्य के प्रति जिज्ञासु होता है और उसकी खोज करता है। वह वास्तविकता को तथ्य परक रूप में प्रस्तुत करना चाहता है। लेकिन उसकी दृष्टि वास्तविकता को ज्यों का त्यों उतारने तक सीमित नहीं होती। ऐसा करना उसका लक्ष्य नहीं है। वह सत्य को कला और विवेक की संगति के साथ प्रस्तुत करता है। वह इस जीवन और जगत् का सिर्फ द्रष्टा नहीं है। रचनाकार के रूप में वह उसका विधाता भी है। इसलिए वह फोटोग्राफिक पद्धति से आगे यथार्थ को पुनर्रचित करता है। इस तरह अपनी रचना में वह एक यथार्थ की नयी दुनिया रचता है।

यथार्थवाद का गहरा संबंध वस्तुनिष्ठता से है। किंतु वह सिर्फ तथ्यों तक सीमित नहीं है। वह जीवन और जगत् के विविध अनुभवों से निर्मित है। वह तथ्यों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत नहीं करता। वह तथ्यों की पुनर्रचना करता है। इसलिए भारतीय साहित्य में उसे प्रजापति का दर्जा प्राप्त हुआ है। वह जिस तथ्य

---

1 साहित्य का उद्देश्य, पृ.सं.143

को देखता है उसे वह सिर्फ वर्तमान में रखकर ही नहीं देखता, वर्तमान के साथ अतीत और भविष्य के बीच रखकर वह उस पर विचार करता है। इस अर्थ में यथार्थवाद त्रिआयामी होता है। रचना में प्रस्तुत यथार्थ चूँकि प्रत्यक्ष यथार्थ की पुनर्प्रस्तुति है इसलिए वह अधिक सप्राण या आकर्षक होती है। ऐसा इसलिए होता है कि उसमें रचनाकार की संवेदना और दृष्टि भी जुड़ी होती है। इस अर्थ में यथार्थवादी रचनाकार यथा तथ्य का मात्र प्रस्तुतकर्ता न होकर उसका रचनाकार होता है।

**यथार्थ और कल्पनातत्व** :-

कल्पनातत्व को रचना का आधार माना जाता है। बिना कल्पना के कोई रचना नहीं हो सकती। कल्पना के ही आधार पर एक रचनाकार अदृश्य चीजों को भी दृश्य बना लेता है इसलिए कहा जाता है कि जहाँ न जाए रवि, वहाँ जाए कवि। कल्पना के सहारे रचनाकार उन तथ्यों तक पहुँचता है जो हमें प्रत्यक्ष आँखों से दिखाई नहीं देती है।

यथार्थवाद रचना में कोरी कल्पना का विरोधी है। इसलिए यथार्थवाद के संबंध में एक भ्रांत धारणा प्रचलित है कि यथार्थवादी रचनाकार साहित्य में कल्पना का विरोधी है। यथार्थवादी रचनाकार, यह सही है कि यथार्थ का आग्रही होता है। वह कोरी कल्पना का समर्थक नहीं होता है। लेकिन वह यथार्थ को जब पुनर्रचित करता है तब बिना कल्पना के यह काम नहीं कर सकता है। यथार्थवादी रचनाकार फोटोग्राफिक रचना पद्धति का विरोधी है। इसलिए उसका काम बिना कल्पना के नहीं चल सकता है। साहित्य और कला का निर्माण बिना कल्पना के नहीं हो सकता है। साहित्य का सृजन बिंबों और प्रतीकों के सहारे होता है। बिना कल्पना के रचनाकार के मानस में बिंब और प्रतीक नहीं बन सकते हैं। रचनाकार यथार्थ जीवन से कल्पना के सहारे बिंब ग्रहण करता है और उसे साहित्य में प्रस्तुत करता है। इन बातों की चर्चा करते हुए शिवकुमार मिश्र ने लिखा है-"जो चित्र अथवा बिंब हम स्मृति से प्राप्त करते हैं उनके पीछे भी यथार्थ अनुभव और

पदार्थों की स्थिति होती है। यथार्थवादी चिंतन इस तथ्य को स्वीकृति देता है कि मन और बाह्य जगत् के पदार्थों को व्यवस्थित करके उन्हें कलात्मक रूप देने का कार्य कल्पना शक्ति के माध्यम से ही संपन्न होता है। कल्पना यदि वह सच्ची कल्पना है, यथार्थ अनुभवों से असंपृक्त नहीं रह सकती और यथार्थवादी रचना यदि वह वास्तव में यथार्थवादी रचना है, कल्पना तत्त्व को अस्वीकार कर अपना साहित्यिक कलात्मक रूप स्थिर नहीं रख सकती।"[1]

स्पष्ट है कि यथार्थवाद में कल्पना का निषेध नहीं है। वास्तव में यथार्थवाद के भीतर ऐसी कल्पना का स्वीकार है जो बिना वस्तु-शक्ति तथा तर्क के पैदा होती है। ऐसी कल्पना दुनिया और दुनिया के अनुभवों से भरी होती है। इस तरह की कल्पना रहस्यवाद को जन्म देती है। यथार्थवाद निश्चित रूप से ऐसी कल्पना का विरोधी है।

**यथार्थ और विरूपता** :-

यथार्थवाद के बारे में एक दुष्प्रचार यह है कि वह जीवन के कुरूप और घिनौने रूप का चित्रण करता है। इससे पाठक की रुचि विकृत होती है। पाठक निराशावादी और भाग्यवादी बन जाता है। यथार्थवादी चिंतकों ने इस तरह की बातों को भ्रांत धारणा कहा है और इसे यथार्थवाद विरोधियों का दुष्प्रचार माना है। वास्तव में इस तरह के आरोप प्रकृतिवादी रचनाओं को ध्यान में रखकर लगाया जाता है। प्रकृतवाद में इन तथ्यों पर अधिक ध्यान दिया जात है। उसमें मनुष्य को आदिमवृत्तियों के साथ दिखलाया जाता है उसमें रचनाकार की अपनी दृष्टि नहीं होती है। प्रकृतिवादी रचनाकार की दृष्टि बाह्य जीवन तक सीमित होती है। इसलिए स्वाभाविक रूप से उसमें जीवन की पुनर्रचना नहीं होती। यथार्थवाद के समर्थक लेखकों और चिंतकों ने इस तरह के आरोप का खण्डन किया है। कहा है कि यथार्थवाद जीवन की विरुपता का ही नहीं सुंदरता का समर्थक है।

---

1 शिवकुमार मिश्र के यथार्थवाद, पृ.सं.210

साहित्य में कुरूप और अनैतिक माने जानेवाले प्रसंगों की चर्चा होती है। यह सही है लेकिन वहाँ प्रमुखता लेखकीय दृष्टि की होती है। जिसके कारण कोई रचना सुंदर या कुरूप बनती है। यथार्थवादी रचनाकार कुरूपता का चित्रण इसलिए करते हैं ताकि पाठक इस कुरूपता से ही घृणा करना सीखे। भारतीय शास्त्रीय साहित्य में नौ रसों की चर्चा की गयी है। वीभत्स के बिना सुंदर जीवन की कल्पना नहीं हो सकती है। इसलिए मनुष्य को उसके संपूर्ण ऐतिहासिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य के साथ प्रस्तुत करने की कोशिश यथार्थवादी रचनाकार करता है। शिवकुमार मिश्र ने इसकी चर्चा करते हुए लिखा है-"सामंती-पूँजीवादी व्यवस्थाओं के घिनौने रूपों से संत्रस्त मनुष्यता के प्रति सच्ची संवेदना रखनेवाले इन लेखकों ने प्रकारांतर से यही चाहा है कि जन समाज अपने चारों ओर की विकृति के प्रति सजग है, ताकि वह दूर की जा सके। इस उद्देश्य से प्रेरित होकर गंदगी से मुँह चुराने अथवा उसे ढकने के बजाए इन लेखकों ने उसे कुरेदना उचित समझा। यही बालजक ने किया। यही टॉलस्टाय ने किया और यही प्रेमचंद ने किया। अतएव, इस प्रश्न का उत्तर मिल जाना चाहिए कि यथार्थवादी कृतियों में जीवन के कुत्सित तथा विरूप अंश की ओर जो विशेष दृष्टि डाली गयी है उसका कारण क्या है? जब समाज में दुःख-दैन्य और अनीति-अन्याय ही प्रधान हो जाए, तो सच्चे रचनाकार का कर्तव्य है कि वह उनसे आँखें मिलाए।"[1]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि यथार्थवादी रचनाकार का उद्देश्य जीवन की कुरूपता का चित्रण नहीं है। वह जीवन को संपूर्णता में चित्रित करना चाहता है। वह सत्य का खोजी रहता है। वह कभी कुरूपता का चित्रण करता भी है तो इसलिए कि जीवन को सुंदर बनाया जा सके।

**भारतीय साहित्य और यथार्थवाद :**

वाद के रूप में यथार्थवाद यूरोप की देन है। भारत में इसका प्रभाव यूरोपीय साहित्य के संपर्क से आया। यथार्थ की चेतना भारतीय साहित्य में प्राचीनकाल से ही थी लेकिन प्रवृत्ति के रूप में भारतीय साहित्य में इसका प्रवेश

---

1 शिवकुमार मिश्र, यथार्थवाद, पृ.सं.216

19 वीं शताब्दी में हुआ। 19 वीं शताब्दी में कई कारणों से महत्वपूर्ण है। 1857 में न सिर्फ प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन हुआ बल्कि पूरा देश ब्रिटिश हुकूमत में चला गया। इन घटनाओं का भारतीय जीवन और साहित्य पर गहरा असर पड़ा। इन परिस्थितियों की चर्चा करते हुए डॉ.चण्डी प्रसाद जोशी ने लिखा है-"19 वीं शताब्दी विद्रोह का युग है। मध्ययुगीन विचारधारा तथा सांस्कृतिक रूपों का खण्डन किया गया और नयी विचारधाराओं ने जन्म लिया। व्यक्ति के जीवन के दृष्टिकोण में महान परिवर्तन आया। जीवन के प्रति सोचने का ढंग ही बदल गया। नयी मान्यताओं ने जन्म लिया जिनके विकास तथा मूल्यांकन की प्रक्रिया 20 वीं शताब्दी में भी चलती रही। इसके अतिरिक्त यूरोपीय विचारधाराओं का प्रचार, अंग्रेजों के रहन सहन का प्रभाव तथा ईसाई मिश्नरियों का हिंदू धर्म पर प्रभाव अन्य ऐसे कारण थे कि उन्होंने नवीन चेतना को और भी गतिशील बना दिया। वस्तुतः तथ्य यह है कि आधुनिक यूरोप के निर्माण में जो तत्व सहायक हुए वही आधुनिक भारत के निर्माण के कारण हैं। ये कारण थे औद्योगिक क्रांति, सामंती व्यवस्था का विनाश तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण की प्रधानता। औद्योगिक सभ्यता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा यूरोपीय भौतिकवादी संस्कृति ऐसे ही क्रांतिकारी तत्व थे जिनका भारतीय सामंतवादी सभ्यता, विश्वास मूलक दृष्टिकोण तथा धार्मिक आध्यात्मिक संस्कृति से संघर्ष हुआ। इस संघर्ष ने नई विचारधारा को जन्म दिया।"[1]

पश्चिम से भारतीय जीवन का संपर्क जब हुआ तब नए दृष्टिकोण बने कई पुराने मूल्य टूटे और नये निर्मित हुए, नये वैज्ञानिक आविष्कारों का प्रभाव पड़ा। नये चिंतन और दर्शन के संपर्क में भारतवासी आये। 19 वीं शताब्दी में भारतीय जीवन में अनेक प्रकार की नयी हलचलें दिखाई देती है। यह पश्चिम से संपर्क के कारण संभव हुआ।

यथार्थवाद संबंधी पश्चिमी अवधारणा से भारतीय लेखक परिचित न थे। 19 वीं शताब्दी में अंग्रेजी शासन व्यवस्था की नीव मजबूत हुई तो कई नयी बातें

---

1 हिंदी उपन्यास समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ.सं.19 से 20

भी घटित हुई। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण शिक्षित वर्ग तैयार हुआ। उसने अपने चिंतन और लेखक के जरिए मध्यकालीन मूल्यों का विरोध किया और नई वास्तविकता को स्वीकार किया। यथार्थ के प्रति तब एक नई दृष्टिकोण का जन्म हुआ और भारतीय साहित्य ने नई करवट ली। यह प्रक्रिया 20वीं शताब्दी में भी जारी रही जिसके कारण भारत के भौतिक समाज में निरंतर जागृति आयी। इस पृष्ठ भूमि ने भारतीय नवजागरण की ज़मीन तैयार की।

अंग्रेजों ने अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार-प्रसार इसलिए किया था ताकि भारतीयों को मानसिक रूप से गुलाम बनाये रखें। इस प्रयास में वे बहुत हद तक सफल भी रहे लेकिन अंग्रेजी शिक्षा ने ऐसे बुद्धिजीवियों को भी पैदा किया जो नई दृष्टि के कारण अंग्रेजों की चालाकी समझने लगे। ऐसे बुद्धिजीवियों ने भारतीय साहित्य और वैचारिक दुनिया में अपने नये विचारों से नया संदेश देना शुरू किया। इन विचारकों का मानना था कि ब्रिटेन का उपनिवेशवादी राज्य जब तक खत्म नहीं होगा तब तक भारतीय समाज और राष्ट्र की उन्नति नहीं हो सकेगी। ऐसे ही दौर में तिलक और गांधी जैसे नेता पैदा हुए। अंग्रेजी शिक्षा के कारण बहुत से लोग विकास और प्रगति की असलियत समझने लगे। वे विज्ञान के आधुनिक संदर्भों से परिचित थे। इसलिए देश में उन्होंने जागरण का नया मंत्र फूंका। इसी कारण भारतीय भाषाओं में तथा अंग्रेजी में भी ऐसी पत्र-पत्रिकाएँ निकली जिनके कारण भारतीय जनता आज़ादी के लिए तैयार हुई।

1917 में रूस में संपन्न समाजवादी क्रांति का भारतीय बुद्धिजीवियों पर व्यापक असर पड़ा। इस क्रांति की प्रेरणा मार्क्सवादी समाजवादी विचारधारा थी। स्वाभाविक था कि मार्क्सवादी विचारधारा का भी प्रवेश भारत में हो। शिवकुमार मिश्र ने इस काल की चर्चा करते हुए लिखा है-"हिंदी साहित्य में ही नहीं, समूचे भारतीय साहित्य तथा कला जगत् में यथार्थवादी चेतना के प्रवेश के लिए बीसवीं शताब्दी में उभरनेवाली नई राष्ट्रीय चेतना तथा मार्क्सवादी-समाजवादी विचारों का महत्वपूर्ण योगदान है। मार्क्सवादी समाजवाद ने भारतीय बुद्धिजीवियों एवं राष्ट्रीय नेताओं को भीतर तक आंदोलित किया उसने अब तक के दार्शनिक

सामाजिक चिंतन को अपर्याप्त टहराते हुए विचारों का एक नया संसार ही उद्घाटित किया। 1930-31 तक आते-आते मार्क्सवादी-समाजवादी विचारों ने भारतीय जीवन में इतनी गहराई तक प्रवेश पा लिया था कि एक नयी वैचारिक, बौद्धिक क्रांति का सूत्रपात हुआ। अब तक के चिंतन में आधारभूत परिवर्तन हुए और एक ऐसी नयी दुनिया तथा नये भारत का नक्शा उभरा जिसे अब तक कोई भी विचारक भारतीय जनता के समक्ष प्रस्तुत न कर सका था।"[1]

इसी समय पश्चिमी जगत् की नयी वैज्ञानिक खोजें भी हमारे सामने आयीं। डार्विन के विकासवाद का सिद्धांत हमारी अंधविश्वास से भरी हुई चेतना को झकझोर कर जगाने लगा। फ्रायड के मनो-वैज्ञानिक चिंतन से भी हम परिचित हुए उसके कारण हम मानव मन की भीतरी दुनिया का ठीक से ज्ञान प्राप्त कर सके। यह मनुष्य का नया रूप था जिसने साहित्य और संस्कृति के लिए व्यापक आधार-प्रदान किया। शिवकुमार मिश्र ने इस प्रसंग की चर्चा करते हुए लिखा है- "जीवन तथा साहित्य में यथार्थवादी विचारधारा के प्रचार और प्रसार में मार्क्स फ्रायड तथा डार्विन के इस विकासवादी विद्धांत की महत्वपूर्ण तथा क्रांतिकारी भूमिका है। पश्चिमी साहित्य में यथार्थवादी चेतना के प्रवेश की परिस्थितियों का निर्वचन करते हुए इस तत्त्व को भलीभाँति स्पष्ट कर चुके हैं। .......... ज्ञान और विज्ञान की जो प्रेरणाएँ पश्चिम यथार्थवादी चेतना के विकास में सहायक हुई है, भारत के हिन्दी सहित्यिक क्षेत्र में भी उन्हीं की आधारभूत संक्रियता है। इन विचारधाराओं से भारतीय मनुष्य का परिचय------- 19वी और 20वी शताब्दी में बीच में होनेवाली वैचारिक तथा भौतिक क्रांति के फलस्वरुप हुआ। जिसका माध्यम विदेशों से क्रमश: विकसित होता गया भारतीयों का भौतिक तथा बौद्धिक संपर्क था।"[2]

---

1 शिवकुमार मिश्र जी के यथार्थवाद, पृ.सं.161

2 शिवकुमार मिश्रजी के यथार्थवाद, पृ.सं 162 - 163

**हिन्दी साहित्य और यथार्थवाद :**

जैसे पश्चिम का प्राचीन साहित्य यथार्थ जीवी था वैसे ही भारत का प्राचीन साहित्य भी था। लेकिन चेतना के रुप में यथार्थवादी साहित्य का विकास आधुनिक काल में हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को आधुनिकता का जनक माना जाता है। 1857 में प्रथम स्वाधीनता आन्दोलन असफल हो गया और देश का शासन ब्रिटेन की संसद के अधीन हो गया। ब्रिटिश सरकार ने भारत में नये शासन की नींव रखीं और कई घोषणाएँ की। आवागमन के नये साधन की शुरुआत हुई की कि सरकारी नौकरियॉ सबको मिलेंगी किसी के साथ कोई भेद-भाव नहीं होगा। इस स्थिति ने देश में नये वातावरण को जन्म दिया। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार से जहाँ अंग्रेजों का समर्थक वर्ग भारतीयों के बीच पैदा हुआ वहीं ऐसे लोग भी पैदा हुए जो अंग्रेजों के शासन को आलोचनात्मक दृष्टि से देखने लगे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ऐसे ही वर्ग के बुद्धजीवी थी। उन्होंने अच्छी शासन व्यवस्था के लिए अंग्रेज राज्य की जहाँ प्रशंसा की वहीं भारत की लूट-खसोट के प्रति दुःख भी व्यक्त किया। उन्होंने लिखा है-

"अंगरेज-राज सुख साज सजे सब भारी,
पै धन विदेस चलि जात यहै अति ख्वारी।"

भारतेन्दु के साथ उनके सहयोगियों ने देश और समाज के प्रति अपने लगाव का कई रूपों में परिचय दिया हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास इसी काल में हुआ। भारतेन्दु ने स्वयं बहुत से नाटक लिखे। उन्होंने बहुत से नाटकों का हिन्दी में अनुवाद भी किया। नाटक जन-जागृति का सबसे सशक्त और सीधा साहित्यिक माध्यम है। भारतेन्दु ने हिन्दी रंग-मंच के विकास में भी बहुत बड़ी भूमिका निभायी। बिना रंग-मंच के नाटक किसी काम का नहीं होता इसलिए उन्होंने लिखने के साथ नाटकों के प्रदर्शन पर भी जोर दिया। उनके साथ ही अन्य लेखकों ने भी साहित्य की अनेक विधाओं की समृद्ध किया और नये वातावरण का सृजन किया।

भारतेन्दु युग से शुरू हुई आधुनिक नई चेतना निरंतर आगे बढ़ते रही और हिन्दी साहित्य में यथार्थवादी चेतना का उत्तरोत्तर विकास होता रहा। भारतेन्दु युग के बाद द्विवेदी युगीन कवियों ने अनेक तरह से देश की दशा और दुर्दशा का कविता के माध्यम से चित्रण किया। छायावादी युग में यथार्थवादी चेतना बिंबों प्रतीकों के माध्यम से प्रकट हुई । जिसे हम पारिभाषिक रूप में यथार्थवाद कहते हैं, इसका विकास छायावाद के बाद हुआ। राष्ट्रीय आन्दोलन व्यापक और उग्र हो रहा था दुनिया में साम्राज्यवाद के विरूद्ध चेतना प्रखर हो रही थी ऐसे ही समय 1936 में भारत में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। इसका प्रथम अधिवेशन लखनऊ में हुआ। जिसकी अध्यक्षता प्रेमचन्द ने की। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने सौंदर्य के प्रतिमान् बदलने की बात की। उन्होंने कहा- "हमारे लिये कविता के भाव निरर्थक है, जिनसे हमारे ह्रदयों पर निराशा छा गयी हमें उस कला की आवश्यकता है, जिसमें कर्म का संदेश हो। हमारे पथ में अहंवाद अथवा अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण को प्रधानता देना वह वस्तु है जो हमें जड़ता, पतन और लापरवाही की ओर ले जाती है। और ऐसी कला की आवश्यकता हमारे लिए न व्यक्ति रूप में उपयोगी है न समुदाय रूप में हमारी कसौटी पर केवल वही साहित्य उतरेगा जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हम में गति संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं, क्योंकि ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।"[1]

प्रगतिशील लेखक संघ के संगठित प्रयासों से प्रगतिशील चेतना का नया वातावरण तैयार हुआ। इस वातावरण ने लेखकों को यथार्थबोध की नयी दिशा दी। कोमल कल्पना के कवि सुमित्रानंदन पंत ने कल्पना के आकाश से उतरकर धरती के कठोर यथार्थ पर पैर रखे और यथार्थ का नया संदेश घोषित किया। "रूपाभ" नामक पत्रिका के प्रवेश अंक में उन्होंने घोषणा की- "इस युग में जीवन की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार धारण कर लिया है उससे प्राचीन विश्वासों में

---

[1] शिवकुमार मिश्रजीः यथार्थवाद, पृ.सं. 179 से 180

प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं। अतएव इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती है। उसकी जड़ों को अपनी पोषण सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है। हमारा उद्देश्य इस इमारत में थूनियाँ लगाने का कदापि नहीं है, जिसका कि गिरना आवश्यंभावी है। हम तो चाहते हैं उस नवीन के निर्माण में सहायक होना, जिसका प्रादुर्भाव हो चुका है।"[1]

यह यथार्थ चेतना का ही फल था कि निराला और पंत प्रगतिशील काव्य रचना की ओर आकृष्ट हुए। कल्पना के उड़ान की जगह सामाजिक यथार्थ को कवियों ने प्रमुखता दी और जीवन और जगत् का संघर्ष कविता का मुख्यक्षेत्र हो गया। प्रगतिशील आंदोलन के फलस्वरूप पुराने कवियों ने नया यथार्थबोध तो पैदा ही हुआ बहुत से नये कवि आये जिनके कारण हिन्दी कविता में नये युग की शुरूआत हुई। नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा, शिवमंगल सिंह सुमन, नरेन्द्रशर्मा आदि कवियों ने हिन्दी कविता में यथार्थ चेतना का विस्तार किया। इसी कड़ी में गजानन् माधव मुक्तिबोध का नाम भी ले सकते हैं जिन्होंने हिन्दी कविता में यथार्थवाद का नया द्वार उद्घाटित किया है।

उपन्यास और कहानी साहित्य की आधुनिक विधाएँ मानी गयी है। आधुनिक युग की पूँजीवादी व्यवस्था ने उपन्यास को जन्म दिया। उपन्यास को आधुनिक जीवन् का महाकाव्य कहा जाता है। उपन्यास गद्य में लिखा जाता है। निराला ने गद्य को जीवन संग्राम की भाषा कहा है। आधुनिक जीवन् जो अधिक विस्तृत और जटिल हो गया उसकी चेतना के लिए उपन्यास जैसी विधा का जन्म हुआ। साहित्य की कई विधाओं की तरह हिन्दी उपन्यास का जन्म 19 वीं शताब्दी में हुआ। नयी शिक्षा, और ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार के कारण उपन्यास जैसी नयी विधा का जन्म हुआ। प्रेमचन्द ने इस विधा को यथार्थ से जोड़कर नये युग की शुरूआत की। यथार्थ की दृष्टि से प्रेमचंद पूर्व के उपन्यास उतने उल्लेखनीय नहीं है। इस काल के उपन्यास मनोरंजन की दृष्टि से लिखे जाते थे। उसमें

---

1 शिवकुमार मिश्रजी: यथार्थवाद, पृ.सं. 180

मनोरंजन के अतिरिक्त शिक्षा और नीति की बातें होती थीं। प्रेमचंद ने अपने हस्तक्षेप के जरिए हिन्दी उपन्यास को नया मोड़ दिया। सेवासदन से लेकर गोदान तक उनकी उपन्यास की यात्रा यथार्थवाद की प्रस्तुति की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व की है। आगे चलकर हिन्दी उपन्यास में अनेक प्रवृत्तियाँ दिखाई पडी उनके आधार पर उपन्यास भी लिखे गये। लेकिन हिन्दी उपन्यास की धारा यथार्थवाद से ही प्रभावित रही यशपाल, नागार्जुन, वृन्दावनलाल वर्मा, भैरवप्रसाद गुप्त, आदि ने यथार्थवादी उपन्यासों का आगे विकास किया।

कहानी में भी यथार्थवाद को प्रतिष्ठित करने का श्रेय प्रेमचन्द को है। कहानी के इतिहास में अनेक उतार-चढ़ाव आए लेकिन मुख्यधारा यथार्थ के चित्रण की ही रही। कहानी के क्षेत्र में भी प्रेमचन्द के बाद यशपाल, भैरवप्रसाद गुप्त, रांगेय राघव, अमृतराय आदि के प्रयासों से यथार्थ को प्रतिष्ठित होने का मौका मिल गया है। आज भी अनेक लेखक यथार्थ चित्रण को ही अपनी कहानियों में प्रमुखता देते हैं विस्तार में न जाकर संक्षेप में इतना कहा जा सकता है कि यथार्थ को छोड़कर आज की कहानी आगे नहीं बढ़ सती है। कहानी में भी यथार्थवाद का विकास प्रगतिशील आंदोलन की देन है। इसके पीछे मार्क्सवादी विचारधारा काम कर रही थीं।

कहानी का जन्म उपन्यास के ही समानांतर हुआ। उपन्यास के क्षेत्र में जिस तरह यथार्थवाद की प्रतिष्ठा का श्रेय प्रेमचन्द को दिया जाता है उसी तरह कहानी के क्षेत्र में भी यथार्थ को प्रतिष्ठित करने का श्रेय उन्हीं को जाता है। प्रगतिशील आन्दोलन के साथ समाजवादी विचारधारा का प्रवेश साहित्य में हुआ इसके कारण यथार्थ चित्रों को नयीगति मिली। प्रेमचन्द ने अपने कहानियों के माध्यम से जिस यथार्थ को प्रतिष्ठित किया था और जिसे भगवतीचरण वर्मा उग्र निराला, अश्क आगे बढ़ाया था उसे प्रगतिशील आंदोलन के चलते नयी तेजस्विता प्राप्त हुई। समाजवादी विचारधारा से प्रभावित लेखकों में यशपाल, रांगेयराघव भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय, मार्कण्डेय, अमरकान्त, शेखरजोशी, राजेन्द्रयादव, मोहनराकेश, कमलेश्वर प्रमुख हैं। इन्हीं के साथ भीष्म साहनी,

शिवप्रसाद सिंह, ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह आदि का नाम लिया जा सकता है। उन लेखकों ने हिन्दी कहानी को यथार्थ चित्रण दृष्टि से समृद्ध किया। हमारे सामाजिक जीवन के सभी महत्वपूर्ण पक्षों पर इन्होंने अपनी कहानी के माध्यम से प्रकाश डाला। कहानी साहित्य में यथार्थ की प्रतिष्ठा पर प्रकाश डालते हुए शिवकुमार मिश्र ने लिखा है- "हिन्दी कहानी में कथा-साहित्य में सामाजिक यथार्थ चित्रण की जो भी भूमिका प्रस्तुत हुई है, उसे यदि समग्रता में देखा जाय तो कहा जा सकता है कि हमारे समसामयिक सामाजिक जीवन का कोई भी महत्वपूर्ण प्रश्न इन कहानीकारों की दृष्टि से ओझल नहीं हो सका है। सामाजिक यथार्थ के क्षेत्र में गहरे उतरते हुए इन कहानीकारों ने उसके एक-एक रग-रेशे को पकड़ने की कोशिश की है। यह तनिक भी अतिशयोक्ति न होगी, यदि हम कहें कि सामाजिक यथार्थ के साथ कथा-साहित्य का जो अभिन्न रिश्ता माना गया है, उसे हिन्दी के कथा-साहित्य ने, अन्य विधाओं की तुलना में सर्वाधिक समर्थ बन कर प्रमाणित किया है।"[1]

इसी तरह हिन्दी साहित्य में यथार्थ की प्रतिष्ठा की शुरुआत कथा-साहित्य के प्रारंभ में ही हो जाती है लेकिन इसे व्यापकता मिलती है प्रगतिशील आंदोलन के बाद। मार्क्सवाद इस जगत् के यथार्थ स्वरूप में विश्वास करता है। वह किसी भी लोकोत्तर सत्ता में यकीन नहीं करता है। स्वाभाविक रूप से मार्क्सवाद से प्रभावित प्रगतिशील लेखकों ने साहित्य में भाववादी साहित्य चिन्तन का विरोध किया और इसकी जगह पर यथार्थवादी दृष्टि अपनायी। मार्क्स, ऐंगलेस तथा लेनिन की साहित्य संबंधी मान्यताओं के आधार पर पश्चिम् के मार्क्सवादी चिन्तकों ने यथार्थवाद का ढाँचा तैयार किया। इसी को आधार बनाकर अपने देशकाल के अनुरूप हिन्दी के लेखकों ने भी यथार्थवादी साहित्य का निर्माण किया यही कारण है कि यथार्थवादी संबंधी पश्चिमी अवधारणा और हिन्दी की अवधारणा में कोई फरक नहीं है। सही देखा जाय तो हिन्दी का यथार्थवादी साहित्य मार्क्सवाद से प्रभावित है यह पश्चिमी यथार्थवादी साहित्य का ही विस्तार

---

1 शिवकुमार मिश्रजी: यथार्थवाद, पृ.सं. 194

है। लेकिन हिन्दी के मार्क्सवादी साहित्य विचारकों ने हिन्दी साहित्य के मूल्यांकन में मौलिक दृष्टि परिचय दिया उनकी दृष्टि भले ही मार्क्सवादी थी लेकिन उनका आधार हिन्दी साहित्य में यथार्थ की प्रतिष्ठा था। हिन्दी के मार्क्सवादी साहित्य विचारकों की भूमिका का उल्लेख करते हुए शिवकुमार मिश्र ने लिखा है- "हिन्दी के मार्क्सवाद साहित्य विचारकों का मौलिक प्रदेय, मार्क्सवादी दृष्टिकोण के आधार पर हिन्दी के विशल साहित्य का व्यावहारिक मूल्यांकन है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल से लेकर अब तक की समूची रचनाशीलता को इन विचारकों ने अपने वैज्ञानिक चिंतन की कसौटी पर परखा है, और इस क्रम में नए और क्रांतिकारी निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। उनके इन निष्कर्षों ने अनेक स्थलों पर परंपरागत स्थापनाओं के समक्ष प्रश्नचिन्ह खड़े किए हैं। और अनेक अवसरों पर उन्हें अमान्य भी ठहराया है। इस प्रकार इन मार्क्सवादी साहित्यचिंतकों का, साहित्य समीक्षा के क्षेत्र में, एक महत्वपूर्ण प्रदेय यह है कि उन्होंने हिन्दी के विशाल पाठक वर्ग की अपनी विरासत को सही आलोक में पहचानने और ग्रहण करने की दृष्टि दी, इसे उसकी सही अर्थवत्ता से परिचित कराया। जाहिर है कि इस प्रयास में हिन्दी साहित्य का वही अंश इन विचारकों द्वारा अगली पीढ़ी के लिए मूल्यवान विरासत के रूप में स्वीकारा और सराहा गया है, जिसकी रचना लोकजीवन की संगति में, समाज और जन कीप्रगतिशील आकांक्षाओं के अनुरूप हुई है। अपनी साहित्यिक परंपरा के ग्रहण के हेतु हिन्दी पाठकों को एक विज्ञानसम्मत विवेक देने एवं समसामयिक रचनाशीलता को सही परिप्रेक्ष्य में पहचान सकने के हेतु एक नए आधार का निर्माण करने में, हिन्दी के मार्क्सवादी साहित्यचिंतकों के मौलिक एवं विशिष्ट प्रदेय को परखा जा सकता है।"[1]

यथार्थ के प्रति मार्क्सवादी दृष्टि के विकास से साहित्य में यथार्थवाद की प्रतिष्ठा हुई यथार्थवाद संसार के साहित्य में व्यापक साहित्यिक दृष्टि बन कर उभरा। यथार्थवाद समाजवादी विचारधारा का साहित्यिक वाद बन गया। साहित्य में यथार्थ की प्रतिष्ठा तो पहले से होती आ रही थी, किन्तु समाजवादी

---

[1] शिवकुमार मिश्रजी: यथार्थवाद, पृ.सं. 202

दृष्टि के प्रभाव में सिर्फ यथार्थ चित्रण को ही प्रमुखता मिली। इस कारण जो समाजवाद के समर्थक नहीं थे उन लेखकों ने वाद के रूप में यथार्थ का विरोध किया। लेकिन यथार्थ चित्रण का विरोध उन्होंने भी नहीं किया। यथार्थ के प्रति रचनाकार का जगत् बोध उसके यथार्थबोध का अंग बन चुका है।

## 1.3. यथार्थबोध:

मानव मन, यथार्थ प्रभाव को कई रूपों में व्यक्त करता है और साहित्य उसका एक रूप है। साहित्य में यथार्थ की चर्चा का मतलब है संसार और संसार में रहनेवाली सारी चीज़ों की प्रत्यक्ष सच्चाई की चर्चा, कल्पित मनोवैज्ञानिक और रहस्यवादी सच्चाइयों से भिन्न ऐसी सच्चाई का ज्ञान जो सांसारिक और यथार्थ है। यथार्थ की अभिव्यक्ति साहित्य का मुख्य काम माना गया है। हर कलाकार और लेखक का उद्देश्य होता है कि वे दुनिया की पद्धति में भिन्नता होती है, क्योंकि यथार्थ को देखने की हर कलाकार और लेखक की दृष्टि अलग-अलग होती है। कहने का मतलब यह है कि उनकी दृष्टि का निर्माण भी उनके संस्कारों, वातावरण, वर्गीय आधार आदि के द्वारा ही होता है। रचनाकार अपने आस-पास जिन चीज़ों को देखता है और जिस वातावरण में जीता है उसका अनुभव अपनी इंद्रियों के माध्यम से करता है। उसका गहरा प्रभाव उसके मन पर पड़ता है। वह उन्हें अभिव्यक्त भी करता है। रचनाकार जो भी देखता है और जीवन और जगत् का जैसा अनुभव करता है उसका चित्रण साहित्य में है। इसके जरिए वह अपनी अभिव्यक्ति की प्यास को शांत करता है। उसकी अभिव्यक्ति का तरीका भिन्न-भिन्न होता है। पर अभिव्यक्ति की शैली अपनी तरह से होती है। बाह्य जगत् के बारे में उसका दृष्टिकोण और निष्कर्ष अलग हो सकता है। यह भिन्नता ही उसकी निजी मौलिकता है। यह उसकी शैली और अनुभव की भिन्नता है। यही उसका यथार्थ बोध है। इस भिन्न और मौलिक चित्रण के कारण संसार की सच्चाई में भिन्नता दिखाई देती है। संसार सब के लिए एक जैसा होता है परन्तु उसको देखने का तरीका अलग-अलग रहता है, इस अपने-अपने तरीके के

कारण संसार के साहित्य में यथार्थ चित्रण की विभिन्न शैलियाँ और विभिन्न दृष्टियाँ है। दूसरे शब्दों में रचनाकार का निजी यथार्थ बोध ही इस भिन्नता का आधार है।

अध्याय दो

# हिन्दी कथा-साहित्य में यथार्थबोध: परंपरा और प्रवृत्ति

2.1. पूर्व प्रेमचन्द युग
2.2. प्रेमचन्द युग
2.3. उत्तर प्रेमचन्द युग
2.4. स्वातंत्र्योत्तर युग

# हिंदी कथा-साहित्य में यथार्थबोध : परंपरा और प्रवृत्ति

साहित्य की विशिष्ट चिंतन-पद्धति के अनुसार कलाकार को अपनी कृति में जीवन के यथार्थ रूप का अंकन करना होता है। हालाँकि, यह दृष्टिकोण आदर्शवाद का विरोधी माना जाता है। पर "आदर्श" उतना ही यथार्थ है जितना कि कोई भी यथार्थवादी परिस्थिति। जीवन में यथार्थ की कल्पना दुष्कर है। किंतु अपने पारिभाषिक अर्थ में "यथार्थवाद" जीवन की समग्र परिस्थितियों के प्रति ईमानदारी का दावा करते हुए भी प्रायः सदैव मनुष्य की हीनताओं तथा कुरूपताओं का चित्रण ही करता है। यथार्थवादी कथाकार जीवन के सुंदर अंश को छोड़कर असुंदर अंश का अंकन करना चाहता है। ऐसा एक प्रकार से उसका पूर्वग्रह होता है।

यथार्थवादी प्रवृत्तियाँ विश्व के साहित्य में विभिन्न कालों में मिलती है। वस्तुतः यथार्थवाद सुधारक साहित्य का प्रथम अंग है। किसी भी सामाजिक स्थिति के प्रति विद्रोह करते समय साहित्यकार उसका यथार्थवादी चित्र उपस्थित करता है। वह अपने पाठकों के मन में एक आक्रोश को जन्म देना चाहता है। जिसके बिना किसी भी सुधार, परिवर्तन अथवा क्रांति की कल्पना नहीं की जा सकती। हिंदी साहित्य में यथार्थवादी प्रवृत्तियाँ मध्यकाल से ही दिखाई देने लगती हैं। कबीर एक प्रकार से हिंदी के प्रथम यथार्थवादी कवि हैं। समाज में जो खोखलापन घर कर गया था उसका अत्यंत सशक्त चित्रण उन्होंने अपने काव्य में किया है। जीवन की विकृतियाँ तथा कुरूपताएँ सर्वत्र उनके आक्रोश का लक्ष्य बनी है। कबीर के उपरांत तुलसी साहित्य में भी किसी हद तक यथार्थवाद की प्रवृत्तियाँ दिखाई देती है। अपने दृष्टिकोण में आदर्शवादी होते हुए भी वे सामाजिक जीवन की कटुताओं की ओर से अपनी आँखें

नहीं फेर सके थे। "रामचरितमानस" के उत्तरकांड तथा "विनयपत्रिका" के कुछ पदों में तुलसी की यथार्थवादी दृष्टि गहरे स्तर पर दिखाई देती है।

आधुनिक अर्थ में यथार्थवाद का हिंदी साहित्य में प्रथम विकास प्रगतिवाद के माध्यम से हुआ। द्विवेदीयुगीन आदर्शप्रियता तथा छायावादी काल्पनिक जगत् के विरुद्ध जो प्रतिक्रिया हुई। उसने प्रगतिवादी साहित्य-सृजन में यथार्थवाद को एक अपरिहार्य अंग बना दिया। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि सभी रूपों में आधुनिक जीवन के गहरे संघर्षों, अंतर्द्वन्द्वों तथा कुरूपताओं का अंकन हुआ। मार्क्स तथा फ्रायड ने अपने-अपने ढंग से यथार्थवाद के विकास में सहयोग दिया। मार्क्स ने सामाजिक जीवन के कटु यथार्थ की ओर संकेत किया और फ्रायड ने वैयक्तिक जीवन की गर्हित कुण्ठाओं की ओर ध्यान दिलाया। कुछ तो समय की आवश्यकता ने और कुछ इन दो चिंतकों की विचारधारा ने यथार्थवाद को युग की अनिवार्य प्रवृत्ति बना दिया। हिंदी साहित्य में प्रगतिवाद की मौलिक शक्ति संभावना यथार्थवाद को ही लेकर विकसित हुई थी।

प्रगतिवाद के उपरांत प्रयोगवाद को भी "यथार्थवाद" का सहारा मिला। एक प्रकार से प्रयोगवाद में यथार्थवाद की प्रवृत्ति कुछ और गहरी हुई। जीवन की तुच्छ परिस्थिति को भी साहित्य में चित्रित करने योग्य समझा गया। द्वितीय महायुद्ध ने यथार्थवाद को साहित्य में और अधिक ग्राह्य बनाया और इस प्रकार प्रयोगवाद ने इस मौलिक प्रवृत्ति को अपनी आधार-शिला के रूप में स्वीकार किया। पर प्रयोगवादी यथार्थवाद के साथ एक व्यापक तथा उदार मानवतावाद की भावना संयुक्त थी जो आगे नयी कविता के आंदोलन के साथ और अधिक विकसित हुई। वस्तुतः हिंदी का आधुनिक यथार्थवाद सांप्रदायिक न रहकर उक्त मानवतावादी प्रवृत्तियों के संयोग से साहित्य के क्षेत्र में अधिक कलात्मक तथा सामाजिक बन सका है।

हिंदी कथा-साहित्य का आविर्भाव लगभग उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में हुआ। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से, पूर्व प्रेमचंद युग में कथा-साहित्य के

यथार्थपरक जागरूकता को देखा जा सकता है। यह जागरूकता कथा-साहित्य क्षेत्र में आविर्भाव के समय से ही दिखाई देती है। वास्तव में आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य का उद्भव और विकास यथार्थ के बल पर ही हुआ था। भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक लिथोग्रेफिक प्रेस की स्थापना हो चुकी थी। इसके परिणामस्वरूप हिंदी क्षेत्र में पुस्तकों का मुद्रण और प्रकाशन विस्तार से होने लगा था। विभिन्न भाषाओं के लोकप्रिय साहित्य का हिंदी में अनुवाद किया गया। इसमें अंग्रेज़ी, रूसी, बंगला, गुजराती और मराठी आदि देशी-विदेशी भाषाएँ थीं। भारतेंदु युग के द्वारा हिंदी कथा-साहित्य पाठकों के बीच लोकप्रिय हो चुका था। ऐतिहासिक दृष्टि से यह युग भारतीय स्वतंत्रता का युग था। प्रथम स्वतंत्रता की चिनगारियाँ अंग्रेज़ी शासकों के द्वारा 1857 में ही दबा दी गयी थीं। इसके बाद अंग्रेज़ी शासन प्रणाली में परिवर्तन हो चुका था। फलस्वरूप भारतीय समाज में चेतना उत्पन्न हुई । इस युग की पृष्ठभूमि के निर्माण में साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है। साहित्य से हमें इस समय की स्थितियों का पता चलता है। यथार्थवादी तत्वों के बल पर कहानीकारों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ था। हिंदी कथा-साहित्य में वे परिस्थितियाँ विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं जिनके आलोक में यथार्थ की चेतना विकसित हुई।

हिंदी कथा साहित्य की विकास यात्रा को अध्ययन निम्नांकित काल-खण्डों में विभाजित किया जाता है।

1. पूर्व प्रेमचंद युग - सन् 1900 से 1916 ई. तक
2. प्रेमचंद युग - सन् 1916 से 1936 ई. तक
3. उत्तर प्रेमचंद युग - सन् 1936 से 1950 ई. तक
4. स्वातंत्र्योत्तर युग

**राजनीतिक पृष्ठभूमि :-**

आधुनिक हिंदी साहित्य के क्षेत्र में राजनीतिक चेतना के जागरण के संकेत सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात मिलने लगे। अंग्रेजी शासन की नींव भारतवर्ष में और भी दृढ़ हो गयी थी। उस समय देश में राजनीतिक असंतोष बहुत बढ़ चुका था और इसके विरुद्ध राज्यों में पृथम-पृथक प्रतिक्रियाएँ हो रही थीं। उस समय भारत के अनेक राज्यों में राजाओं या नवाबों की इच्छानुसार शासन चल रहा था। राजा और नवाबों को जनता के सुख-दुःख से कोई सरोकार नहीं रह गया था। शासक केवल अपना राज्य और उसकी सुरक्षा पर ध्यान केंद्रित करते रहे। राजकोष का अधिकांश भाग शासकों की मौज मस्ती और उनकी सुरक्षा पर खर्च होता था। परस्पर स्वार्थों और आकांक्षाओं के कारण युद्ध अधिक होते थे। पारस्परिक चरित्र का पतन होने लगा था। इसके फलस्वरूप यूरोपीय लोगों ने व्यापार करने के लिए देश में आकर ईस्ट-इंडिया कंपनी की स्थापना की। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देश की राजनैतिक स्थिति में सन् 1933 के लगभग एक नवीन युग का आरंभ हो गया था। उसके पश्चात् ईस्ट-इंडिया कंपनी व्यापारी संस्था के स्थान पर शासन-सत्ताधिकारी संस्था के रूप में सामने आई।

बीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही विभिन्न राजनीतिक दृष्टिकोण सामने आये जिसके लिए वाइसराय कर्जन की उग्र साम्राज्यवादी नीति भी एक बहुत बड़ा कारण है। राष्ट्रीय कांग्रेस में ही दो विचारधाराएँ थीं। एक ओर फिरोजशाह मेहता, वाचा, गोखले आदि भी पिछली शताब्दी की उदार नीति नहीं छोड़ना चाहते थे। दूसरी ओर तिलक, लाजपतराय, विपिनचंद्र पाल, अरविंद घोष आदि राष्ट्रीय आंदोलन को उग्र रूप देना चाहते थे। इन दोनों दलों के बीच दादाभाई नौरोजी तथा सुरेंद्रनाथ बैनर्जी की ऐसी स्थिति थी कि वे दोनों दलों के बीच झूलते रहे। दादाभाई नौरोजी बंग-बग आंदोलन के कारण उग्र राष्ट्रीयता के समर्थक बनते गये तथा सुरेंद्रनाथ बैनर्जी ब्रिटिश राज्य से मिली सुधार योजनाओं से संतुष्ट होकर उदारवादी नीति के समर्थक

रहे। राष्ट्रीय कांग्रेस से स्वतंत्र एक तीसरा दल था, जो सशस्त्र क्रांति पर विश्वास करता था। भूपेंद्रनाथ दत्त, विनायक राव सावरकर, श्याम जी कृष्ण वर्मा आदि क्रांतिकारी नवयुवकों को सशस्त्र क्रांति की दीक्षा दे रहे थे।

1906 ई. की कलकत्ता कांग्रेस में सभापति पद से दादाभाई नौरोजी ने प्रथम बार "स्वराज्य" शब्द का प्रयोग किया था। भारतीय शब्द "स्वराज्य" का प्रथम बार प्रयोग होने का अर्थ था कि कांग्रेस अब ब्रिटिश पार्लियामेंट के सम्मुख अपनी मांग नहीं रख रही है वरन् वह भारतीय जनता का समर्थन पाना चाहती है। जनता के लिए पहली बार राष्ट्रीय संदेश मिला। कांग्रेस ने अपने आंदोलन के कार्यक्रम में चार उपदेशों को निश्चित किया। स्वराज्य, स्वदेशी बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा चारो उद्देश्य महत्वपूर्ण थे। पहली बार कांग्रेस ने अपनी राष्ट्रीय नीति निश्चित की। स्वराज्य का उद्देश्य औपनिवेशिक स्वराज्य तक सीमित था। स्वदेशी का उद्देश्य था कि केवल भारत में बनी वस्तुओं को उपयोग में लाकर राष्ट्रीय उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन दिया जाए। बहिष्कार का अर्थ था विदेशी वस्तुओं का उपयोग न करके राष्ट्रीय धन को बाहर जाने से रोका जाए। राष्ट्रीय शिक्षा का उद्देश्य था कि नवयुवकों को सरकारी शिक्षा संस्थाओं में न पढ़ाया जाए। जिसका दासवृत्ति तथा नौकरशाही रुचि पैदा करना ही मुख्य ध्येय था। इन चारों प्रस्तावों पर माडरेट तथा उग्र राष्ट्रवादियों में वाद-विवाद हुए, लेकिन अंततः ये प्रस्ताव पास हुए। माडरेट इन प्रस्तावों को नरम रूप देना चाहते थे। लेकिन अंततः सूरत-कांग्रेस में दोनों दलों में संघर्ष हुआ। कांग्रेस पर माडरेट का अधिकार रहा और उग्र राष्ट्रवादी कांग्रेस से अलग कर दिए गए। तिलक पाँच वर्ष की सजा काटने माण्डले जेल भेद दिए गए। बिविनचंद पाल, लाला लाजपत राय विदेश चले गये। 1915 ई. तक गोखले, मेहता के नेतृत्व में ही राष्ट्रीय आंदोलन चलता रहा।

बंगाल में स्वतंत्र रूप से आंदोलन चल रहा था और अंततः सरकार को बंग-भंग की नीति वापिस लेनी पड़ी। सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि देश की

राजधानी कलकत्ता से हटाकर दिल्ली बना दी गई। फलतः दिल्ली तथा उत्तरप्रदेश राष्ट्रीय आंदोलन के केंद्र बन गए। 1916 ई. की लखनऊ का कांग्रेस अधिवेशन सबसे महत्वपूर्ण है। कांग्रेस के दोनों टूटे दल संयुक्त हो गए तथा मुस्लिम लीग तथा राष्ट्रीय कांग्रेस में "लखनऊ पैक्ट" नाम से यह समझौता हुआ कि कांग्रेस ने मुस्लिम लीग के सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व की मांग स्वीकार कर ली।

**सामाजिक पृष्ठभूमि** :-

समाज में ग्रामपंचायत, जाति व्यवस्था तथा संयुक्त परिवार आदि संस्थाएँ विद्यमान थीं। 19वी सदी तक आते-आते ग्राम पंचायत एक शासकीय आर्थिक-व्यवस्था बन गयी थी। इसके माध्यम से जाति व्यवस्था का अनुपालन होता था। जाति-व्यवस्था के अंतर्गत व्यक्ति का विकास उस जाति के बल पर ही होता था। जैसे खान-पान, विवाह आदि। उस समय समाज चार वर्गों में विभाजित था। अनेक उपजातियाँ थीं। संयुक्त परिवार की प्रथा थी। उस समय संयुक्त परिवार और जातीय संस्थाओं के लिए धर्म के अनुसार ही न्याय मिलता था। उस समय समाज में वैयक्तिक अधिकारों को कोई अधिक सफलता नहीं मिल रही थी। उल्टे उन्हें शाब्दिक प्रताड़ना का शिकार होना पड़ता था।

इस समय समाज धर्मभीरु था और धर्म के नाम पर होनेवाले अनेक अत्याचारों को स्वीकार करना पड़ता था। समाज में नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। स्त्री केवल उपभोग की वस्तु ही समझी जाती थी। सती प्रथा का प्रचलन था और विधवाओं को मनहूस समझा जाता था। समाज में छुआछूत की भावना भी प्रबल थी। पुरोहित वर्ग को ज्यादा प्रमुखता दी जाती थी।

इधर भारतीय धर्म बंटे पड़े थे। लोग अपनी ही सामाजिक कुरीतियों, अशिक्षा, अभाव और गुलामों जैसी स्थिति को झेल रहे थे उधर एक व्यापक और सोची-समझी योजना के तहत अंग्रेज़ ईसाई धर्म के प्रचार में संलग्न थे। अंग्रेज

शासक अभावग्रस्त भारतीयों की धर्म भीरुता से परिचित हो चुके थे। इसका उन्होंने अपने धर्म का प्रचार करने में लाभ उठाया। वे अभावग्रस्त लोगों को तथाकथित सेवा के नाम पर शिक्षित करते थे। उनकी चिकित्सा आदि का प्रबंध करते थे। ऐसी स्थिति में सामाजिक आंदोलनों का जन्म हुआ। उन आंदोलनों का मुख्य उद्देश्य समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार के अत्याचारों का प्रतिरोध करना था। उस समय राजा-राममोहन राय ब्रह्म समाज के प्रवर्तक थे। तब भारतीय राजनीति को आधुनिक रूप देना सबसे बड़ी देश-सेवा समझी जाती थी। बहु-विवाह और बाल-विवाह के कारण ही समाज में अधिक अत्याचार होने लगे थे। उस समय सती-प्रथा अन्य प्रांतों से ज्यादा बंगाल में अधिक होती थी। इसलिए तब राजा राममोहन राय ने विधवा-विवाह का अनुमोदन और बाल-विवाह का विरोध किया था। राजा राममोहन राय ने एक ब्राह्मण होकर भी समाज में व्याप्त अंध विश्वासों को दूर करने का प्रयास किया। देवेंद्रनाथ टैगोर तथा केशवचंद्र सेन ने भी अपने-अपने ढंग से सामाजिक सुधार के क्षेत्र में कार्य कर रहे थे। इन्होंने नारी शिक्षा, विधवा-विवाह, अंतर्जातीय विवाह जैसे सामाजिक सुधारों के प्रचार पर बल दिया।

1875 ई. में स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा आर्यसमाज की स्थापना के बाद देश में सामाजिक-सुधार के आंदोलनों की झड़ी लग गई। गाँव-गाँव में सामाजिक कुप्रथाओं के विरुद्ध आवाज उठने लगी। हिंदी को केंद्र बिंदु बनाकर आर्यसमाज को प्रसार-प्रचार होने लगा। इसमें अंग्रेज़ों और अंग्रेजी के तिरस्कार का आह्वान किया गया। दलित और नारी-शिक्षा पर बल देते हुए बाल-विवाह के विरोध में धार्मिक और सांस्कृतिक आंदोलन चलाए गए। सदी का अंत आते-आते समाज में राजा राममोहन राय, केशव चंद्र सेन, देवेन्द्रनाथ टैगोर, स्वामी दयानंद सरस्वती आदि के सुधारवादी सांस्कृतिक आंदोलनों ने एक विचारधारा का रूप ले लिया था। इस युग को "सुधारवादी" युग की संज्ञा भी कई समीक्षकों ने दी है। 1905 में गोपालकृष्ण गोखले द्वारा स्थापित "भारत सेवक समाज" का मूल उद्देश्य ही था सामाजिक

कार्यकर्ताओं का निर्माण करना। देश उस समय राजनीतिक दृष्टि से "फूट डालो और राज करो" की ब्रिटिश नीति का शिकार हो चुका था। गोपाल कृष्ण गोखले ने "भारत सेवक समाज" और उसके कार्यकर्ताओं के माध्यम से समाज में हिंदू-मुस्लिम एकता के साथ-साथ नारी-उत्थान का नारा भी दिया था। "भारत सेवक समाज" ने उत्तर प्रदेश के अकाल पीड़ितों की मदद कर समाज में अपनी पैठ बनाई। 1916 में प्रथम महिला विश्वविद्यालय की स्थापना हुई।

**आर्थिक पृष्ठभूमि :-**

देश के तत्कालीन सामाजिक जीवन का आर्थिक आधार भूमि और कृषि थी। ग्रामीण क्षेत्रों में जमीदारी-प्रथा की कुरीतियाँ अपने चरम पर थी। अंग्रेज़ी शासनकाल के पूर्व भारतवर्ष में दैनिक उपयोग की वस्तुओं का उत्पादन और आदान-प्रदान विनिमय के रूप में ही होता था। तब व्यक्ति अपनी जाति के परंपरात्मक कार्यों को ही अपना आर्थिक जीवन का साधन बनाता था। इसके अलावा स्त्री-पुरुषों में कार्य विभाजन की व्यवस्था थी। इस दृष्टि से अर्थ व्यवस्था की स्थापना की गयी थी। यह व्यवस्था का मुख्य रूप से जाति व्यवस्था के ऊपर आधारित थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में भारत के ग्राम में आवश्यकता से अधिक उत्पादन को वह शहरों में ले जाकर बेच दिया जाता था। इस प्रकार व्यापार का क्षेत्र गाँव से लेकर शहर तक फैला हुआ था। उस समय अधिकांश साधन प्राकृतिक थे, मानव निर्मित नहीं। वैज्ञानिक साधनों का अभाव होने पर भी देश की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ थी। उस समय भारत की आर्थिक स्थिति सामान्यतः मध्ययुगीन यूरोप से ही आरंभ हुआ था। अंग्रेजों की नीति शोषण की नीति थी। इसलिए वे सैकड़ों वर्षों तक भारत को लूटते रहे। पहले उन्होंने भारत में व्यापारी के रूप में प्रवेश किया। उसके बाद भारत का अधिकार अपने हाथों में ले लिया था। उनका मूल उद्देश्य भारत को खेतिहर देश बनाना था। और मशीनों के द्वारा भारत के कुटीर उद्योगों को समाप्त कर देना चाहते

थे। इसके फलस्वरूप भूमि पर अधिक भार पड़ा था। उस समय भूमि भी छोटे-छोटे टुकडों में बँट गयी थी। इसी कारण भूमि की उत्पादन क्षमता कम हो गयी। बाद में भारत में कल-कारखानों की वजह से देश में आर्थिक व्यवस्था का विकास हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम तीस वर्षों में भयंकर अकाल पड़े थे। फसलों की बरबादी, पुराने उद्योग-धंधों का विनाश हुआ। तब भारतीय कृषक वर्ग की स्थिति बहुत दयनीय थी।

**साहित्यिक पृष्ठभूमि** :-

आधुनिक काल के प्रारंभिक दौर में हिंदी साहित्य पर रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ लक्षित हुई। गद्य की व्यापक पृष्टभूमि नहीं होने के कारण इस काल विशेष में लिखे गए उपन्यासों, नाटकों, कहानियों और निबंधों में पद्यात्मक रूप अधिक दिखाई पड़ता है। आधुनिक काल में भारतीय जीवन पर पाश्चात्य वैज्ञानिक प्रभाव के फलस्वरूप विविध क्षेत्रों में उन्नति हुई। इस कारण साहित्य के क्षेत्र में भी गतिशीलता आई। हिंन्दी साहित्य भारती स्वतंत्रता के प्रथम संग्राम के बाद विदेशी भाषाओं के साहित्य से विशेष रूप से प्रभावित हुआ था। मुद्रण यंत्रों के आविष्कार और कागज आदि की सुविधाओं के कारण प्रकाशन कार्य में एक क्रांति आ गई थी। शिक्षित समाज में उसका प्रचार हुआ। उस साहित्य की भाषा किसी वर्ग विशेष की आडंबरपूर्ण भाषा न होकर साधारण जनता की लोक व्यवहार की भाषा के रूप में प्रसिद्ध हुई। खड़ीबोली गद्य की परंपरा उन्नीसवीं शताब्दी में इंशा अल्ला खाँ लिखित "रानी केतकी की कहानी" से प्रचलित मानी गई। उस समय अनेक विदेशी ग्रंथों का अनुवाद हिंदी भाषा में हुआ। विदेशी साहित्य के माध्यम से जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण निर्मित हुआ वह आदर्शवाद के प्राचीन आग्रह से सर्वथा मुक्त था और उसमें यथार्थ का समावेश हुआ। पश्चिमी सभ्यता के संपर्क के प्रभाव से निम्न वर्ग में चेतना जागृत हुई। तब साहित्य राजा-रानियों के काल्पनिक चरित्रों को छोड़कर समाज के पात्रों का यथार्थ

चित्रण करने लगा। अंग्रेजी साहित्य के अतिरिक्त बंगला साहित्य पर भी उस काल का प्रभाव पड़ा। इसीलिए अंग्रेजी साहित्य में जहाँ तक एक ओर शेक्सपीयर, सर वाल्टर स्काट, शैली और कीट्स तो दूसरी ओर बंकिमचंद्र, द्विजेन्द्रलाल राय, रवींद्रनाथ ठाकुर, शरतचंद्र आदि लोकप्रिय बन गए थे।

1893 में डॉ.श्यामसुंदरदास के प्रयासों से "काशी में नागरी प्रचारिणी सभा" की स्थापना हुई। एक "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" का प्रकाशन भी हुआ था। जिससे हिंदी साहित्य के इतिहास के विकास को बल मिला और अनेक कोश ग्रंथों का संपादन व प्रकाशन भी हुआ। 1910 में ही अनेक हिंदी साहित्यकारों के प्रयत्नों से प्रयाग में हिंदी साहित्य सम्मेलन की स्थापना हुई। यह आधुनिक साहित्य के विकास का काल साबित हुआ। इस कारण प्राचीन संस्कृत साहित्य, अपभ्रंशकालीन वीरगाथाओं, मध्ययुगीन प्रेमाख्यानों एवं रीतियुगीन वीर गाथाएँ आदि विषय प्रमुख बन गयी थीं। इंशा अल्ला खाँ के बाद आधुनिक युग में सदासुखलाल लिखित "सुखसागर" का नाम विष्णुपुराण पर आधारित है। लगभग उसी समय लल्लूलाल ने "माधोनल" सिंहासन बत्तीसी, "बैताल पच्चीसी", "प्रेमसागर", "माधव विलास" और "राजनीति" शीर्षक कृतियाँ प्रस्तुत की। सदल मिश्र लिखित "नासिकेतोपाख्यान" और "रामचरित" का भी उल्लेख मिलता है। राजा शिवप्रसाद "सितारे हिंद" लिखित "राजा भोज का सपना" तथा गौरीदत्त लिखित "टीका कमानी" और "देवरानी और जेठानी" की कहानी भी इसी युग में प्रसिद्ध हुई। इन रचनाओं को आधुनिक कहानी का उद्भव और विकास माना गया। लेकिन गिरिजादत्त वाजपेयी जैसे कहानीकारों की कहानियों में यथार्थ के स्थान पर कल्पना की ही अधिक प्रमुखता रही। यूरोपीय पात्रों के चित्रण "पति का पवित्र प्रेम" शीर्षक कहानी में दिखाए गए हैं। इस कहानी में विमली नामक सौदागर की कन्या मिली और जेम्स (पादरी के पुत्र) की प्रेम कथा का वर्णन है और "पंडित और पंडितानी" नामक कहानी की कथावस्तु पर आधारित है। मनोवैज्ञानिक भावना के आधार पर इनकी कहानियों में समकालीन समाज में होनेवाले

अनमेल विवाह और वृद्ध विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों को खुलकर निरूपित किया गया है। भगवती प्रसाद ने भी मध्यवर्गीय समाज के विभिन्न चित्रों के आधार पर सामाजिक कहानियाँ लिखी हैं। "सुदर्शन" ने अपनी कहानियों में आधुनिक समाज के जीवन की उन वृत्तियों का चित्रण अपनी कहानियों में किया है। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने समाज की विभिन्न परिस्थितियों को आधार बनाकर अपनी कहानियों में यथार्थपरक चित्र प्रस्तुत किए हैं। सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों के यथार्थ चित्रण की दृष्टि से इस युग में विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" ने अपनी कहानियों में पारिवारिक जीवन के यथार्थ स्वरूप का प्रभावशाली चित्रण किया है। "वह प्रतिमा" तथा "ताई" जैसी कहानियों में उन्होंने गृहस्थ जीवनके वास्तविक चित्र प्रस्तुत किए हैं। "सुदर्शन" ने समाज-सुधार की दृष्टि से "हार की जीत", "मास्टर", "हेरफेर" तथा "सन्यासी" आदि कहानियाँ लिखीं, इसमें हृदय-परिवर्तन के मार्मिक चित्रण को देख सकते हैं।

**पूर्व प्रेमचंद युगीन कथा-साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ और यथार्थबोध** :-

इस काल की कहानियों की प्रवृत्तियाँ मुख्यतः आदर्श और कल्पना पर आधारित रहीं। प्राचीन भारतीय कथा-साहित्य में मुख्यतः धार्मिक और पौराणिक उपदेश के आदर्श मिलते हैं। वैदिक-साहित्य, संहिता ग्रंथ, अरण्यक ग्रंथ, उपनिषद साहित्य, पुराण साहित्य, जातक साहित्य तथा हितोपदेश और पंचतंत्र आदि में यह परंपरा देखने को मिलती है। इस प्रेरणा के द्वारा आधुनिक हिंदी कहानी का विकास उन्नीसवीं शताब्दी में भारतेंदु युग से ही हुआ था। इस काल की कहानियों में यथार्थ की सांकेतिक योजना का आभास मिलता है। पूर्व-प्रेमचंद युगीन कहानियों में ज्यादा से ज्यादा सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, पौराणिक तथा रहस्यात्मक कहानियों की बहुलता मिलती है।

हिंदी कहानी के इतिहास पर विचार करते हुए डॉ.दयालचंद गुप्त मंगल ने लिखा है-"आदि मानव ने सृष्टि की क्रोड़ में जब नयनोन्मीलन किया होगा, स्वाभाविक विस्मय और उत्सुकता से प्रेरणा पाकर अपनी अनुभूति को अपने सहचर पर अभिव्यक्त किया होगा, तभी कहानी का जन्म हुआ।" संवत् 1660 के लगभग लिखे गये "नासिकेतोपाख्यान" में संस्कृत-ग्रंथों के आधार पर लिखी गयी कहानियाँ उपलब्ध है। संवत् 1767 में सुरति मिश्र ने संस्कृत के "बैताल पंचविशंतिका" के आधार पर ब्रजभाषा में "बैताल पच्चीसी" की रचना की। प्रारंभिक खड़ी बोली गद्य में लिखे गये लल्लूलाल, सदल मिश्र, सदासुखलाल और इंशा अल्ला खाँ के ग्रंथ भी एक प्रकार से विभिन्न कथाओं के संग्रह-मात्र माने गये। यदि "कहानी" शब्द मात्र से ही कहानी का अर्थ लिया जाए तो इंश अल्ला खाँ की "रानी केतकी की कहानी" हिंदी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी मानी जा सकती है। कहानी अपनी आकार-लघुता में किसी एक सत्य या सत्यखण्ड की प्रतीति कराती है।

हिंदी गद्य में कहानी शीर्षक से प्रकाशित होने वाली सबसे पहली रचना "रानी केतकी की कहानी" है जो सन् 1803 ई. में लिखी गई। इसके पश्चात् राजा शिवप्रसाद "सितारेहिंद" की "राजा भोज का सपना" और भरतेंदु हरिश्चंद्र की "अद्भुत-अपूर्व स्वप्न" का उल्लेख किया जा सकता है। वस्तुतः आधुनिक ढंग की हिंदी-कहानियों का आरंभ सन् 1900 ई. में प्रकाशित "सरस्वती" और सन् 1901 ई. में प्रकाशित "सुदर्शन" पत्रिकाओं से हुआ। इन प्रारंभिक कहानियों का विवरण क्रमशः इस प्रकार है- 1. "इंदुमती", किशोरीलाल गोस्वामी (सन् 1900 ई.) 2. "मन की चंचलता" माधवप्रसाद मिश्र (सन् 1901 ई.) 3. "गुलबहार" किशोरीलाल गोस्वामी (सन् 1902 ई.) 4. "प्लेग की चुडैल" मास्टर भगवानदास (सन् 1902 ई.) 5. "ग्यारह वर्ष का समय" रामचंद्र शुक्ल (सन् 1903 ई.) 6. "पंडित और पडितानी" गिरिजादत्त वाजपेयी (सन् 1903 ई.) 7. "दुलाईवाली" बंग महिला (सन् 1907 ई.) आचार्य रामचंद्र शुक्ल , डॉ.श्री कृष्णलाल और गणपति

चंद्र गुप्त , किशोरीलाल गोस्वामी रचित "इंदुमती" को हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी स्वीकार करते हैं। डॉ.लक्ष्मी नारायण लाल के अनुसार "इंदुमती" पर शेक्सपीयर के "द टैम्पैस्ट" नाटक की छाया है और आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत "ग्यारह वर्ष का समय" हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी है।[1] हिंदी कहानी को गौरव, स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ही मिल गया था।

## 1. पूर्व-प्रेमचंद युग :-

पूर्व प्रेमचंद युग में वृन्दावनलाल वर्मा कृत "राखीबांध भाई" (सन् 1909 ई.) "तातार" और "एक वीर राजपूत" (सन् 1910 ई.) कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। सन् 1909 ई. में काशी से "इंदु" पत्रिका का प्रकाशन हिंदी-कहानी साहित्य के लिए वरदान सिद्ध हुआ। क्योंकि इसी के माध्यम से श्री जयशंकर प्रसाद कहानी जगत में अवतरित हुए। उनकी "ग्राम" (सन् 1910 ई.) और "रसिया बालम" (सन् 1912 ई.) "इंदु" में ही प्रकाशित हुई। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक कृत "रक्षा बन्धन" (सन् 1913 ई.) पण्डित पारसनाथ-कृत "सुख की मौत" (सन् 1913 ई.) और राधिकारमण सिंह कृत "कानों में कंगना" (सन् 1913 ई.) भी "इंदु" में छपी। इन कहानियों ने हिंदी-कहानी-साहित्य को एक नवीन भावपूर्ण और कोमल कल्पना की दिशा प्रदान की है।

सन् 1915 ई. में विश्वम्भरनाथ लिखित "विदीर्ण हृदय" तथा चंद्रधर शर्मा गुलेरी-कृत "उसने कहा था" नामक कहानियाँ प्रकाश में आयीं। "उसने कहा था" अपने सहज पुलकित रसोद्रेक के कारण ही हिंदी-कहानी-साहित्य का "कोश स्तम्भ" बन सकी। हिंदी कहानियों में जो लोकप्रियता और अमरत्व "उसने कहा था" को प्राप्त है। स्वयं गुलेरी द्वारा रचित दो कहानियाँ-"सुखमय जीवन" और "बुद्धू का काँटा" भी इसके अमर सौंदर्य के सामने प्रभावहीन पायी गयीं।

---

[1] डॉ.लालचंद गुप्त मंगल : हिंदी कहानी का इतिहास-पृ.सं.15

**सामाजिक कथा-साहित्य : यथार्थबोध :-**

पूर्व-प्रेमचंद युगीन कहानी में सामाजिक यथार्थवाद प्रायः अभाव-सा है। इस काल की ज्यादातर कहानियों में कल्पना तत्व की ही प्रधानता रही। क्योंकि इस युग में कल्पनात्मक व चमत्कारिकता के तत्व सामान्य प्रवृत्ति के रूप में दृष्टिगत होते हैं। लेकिन सामाजिक यथार्थवाद के संकेत अनेक कहानियों में मिलते हैं। इस युग में मनोरंजन के साथ सामाजिकता को भी देख सकते हैं। सामाजिक यथार्थवाद में जीवन को गतिशील रखने की क्षमता होती है। यद्यपि पूर्व प्रेमचंद युगीन कहानी में सामाजिक यथार्थ का प्रायः अभाव सा ही है। उस समय साहित्यकारों में सामाजिक चेतना का जागरण हो चुका था। वस्तुतः सामाजिक यथार्थ समाज की वास्तविक स्थिति, सामाजिक विषमताओं, भ्रष्टाचारों तथा वैयक्तिक स्वार्थों से आक्रान्त, पीडित समाज की दयनीय परिस्थितियों को भी चित्रित करता है।

सामाजिक यथार्थवाद की दृष्टि से इस काल की रचनाओं में रामचंद्र शुक्ल लिखित "ग्यारह वर्ष का समय" में समकालीन समाज में प्रचलित प्रेम और विवाह की परंपरागत भावना का चित्रण है। यह वस्तुतः समाज के एक वर्ग विशेष की यथार्थ मनोवृत्ति का द्योतक है। पार्वतीनंदन की कहानियों में भी समाज के उस स्वरूप का यथार्थपरक चित्रण है जो अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृति से प्रभावित था। मास्टर भगवानदास की कहानी सामाजिक यथार्थ का अत्यन्त मार्मिक रूप प्रस्तुत करती है। इन्होंने "प्लेग की चुडैल" शीर्षक कहानी में समकालीन समाज में व्याप्त नारी जाति के प्रति असहिष्णुता की भावना का प्रभावशाली चित्रण किया है। बंग महिला लिखित "कुंभ में छोटी बहू" नामक कहानी यथार्थ चित्रण के लिए प्रसिद्ध है। इस कहानी में तीर्थ स्थलों में धार्मिक पर्वों पर घटित होनेवाली दुर्घटनाओं का चित्रण है।

गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित "पंडित और पंडितानी" कहानी मुख्यतः हास्य और व्यंग्य प्रधान है किंतु इसमें समकालीन समाज की एक ज्वलंत समस्या की ओर

संकेत किया गया है। इसमें एक पैंतालीस वर्ष के पति और उसकी बीस वर्ष की पत्नी के वैवाहिक जीवन का चित्रण हुआ है। इसी के अनुसार प्रमुख कहानीकार श्री चंद्रधर शर्मा "गुलेरी" लिखित "उसने कहा था" कहानी में समकालीन जीवन में सहज प्रेम-भावना की सामाजिक-पृष्ठभूमि में विकास तथा प्रथम विश्वयुद्ध की विभीषिका का अंकन हुआ है। उन की लिखी हुई "सुखमय जीवन" तथा "बुद्धू का काँटा" में भी सामाजिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों का चित्रण हुआ है। इससे पता चलता है कि पूर्व-प्रेमचंद युगीन हिंदी कहानी में सामाजिक यथार्थवाद के संकेत विद्यमान हैं।

पूर्व प्रेमचंद युग के उपन्यासों में "भाग्यवती" और "परीक्षा गुरु" के अतिरिक्त इस श्रेणी के उपन्यासों में बालकृष्ण भट्ट कृत "नूतन ब्रह्मचारी" और "सौ अजान एक सुजान", अमृतलाल चतुर्वेदी का "सती सुखदेवी", लज्जाराम शर्मा का "आदर्श दंपति" आदि की सामाजिक प्रवृत्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इन सारे उपन्यासों में जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त विषमताओं को कम या समाप्त करके समाज को पश्चिमी सभ्यता के अभिशापों से बचाकर पुनः नये सिरे से भारतीय समाज के आदर्श की स्थापना इन उपन्यासों की प्रमुख विशेषता है।

भारतेंदु-युगीन सामाजिक उपन्यास मुख्य रूप से मध्यवर्गीय समाज का चित्रण करते हैं। इस युग में सामाजिक उपन्यासों की अधिकांश प्रवृत्तियों पर रचनाएँ प्रस्तुत की गईं। जैसे समस्या प्रधान उपन्यासों के क्षेत्र में बालकृष्ण भट्ट-लिखित "सौ अजान एक सुजान", राधा कृष्ण दास लिखित "निस्सहाय हिंदू" आदि कृतियाँ तत्कालीन अनेक सामाजिक समस्याओं का चित्रण करती हैं।

हिंदी साहित्य में उपन्यास का वास्तविक स्वरूप पहले-पहल प्रेमचंद के उपन्यासों में ही दिखाई पड़ता है या हिंदी उपन्यासों का वास्तविक विकास प्रेमचंद से ही मानना चाहिए। प्रेमचंद के पूर्व के हिंदी उपन्यासों में विषय और उद्देश्य की दृष्टि से कुछ वैविध्य भले ही रहा हो लेकिन वे कहीं-न-कहीं एक हैं और वे सब के सब उपन्यास की वास्तविक गरिमा प्राप्त करने में समर्थ हैं। प्रेमचद ने उपन्यास-साहित्य

को एक नयी दिशा दी। दिशा ही नहीं दी उसे उत्कर्ष पर पहुँचा दिया। उपन्यास का विकास 17 वीं शताब्दी से ही आरंभ हुआ था। 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से ही हिंदी में पश्चिमी उपन्यासों का अध्ययन प्रारंभ हो गया था। लेकिन प्रेमचंद के पहले के उपन्यासकार पश्चिमी उपन्यासों की मूल छवियों से परिचित नहीं हो सके थे। वे भारत में प्रचलित कथा-कहानियों के प्रभाव से भी नहीं उभर सके थे और वे उपन्यास को या तो मनोरंजन का या सुधार का साधन मान बैठे थे। प्रेमचंद ने उपन्यास के क्षेत्र में मानो एक युग स्थापित किया और इस युग के कथा-साहित्य को काफी प्रभावित भी किया। अतः प्रेमचंद के पूर्व के उपन्यासों को प्रेमचंद पूर्व उपन्यास कहना केवल काल का नहीं, बल्कि विकास के सोपान की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियों का परिचायक है। इसी प्रकार प्रेमचंद युग या प्रेमचंदोत्तर युग कहना भी उपन्यास की दो विशिष्ट धाराओं का द्योतन करता है।

प्रेमचंद पूर्व युग के उपन्यास-साहित्य में उद्देश्य की दृष्टि से दो प्रवृत्तियाँ लक्षित होती हैं। कोरा मनोरंजन और मनोरंजन के साथ सुधारवादी भावना। वास्तव में इन दोंनों वृत्तियों का संबंध अपने यहाँ की परंपरागत कहानियों से है। प्रेमचंद पूर्व उपन्यासों की सबसे प्रमुख और सामान्य विशेषता है उनका घटनाप्रधान होना। यानी ये उपन्यास घटना-चमत्कार का प्रदर्शन कर या तो मात्र मनोरंजन करना चाहते हैं या कोई उपदेश देना चाहते हैं। घटना चमत्कार पर आधारित रहनेवाला उपन्यास जीवन यथार्थ की चिंता कम करता है। घटना-प्रधानता प्राचीन कथाओं की एक खास विशेषता रही है चाहे वे कथाएँ दादी-नानी के मुँह से सुनी गयी कहानियाँ हों। इन कथाओं से देशकाल की यथार्थता की रक्षा नहीं होती हैं। प्रेमचंद पूर्व युग में तीन प्रकार के उपन्यास दिखायी पड़ते हैं।

1. शुद्ध मनोरंजन प्रधान उपन्यास : तिलिस्मी ऐयारी के अंतर्गत लेखक देवकीनंदन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, देवीप्रसाद शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, हरेकृष्ण जौहर आदि रचनाकार आते हैं। जासूसी लेखक गोपालराम गहमरी,

शिवनारायण द्विवेदी, शेरसिंह रुद्रदत्त शर्मा, जयराम दास गुप्त आदि। जासूसी लेखक श्री गोपालराम गहमरी ने इस तरह स्पष्ट किया है-"....पहले जानने योग्य बात घटना की जवनिका को छिपा रखना और इधर-उधर की जो बेसिलसिले और बेजोड़ न हों पहले कहना और घटना पर घटना की तूमार बाँधकर असल भेद जानने के लिए पाठकों के हृदय में कौतूहल बढ़ाना और रहस्य पर रहस्य सजाकर ऐसा उपन्यास गढ़ना कि पूरा पढ़े बिना स्वाद न मिले.....। जिसका उपन्यास पढ़कर पाठक ने समझ लिया कि सब सोलहों आने सच है उसी की लेखनी सफल-परिश्रम हुई समझना चाहिए।"[1]

2. उपदेशप्रधान सामाजिक उपन्यास लेखकों में लेखक श्रीनिवासदास, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण गोस्वामी, देवीप्रसाद शर्मा, किशोरीलाल गोस्वामी, लज्जाराम मेहता आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।
3. ऐतिहासिक उपन्यास लेखकों के अंतर्गत लेखक किशोरीलाल गोस्वामी, बलदेव प्रसाद मिश्र, कृष्णप्रकाश सिंह, अखौरी, व्रजनंदन सहाय, मिश्रबंधु आदि के नाम रेखांकित किये जाते हैं।

शुद्ध मनोरंजन प्रधान उपन्यासों में विस्मयकारी घटनाओं का जाल-सा बिछा हुआ है। तिलस्म और ऐयारी के बड़े विचित्र-विचित्र करिश्मे दिखाई पड़ते हैं। जासूस अनेक प्रकार के कौशल द्वारा अपराधी को पकड़ने का प्रयास करता है। देवकीनंदन खत्री का "चंद्रकांता" (1891) और "चंद्रकांता संतति" प्रेमचंद पूर्व उपन्यासों में अपनी लोकप्रियता के कारण सबसे अधिक महत्वपूर्ण कृतियाँ मानी जाती हैं। कहा जाता है कि इन उपन्यासों को पढ़ने के लिए बहुत-से लोगों ने हिंदी सीखी। मनोरंजन के दृष्टिकोण से ये दोनों उपन्यास बड़े ही सशक्त हैं। पात्रों के विचित्र-विचित्र अलौकिक कारनामें पाठकों को चकित करते हैं। चंद्रकांता की कथा मूलतः प्रेमकथा है। विजयगढ़ की राजकुमारी चंद्रकांता को वीरेंद्रसिंह और क्रूरसिंह दोनों चाहते हैं।

---

1 डॉ.माखनलाल शर्मा, हिंदी उपन्यास:सिद्धांत और समीक्षा-पृ.सं.150

चंद्रकांता विरेंद्र को चाहती है। प्रेम का संघर्ष ही अनेक प्रकार की वैचित्र्यपूर्ण घटनाओं की सृष्टि करता है। यह प्रेमकथा है लेकिन इसमें प्रेम की मार्मिक अनुभूतियों का चित्रण नहीं है। "चंद्रकांता सन्तति" (चौबीस भाग 1896) "चंद्रकांता" से भिन्न नहीं है। तिलस्म और ऐय्यारी पर आधारित ये प्रेमकथाएँ फ़ारसी के "तिलस्म होशरूबा", "वोस्तान इख्याल" और "दास्ताने अमीर हज्जा" नामक लोकप्रिय रचनाओं से कुछ प्रभावित जान पड़ती है। खत्री जी ने नरेंद्र मोहिनी (1893) "वीरेंद्रवीर" (1895) "कुसुम कुमारी" (1899) "काजर की कोठरी" (1902) "अनूठीबेगम" (1905) गुप्त गोदान (1906) भूतनाथ, प्रथम चहवाग उपन्यास भी लिखे हैं। इन्हीं के परंपरा में हरेकृष्ण जौहर कृत "कुसुमलता", "मयंक मोहिनी या माया बहन" (1901) "कमल कुमारी" (1902) "निराला नकाबपोश" (1902) "भयानक खून" (1903) किशोरीलाल गोस्वामी कृत "तिलस्मी शीशमहल" (1905) रामलाल वर्मा कृत "पुतली महल" (1908) उपन्यास आते हैं। देवकीनंदन खत्री के पुत्र दुर्गाप्रसाद खत्री ने अपने पिता कृत "भूतनाथ" का शेष भाग पूरा किया। जासूसी उपन्यासकारों में श्री गोपालराम गहमरी का नाम अग्रगण्य है। इन्होंने "जासूस" नाम का एक अखबार निकाला, जिसमें जासूसी उपन्यास और कहानियाँ प्रकाशित होती रहीं। "अद्‌भुत लाश", "बेकसूर की फाँसी", "सरकती लाश", "बेगुनाह का खून", "जासूस की भूल", "अद्‌भुत खून", "खूनी का भेद" इनके उपन्यास हैं।

उपदेश प्रधान सामाजिक उपन्यास : यह युग सांस्कृतिक पुनरुत्थान का था। राष्ट्रीय और सामाजिक जागृति की चेतना धीरे-धीरे विकसित होने लगी थी। उस काल के चिंतकों और कलाकारों को सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियाँ और पाश्चात्य सभ्यता की अंधी अनुकृतियाँ दोनों बुरी तरह सालने लगी थीं। इस काल के अन्य सामाजिक उपन्यासों में "भाग्यवती" (श्रद्धानंद फुल्लौरी, 1877) "परीक्षा गुरु" (श्रीनिवासदास) "नूतन ब्रह्मचारी", "सौ अजान एक सुजान" (बालकृष्णभट्ट),

"निस्सहाय हिंदू" (राधाकृष्णदास), "विधवा विपत्ति" (राधाचरण गोस्वामी और देवीप्रसाद शर्मा) "श्याम स्वप्न" (ठाकुर जगमोहन सिंह) "जया" (कार्तिक प्रसाद खत्री), "लवंग लतिका", "कुसुम-कुमारी", "लीलावती व आदर्शसती", "पुनर्जन्म वा सोतिया डाह", "अँगूठी का नगीना" (किशोरीलाल गोस्वामी) "बड़ा भाई", "नये बाबू" (गोपालराम गहमरी) "धूर्त रसिकलाल", "अधखिला फूल", "ठेठ हिंदी का ठाठ" (अयोध्यासिंह हरिऔध) "वन जीवन व प्रेम लहरी (राधिकारमण प्रसाद) आदि के नाम उल्लेखनीय है। बाल विवाह, कलह-प्रियता, पुरुष से हीनता, विधवा-विवाह, दहेज, अभूषणप्रियता आदि विषय सामाजिक उपन्यासकारों के मुख्य विषय रहे हैं। "परीक्षा गुरु" पहला उपन्यास होकर भी कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

<u>ऐतिहासिक उपन्यास</u> :- इस काल में ऐतिहासिक उपन्यासों का भी प्रणयन पर्याप्त मात्रा में हुआ। किशोरीलाल गोस्वामी कृत "हृदयहारिणी" व "आदर्श रमणी" (1890) "लवंगलता" व "आदर्श बाला" (1890) "तारा" (1902) "राजकुमारी" (1902) "कनक कुसुम" व "मस्तानी" (1903) "लखनऊ की कब्र" व "शाही महलसरा" (1906) "रजिया बेगम" आदि "गंगाप्रसाद गुप्त कृत "पृथ्वी राज चौहान" (1902) कुमारसिंह सेनापति (1903) "हम्मीर" (1904), मिश्र बंधुकृत "वीरमणि" (1917) आदि ऐतिहासिक उपन्यासों में दो बातें विशेष ध्यान देने की होती है-एक तो अभिप्रेत काल के जीवन यथार्थ से घनिष्ठ रूप से परिचित होना, दूसरे इतिहास के तथ्यों के साथ कल्पना का सुंदर समन्वय कर साहित्यिक कृति का निर्माण करना। ब्रजनंदन सहाय के "लाल चीन" और मिश्रबंधुओं के "वीरमणि" में ऐतिहासिकता और कालपनिकता का कुछ सम्यक संयोग दिखायी पड़ता है।

हिंदी का पहला उपन्यास परीक्षा-गुरु माना जाता है। इसमें "जो बात सौ बार समझाने से समझ में नहीं आता। वह एक बार की परीक्षा से भली भाँति मन में बैठ जाती है और इसी वास्ते लोग परीक्षा (को) गुरु मानते हैं। लेखक ने परीक्षा को गुरु

सिद्ध करने के लिए यह उपन्यास लिखा है। परीक्षा गुरु के बाद के उल्लेख्य उपन्यासों का क्रम इस प्रकार है:

रत्नचंद प्लीडर-कृत "नूतन चरित्र" (1883) बालकृष्ण भट्ट कृत "नूतन ब्रह्मचारी" (1886) देवीप्रसाद शर्मा कृत "विधवा विपत्ति" (1888) ठाकुर जगनमोहन सिंह कृत "श्यामा स्वप्न" (1888) किशोरीलाल गोस्वामी कृत "त्रिवेणी" व "सौभाग्य श्रेणी" (1888) हृदयहारिणी व आदर्श रमणी, राधाकृष्णदास कृत "निःसहाय हिंदू" (1890) देवकीनंदर खत्री कृत "चंद्रकांता" और "चंद्रकांता संतति" (1891), बालकृष्ण भट्ट कृत "सौ अजान एक सुजान" (1892) गोपालराम गहमरी कृत "नये बाबू" (1894) कार्तिक प्रसाद खत्री कृत "जया" (1896) गोपालराम गहमरी कृत "धूर्त रसिकलाल" (1899) मिश्रबंधुओं का "वीरमणि" (1917) आदि प्रसिद्ध है।

**ऐतिहासिक कथा-साहित्य : यथार्थबोध** :-

पूर्व प्रेमचंद युगीन कहानी को दूसरी उल्लेखनीय प्रवृत्ति ऐतिहासिक कहानियों से संबंधित है। इस प्रवृत्ति की मूल प्रेरणा पूर्व युगीन इतिहास है। इसका प्रारंभिक रूप जटमल लिखित "गोरा बादल की बात" तथा इन्शाअल्ला खाँ की "रानी केतकी की कहानी" जैसी रचनाओं में मिलता है। इन्हीं की भाँति इस युग में लिखी गई अनेक ऐतिहासिक कहानियाँ ऐतिहासिक तथ्यों और कल्पनाओं पर आधारित थीं। आधुनिक कहानी की प्रायः सभी प्रवृत्तियों की भाँति इस प्रवृत्ति का प्रारंभिक रूप भी है। किशोरीलाल गोस्वामी लिखित "इन्दुमती" शीर्षक कहानी एक काल्पनिक प्रेम कथा है। हसमें ऐतिहासिकता के आरोपण के रूप में इब्राहिम लोदी जैसी ऐतिहासिक पात्र तथा अजयगढ़ और देवगढ़ जैसे स्थानों का उल्लेख मात्र है। इस युग के एक अन्य कहानीकार पार्वती नंदर ने "मुहम्मद गोरी का अंत" जैसी रचनाओं में इतिहास के कुछ चरित्रों का उल्लेख करते हुए कल्पना-प्रधान कथाएँ प्रस्तुत कीं। गोपालराम गहमरी

ने भी "डाकू की पहनाई" शीर्षक कहानी में तात्या भील के शौर्य का अतिरंजित चित्रण किया है। उनकी और एक कहानी "सौभद्रा" शीर्षक से प्रस्तुत की है। "सरस्वती" के संपादक और आलोचक पं.महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अनेक ऐतिहासिक कहानियाँ प्रस्तुत की जिनमें "शाहजहाँ", "शायरों के शाहिनशाह अबूतालिब", "खानखाना" और "सुमेंट पर्वत" तथा मिर्जा अब्दुल रहीम खानखाना की उदारता" आदि खास हैं। इनमें ऐतिहासिक यथार्थ का भी संतुलित स्वरूप दृष्टिगत होता है। ये कहानियाँ समकालीन जीवन के नैतिक मूल्यों के संदर्भ में सुधारवादी दृष्टिकोण से लिखी गयी है।

पूर्व प्रेमचंद युग के ऐतिहासिक उपन्यास लेखकों में सर्वप्रथम स्थान किशोरीलाल गोस्वामी का है। इन्होंने "लवंगलता", "कुसुमकुमारी", "राजकुमारी", "तारा", "चपला", शाही महलसरा" आदि उपन्यास लिखे थे। पर इस युग के ऐतिहासिक उपन्यासों में या तो इतिहास का इतिवृत्तात्मक उल्लेख हुआ है अथवा किसी घटना विशेष को प्रकाश में लाने के लिए पूरे इतिहास की उपेक्षा की गई है। अर्थात् इन्हें सफल ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है। इनमें भी देश-काल और चरित्र उपेक्षित रह गये हैं। केवल घटना की मनोरंजकता पर बल दिया गया है।

**धार्मिक व पौराणिक कथा-साहित्य : यथार्थबोध** :-

पूर्व प्रेमचंद युगीन कहानियों की तीसरी उल्लेखनीय प्रवृत्ति धार्मिक पौराणिक कहानियों से संबंधित है। वास्तव में इस कथा प्रवृत्ति का प्रसार अतीत के रूप में मिलता है। मूल रूप से हिंदुओं का धार्मिक साहित्य इसकी मूल प्रेरणा रहा है। वैदिक, औपनिवेषिक तथा पौराणिक कथा-साहित्य में इस प्रवृत्ति के सूत्र निहित हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास में आदि काल के अंतर्गत अनेक लेखकों ने पौराणिक सूत्रों पर आधारित वीर गाथाएँ प्रस्तुत की थीं। मध्य युग में प्रेमाख्यानों की परंपरा के बारे में स्पष्ट किए थे। रीतिकाल में पौराणिक चरित्रों को आधार बनाकर अनेक काव्यों की

रचना की। आधुनिक काल में अवधी, ब्रज तथा खड़ी बोली में अनेक कहानियों की रचना की। उन्नीसवीं शताब्दी में मुन्शी सदासुख लाल "सुखसागर" की रचना विष्णु पुराण के आधार पर की थी। इसी के अंतर्गत लल्लू लाल ने "प्रेमसागर" कथा की रचना श्रीमद्भागवत् के आधार पर किया। सदल मिश्र ने उपनिषद और आध्यात्म रामायण के आधार पर "नासिकेतोपख्यान" और "रामचरित" की रचना की। पूर्व प्रेमचंद युग में इस परंपरा के अनुसार सूर्यनारायण दीक्षित ने एक नाटकीय कहानी "चंद्रहास का अद्भुत आख्यान" शीर्षक से प्रस्तुत किया। महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने "स्वर्ग की झलक" जैसी कहानी भी पौराणिक सूत्रों के आधार पर प्रस्तुत की। वस्तुतः ये कहानियाँ सामाजिक यथार्थ के ऊपर आधारित है।

**रहस्यात्मक कथा-साहित्य : यथार्थबोध** :-

पूर्व प्रेमचंद काल में कुछ ऐसी रचनाएँ उपलब्ध होती है जो रहस्य और रोमांच के तत्वों से युक्त है। यह रहस्य तत्व वस्तुतः इन्शाअल्ला खाँ लिखित "रानी केतकी की कहानी", लल्लू लाल द्वारा लिखित "सिंहासन बत्तीसी" और "बैताल पच्चीसी" तथा सदल मिश्र लिखित "नासिकेतापाख्यान" आदि रचनाओं में मिलते हैं। किशोरीलाल गोस्वामी लिखित "इंदुमती" तथा रामचंद्र शुक्ल लिखित "ग्यारह वर्ष का समय" जैसी सामाजिक रचनाओं में रहस्यात्मक भावना को देख सकते हैं। यह रहस्यात्मक तत्व का समावेश जासूसी कहानियों के द्वारा ही हुआ था। जैसे गोपालराम गहमरी ने "शिक्षा का शिक्षा का युद्ध उर्फ रावत मानसिक चरित्र, डाकू की पहुनाई, गल्प पंचक", "सौभद्रा" आदि कहानियों में यह रहस्य तत्व मिलता है। "विचित्र चोरी", "गुमनाम चिट्ठी", "जासूस की जवाँमर्दी", "मुर्दे की जाँच" आदि रहस्यात्मक कहानियों के अंतर्गत उल्लेखनीय हैं। ऐसी कहानियाँ सामाजिक कहानियों से सहज ही अलग की जा सकती हैं।

**मनोवैज्ञानिक कथा-साहित्य : यथार्थबोध** :-

आधुनिक काल में यथार्थवादी विचारधारा का विकास मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के रूप में ही हुआ था। वस्तुतः मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद प्रेमचंद-युग से ही आरंभ हुआ था। इसका स्वरूप पूर्व प्रेमचंदयुगीन कहानियों में भी पाया जाता है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में ही पाश्चात्य साहित्य में मनोविज्ञान और यथार्थ दोनों का ही समुचित विकास होने लगा था और इसका संकेत हिंदी कथा-साहित्य में मिलने लगा था। लेकिन पूर्व प्रेमचंदयुगीन हिंदी कहानी में भारतीय कथा साहित्य की प्रेरणा और अभाव के कारण मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के संकेत अत्यंत क्षीण रूप में मिलते हैं। हिंदी की सर्वप्रथम कहानी इंशाअल्ला खाँ लिखित "रानी केतकी की कहानी" में लेखक के मनोरंजनपरक उद्देश्य के कारण कथावस्तुगत की अधिकता रही है। भारतेंदु हरिश्चंद्र लिखित "कुछ आप बीती कुछ जग बीती" अवश्य कुछ मनौवैज्ञानिकता युक्त है ओर इसमें समकालीन समाज में व्याप्त अवमूल्यता और चाटुकारिता की भावनाओं का स्वाभाविकता-युक्त चित्रण हुआ है। गौरीदत्त शर्मा लिखित "कहानी टका कमानी" तथा "देवरानी जेठानी की कहानी" में भी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का न्यूनाधिक रूप में समावेश मिलता है। किशोरीलाल गोस्वामी लिखित "इन्दुमती" में नायक चंद्रशेखर, नायिका इंदुमती तथा नायिका के पिता देवगढ़ के राजा आदि चरित्र किंचित नाटकीयता से युक्त होते हुए भी कहीं-कहीं पर मनोवैज्ञानिकता के उस रूप का परिचय अवश्य देते हैं। मनोवैज्ञानिक यथार्थ की दृष्टि से गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित "पति का पवित्र प्रेम" तथा "पंडित और पंडितानी" शीर्षक रचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

गिरिजाकुमार घोष (उपनाम पार्वतीनंदन) ने भी "मेरा पुनर्जन्म" में विभिन्न स्थलों पर मनोवैज्ञानिक संकेत प्रस्तुत किए हैं। बंग-महिला लिखित "दुलाई वाली" में एक स्त्री को एक विशिष्ट परिस्थिति में रखकर उसकी प्रतिक्रियात्मक भावनाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। चंद्रधर शर्मा "गुलेरी" लिखित "उसने कहा था"

मनोवैज्ञानिक यथार्थ की दृष्टि से युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कहानी है। इस प्रकार से मनोवैज्ञानिक यथार्थ का समावेश पूर्व प्रेमचंद काल में दृष्टिगत होता है।

**आदर्शोन्मुख कथा-साहित्य : यथार्थबोध** :-

हिंदी कहानी के क्षेत्र में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद प्रमुख है। वस्तुतः यथार्थवाद के अन्य रूपों की भाँति आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का संयक विकास प्रेमचंद के समय से ही हुआ था। उनकी सांकेतिक अभिव्यंजना पूर्व प्रेमचंदयुगीन कहानी में भी दृष्टिगत होती है।

प्रेमचंद पूर्व युग में अधिकांश कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में यथार्थवाद के जिन रूपों का आंशिक अथवा सांकेतिक रूप में समावेश किया है उनमें आदर्शोन्मुख यथार्थवाद ही प्रमुख है। यह स्वरूप हिंदी की सर्वप्रथम कहानी इंशा अल्ला खाँ लिखित "रानी केतकी की कहानी" में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का संदेश मिल जाता है। किशोरीलाल गोस्वामी लिखित "इंदुमति" शीर्षक कहानी भी आदर्शोन्मुख यथार्थवादी संकेतों की दृष्टि से उल्लेखनीय है। आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टि से पूर्व प्रेमचंद युगीन कहानियों में रामचंद्र शुक्ल लिखित "ग्यारह वर्ष का समय" शीर्षक रचना उल्लेखनीय है। गिरिजाकुमार घोष (उपनाम पार्वतीनन्दन) की "गल्प लहरी" में संगृहीत अनेक कहानियों में से "प्रेम का फुव्वारा", "कर्म रेखा" तथा "उमा भवानी" आदि कहानियाँ आदर्श की विशेष व्यंजना की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। बंग महिला लिखित "दुलाईवाली" भी यथार्थ पर आधारित है और इसमें नारी जीवन को आदर्शपरक बनाने के लिए नव जागरण का संदेश मिलता है। चंद्रधर शर्मा "गुलेरी" का "सुखमय जीवन" और "बुद्धू का काँटा" में इन दोनों का संतुलित समन्वय मिलता है इसलिए इन्हें आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहा जा सकता है। संक्षेप में यथार्थवाद के अन्य रूपों की भाँति आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का समावेश भी पूर्व प्रेमचंद युगीन कहानियों में अत्यन्त अल्प रूप में मिलता है।

## 2.1 प्रेमचंद युग :-

प्रेमचंद युग आम तौर पर सन् 1880 से 1936 तक माना जाता है। इस युग को भारत की दासता का युग भी कहा जाता है। देश में ब्रिटिश साम्राज्य की नीवें जम गई थीं। प्रेमचंद का साहित्य देश की सामाजिक-आर्थिक अधोगति की ओर संकेत करता है तो दूसरी ओर समाज की मानमर्यादा मानवतावादी दृष्टिकोणों की प्रतिष्ठा का कारक है। अंग्रेजों ने अपने व्यापारिक हितों को ध्यान में रखकर एक कुशल नीति बनाई और देश और समाज में व्याप्त वैमनस्यता का लाभ उठाकर अपने शासन को मज़बूत किया। 1857 की क्रांति विफल हो जाने के बाद अंग्रेज़ो की नीति और महत्वाकांक्षा को काफी बल मिला। प्रेमचंद नैतिक तथा सामाजिक मूल्यों को तरजीह देते थे। प्रेमचंद ने वैयक्तिक मूल्यों को नैतिकता के संदर्भ में ग्रहण किया। मान-मर्यादा के वैयक्तिक मूल्यों के रूप में प्रेमचंद की "राजा हरदौल" कहानी को देखा जा सकता है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि प्रेमचद पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव पड़ा ही नहीं। प्रेमचंद की "धर्मसंकट" कहानी में पाश्चात्य सभ्यता में रंग स्त्री-पुरुषों का श्रेष्ठ चित्रांकन हुआ है।

इस युग के उपन्यासों में भारतीय समाज के प्रायः सभी वर्गों ग्रामीण तथा नागरीय जीवन के यथार्थ पहलुओं, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक समस्याओं का कलात्मक निरूपण किया गया है। आर्थिक शोषण, दहेज प्रथा, विधवा समस्या, बहु विवाह प्रथा, अनमेल विवाह प्रथा, वेश्या समस्या, छूआछूत की समस्या, ब्रिटिश नीति, राष्ट्रीय आंदोलनों, साम्प्रदायिक संघर्षों आदि को इस काल के अनेक उपन्यासों में चित्रित किया गया है। इस प्रकार इस युग के उपन्यासकारों ने उपन्यास साहित्य को सामाजिक जीवन के यथार्थ से जोड़ा है। ऐसे उपन्यासकारों में प्रमुख हैं- प्रेमचंद, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, जयशंकर प्रसाद, सियाराम शरण जैन, जैनेंद्र कुमार, बेचन शर्मा "उग्र", चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावन लाल शर्मा, भगवतीचरण वर्मा,

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, इलाचंद जोशी, भगवती प्रसाद वाजपेयी, उषादेवी मित्रा आदि।

प्रेमचंद का समय हिंदी उपन्यास-साहित्य के लिए पूर्ण समृद्धि का काल था। उनके पदार्पण से हिंदी उपन्यास में युगांतकारी परिवर्तन हुए और उपन्यास साहित्य अपने पूर्ण परिष्कृत रूप में विकास के पथ पर अग्रसर हुआ। प्रेमचंद के पूर्व उपन्यास कल्पना की सृष्टि मात्र था अर्थात् उसका संबंध जीवन से न था। लेकिन प्रेमचंद ने उपन्यास साहित्य को कल्पना जगत से उठाकर यथार्थ की भूमि पर प्रतिष्ठित किया। वस्तुतः प्रेमचंद जनता की सुख-समृद्धि की कामना करनेवाले, जनजीवन का विकास चाहनेवाले ऐसे जनप्रिय कथाकार थे जिनके हृदय में दरिद्रों, शोषितों और असहायों के प्रति गहरी और व्यापक करुणा थी। अत्यंत आर्द्र संवेदना थी। उन्होंने प्रत्येक प्रकार के शोषण का विरोध किया, रूढ़ियों और संकीर्णताओं को तोड़ने की चेष्टा की, जनता को जगाया और जनवादी परंपरा को आगे बढ़ाया। अहं, वैयक्तिकता और यथार्थ से विच्छिन्न कर देनेवाली कल्पना-शीलता से उन्हें घृणा थी। उनमें सच्ची सामाजिक चेतना, वास्तविक आधुनिकता बोध, संतुलित यथार्थपरक आदर्शवादिता थी। उन्होंने समाज एवं जीवन की विविध गंभीर समस्याओं को अपने उपन्यासों का विषय बनाया। प्रेमचंद ने बुराइयों की ओर हमारी घृणा जगाकर समाज में आमूल परिवर्तन करने का संकेत किया है।

इस युग में हिंदी उपन्यास प्रेमचंद की लेखनी का स्पर्श पाकर सजीव हो उठी। इस संदर्भ में "प्रेमचंद ने चंद्रकांता के पाठकों को अपनी तरफ ही नहीं खींचा, चंद्रकांता में अरुचि भी पैदा कर दी। जन-रुचि के लिए उन्होंने नये मापदण्ड कायम किए और साहित्य के बड़े पाठक और पाठिकाएँ भी पैदा की।"[1]

---

[1] साठोत्तर हिंदी उपन्यास :विविध प्रयोग-डॉ.कुसुम शर्मा-पृ.सं.16

राजनैतिक पृष्ठभूमि :-

प्रेमचंद युग पर विचार करते समय सबसे महत्वपूर्ण बात 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना है। इसकी स्थापना किसी भारतीय द्वारा न होकर एक अंग्रेज अफसर मेजर ए.ओ.ह्यूम द्वारा हुई थी। वे अंग्रेजी पढ़ने के लिए जनतंत्रवाद की दुहाई दे रहे थे और भारत के आर्थिक पतन पर क्षोभ प्रकट कर रहे थे। और इच्छा पूर्ण न होने से असंतुष्ट थे।

बालगंगाधर तिलक आदि नेताओं के राजनीति में प्रवेश के साथ ही कांग्रेस एक राष्ट्रीय संगठन के रूप में परिवर्तित हो गई। प्रेमचंद के समय देश की राजनीति में बालगंगाधर तिलक एक "अवतार" थे। "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है" उद्घोषणा सर्वप्रथम तिलक ने ही की थी। 1904 में रूस-जापान युद्ध हुआ। जापान एक छोटा-सा देश था और यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान से अलग था। ऐसी स्थिति में रूस पर जापान की विजय एक अप्रत्याशित बात थी। यह आंदोलन प्रेमचंद के जीवन में शक्ति के उद्‌गम श्रोत के रूप में ही आया, उन्होंने इन्हीं भावनाओं को अभिव्यक्ति देकर भारतवासियों को राष्ट्रीय जागरण की ओर उन्मुख किया। अब तक जाति-भेद विद्वेष के रूप में नहीं फैला था। कांग्रेस राष्ट्रीय एकता के लिए प्रयत्नशील थी, पर ब्रिटिश साम्राज्यवादी इसे नापसंद करते थे।

हिंदू-महासभा की स्थापना का उद्देश्य हिंदू जाति के गौरव की वृद्धि करना था। अंग्रेज मुसलमानों को प्रोत्साहित करते थे। इन दोनों के विरुद्ध भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपनी आवाज उठाई और एक ऐसी राष्ट्रीयता का निर्माण करने का प्रयत्न किया, जिसमें शोषितों का कोई भेद-भाव न हो और सबको समान अधिकार प्राप्त हो। इस बीच श्रीमती एनिबेसेण्ट ने होम-रूल आंदोलन आरंभ किया, जिससे भारतीय जीवन को एक नई गति मिली। महात्मा गाँधी के भारतीय राजनीतिक जीवन में आने से एक नई दिशा मिली। उन्होंने देश की दुर्दशा देखी और अंग्रेजों का विश्वासघात देखा और अहिंसा के आधार पर आंदोलन प्रारंभ करने की घोषणा की। गांधी जी

आंदोलन को गाँवों तक ले गए और ग्रामीण जीवन से भी अपना संपर्क स्थापित करने का प्रयत्न किया। इसका पूरा प्रभाव प्रेमचंद साहित्य पर पड़ा। इसी समय रूसी राज्य क्रांति का प्रभाव भी भारत पर पड़ा। "रंगभूमि" और "प्रेमाश्रम" में यह प्रभाव स्पष्टतया देखा जा सकता है। प्रेमचंद युग पर विचार करते समय यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि एक शासन व्यवस्था को समाप्त कर उसके स्थान पर दूसरी शासन व्यवस्था की स्थापना के पश्चात् ही भिन्न-भिन्न दिशाओं में परिवर्तन, नवीन आर्थिक संगठन आदि इसी शासन व्यवस्था में परिवर्तन के परिणाम थे। पर इस परिवर्तन की पृष्ठभूमि में भारत की स्थिति सुदृढ़ करने अथवा भारत का निर्माण कर एक कल्याणकारी राष्ट्र का रूप प्रदान करने की भावना नहीं, वरन् स्वयं अपनी शासन-व्यवस्था को सुदृढ़ता प्रदान करने एवं अपने निजी स्वार्थों को पूर्ण करने की भावना क्रियाशील थी। इस दृष्टि से शिक्षा-व्यवस्था में सुधार हुए और शिक्षा प्रणाली का पुनर्गठन हुआ।

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में अनेक राजनैतिक घटनाएँ हुईं जिनमें सविनय अवज्ञा-आंदोलन प्रमुख है। इस आन्दोलन के समय में सरकार ने पूँजीपतियों, जमींदारों ईसाईयों तथा मुसलमानों को अपनी ओर मिला लिया, लेकिन महात्मा गांधी जैसे विचारकों ने समन्वयवादी विचारधारा का प्रसार किया। महात्मा गांधी ने अहिंसा के रूप में सत्याग्रहवादी दर्शन का प्रचलन किया, जो राजनैतिक क्रान्ति के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है, क्योंकि इसके माध्यम से ऐसे कार्य सम्पन्न हो गये, जो बड़ी-बड़ी सशस्त्र क्रान्तियों और युद्धों से भी नहीं हुए थे।

सामाजिक पृष्ठभूमि :-

प्रेमचन्द-युग (प्रथम विश्व युद्ध) में ही सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ। इस युग में समाज - क्षेत्रीय अनेक आन्दोलन हुए और इसके द्वारा ही जनता में चेतना उत्पन्न हुई। सामाजिक सुधार के आन्दोलनकारों से सिर्फ समाज में नहीं

और उससे कथाकारों में भी क्रांति की भावना उत्पन्न हुई। इसके अंतर्गत "बालगंगाधर तिलक" जैसे अन्य नेताओं ने इस प्रकार स्पष्ट किया है - "जब तक स्वतंत्रता अथवा राष्ट्रीयता का अभियान या तेज कायम और जाग्रत है, तब तक समाज-रचना में कुछ दोष भी हो, तो राष्ट्र की उन्नति अथवा उत्कर्ष में बाधक नहीं होता। इसलिए विशिष्ट समाज-रचना की अपेक्षा लोगों में अपनी संस्थाओं और अपने देश के प्रति अभिमान जाग्रत रखने की चेष्टा प्रत्येक देशभक्त को करनी चाहिए। इसी को हमने स्वाभिमानी राष्ट्रवाद नाम दिया है।"[1] इस काल में नारी-समाज के आन्दोलनों का संपूर्ण श्रेय इस युग की जागरूक नारियों के लिए एक महत्वपूर्ण वरदान है। इस युग में आर्यसमाज की स्थापना हुई थी। फलस्वरूप लोगों में धार्मिक चेतना जाग्रत हुई, इसके अतिरिक्त शिक्षा-प्रचार ने भी सामाजिक नवजागरण में विशेष योग दिया। उस समय के हिन्दी कथाकारों ने अपनी रचनाओं में उन समस्याओं का समावेश किया, जिनका संबंध समाज की अनेक समस्याओं से है। उदाहरण के लिए प्रेमचन्द, चतुरसेन शास्त्री, राजाराधिकारमण प्रसाद सिंह सुदर्शन, पांडेय बेचन शर्मा "उग्र" तथा डॉ. वृन्दावन लाल वर्मा आदि कथाकारों ने समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं का चित्रण और शोषण की समस्या, छुआछूत की समस्या, नारी-शिक्षा की समस्या तथा दहेज आदि की समस्याओं का चित्रण करते हुए अपने सुधारवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया।

आर्थिक पृष्ठभूमि :-

भारत की आर्थिक स्थिति की दृष्टि से ब्रिटिश अधिकारियों की नीति यहाँ की अधिकाधिक संपदा लूट कर अपने देश में ले जाने की थी। वास्तव में यहाँ के धन-धान्य को देखकर उनके मन में लोभ व्याप्त हो गया था। अंग्रेजों ने यहाँ की ग्रामीण व्यवस्था को पूर्णतया नष्ट कर दिया था। किसानों को लाकर खड़ा कर दिया तथा

---

[1] डॉ. नूरजहां : हिन्दी कहानी में यथार्थवाद, पृ.सं- 101

जमींदारों को मध्यस्थ बना दिया। खेतों के छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटे होने के कारण भाइयों में बंटवारा होता गया और सम्मिलित व्यक्ति की आमदनी कम होती गई। राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों को प्रेमचन्द युग में देख सकते हैं।

प्रेमचन्द युग में देश में औद्योगिक क्षेत्र के अन्तर्गत क्रान्ति लक्षित होती है। वस्तुतः भारतवर्ष सदैव से ही एक कृषि-प्रधान देश रहा है परन्तु औद्योगिक क्षेत्रों में प्रगति इस युग में हुई है। युद्ध के कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का स्वभावतः उतनी सुगमता से न हो सका। भारत देश कृषि-प्रधान देश होने पर भी युद्ध के कारण खाद्यान्न के लिए दूसरे देशों का आश्रय लेना पड़ा। इस युग में लोहा, इस्पात, कोयला आदि से संबंधित उत्पादन कार्य पर विशेष बल दिया गया, क्योंकि इसका सीधा संबंध समकालीन आवश्यकताओं से था। विद्युत शक्ति उत्पादन के कारण उद्योग-धन्धों में तीव्रगति से विकास हुआ था। गांधीवाद की आर्थिक नीति के अनुसार मशीनों के द्वारा उद्योग-धन्धों का जो विकास होता है, वह देश के लिए इसलिए घातक सिद्ध होता है, क्योंकि उसके माध्यम से आर्थिक शक्ति कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित हो जाती है और इससे शोषण की भी वृद्धि होती है। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि शोषक और शोषित वर्गों में संघर्ष होता है और अनेक समस्याएँ सामने आती है। इसके अतिरिक्त कीमती मशीनों का निर्माण विदेशों में होता था और उन्हें मँगने के लिए देश को भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा व्यय करना पड़ता था।

प्रथम विश्वयुद्ध काल में पूँजीपतियों और उद्योगपतियों ने भारी मात्रा में धन संचय कर लिया था और इसीलिए उनका बड़े उद्योगों पर आधिपत्य स्थापित हो गया। उस समय कृषक वर्ग इतना अधिक शोषित हुआ कि वह श्रमिक बन जाने को बाध्य हुआ। ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था इससे छिन्न-भिन्न हो गयी और इससे कृषि कार्य की बहुत बड़ी हानि हुई। प्रेमचन्द ने युग के महत्त्व को समझा और उन्होंने जहाँ एक ओर किसी भी प्रकार के शोषण का विरोध किया, वहाँ दूसरी ओर प्रत्येक-क्षेत्र में

स्वावलम्बन पर बल दिया। मद्य-निषेध तथा सहकारिता आदि से संबंधित राष्ट्रीय नीति का समर्थन अनेक कहानीकारों ने किया है। प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, सुदर्शन तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" जैसे कथाकारों ने आर्थिक विषमता के दुष्परिणामों का चित्रण करते हुए अपनी रचनाओं के द्वारा आर्थिक समानता पर बल दिया।

## प्रेमचन्द युगीन कथा-साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ : यथार्थबोध

### सामाजिक कथा-साहित्य: यथार्थबोध:

प्रेमचन्दयुगीन कथा साहित्य की सर्वप्रथम प्रवृत्ति सामाजिक कहानियों से संबंधित है। इस प्रवृत्ति में यथार्थवाद का समावेश सबसे अधिक मिलता है। इस प्रवृत्ति के सबसे प्रमुख लेखक मुंशी प्रेमचन्द हैं। प्रेमचन्द ने अपनी सामाजिक कहानियों में भारतीय समाज का समग्र रूपात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है। भारतीय सामाजिक जीवन का कोई भी पहलू ऐसा नहीं है जो उनकी कहानियों में अभिव्यंजित न हुआ हो। इसमें ग्रामीण और नागरिक, शोषक और शोषित, कृषक और श्रमिक, आस्तिक और नास्तिक, शिक्षित और अशिक्षित, पूँजीपति और जमींदार, धार्मिक और राजनैतिक, विद्यार्थी और अध्यापक, रोगी और चिकित्सक, अछूत और सवर्ण आदि वर्गों के जीवन का प्रेमचन्द ने विशाद चित्रण किया है।

प्रेमचन्द के अतिरिक्त इस युग के अन्य कहानीकारों ने भी यथार्थ के अनेक रूपों का चित्रण अपनी सामाजिक कहानियों में किया है। जयशंकर प्रसाद ने अपनी सामाजिक कहानियों में नारी-जीवन की विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया है। उन्होंने "गुन्डा", "नीरा" तथा "ग्रामगीत" आदि कहानियों में समकालीन जीवन के बारे में स्पष्ट किया था। विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" ने भी समाज का बहुपक्षीय चित्रण अपनी अनेक कहानियों में प्रस्तुत किया। सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला" ने "दो दाने", "श्रीमती गजानंद शास्त्रीणी", चतुरी चमर तथा "ज्योतिर्मयी" आदि कहानियों

में सामाजिक जीवन के करूण स्वरूप का चित्रण किया है। भगवतीप्रसाद बाजपेयी ने भी मध्यवर्गीय समाज के विभिन्न चित्रों के आधार पर सामाजिक कहानियों की रचना की। सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों के यथार्थ चित्रण की दृष्टि से इस युग में विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" ने "प्रतिमा" तथा "ताई" जैसी कहानियों में पारिवारिक जीवन के यथार्थ स्वरूप का प्रभावशाली चित्रण किया है। "सुदर्शन" ने समाज-सुधार की दृष्टि से "हार की जीत", "मास्टर", "हेर-फेर" तथा "सन्यासी" आदि कहानियों में पात्रों का हृदय-परिवर्तन मार्मिक रूप में दिखाया है। "राखीबंध भाई", "एक वीर राजपूत" तथा "शरणागत" आदि कहानियों में डॉ.वृन्दावन लाल वर्मा ने यथार्थ का चित्रण किया है। जयशंकर प्रसाद ने "कलावती की शिक्षा" तथा "स्वर्ग के खंडहर में" आदि कहानियों में सामाजिक जीवन का चित्रांकन किया है। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की कहानी "गाँधी टोपी", "मरीचिका", "तितली" तथा "दरिद्रनारायण" पर तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों की स्पष्ट छाप है।

**ऐतिहासिक कथा-साहित्य : यथार्थबोध** :-

प्रेमचंद युगीन कथासाहित्य की दूसरी उल्लेखनीय प्रवृत्ति ऐतिहासिक कहानियों से संबंधित है। इस युग के अनेक कहानीकारों ने भारतीय इतिहास से संबंधित अनेक रचनाएँ की। इस युग में "मुशी प्रेमचंद ने "राजा हरदौल", "रानी सारंधा", "परीक्षा", "क्षमा", "मर्यादा की वेदी", "जुगन् की चमक" तथा "वज्रपात" जैसी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। राजपूत कालीन इतिहस से संबंधित ये कहानियाँ कल्पनात्मकता तथा यथार्थता दोनों ही दृष्टियों से उल्लेखनीय है। ऐतिहासिक प्रवृत्ति के अंतर्गत इस युग के अन्य कहानीकारों में दूसरा उल्लेखनीय नाम जयशंकर "प्रसाद" का है जिन्होंने "तानसेन", "जहाँआरा", "ममता", "पुरस्कार", "सिकंदर की शपथ", "चित्तौर उद्धार", "देवरथ", "आकाश दीप" आदि यथार्थ परक कहानियाँ

लिखी हैं। "प्रसाद" के बाद आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने भी "बाहर भीतर", "सोया हुआ शहर", "राजकण", "दुखवा मैं कासे कहूँ", "अक्षत", "धरती और आसमान", "कहानी खत्म हो गई", "सिंहगढ़ विजय", "नूरजहाँ का कौशल" आदि ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी हैं। इस प्रकार प्रेमचंद युग में लिखी गयी ऐतिहासिक कहानियों को यथार्थता और विश्वसनीयता की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

**धार्मिक व पौराणिक कथा-साहित्य : यथार्थबोध** :-

प्रेमचंद युग में धार्मिक कथासाहित्य की प्रवृत्ति का विकास उस रूप में नहीं मिलता, जिस रूप में पूर्व प्रेमचंद में उपलब्ध होता है। प्रेमचंद मिथ्या आडंबर पर आधारित धर्म को नहीं मानते थे। धार्मिक प्रवृत्ति से संबंधित प्रेमचंद की मुख्य रचनाएँ इस प्रकार हैं-"मंदिर", "सद्‌गति", "आगापीछा", "दूध का दाम", "जुर्माना" तथा "मंत्र" आदि कहानियों के द्वारा अछूतों के मंदिर-प्रवेश से संबंधित समस्याओं का विवेचन किया है। इनमें से कुछ कहानियाँ अत्यंत धार्मिक हैं। उदाहरण के लिए "मंदिर" में एक ऐसी चमार स्त्री की कथा है जो अपने इकलौते बेटे की प्राण-रक्षा के लिए ठाकुर जी की पूजा करने की इच्छा से अपने सारे गहनों को बेच कर पूजन सामग्री एकत्र करती है। लेकिन वह भगवान की पूजा करने मंदिर पहुँचती है। तब पूजारी उसे अछूत जानकर ऐसी ठोकर लगाता है कि उसके आघात से गिर कर बच्चे की तत्काल मृत्यु हो जाती है। "दूध का दाम" शीर्षक कहानी में भी अछूत समस्या का ही चित्रण किया गया है। "दिल्ली की रानी" जैसी कहानियों में प्रेमचंद ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में धर्म के विस्तार की समस्या पर विचार किया है। उन्होंने अपनी कहानियों में धार्मिक कथावस्तु को केंद्र बिंदु बनाकर समकालीन धार्मिक जीवन के यथार्थ स्वरूप को उद्‌घाटित किया है। धर्म के विकृत रूप को खण्डित करते हुए उन्होंने सेवा और प्रेम को ही सच्चा धर्म बताया है।

प्रेमचंद के अतिरिक्त अन्य कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में धार्मिक कथावस्तु के आधार पर समाज की वास्तविक स्थिति का चित्रण किया। सामाजिक जीवन के उन पक्षों का चित्रण इस काल के कहानीकारों ने विशेष रूप से किया, जिनका संबंध परंपरागत समस्याओं से था। बहुविवाह का विरोध, छूआछूत का विरोध, मूर्ति पूजा का विरोध, विधवा विवाह का समर्थन, स्त्री-शिक्षा का समर्थन आदि विषय इसी प्रकार के हैं। चतुरसेन शास्त्री ने भी "उग्र" की भाँति धर्म के उस स्वरूप का चित्रण अपनी कहानियों में किया है जो मानवतावादी दृष्टिकोण पर बल देता है। डॉ.वृंदावनलाल वर्मा ने "राखीबंध भाई" तथा "शरणागत" जैसी कहानियों में धार्मिक संकीर्णता का विरोध किया है। भगवतीप्रसाद वाजपेयी तथा गोविंदवल्लभ पंत आदि कहानीकारों ने भी धार्मिक आडंबर तथा अंधविश्वासों का विरोध किया है। संक्षेप में इस युग से यह पता चलता है कि धर्म के रूढ़िवादी रूप का विरोध करके मानवता और सेवा धर्म के अनुसार ही जीवन बिताना चाहिए।

**मनोवैज्ञानिक कथा-साहित्य :यथार्थबोध** :-

मनोवैज्ञानिक कथा-साहित्य की प्रवृत्ति इस युग में ही आंरभ हुई थी। पूर्व प्रेमचंदयुगीन कहानी में मनोवैज्ञानिकता का विकास इतना नहीं हुआ था लेकिन प्रेमचंद युग में ही उसका स्वरूप विकसित हुआ। आधुनिक युग में यूरोप में मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का साहित्य पर व्यापक प्रभाव पड़ा। उदाहरण के लिए फ्रायड आदि मनोवैज्ञानिकों ने मानव मन का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए अनेक नवीन सिद्धांत निर्देशित किए। उन्होंने मनुष्य के नेतन, अर्धचेतन और अचेतन मन का विश्लेषण करते हुए यह बताया कि मनुष्य की जो इच्छाएँ किसी कारण से पूरी न होने पर वे परिस्थितियों के प्रभाव से अनेक प्रकार की कुंठाओं में परिवर्तित हो जाती है और विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगों को जन्म देती है। प्रेमचंद युग से मनोवैज्ञानिक तत्वों का समावेश कहानी में हुआ है। प्रेमचंद युगीन कहानी की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के

विकास में योग देनेवाले अन्य कहानीकारों में जयशंकर प्रसाद का नाम भी उल्लेखनीय है। उनकी "आकाशदीप" कहानी बंदी नायक नायिका भी मुक्ति और अंतर्द्वन्द्व की रोमांचक गाथा है। "गुंडा" शीर्षक कहानी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में ननकू सिंह के आत्मबलिदान की वह कथा है, जो देश-प्रेम की भावना से अनुप्राणित होकर अपनी आन पर मर मिटता है। "मधुआ" में भी मनोवैज्ञानिक तत्त्व प्रधान एक क्षुधित बालक की मार्मिक कथा है। पांडेय बेचन शर्मा "उग्र" की लिखी हुई मनोवैज्ञानिक कहानियाँ इस प्रकार हैं-"जब सारा आलम सोता है", "जल्लाद", "पोली इमारत", "कला का पुरस्कार", "गंगा गंगदत्त और गांगी", "जुआरी" तथा "विधवा" आदि प्रमुख हैं। इन सभी कहानियों में सामाजिक जीवन की विरूपताओं का चित्रण करने के साथ ही लेखक ने समाज में व्याप्त विभिन्न कुरूतियों को चित्रित करते हुए विभिन्न वर्ग के पात्रों की मनोवृत्ति का प्रभावशाली चित्रण किया है। चतुरसेन शास्त्री की लिखी हुई "दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी", "ककड़ी की कीमत", "सोया हुआ शहर" तथा "बाहर भीतर" आदि उनकी प्रतिनिधि मनोवैज्ञानिक कहानियाँ हैं। मनोवैज्ञानिक यथार्थ की दृष्टि से भगवतीप्रसाद वाजपेयी की लिखी हुई प्रमुख कहानियों में "खाली बोतल", "स्वप्नमयी", "निदिया लागी", "आत्मघात", "हारजीत", "अंधेरीरात" आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार से प्रेमचंद युग में मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति के विकास में योग देनेवाले कहानीकारों ने मुख्य रूप के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से हिंदी कहानी में एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

**आदर्शोन्मुख कथा-साहित्य और यथार्थबोध** :-

प्रेमचंदयुगीन कहानी में यथार्थवाद के जो रूप उपलब्ध होते हैं उनमें से एक आदर्शोन्मुख यथार्थवाद भी है। यथार्थवाद के इस रूप का आविर्भाव यद्यपि पूर्व युग में ही हो चुका था परंतु इसका समुचित विकास प्रेमचंद युग में ही हुआ था। सैद्धांतिक दृष्टिकोण से आदर्शवाद एक ऐसी विचारधारा है जिसका आरोपण साहित्य के विभिन्न

अंगों के क्षेत्र में अधिक्ता से मिलता है। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का व्यावहारिक स्वरूप प्रेमचंद की अनेक रचनाओं में उपलब्ध होता है। उदाहरण के लिए "मुक्तिमार्ग" शीर्षक कहानी में दो पात्रों का पारस्परिक वैमनस्य जब अतिशय रूप से बढ़ जाता है तब उसके निदान स्वरूप वह आदर्शवादी अंत चित्रित करते हैं। प्रेमचंद युगीन हिंदी कहानी में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का प्रभावशाली रूप "सुदर्शन" की कहानियों में "हार की जीत" जैसी रचनाओं में विशुद्ध यथार्थवादी पृष्ठभूमि में आदर्श की प्रतिष्ठा की है। इस युग में जयशंकर प्रसाद का नाम भी उल्लेखनीय है। जैसे "आकाशदीप", "पुरस्कार", "समुद्र संरतणा", "रूप की छाया", "आँधी तथा इंद्रजाल" आदि कहानियों में प्रसाद के आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने भी अपनी अनेक कहानियों में आदर्शोन्मुख यथार्थवादी तत्वों का समावेश किया है। पांडेय बेचन शर्मा "उग्र" ने "गंगा, गंगदत्त और गांगी", "कला का पुरस्कार", "करुण कहानी", "स्वदेश के लिए" तथा "खुदाराम" आदि कहानियों में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के बारे में स्पष्ट किया है। उषादेवी मित्रा लिखित "चातक", श्रीमती कमलादेवी चौधरी लिखित "उन्माद", यमुनादत्त वैष्णव लिखित "दो रेखाएँ", सूर्यकांत त्रिपाठी निराला लिखित "सूर्य भगवान" आदि है। राजा राधिकारमण लिखित "दरिद्र नारायण", रामकृष्णदास लिखित "नरराक्षस" आदि कहानियों में भी आदर्शोन्मुख यथार्थवादी तत्व मिलते हैं। इनके अतिरिक्त इस युग के अन्य कहानीकारों में श्रीमती उषादेवी मित्रा भी उल्लेखनीय हैं।

1. **प्रेमचंदोत्तर युग** :-

इस काल का आरंभ प्रेमचंद युग की समाप्ति से होकर स्वतंत्रता प्राप्ति से इसका अंत होता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह कालखंड भी हमारे देश के इतिहास में विशेष महत्व रखता है। द्वितीय विश्वयुद्ध इस युग की सबसे प्रमुख घटना है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए किए गए अनेक आंदोलनों के साथ ही इस काल में बंगाल का दुर्भिक्ष भी पड़ा। इस काल में हिंदी कथा-साहित्य के क्षेत्र में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्तियों का विकास हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणामस्वरूप उत्पन्न समस्याओं से देश में सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनैतिक चेतना उत्पन्न हुई। स्वतंत्रता के लिए क्रांति तथा सामाजिक जीवन में नवीन परिवर्तन इस युग की कहानियों में परिलक्षित होते हैं। इस रूप में प्रेमचंदोत्तर युग की कहानी विषय वैविध्य की दृष्टि से विस्तारयुक्त है। इस युग के कहानीकारों ने जहाँ एक ओर प्रेमचंदयुगीन आदर्शवादी परंपरा का अनुमोदन किया है, वहाँ दूसरी ओर अनेक लेखकों ने सामाजिक यथार्थ के कटु रूपों का चित्रण भी किया।

साहित्य के क्षेत्र में इस युग में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद आदि आंदोलनों का आविर्भाव हुआ। राष्ट्रीय चेतना प्रधान काव्य की प्रवृत्ति के समानांतर ही प्रेमचंदोत्तर युग में छायावादी कवि भी क्रियाशील रहे। इस काल के कहानीकारों में इलाचंद्र जोशी, हेमवती देवी, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, जैनेंद्रकुमार, रामवृक्ष बेनीपुरी, उपेंद्रनाथ अश्क, अज्ञेय, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, गोविंद वल्लभ पंत, महादेवी वर्मा, चंडीप्रसाद हृदयेश आदि उल्लेखनीय हैं। इस समय के कहानीकारों ने वैचारिकता एवं कलात्मकता को अपनी कहानियों में प्रस्तुत करते हुए भी यथार्थ को महत्व दिया। प्रेमचंदोत्तर हिंदी कथा-साहित्य के क्षेत्र में पूर्व युग की सभी प्रवृत्तियाँ विकासशील मिलती हैं। इस काल में भी सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति मुख्य रूप से विकसित हुई। यथार्थवाद के प्रमुख रूप इस काल में भी उपलब्ध होते हैं।

इस युग में समाज के कुछ वर्गों में अब भी अंधविश्वास, अशिक्षा, अज्ञान और आडंबरप्रियता बनी रही। नारी समाज में आधुनिक जीवन के प्रति स्वीकृति की भावना जन्मी। उसमें धीरे-धीरे पर्दे की प्रथा समाप्त हुई और वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ी। औद्योगिक क्रांति और पूँजीवादी

व्यवस्था के फलस्वरूप श्रमिक वर्ग का शोषण इस युग में होता रहा। नेताजी द्वारा आज़ाद हिंद फौज का संगठन भी इसी दिशा में किया गया।

इस युग के उपन्यासकारों ने विषय-योजना के लिए व्यापक फलक चुना। इन्होंने खुलकर शहरी जीवन में फैले भ्रष्टाचार, पुलिस की धांधलियाँ, महाजनों के रक्त शोषण के तरीके, मिल-मालिकों की स्वार्थपरक दुरंगी नीति, वासना तृप्ति के लिए सेठों के हथकण्डे, पूर्व रूप से स्वतंत्र नर-नारी के परस्पर संबंध, समाज में व्याप्त दुःख दयनीयता, घुटन, बेबसी, अत्याचार, अनाचार, पाशविकता, बीभत्सता आदि का वर्णन इस युग में किये थे।

इस परंपरा के प्रमुख लेखक हैं भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, अश्क, राजेंद्रयादव, अमृतराय, अमृतलाल नागर आदि। गुलाबराय जी ने इन यथार्थवादी तत्वों पर विचार करते हुए निष्कर्ष रूप में इस प्रकार लिखा है-"उपन्यास साहित्य के वर्तमान विकास ने इन तत्वों की परंपरा बहुत अंश में निरर्थक सी कर दी है। अब न तो कथानक में व्यवस्था और श्रृंखला का पहले सा मान रहा है और न चरित्र-चित्रण में संगीत और संबद्धता का आग्रह है। मनुष्य मनोदशाओं का समूह-सा दिखाई देता है और अवचेतन का द्वार खुल जाने से मानसिक जीवन और भी संकुल हो गया है। वह व्यवस्था में अव्यवस्था उत्पन्न कर देता है। यह विधान नितांत नियमहीन तो नहीं है, किंतु एक गतिशील वस्तु को नियमों में बाँधना कठिन है। पिछले नियमों और तत्वों में बहुत कुछ सार है। विद्यार्थियों को उनका जानना आवश्यक है किंतु उन सबको पत्थर की लकीर समझ लेना या उनके आँशिक अभाव के कारण किसी कथाकृति के निन्द्य ठहरा देना कलाकार के साथ अन्याय ही होगा। नये कलाकारों को सहृदयता-पूर्वक समझने की आवश्यकता है।"[1]

स्वाधीनता पूर्व से शुरु करनेवाले जैनेंद्र, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा आदि ने स्वाधीनता के बाद बहुत लिखा है और उनकी अनेक

---

[1] डॉ.रामशोभित प्रसाद सिंह-हिंदी उपन्यास:प्रेमचंदोत्तर काल से उद्धृत-पृ.सं.35

अधिक महत्वपूर्ण कृतियाँ इसी काल में आयी हैं। इन कृतियों में स्वाधीनता के बाद उभरनेवाले लेखकों के उपन्यासों का सा नयापन नहीं है फिर भी ये उपन्यास बहुत महत्वपूर्ण है। इन उपन्यासों को स्वाधीनता-परवर्ती उपन्यासों से अलग भी नहीं कर सकते और उनकी प्रवृत्ति के साथ एकदम जोड़ भी नहीं सकते।

प्रेमचंद के अवसान और स्वाधीनता प्राप्ति के बीच के आठ-दस वर्षों में नयी प्रवृत्तियाँ शुरु अवश्य हुई किंतु उनका विकास स्वतंत्रता परवर्ती काल में ही हुआ। कहा जा चुका है कि प्रेमचंद के समय में या उनके ठीक बाद में जिन लेखकों ने लिखना शुरु किया था उनका बहुत महत्वपूर्ण लेखन स्वाधीनता परवर्ती काल में हुआ। स्वाधीनता के बाद आंचलिक उपन्यास की एक नयी दशा का आविर्भाव हुआ था। स्वाधीनता परवर्ती उपन्यासों में आधुनिकतावाद का भी विकास हुआ था। आधुनिकता का अर्थ शहरी और ग्रामीण जीवन का फर्क स्पष्ट करना था। इनका परिवेश इन उपन्यासों में उल्लेख्य हैं-"मछली मरी हुई", "एक अनार एक बीमार" (राजकमल), "एक पति के नोट्स" (महेन्द्र भल्ला) "दूसरी बार" (श्रीकांत वर्मा), "यात्राएँ" (गिरिराज किशोर), "न आनेवाला कल" (मोहन राकेश), "सूरजमुखी अंधेरी के" (कृष्णा सोबती), "सफेद मेमने" (मणि मधुकर), "मन्त्रविद्ध" (राजेद्र यादव) "सोया हुआ जल" (सर्वेश्वरदयाल सक्सेना)।

**राजनैतिक पृष्ठभूमि** :-

प्रेमचंदोत्तर युग की राजनीतिक परिस्थितियाँ देश के लिए विशेष महत्त्व रखती हैं। सन् 1935 का भारतीय विधान तथा सन् 1940 का अगस्त प्रस्ताव, सन् 1942 में क्रिप्स कूटनीति मिशन तथा सन् 1945 का कैबिनेट मिशन आदि के रूप में ब्रिटिश कूट नीति जारी रही। प्रथम विश्व युद्ध में अंग्रेज़ों ने अपनी कुटिल नीति से भारत को भी सम्मिलित कर लिया था, जिसमें उन्हें पूर्व सफलता भी मिली थी। लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध तक भारत स्वयं जागरूक हो गया था। इस युग में ही

भारत और पाकिस्तान के विभाजन की समस्या उत्पन्न हुई थी। इसका कारण अल्पसंख्यकों की स्वतंत्रता बताया गया परंतु वास्तव में संपूर्ण भारत में ही मुस्लिम बसे थे जो अल्पसंख्यक थे। इस युग की कहानियों की प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें महत्वपूर्ण राजनैतिक समस्या के साथ ही साहित्यकारों ने समाज-सुधार विषयक आंदोलनों का भी चित्रण किया है। सामाजिक प्रश्नों, विशेष रूप से नारी समस्या, अछूत समस्या, साम्प्रदायिक समस्या तथा राष्ट्रीय समस्याओं आदि पर विस्तार से विचार हुआ है। यह युग साम्राज्यवादी शासन व राष्ट्रीय आंदोलन के संघर्ष का युग है। जमींदारों व किसानों का संघर्ष, पूंजीपति एवं मज़दूर वर्ग का संघर्ष आदि भी होता रहा।

भारत 190 वर्ष (1757-1947) तक परतंत्र रहा। इस काल में धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक, बौद्धिक, वैज्ञानिक, आर्थिक क्षेत्रों में असाधारण जागरण और उन्नति हुई। राजनैतिक क्षेत्र में दादाभाई नौरोजी, गोपाल कृष्ण गोखले, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गाँधी और जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अंग्रेज़ों से संघर्ष करके भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त की।

इस युग में राजनैतिक जीवन के अंतर्गत सर्वाधिक क्रियाशीलता मिलती है। राजनीतिक और राष्ट्रीय चेतना का जागरण जिस रूप में इस काल में हुआ, उसका यथार्थ चित्रण इस युग में लिखित और प्रकाशित औपन्यासिक कृतियों में मिलता है जिसमें यशपाल का अपना विशेष स्थान है। वह हिंदी में एक विशिष्ट राजनीतिक विचारधारा अर्थात् मार्क्सवादी दृष्टिकोण को उपस्थित किये थे।

**सामाजिक पृष्ठभूमि** :-

सामाजिक परिवर्तनशीलता की दृष्टि से प्रेमचंदोत्तर युग को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था। इस समय समाज में संयुक्त परिवार, सामाजिक संगठन आदि मूल रूप से सामाजिक मान्यताओं पर ही आधारित थे। उन्नीसवीं शताब्दी से इस व्यवस्था

में परिवर्तन आरंभ हो गया था। इस युग में अछूत प्रथा तथा नारी समस्याओं को दूर करने के लिए विशेष प्रयत्न हुए थे। सामाजिक संगठन के परिवर्तन के लिए आर्थिक परिवर्तन होना आवश्यक था। प्राचीन भारत में चार वर्ण थे लेकिन अनेक कारणों से पंचम वर्ण अछूतों का हो गया। इस कारण के द्वारा अछूतों को सामाजिक अधिकारों से वंचित रखा गया।

मोटे-तौर पर उपन्यासों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। 1.सामाजिक 2. व्यक्तिवादी 3. ऐतिहासिक 1 प्रत्येक युग के समाज के जीवन को परिचालित करनेवाली कुछ समस्याओं पर सामाजिकता का रंग देना स्वाभाविक है। हर देश के कथा-साहित्य में सामाजिक उपन्यासों की ही संख्या अधिक है। प्रेमचंद, कौशिक, निराला, गोविंदवल्लभ पंत, भगवती प्रसाद वाजपेयी, प्रतापनारायण श्रीवास्तव इत्यादि के उपन्यास सामाजिक हैं। उपन्यास व्यक्ति-मूलक साहित्य है, लेकिन लेखक समाज में हाँ में हाँ मिलानेवाला निष्क्रिय पदार्थ नहीं होता। उसका अपना व्यक्तित्व होता है। हिंदी में सामाजिक उपन्यास के क्षेत्र में "परीक्षा गुरु" पहला उपन्यास माना जाता है। इस उपन्यास के माध्यम से समाज में होनेवाले विविध परिवर्तनों को चित्रित किया गया है। हिंदी-साहित्य के प्रकाश-स्तम्भ भारतेंदु हरिश्चंद्र है। उन्होंने मराठी उपन्यास "पूर्णप्रभा-चंद्रप्रकाश" का अनुवाद कराकर सामाजिक उपन्यास की ओर लेखकों का ध्यान आकृष्ट कराने की चेष्टा की। इस काल में प्रेमचंद सामाजिक यथार्थ की ओर अधिक उन्मुख हो गए। सामाजिक प्रेरणा से "गोदान" की रचना की गयी है। प्रेमचंद के बाद अनेक उपन्यासकारों ने सामाजिक जीवन के यथार्थ को लक्ष्य बनाकर चले हैं। ऐसे उपन्यासकारों में सियाराम शरण गुप्त, राँगेय राघव, उपेन्द्रनाथ "अश्क" आदि मुख्य हैं। ये उपन्यासकार प्रेमचंद के समान व्यक्ति को सामाजिक जीवन के परिवेश में रखकर चलते हैं। सामाजिक जीवन व्यक्ति के व्यक्तित्व को बनाता बिगाड़ता है और प्रभावित करता है। राहुल जी के सामाजिक उपन्यासों में "बाईसवीं सदी", "जीने के लिए", "भागो नहीं, दुनिया को

बदलो" तथा "राजस्थानी रानिवास" का नाम ले सकते हैं। इन उपन्यासों में राहुल जी ने राजनीति प्रधान सामाजिक उपन्यास की व्याख्यान करने का प्रयास किया है। सामाजिक उपन्यासों में समाज की अनेक समस्याओं को उठाया गया है और उन समाधानों की ओर भी संकेत किया गया है। अनमेल-विवाह, बहु-विवाह, वैधव्य, पर्दा, जाति-पाँति, अंध-विश्वास, अछूतोद्धार, तलाक, किसानों के शोषण, चुनाव के दृश्य एवं नारी आदि की समस्याएँ इन उपन्यासों में देखने को मिलती है। प्रेमचंद ने सर्वप्रथम नारी की समस्याओं को लेकर रचना करने लगे। प्रेमचंदोत्तर काल में फ्रायड, युग, एडलर आदि मनोविश्लेषणवादियों के प्रभाव के कारण नारी मन की मनोवैज्ञानिक ग्रन्थियाँ मुख्य समस्या बन गयी। नारी के वैयक्तिक और आर्थिक स्वतंत्रता को जितना सबल समर्थन इस युग के उपन्यासों में लिखा है, उतना पूर्ववर्ती उपन्यासों में नहीं मिलता। प्रेमचंदोत्तर सामाजिक उपन्यासों के पात्र भी कुछ इसी प्रकार के हैं। इसी प्रकार सामाजिक उपन्यासकारों के चरित्र निरूपण में उनकी विभिन्न परिस्थितियों तथा विविध जीवनानुभूतियों के परिणामस्वरूप इस युग में परिलक्षित होता है।

**आर्थिक पृष्ठभूमि** :-

द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण प्रेमचंदोत्तर युग में उत्पादन-शक्ति कम हो गयी थी। इसके फलस्वरूप कृषकों की दयनीय दशा हो गई और वे महाजन वर्ग पर मूलतः निर्भर रहने लगे। इसी कारण कृषक मजदूर बने और महाजन स्वामी बने। दूसरी ओर जमींदार भी जनता के प्रति अत्याचार करते थे। इसके फलस्वरूप उत्पादन शक्ति कम होने के कारण भारत खाद्यान्न के लिए विदेशों पर निर्भर रहने लगा। सन् 1943 में बंगाल में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। द्वितीय विश्व महायुद्ध में बर्मा पर जापान का आधिपत्य होने से चावल का आयात भारत में बन्द हो गया था। इस कारण भारत में पचास लाख व्यक्तियों की मृत्यु हो चुकी थी। सन् 1943 का अकाल

भी अंग्रेजी सरकार की आर्थिक नीति का ही परिणाम था। राष्ट्रीय सरकार ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जमींदार का अन्त कर दिया था और किसानों की हीन दशा में सुधार भी आयी थी। इस युग में उद्योग-धन्धों के क्षेत्र में पूँजीपति नीति की प्रधानता होने के कारण श्रामिकों का शोषण होता रहा और मध्य वर्ग के सामने बेरोजगारी की समस्या बनी रही। इस युग के प्रमुख कहानीकारों ने इस शोचनीय आर्थिक स्थिति के कारण उत्पन्न होनेवाली समस्याओं का अपनी रचनाओं में विस्तार से विश्लेषण किया है।

**साहित्यिक पृष्ठभूमि:-**

प्रेमचन्दोत्तर काल में हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अधिक जागरूकता आयी थीं। यदि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो यह युग राष्ट्रीय जागरण का समय था। इसी काल में द्वितीय विश्व युद्ध तथा बंगाल का दुर्भिक्ष आदि घटनाएँ भी हुई थीं जिन्होंने साहित्यिक रचना के स्वरूप को प्रभावित किया था। मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, गयाप्रसाद शुक्ल "सनेही", गोपालसिंह नेपाली, सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला" आदि कवियों ने हिन्दी काव्य के क्षेत्र में राष्ट्रीय चेतना का आह्वान किये थे और इसके साथ-साथ देश की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक परिस्थितियों का चित्रण करते हुए अनंक क्रांतिकारी भावना प्रधान रचनाएं की हैं।

प्रेमचन्दोत्तर युग में छायावाद का भी आविर्भाव हुआ था। इसके अंतर्गत जयशंकर "प्रसाद", "सूर्यकांत त्रिपाठी निराला", "सुमित्रानंदन पन्त" तथा महादेवी वर्मा ने प्रेम भावना, प्रकृति चित्रण, अध्यात्मपरक और यथार्थ के रूप में काव्य की सृष्टि की। लगभग उसी काल में प्रगतिवादी विचारधारा का आविर्भाव और विकास भी हुआ था। इस युग के अंतर्गत सुमित्रानंदन पन्त ने स्वयं "यथार्थ" की माँग पर बल दिया है। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि "इस युग की वास्तविकता ने जैसा

उग्र आकार ग्रहण कर लिया है, उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं। श्रद्धा आकाश में पलने वाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा और काव्य की स्वप्न जड़ित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गयी हैं। अतएव इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती । उसकी जड़ों को अपनी पोषण सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है। ........"[1]

प्रगतिशील विचारों में सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला", भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, डॉ. रांगेय राघव, डॉ. शिवमंगल सिंह "सुमन", रामधरीसिंह "दिनकर",रामेश्वर शुक्ल "अंचल" तथा डॉ. महेन्द्र भटनागर आदि का सहयोग प्राप्त हुआ। इन कवियों ने समकालीन सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक संबंधी विषयों पर साहित्यिक रचना करके उनमें जन-भावना का चित्रण किया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय प्रथम काव्य संग्रह के विचारधारा के अंतर्गत "तार सप्तक" में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन "अज्ञेय", गिरिजाकुमार माथुर, डॉ. रामविलास शर्मा, नेमिचन्द्र जैन, गजानन्द माधव मुक्तिबोध, डॉ. प्रभाकर माचवे तथा भारत भूषण अग्रवाल आदि कवियों की रचनाएँ संग्रहीत हैं। प्रेमचन्दोत्तरयुगीन अन्य काव्य प्रवृत्तियों में बालकृष्ण शर्मा "नवीन", जानकी वल्लभ शास्त्री, डॉ. शम्भूनाथ सिंह, डॉ.रामेश्वरलाल खण्डेलवाल "तरूण", डॉ.नामवर सिंह, डॉ. जगदीश गुप्त तथा डॉ. रामसिंह आदि के नाम उल्लिखित किए जा सकते हैं। साहित्य के क्षेत्र में उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी तथा निबंध आदि का विकास प्रेमचन्दोत्तर काल में ही हुआ था। उषा देवी मित्रा, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, इलाचन्द जोशी, जैनेन्द्र कुमार तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन "अज्ञेय" आदि ने ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, राजनैतिक, सामाजिक, पौराणिक और धार्मिक विषयों पर उपन्यास तथा कहानियों की रचना की। निबंध साहित्य के क्षेत्र में डॉ.हजारीप्रसाद द्विवेदी,

---

1 डॉ. नूरजहाँ, हिन्दी कहानी में यथार्थवाद, पृ.सं. 162

डॉ.रामविलास शर्मा, डॉ.विनयमोहन शर्मा, डॉ.रामकुमार वर्मा, डॉ.भगवत शरण उपाध्याय, आदि ने रचनात्मक क्रियाशीलता का परिचय दिया है। समीक्षा के क्षेत्र में आधुनिकता का परिचय मिलता है और नाटक एवं एकांकी के क्षेत्र में "हरिकृष्ण प्रेमी", गोविन्दवल्लभ पन्त, उपेन्द्रनाथ "अश्क", जगदीशचन्द्र माथुर, सेठ गोविन्ददास, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट आदि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। वस्तुतः गद्य और पद्य साहित्य का विकास प्रेमचन्दोत्तर काल में ही हुआ था।

**प्रेमचन्दोत्तर युगीन कथा-साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ: यथार्थबोध:-**

प्रेमचन्दोत्तर युगीन हिन्दी कहानी के क्षेत्र में पूर्व युग की सभी प्रवृत्तियाँ विकासशील मिलती हैं। इस काल में सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति मुख्य रूप से विकसित हुई। इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, जैनेन्द्र कुमार, उपेन्द्रनाथ "अश्क" तथा सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन "अज्ञेय" ने विभिन्न सामाजिक समस्याओं का यथार्थपरक चित्रण किया। इसी तरह ऐतिहासिक कहानी की प्रवृत्ति के अंतर्गत जैनेन्द्र कुमार, भगवतीचरण वर्मा तथा यशपाल के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने मुगल और ब्रिटिशकालीन इतिहास से सम्बन्धित कहानियाँ लिखीं। मन्मथनाथ गुप्त, जैनेन्द्रकुमार - यशपाल ने विशेष रूप से धर्म के आडम्बरों का खण्डन किया। राजनैतिक कहानियों के अंतर्गत यशपाल, जैनेन्द्र कुमार, मन्मथनाथ गुप्त, उपेन्द्रनाथ "अश्क" तथा "अज्ञेय" आदि कहानीकारों के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने राष्ट्रीय और क्रांतिकारी भावना प्रधान कहानियों की रचना की। मनोवैज्ञानिक कहानी क्षेत्र के अंतर्गत इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र कुमार, यशपाल, वाचस्पति, पाठक भगवतीचरण वर्मा, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार तथा "अज्ञेय" आदि की कहानियों में प्रेमचन्दोत्तर युग की प्रमुख कहानी प्रवृत्तियों के संदर्भ में "यथार्थवाद" का ही विवेचन है।

**सामाजिक कथा-साहित्य: यथार्थबोध:-**

प्रेमचन्दोत्तर काल में ही सामाजिक कथा साहित्य प्रवृत्ति मुख्य रूप से विकसिक हुई। इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, जैनेन्द्र कुमार, उपेन्द्रनाथ "अश्क" तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन "अज्ञेय" ने सामाजिक जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित कहानी की रचना की। जैनेन्द्र कुमार ने "अपना पराया", "सजा", "अपना अपना भाग्य", "पायजेब", "वह चेहरा" तथा "एक गऊ" आदि कहानियों में सामाजिक जीवन की विडम्बनाओं का चित्रण किया है। आधुनिक समाज में रूढ़िवादिता की समस्या, अन्तर्जातीय विवाह की समस्या, बेरोजगारी की समस्या, भिक्षावृत्ति की समस्या, मध्यवर्गीय आडम्बरप्रियता की समस्या, धार्मिक क्षेत्रीय कुरीतियों की समस्या आदि जैनेन्द्र की कहानियों में चित्रित हुई हैं।

प्रेमचन्दोत्तर युगीन कथा-साहित्य की सामाजिक प्रवृत्ति के अंतर्गत यशपाल का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। "आतिथ्य", "खुदा की मदद", "धर्म रक्षा", "जिम्मेवारी", "वर्दी", "सबकी इज्जत", "सागन्ती कृपा", "महाराजा का इलाज", तथा "देवी की कृपा" आदि कहानियों में सामाजिक जीवन के विविध पक्षों के द्वारा समाज में व्याप्त धार्मिक विषमता का चित्रण और मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन के संदर्भ में यथार्थ के विभिन्न रूप भी उनकी कहानियों में मिलते हैं।

इस युग की सामाजिक कहानियों की प्रवृत्ति के अंतर्गत अन्य कहानीकारों में इलाचन्द्र जोशी का नाम भी उल्लेखनीय है। जोशी जी की कहानियाँ मूलतः मनोवैज्ञानिक होते हुए भी सामाजिक जीवन का चित्रण "परिणीता", "बदला", "विद्रोही", "उद्धार", "पागल की सफाई", "कापालिक" तथा "रात्रिघर" करती हैं। इन कहानियों के द्वारा वे यह बताना चाहते हैं कि समाज में व्याप्त विभिन्न कुरीतियाँ और सीमाएँ वैयक्तिक स्तर पर मनुष्य को कुंठित कर देती हैं।

प्रेमचंदोत्तर काल के प्रमुख कहानीकारों में जैनेन्द्रकुमार का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने "वह क्षण", "निस्तार", "भावी", "व्याह",

"विस्मृति", "अन्धे का भेद", "विराग", "निराकरण", "मास्टर जी", तथा "प्रत्यावर्त्तन" आदि में सामाजिक विषय को केन्द्र बिन्दु बनाकर कहानियों की रचना की थी। उनके दृष्टिकोण में व्यक्तिवाद के लिए ही प्रधानता दी गयी है क्योंकि वे व्यक्ति को समाज से भिन्न नहीं मानते थे। इस युग की सामाजिक कहानियों की प्रवृत्ति के विकास में योग देनेवाले अन्य कहानीकारों में उपेन्द्रनाथ "अश्क" का नाम भी उल्लेखनीय है। "अंकुर", "आर्टिस्ट", "उबाल", "खिलौने", "गोखरू", "चपत", "झटके", "डाची", "दलदल", "नासूर", "बच्चे मेमनें", तथा "सपने" आदि कहानियों के द्वारा यथार्थोन्मुख सामाजिक जीवन के सभी पक्षों का चित्रण देखने को मिलती है। "सत्तर श्रेष्ठ कहानियाँ" नामक अपने बृहद् कहानी संकलन में "मेरे कहानी लेखन के बत्तीस वर्ष" शीर्षक भूमिका के अन्तर्गत उन्होंने इस विषय में स्वयं अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए लिखा है "मेरे कहानीकार बनने के पीछे एक अनजाने विद्रोह की भावना काम करती थी। मैं जिस परिवार और वातावरण में पल रहा था, उसकी असंगतियों और कुण्ठाओं ने मुझे कवि और कथाकार बना दिया था। इसलिए बहुत देर तक अपने वातावरण और समाज को भूलकर काल्पनिक कहानियाँ बुनना मेरे लिय सम्भव न था। इस दौर की कुछ रोमानी कहानियों...."निशानियाँ", "नरक का चुनाव", वह मेरी मंगेतर थी। वह भी अनजाने ही इस विद्रोह का झीना सा स्वर आ गया है। कल्पना से उद्भूत होने के बावजूद इनमें से कुछ में मेरे जीवन की कुछ अनुभूतियाँ अपने आप शामिल हो गयी हैं और फिर ज्यों-ज्यों मेरा जीवन-संघर्ष बढ़ता गया, थोड़ा बहुत मनोविज्ञान का समावेश भी मेरी कहानियों में होता गया, यहाँ तक कि 1935-36 में जीवन की वास्तविकताओं से मेरा सीधा संघर्ष हुआ और परिस्थितियों की पहली ही चोट ने मेरी आँखों पर छाया हुआ कल्पना का रोमानी पर्दा तार-तार कर दिया, जिन्दगी अपने वास्तविक रूप में मुझे दिखाई देने लगी, "अख्यात पत्रकार" द्वारा सुनी हुई कहानियाँ एकदम पोच लगने लगीं, वैसी कहानियाँ

लिखना बेकार मालूम होने लगा, "अख्यात पत्रकार" का जादू एकदम टूट गया और मैं फिर अपनी पहली रविश की ओर पलटा।"[1]

मन्मथनाथ गुप्त भी इस युग के सामाजिक कहानीकारों में एक थे। उनकी रचनाओं में सामाजिक रूढ़ियों, युद्ध की विभीषिकाओं, पारिवारिक समस्याओं तथा सामाजिक विरूपताओं के दर्शन होते हैं। "देशभक्त का अंत", "राजनीति", "महान् अमीर ने अखबार निकाला", "तीसरा बीबी", "सोख्ते का टुकडा", "महायुद्ध का देव", "बाइसराय का मैडल" तथा "मंत्र का मूल्य" आदि रचनाओं में सामाजिकता दिखाई पड़ती है। इसी प्रकार विष्णु प्रभाकर की सामाजिक कहानियों में समाज के विभिन्न वर्गों के संघर्षों का व्यापक चित्रण मिलता है। "धरती अब भी घूम रही है" जैसी कहानियों में सामाजिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार का चित्रण है और इसी प्रकार से "गृहस्थी" शीर्षक कहानी में मध्यवर्गीय समाज का प्रतिनिधि चित्र, "जिंदगी के थपेड़े" जैसी कहानियों में आधुनिक समाज की दुर्दशा और उसकी पृष्ठभूमि में बढ़ती हुई अपराध भावना का चित्रण, नारी जीवन-संबंधी समस्याओं पर भी विचार किया गया है।

**ऐतिहासिक कथा-साहित्य : यथार्थबोध** :-

प्रेमचंदोत्तरयुगीन कहानी की दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति ऐतिहासिक विषय है। इस काल के विकास के लिए जैनेंद्र कुमार, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा तथा विष्णु प्रभाकर की कहानियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यशपाल ने मानव समाज के संदर्भ में विभिन्न परिस्थितियों का महत्व ऐतिहासिक कहानी विषयक द्वारा बताया है। इस युग की ऐतिहासिक कहानी की प्रवृत्ति के अंतर्गत जैनेंद्रकुमार भी प्रसिद्ध हैं। "गदर के बाद", "फांसी", "एक कैदी", "जनार्दन की रानी" तथा "रानी महामाया" आदि उनकी ऐतिहासिक कहानियाँ हैं। उदाहरण के लिए "जय संधि" शीर्षक कहानी

---

[1] डॉ.नूरजहाँ, हिन्दी कहानी में यथार्थवाद पृ.सं.172

सामंतवादी युग पर आधारित है और इसी प्रकार "रानी महामाया" ऐतिहासिक कहानी है।

भगवतीचरण वर्मा ने भी ऐतिहासिक कहानी की प्रवृत्ति में विकासगत योगदान दिया है। वर्मा जी की अधिकांश कहानियाँ सामाजिक और मनोवैज्ञानिक हैं। इसी के अंतर्गत वर्मा जी की "जब मुगलों ने सल्तनत बख्श दी" जैसी कहानी इतिहास के महत्वपूर्ण युग की ओर संकेत करती है। इसी युग की ऐतिहासिक कहानियों की प्रवृत्ति के अंतर्गत उपेन्द्रनाथ अश्क की "मानव या दानव", "राजकुमार", "चैन का अभिलाषी" तथा "डाकू" आदि कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। इनमें से "चैन का अभिलाषी" शीर्षक कहानी में लेखक ने हास्य व्यंग्य पूर्ण शैली को दिखाया है। प्रेमचंदोत्तर काल में ऐतिहासिक कहानी के क्षेत्र में जो रचनाएँ प्रस्तुत की गई उनका संबंध ऐतिहासिक सत्य से है। वे कल्पित इतिहास पर आधारित नहीं हैं।

**धार्मिक तथा पौराणिक कथा-साहित्य : यथार्थबोध** :-

प्रेमचंदोत्तरयुगीन धार्मिक पौराणिक क्षेत्र के अंतर्गत इलाचंद जोशी, यशपाल, जैनेंद्रकुमार, मन्मथनाथ गुप्त तथा भगवतीचरण वर्मा आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन लेखकों ने एक तरफ धार्मिक और पौराणिक कथा सूत्रों को आधार बनाकर कहानियों की रचना की और दूसरी ओर धार्मिक आडम्बर का भी विरोध किया। इस दृष्टि से प्रेमचंदोत्तर युगीन धार्मिक पौराणिक कहानी की प्रवृत्ति के क्षेत्र में इलाचंद जोशी की "कापालिक" कहानी बहुत प्रसिद्ध है। इसमें लेखक ने हिंदू समाज में मृत्यु से संबंधित धार्मिक संस्कारों और भावनाओं में अनेक प्रकार के मंत्र के बारे में स्पष्ट लिखा है।

यशपाल ने अपनी कहानियों के द्वारा धार्मिक दृष्टि का स्पष्टीकरण करते हुए यह संकेत किया है कि धार्मिक पौराणिक पात्र भी मुख्यतः नायक-नायिका के रूप में मानव समाज के अनुरूप व्यवहार करते हैं। इस संदर्भ में एक कहानी में इस तरह

लिखा है-"कहानी देवताओं और पशुओं को नायक अथवा पात्र बनाकर भी गढ़ी जाती है। ऐसी कहानी में देवता अथवा पशु मनुष्य के गुण स्वभाव का प्रतिनिधित्व करते हैं और अपने समय के मानव समाज के लक्ष्यों, आदर्शों और सद्व्यवहारों को चरितार्थ करने का यत्न करते दिखाई देते हैं। कुमारसंभव, मेघदूत, पंचतंत्र, ईसप की कहानियाँ और दादी नानी द्वारा बच्चों को सुनाई जानेवाली सभी कहानियाँ यही प्रमाणित करती हैं। यदि कभी किसी भूभाग, पर्वत, वृक्ष अथवा जीवन विशेष की कहानी लिखी जाती है तो भी कहानी का आधार मनुष्य का प्रसंग ही होता है।"[1]

धार्मिक-पौराणिक कहानियों की परंपरा को जैनेंद्र कुमार ने भी सुदृढ़ किया। उनकी धार्मिक और पौराणिक कहानियों से नीतिपरक उपदेश मिलते हैं। "देवी देवता", "लाल सरोवर", "बाहुबली", "भद्रबाहू", "कामना पूर्ति", ""गुरु कात्यायन", "ऊर्ध्वबाहु" आदि कहानियों को इस संदर्भ में देखा जा सकता है। उनकी दृष्टि में मनुष्य के जीवन का धर्म के साथ घनिष्ठ संबंध है। यह संबंध उसके जन्म से लेकर मृत्युकाल तक बना रहता है। लेकिन आधुनिक युग में धर्म का स्वरूप परिवर्तित हो गया है और नास्तिकता के रूप में विकास हो चुका है। जैनेंद्रकुमार स्वयं जैन धर्म को मानते थे लेकिन आस्तिकतावादी दृष्टिकोण में विश्वास करते थे। उन्होंने आधुनिक युग में धर्म के नाम पर होनेवाले अत्याचारों का विरोध किया। उन्होंने आधुनिक जीवन के संदर्भ में धार्मिक पौराणिक कहानियों के द्वारा व्यंग्यात्मकता को स्पष्ट किया था। उदाहरण के लिए "देवी देवता" शीर्षक कहानी में उन्होंने आधुनिक विवाह प्रणाली की असफलता पर व्यंग्य किया है।

प्रेमचंदोत्तर युग में धार्मिक, पौराणिक क्षेत्र के अंतर्गत श्री मन्मथनाथ गुप्त लिखित कुछ कहानियों में सामाजिक जीवन के विविध पक्षों के संदर्भ में धार्मिक समस्याओं पर विचार करते हुए आधुनिक युग में धर्म के रूढ़ और आडंबर प्रिय स्वरूप का विरोध किया। उन्होंने मठों के महंतों तथा साधुओं के अनाचारों का

---

1 डॉ.नूरजहाँ : हिंदी कहानी में यथार्थवाद- पृ.सं.176

यथार्थपरक चित्रण किया है। जब तक लोगों के मन से अंधविश्वास दूर नहीं होगा तब तक इसी प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ेगा।

**मनोवैज्ञानिक कथा-साहित्य: यथार्थबोध:-**

प्रेमचन्दोत्तर युग में मनोविज्ञान का आधार लेकर लेखकों ने अनेक मानसिक कुंठाओं का चित्रण किया है। इलाचन्द्र जोशी जैसे मनोवैज्ञानिक कहानीकारों ने इस सत्य का अनुभव करते हुए यह बताया है कि मनुष्य की व्यक्तिगत कुंठा आधुनिक सभ्यता की एक देन है इसका मूल कारण यह है कि आज की जीवन सभ्यता के आचरण में सहज और सरल नहीं रह गया है क्योंकि उसमें दिखावा और बनावटीपन आ गया है। आजकल के मानव को अपनी इच्छा को छिपा कर अपने अंदर ही उसे संघर्ष करना पड़ता है इसके कारण उसके मन में अनेक प्रकार की कुंठाएँ बढ़ती चली जाती है। इसका रूप जोशी जी ने "देखा परखा" नामक निबंध संग्रह में "साहित्य में वैयक्तिक कुंठा" शीर्षक निबंध में प्रस्तुत किये थे। "रात्रिचर", "परिणीता", "उद्धार", "पायल की सफाई", "बदला", "विद्रोही", "मिस एल्किन्स" आदि जोशी जी की प्रमुख मनोवैज्ञानिक रचनाएँ हैं। उन्होंने "परिणीता" शीर्षक कहानी में उन्नीसवीं शताब्दी के सामन्ती युग के वैभव विलास से पूर्ण भावनाओं की परंपरा में एक दासी के चरित्र को आधार बनाकर लिखी है। इसी प्रकार से "बदला" शीर्षक कहानी में एक सामन्त वर्ग के युवक की मानसिक स्थिति का विभिन्न परिस्थितियों की अनेक विरूपताओं का परिचय दिया है। "मिस एल्किन्स" जैसी कहानियों में लेखक ने अंग्रेजी शासन काल में एक सरकारी कार्यालय में कार्य करनेवाली एक स्टेनोग्राफर की कथा का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति के अंतर्गत जैनेन्द्र कुमार ने अपनी अधिकांश कहानियों में विभिन्न मनोवैज्ञानिक समस्याओं का चित्रण किया है। इस संदर्भ में लेखक ने "एक रात" शीर्षक कहानी में कथानायक जयराज के द्वारा यह स्पष्ट करना

चाहते हैं कि देश-सेवा में संलग्न रहकर वह किस प्रकार अपनी मानसिक ग्रन्थियों से ग्रस्त रहता है। इसी क्षेत्र के अंतर्गत "यशपाल" जी ने "तर्क का फल", "राजा", "परदा", "औरत", "भाषा", "कानून", "जादू के चावल", "सोमा का साहस", "होली नहीं खेलता", "उतरा नशा", "अपनी करनी", "निर्वासिता", "वर्दी", "महाराजा का इलाज", "देखा सुना आदमी" तथा "सामन्ती कृपा" आदि मनोवैज्ञानिक कहानियों के द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में मानव चरित्र की प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाओं का प्रस्तुत किया है। इनमें से "निर्वासिता" शीर्षक कहानी में लेखक ने इन्दु के रूप में एक ऐसी नारी का चित्रण किया है जो अपनी कुरूपता के कारण किसी भी पुरूष को आकृष्ट करने में असफल रहती है। वह ऊँची प्रतिभा से संपन्न होने पर भी प्रणय की प्यास को नहीं बुझा पाती है।

प्रेमचन्दोत्तर युगीन मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति के विकास में योग देनेवाले कहानीकारों में मन्मथनाथ गुप्त का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। "सोख्ते का टुकडा", "पन्द्रह रूपये बारह आने", "महा युद्ध की देन", "राजनीति", "यन्त्र का मूल्य", "महान् अमीर ने अखबार निकाला", "तीसरी बीबी", "देशभक्त का अन्त" आदि उनकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। इनमें "राजनीति" शीर्षक कहानी में लेखक ने एक व्यवसायी के मनोविज्ञान का चित्रण किया है। उसमें युद्धकालीन परिस्थितियों से लाभ उठाकर काला धन एकत्र करने की चतुरता और सभी राजनैतिक दलों को चन्दा देकर उनका समर्थन और सहयोग पाने की आकांक्षा रखता है। "सोख्ते का टुकड़ा" शीर्षक कहानी मन्मथनाथ गुप्त की प्रतिनिधि मनोवैज्ञानिक रचना है। इसमें एक गृहस्थ नारी की शांति किस प्रकार नष्ट होती जिसके परिणाम स्वरूप जिस कुंठा का जन्म होता है। कुंठा जो मानव जीवन को घुला-घुलाकर नष्ट कर देती है। बीमारियों की संवाहक है कुंठा।

**राजनैतिक कथा-साहित्य: यथार्थबोध:-**

प्रेमचन्दोत्तर काल में राजनैतिक प्रवृत्ति का समुचित रूप में विकास हुआ था। इस युग में एक ओर "भारत छोड़ो" आन्दोलन के द्वारा कठोरता से अंग्रेजी सरकार का विरोध किया गया और दूसरी ओर द्वितीय विश्व युद्ध के कारण बंगाल की दुर्भिक्ष घटनाओं से जनता में राजनैतिक चेतना जागृत हुई थी। इस युग के राजनैतिक और राष्ट्रीय भावना प्रधान कहानियों की प्रवृत्ति के विकास में इलाचन्द्र जोशी बहुत ही मुख्य थे। उन्होंने मनोवैज्ञानिक विषय को बहुत प्रधानता दी थी। उदाहरण के लिए "बदला" शीर्षक कहानी में प्रथम विश्वयुद्ध के काल में सामान्य वर्गों के भी कितने व्यक्ति सेना में भर्ती हुए और उनके क्रिया-कलापों का जन-जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा था इस विषय को उन्होंने स्पष्ट किया। "विद्रोही" शीर्षक कहानी में उन्होंने सन् 1930 में भारतीय राजनीति पर महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व के प्रभाव को रेखांकित किया। इसी कारण देश के कोने-कोने में अहिंसक आंदोलन फैल गया और स्वतंत्रता की भावना प्रत्येक भारतीय के हृदय में एक अदम्य आकांक्षा बन कर रह गयी।

"यशपाल" जी ने अपनी अनेक राजनैतिक कहानियों में स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद भारतीय समाज की असंतोषजनक स्थिति का चित्रण किया है। उस समय स्वतंत्रता का आंदोलन एक राजनैतिक आँधी के समान आया था। इसका मुख्य प्रभाव मध्यमवर्ग पर पड़ा था। उन्होंने इन परिस्थितियों को "जन सेवक" शीर्षक कहानी में स्पष्ट किया था।

प्रेमचंदोत्तर युगीन राजनैतिक कहानी क्षेत्र के अंतर्गत "जैनेंद्रकुमार" का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जैनेंद्रकुमार स्वयं क्रांतिकारी आंदोलनों में भाग लेते थे। उन्होंने राष्ट्रीय भावनाओं को उनके राजनैतिक कहानियों के द्वारा स्पष्ट किया था। उन्होंने अपनी सबसे पहली कहानी की रचना जेल में लिखी। उनको राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने की प्रेरणा महात्मा गाँधी जी से मिली थी। उन्होंने राजनैतिक विषय को केंद्र बिंदु बनाकर सन् 1933 में "फांसी" शीर्षक सर्वप्रथम कहानी संग्रह की

रचना की। इसके अतिरिक्त "स्पर्धा", "गदर के वाद", "जय संधि", "क्रांति कर्म" आदि उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। "जय संधि" में संधि द्वारा ही महाराष्ट्र की एकता की बात सोची जाती है। "फांसी" कहानी में सर्वोदय आंदोलन के बारे में चर्चा की गई।

इस युग की प्रवृत्ति के अंतर्गत मन्मथनाथ गुप्त का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होंने अपनी कहानियों में राजनैतिक चेतना का सुंदर चित्रण किया है। "राजनीति" शीर्षक कहानी में उन्होंने यह स्पष्ट है कि विश्व युद्ध ने जहाँ एक ओर भयानक विनाश किया वहीं दूसरी ओर कालाबाजारी करनेवाले अनेक सेठों ने अतुल धनराशि अर्जित कर ली। इसी के अंतर्गत भगवतीचरण वर्मा, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, उपेन्द्रनाथ "अश्क" तथा सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन "अज्ञेय" आदि लेखकों ने भी इस प्रवृत्ति का समावेश अपनी रचनाओं में किया है। "अज्ञेय" ने "अकलंक" जैसी कहानियों में राष्ट्र या देश की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने को सदैव तैयार रहने का संदेश दिया। इसी प्रकार उपेंद्रनाथ "अश्क" की "चारा काटने की मशीन", "ज्ञानी" तथा "खामोश शहीद" आदि राजनैतिक कहानियों में पंजाब के विभाजन, सांप्रदायिक दंगों और लूटपाट का विस्तार से चित्रण हुआ है।

## 2.4 **स्वातंत्र्योत्तरयुगीन कथा-साहित्य की पृष्ठभूमि** :-

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

सामाजिक पृष्ठभूमि

आर्थिक पृष्ठभूमि

राजनीतिक पृष्ठभूमि

साहित्यिक पृष्ठभूमि

स्वातंत्र्योत्तर युगीन कथा-साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ : यथार्थबोध :-

सामाजिक कथा-साहित्य : यथार्थबोध

ऐतिहासिक कथा-साहित्य : यथार्थबोध

धार्मिक व पौराणिक कथा-साहित्य यथार्थबोध

राजनैतिक कथा-साहित्य यथार्थबोध

मनोवैज्ञानिक कथा-साहित्य यथार्थबोध

**सांस्कृतिक पृष्ठभूमि** :-

स्वातंत्र्योत्तर युग में भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति और भारत विभाजन के फलस्वरूप सांस्कृतिक क्षेत्र में अनेक परिवर्तन हुए। इस युग में स्वतंत्रता प्राप्ति के रूप में अनेक शताब्दियों पुराने देश का स्वप्न साकार हुआ और देश में नये सिरे से सांस्कृतिक चेतना जागृत हुई। जब देश आजाद हो गया तब जनता में अपनी संस्कृति के प्रति मोह बढ़ा और स्वाभाविक रूप में उसका ध्यान अपने देश की प्राचीन संस्कृति की ओर गया जिसे उसने राष्ट्रीय संस्कृति के रूप में मान्यता दी।

जो वेश-भूषा स्वतंत्रता के पूर्व तक उच्च वर्ग की ही होती थी अब मध्यम और निम्न वर्गों ने भी अपना ली। सांस्कृतिक एकता और देश की राष्ट्रीय नीति स्थापित होने के कारण इस प्रवृत्ति को और भी अधिक बढ़ावा मिला। इस युग में निम्न और उच्च के बीच में भेद-भाव को दूर किया गया था। इसके फलस्वरूप संपूर्ण भारत देश में सुरक्षा की भावना ने जन्म लिया और वह सांस्कृतिक एकता की दिशा में अग्रसर होने लगा।

**सामाजिक पृष्ठभूमि** :-

स्वातंत्र्योत्तर युग में सामाजिक क्षेत्र में सबसे अधिक परिवर्तन हुए। भारत-विभाजन ने समाज के स्वरूप, पारिवारिक व्यवस्था, सामाजिक संगठन, सामाजिक नैतिकता और सामाजिक मर्यादा को व्यापक रूप से प्रभावित किया। अब सारे देश में एक प्रकार की समानता की भावना ने जन्म लिया और मानवतावादी विचारधारा

विकसित हुई। नारी समाज में भी नवीन चेतना जागृत हुई और औरत भी पुरुष के साथ काम करने लगी। इस युग के नारी उच्च शिक्षा और नौकरी का महत्व समझा जाने लगा। इसलिए समाज में संपूर्ण परिवर्तन के आसार लक्षित हुए।

स्वातंत्र्योत्तर युग में सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ राजनैतिक परिस्थितियों में भी विकास आ गया। इस समय मध्यम वर्ग सबसे अधिक पीड़ित था। भारत-विभाजन के बाद अभिशाप ग्रस्त प्रदेशों की जनसंख्या के आदान-प्रदान के कारण एक नये समाज की स्थापना हुई। इसमें मुख्यतः मध्यम वर्ग के ही लोग अधिक थे। मध्यमवर्ग के लोग यह सोचते थे कि समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए सरकारी नौकरी ही करने की जरुरत नहीं थी। उसके सिवा मेहनत के द्वारा ही समाज में गौरव प्राप्त कर सकते है। स्वातंत्र्योत्तर युग में देश की स्वतंत्रता-प्राप्ति, भारत-विभाजन, सामाजिक परिवर्तन एवं मध्यम वर्ग की विभिन्न समस्याओं को केंद्र बिंदु बनाकर अनेक कहानीकारों ने समाज की उन परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण के साथ अनेक कहानियों की रचना की।

**आर्थिक पृष्ठभूमि** :-

स्वातंत्र्योत्तर युग में आर्थिक पृष्ठभूमि के अंतर्गत यह याद रखना चाहिए कि पूर्व युग की भाँति इस युग में अधिक क्षेत्र में अनिश्चितता के स्थान पर सुदृढ़ता नज़र नहीं आती है। इस युग में आर्थिक पृष्ठभूमि के अनुसार सबसे अधिक सम्मान जन संगठनों और सहकारी संगठनों को दिया गया है। इस युग में राजा तथा प्रजा के बीच जो अंतर को दूर किया और जमींदारी उन्मूलन करके कृषकों की समस्या का हल किया गया। इसके फलस्वरूप भारत देश कृषि प्रधान देश बन गया और लगभग अस्सी फीसदी जनता को राहत मिली। आर्थिक नीति के अनुसार सभी क्षेत्रों में उन संस्थाओं को सहायता प्राप्त हुई थी। जैसा कि राष्ट्रीय स्तर पर गृह-उद्योग और हस्तकला को भी सहायता प्राप्त हुई थी। इस युग में सरकार ने उपेक्षित और शोषित

जनता के मन में आत्मविश्वास की भावनाएँ जगायी और गृह-उद्योगों के विकास के साथ नवयुवकों में फैली बेरोजगारी की समस्या को दूर करके शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ाने की कोशिश की। इस युग के कहानीकारों ने इस विषय को केंद्र बिंदू बनाकर कहानियों की रचना की।

**राजनैतिक पृष्ठभूमि** :-

सवातंत्र्योत्तर साहित्य में लोकतांत्रिक व्यवस्था, व्यक्ति की संवैधानिक स्वतंत्रता को स्थान देने का पुरजोर प्रयास किया गया। नये विचारों और चिंतनों का सृजन हुआ। पुराने विचारों और जीवन दर्शन को गलत और असामयिक करार दिया जाने लगा।

स्वतंत्रता के बाद जीवन और सामाजिक संदर्भों में पूरे मानवीय यथार्थ को राजनीति ने प्रभावित किया। राजनैतिक आपाधायी और उनके नेतृत्व में उपजी संकीर्ण तथा स्वार्थपरक मुद्दों ने देश को चारित्रिक और नैतिक पतन की ओर धकेला। व्यक्ति स्वार्थ लोलुपता और संकीर्ण मनोवृत्तियों की परिधि में विचरण करने लगा। स्वाधीनता प्राप्ति का लक्ष्य पूरा होते ही अवसरवादिता और भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला। सन् साठ के आते-आते नैतिक मूल्यों की तमाम कमजोरियाँ मानव-जीवन में प्रवेश कर गईं। इसका असर साहित्य पर भी पड़ा।

स्वातंत्र्योत्तर युग में राजनैतिक विकास स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए किए गए आंदोलनों से न होकर देश की राजनैतिक समस्याओं से है। राजनैतिक सत्ता पाने के बाद याने कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस का महत्व सभी राजनैतिक दलों में सबसे अधिक हो गया। इन राजनैतिक दलों के प्रचार में तीव्रता आने के बाद जनता में भी जागरूकता आई। एक स्वतंत्र देश के नागरिक होने के कारण उन्हें पहली बार संविधान में अधिकार प्राप्त हो गया। इस अधिकार को धर्म, जाति अथवा वर्ग का भेदभाव के बिना प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए जनता में

आत्मविश्वास के साथ-साथ राजनैतिक क्षेत्र में भाग लेने की भावना उत्पन्न हुई। अन्य राजनैतिक क्षेत्रों में विकास उत्पन्न हुआ। और जनता को प्रात्साहन भी मिला। हालांकि इस युग के कहानीकारों ने अपनी रचनाओं के द्वारा राजनैतिक समस्याओं को दूर करने के लिए काफी प्रसास किए।

**साहित्यिक पृष्ठभूमि** :-

स्वातंत्र्योत्तर युग में हिंदी साहित्य का विकास अधिक स्तर पर हुआ। इसका मुख्य कारण यह है कि शताब्दियों बाद स्वतंत्र देश के साहित्यकार ने अपने उत्तरदायित्व का अनुभव किया। काव्य क्षेत्र के अंतर्गत रामनरेश त्रिपाठी, मैथिली शरण गुप्त, रामधारी सिंह दिनकर, त्रिलोचन, नागार्जुन, सुमित्रानंदन पंत, निराला, अंचल तथा डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन आदि कविगण राष्ट्रीय भावना-प्रधान कहानियों की रचना की। प्रयोगवादी आंदोलन काव्य के क्षेत्र में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, गजानन माधव मुक्तिबोध आदि प्रमुख थे। बालकृष्ण शर्मा नवीन जानकी वल्लभ शास्त्री, बच्चन तथा सुमित्रा कुमारी सिन्हा आदि की रचनाएँ गीतकाव्य क्षेत्र के अंतर्गत आती हैं।

निबंध क्षेत्र के अंतर्गत हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ.वासुदेवशरण अग्रवाल, शांतिप्रिय द्विवेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, डॉ.भगवतशरण उपाध्याय, डॉ.नगेन्द्र, डॉ.सत्येन्द्र, डॉ.विनय मोहन शर्मा आदि प्रसिद्ध थे। एकांकी क्षेत्र के अंतर्गत डॉ. रामकुमार वर्मा, विष्णु प्रभाकर, जयनाथ नलिन, भारतभूषण अग्रवाल तथा चिरंजीत आदि विशेष थे। उपन्यास क्षेत्र के अंतर्गत डॉ.हजारीप्रसाद द्विवेदी, अमृतलाल नागर, डॉ.रांगेय राघव तथा डॉ.देवराज आदि चर्चित रहे। कहानी क्षेत्र के अंतर्गत अमृतराय, बलवंत सिंह, राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, फणीश्वरनाथ रेणु, कमल जोशी, कमलेश्वर आदि प्रमुख कहानीकार थे।

**स्वातंत्र्योत्तर युगीन कथा-साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :यथार्थबोध** :-

स्वतंत्रता के बाद देश में एक प्रकार की आपाधापी की प्रवृत्ति का विकास हुआ। जो जहाँ था, वहीं उसी वक्त सब कुछ पा लेना चाहता था। इससे हिंसा और हिंसक प्रवृत्ति का जन्म हुआ। साम्प्रदायिकता की बुझी हुई आग को हवा मिली। वर्ग-संघर्ष शुरु हुआ। प्रांतीयता उपजी। भाई-भतीजावाद का उदय हुआ। क्षेत्रवाद पनपा। जातिवाद की जड़ें जमनी शुरु हुईं। चोर बाजारी विकसित हुई। तस्करी परवान चढ़ी। आर्थिक विषमता ने सामाजिक असंतुलन को बढ़ावा दिया। पचासोत्तरी या साठोत्तरी कहानी में इन तमाम प्रवृत्तियों, मुद्दों और समस्याओं की झलक मिलती है।

उन्नीसवीं शताब्दी में हुए धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक आंदोलनों से जिस नये "सामाजिक यथार्थ" का उदय हुआ बीसवीं सदी के कथा-साहित्य पर इसके विकसित स्वरूप का स्पष्ट प्रभाव है।

**सामाजिक कथा-साहित्य : यथार्थबोध** :-

सामाजिक कथा-साहित्य की प्रवृत्ति स्वातंत्र्योत्तर काल में ही सबसे अधिक प्रमुख रही। इस काल के प्रायः सभी लेखकों ने अमृत लाल नागर, मोहन राकेश, नरेश मेहता, निर्मल वर्मा, उषा प्रियंवदा, कमल जोशी श्रीकांत वर्मा, मन्नू भंडारी आदि लेखकों ने समाज के विविध पक्षों से संबंधित विषयों को आधार बनाकर कहानियाँ लिखीं। इस युग में सामाजिक कहानियों की विषय वस्तु का आधार भारत विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न हुई परिस्थितियाँ रहीं। भारत विभाजन के कारण जनसंख्या के सामूहिक आदान-प्रदान पर अनेक नीवन समस्याएँ उत्पन्न हुई थी। इसके फलस्वरूप अनेक परिवार नष्ट हो गए और अनेक नये बने। समाज में शरणार्थियों को एकाएक स्थान देना रूढ़िवादी वर्गों के लिए संभव न हुआ। तब शरणार्थी पुरुषों ने धीरे-धीरे मध्यवर्गीय बंधनों को तोड़कर श्रम के महत्व को समझा और भिक्षा-वृत्ति या राजकीय सहायता का आसरा छोड़ कर मेहनत और मजदूरी से

जीवनयापन करना आरंभ कर दिया। धीरे-धीरे शरणार्थी वर्ग समाज में मिल गया था। स्वातंत्र्योत्तर काल के कहानीकारों ने इन्हीं विषयों को केंद्र बिंदु बनाकर रचनाएँ प्रस्तुत की हैं।

इस युग की सामाजिक कहानियों में रूढ़ियों और कुरीतियों के प्रति व्यंग्य की भावना मिलती है। इस काल का सामाजिक कहानीकार जाति-पाँति और धर्म के बंधनों को नहीं मानते थे। इस विषय को दृष्टि में रखकर अमृतलाल नागर, हरिशंकर परसाई और राजेंद्र यादव आदि लेखकों ने सामाजिक यथार्थ का चित्रण करते हुए समाज के सभी पहलुओं से संबंध रखनेवाली समस्याओं का समावेश अपनी कहानियों में किया। भारत विभाजन के फलस्वरूप शरणार्थियों की समस्या बहुत महत्वपूर्ण बन गयी थी। स्वातंत्र्योत्तर काल के अनेक कहानीकारों ने इस समस्या पर विचार किया। जैसा कि उत्तर भारत में पंजाब तथा सिंध आदि प्रदेशों से जो शरणार्थी आए उन्हें यहाँ के समाज ने स्वीकार किया। कुछ कहानीकारों ने इन विशेष प्रदेशों की सभ्यता, संस्कृति, लोक जीवन, आचार-विचार तथा संस्कारों को आधार बनाकर यथार्थपरक कहानियों की रचना की।

स्वातंत्र्योत्तर युगीन सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति के अतंर्गत रघुवीर सहाय की "प्रेमिका" कहानी में स्त्री-पुरुष के पारस्परिक आकर्षण के संकेत हैं...." टैक्सी की शक्ल-सूरत एक पुरानी कामकाजी गाड़ी की तरह थी। इसी तरह की सवारी आज के लिए उपयुक्त भी थी क्योंकि मैं जानता हूँ कि एकदम नयी चमचमाती टैक्सी कुछ जबर्दस्ती के साथ हमें जरा सा अलग कर देती। हर चमचमाती चीज मेरे साथ यही करती है, खासकर जब मुझे किसी वक्त जो खाने की जरूरत मालूम हो रही हो। जरा देर में खो गया। कितनी सुंदर थी वह जरा सी देर। वह औरत भी सुंदर थी। उसका ढीला उभड़ा चेहरा, उसके हल्के से उदास कंधे, मेरी जानी-पहचानी उसकी कलाइयाँ जिन पर अब कुछ अधिक गोलाई आ गयी थी.... कितने सुंदर थे मेरे पागल प्रेम के पानेवाले उस शरीर के ये अंग। मैंने अपनी आँखें उन पर गढ़ा दी और एक-एक

करके उन रास्तों से गुज़र गया जो एक भरी-पूरी औरत की जिंदगी में चले आये थे। सब यात्राएँ आकर उसके चेहरे पर खत्म होती थीं। मैं भी वहीं रुक गया। वहाँ कितना तनाव था। उसके चेहरे पर नहीं। मेरे और उसके चेहरे के बीच।"

आधुनिक सामाजिक जीवन में जो आर्थिक अभाव के कारण यह आवश्यक हो गया है कि स्त्री और पुरुष दोनों ही नौकरी करके धन अर्जित करें। इस संदर्भ में कमल जोशी ने अपनी लिखी हुई "कस्तूरी मृग", "नायक नायिका", "ममता का बंधन", "बेटे का बाप", "ब्रह्म और माया" तथा "कल्याणी" आदि कहानियों में जहाँ एक ओर आज के जीवन का चित्रण किया है। "नर्स" जैसी कहानियों में यह बताया कि समाज में स्वावलंबी होने के लिए बहुधा नारी वर्ग को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। "नर्स" कहानी के द्वारा लेखक ने यह संकेत किया है..... "इस बीच उसने नर्सिंग का कोर्स लिया और पास हो गयी। पास होते ही किस्मत से नौकरी भी लग गयी। अठारह से पच्चीस, ये सात-आठ साल एक ही तरह से कट गये....।आपरेशन टैबिल के पास नकाब पहने खड़ा रहना, घायल की आहें सुनना और नवजातक की क्रन्दन ध्वनि। "डिसइन्फेक्टेंट लोशन" की बू को अलावा रजनीगंधा की सुगंध उसकी नाक में कभी नहीं गयी। ....इस यथार्थ और कठिन नियमित दिनचर्या के बीच कभी-कभी वह बीमार भी पड़ी है। लेकिन मन को चंचल होने का सुयोग ही नहीं मिला। दो-चार छोकड़े डाक्टरों की आँखों के इशारे से वह जल-भुन गयी है। कुछ शौकीन और शरीफ बदमाशों ने टेलीफोन गाइड में नंबर देखकर आधी रात को फोन पर उसे तंग किया। दो-चार पेशेवर लफंगे रात के वक्त मोटर में आये हैं और "नर्सेज क्वाटर" के आगे हार्न बजाकर चले गये। यह सब सहन करने की आदत पड़ गयी है।"

स्वातंत्र्योत्तर युगीन सामाजिक कहानियों की प्रवृत्ति के अंतर्गत आंचलिक रचनाओं का भी उल्लेख किया जा सकता है। इस क्षेत्र के अंतर्गत फणीश्वरनाथ रेणु, राजेंद्र अवस्थी तथा शैलेश मटियानी आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

**ऐतिहासिक कथा-साहित्य : यथार्थबोध** :-

स्वातंत्र्योत्तर युग के ऐतिहासिक कहानी क्षेत्र के अंतर्गत जिन कहानियों की रचना की गई वे मुख्य रूप से मुगल और ब्रिटिश काल के इतिहास को आधार बना कर लिखी गयी हैं। इस युग के आधुनिक संदर्भ में अमृतलाल नागर ने नवाबी जीवन संबंधी कहानियों की रचना की। इनमें लेखक ने संबंधित युगों की यथार्थ घटनाओं पर बल न देकर उन युगों की सांस्कृतिक और सामाजिक स्थितियों का वर्णन किया। उन्होंने अपनी रचनाओं में मानवतावादी विचारधारा को प्रधानता दी। विश्वयुद्ध के ऐतिहासिक सूत्रों को आधार बनाकर देखने से किसी भी युग में शांतिप्रिय नागरिक युद्ध नहीं करना चाहते थे। लेकिन जबरदस्ती और किसी के द्वारा थोप दिया जाता है। उन्होंने "एटम बम" शीर्षक कहानी में युद्ध के कारण शाप ग्रस्त एक आदमी के बारे में स्पष्ट किया।

इस युग के कहानीकारों में कमलेश्वर मुख्य कहानीकार थे। उन्होंने ऐतिहासिक विषय को केंद्र बिंदु बनाकर अनेक कहानियों की रचना की। उदाहरण के लिए उनके एक कहानी-संग्रह "खोई हुई दिशाएँ" की एक रचना में "जार्ज पंचम की नाक" का उल्लेख किया जाता है। लेखक ने इस कहानी मे "जार्ज पंचम की भारत-यात्रा को आधार बनाकर जीवन के यथार्थ स्वरूप को प्रस्तुत किया। इनके अतिरिक्त आनंद प्रकाश जैन ने भी ऐतिहासिक कहानियों की रचना की। "काल के पंख" तथा "अतीत के कम्पन" नामक संग्रहों की रचना भी की। उनकी कहानियों में ज्यादा से ज्यादा मुगल कालीन इतिहास के प्रभाव को देख सकते हैं। "अतीत के कम्पन" और "काल के पंख" इनकी प्रमुख ऐतिहासिक कहानियाँ हैं। इन कहानियों के द्वारा यह पता चलता है कि इतिहास के पिछले युगों में लोगों ने अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया है। इस युग में इस तरह की अनेक ऐतिहासिक कहानियों की रचना की।

**धार्मिक व पौराणिक कथा-साहित्य यथार्थबोध :-**

स्वातंत्र्योत्तर युग में धार्मिक व पौराणिक कहानियों की प्रवृत्ति पूर्व-युग के कहानीकारों से भिन्न है। हिंदी-कथा साहित्य में प्रेमचंद युग में धार्मिक आडंबरों और अंधविश्वासों का खण्डन किया गया। अमृतलाल नागर ने धार्मिक भावनाओं को चित्रित करते हुए कुछ कहानियों की रचना की। उदाहरण के लिए "भगवान के घर की एक शाम" शीर्षक कहानी के द्वारा धार्मिकता के साथ जुड़ी हुई भौतिकता का चित्रण किया है। "कमल जोशी" जी ने धर्म को केवल ढोंग समझकर "ब्रह्म और माया" शीर्षक कहानी के द्वारा अपना मंतव्य स्पष्ट किया। "सावित्री नंबर दो" जैसी कहानी में धर्मवीर भारती ने धार्मिक अंधविश्वास का परिचय दिया। इस कहानी में यह कहा गया है कि बहुत सालों से पूजा-पाठ करने से भी जीवन में कभी भी सफलता प्राप्त नहीं होती।

स्वातंत्र्योत्तर युग के अन्य कहानीकारों की भावना यह है कि धार्मिक-पौराणिक प्रवृत्ति के अंतर्गत यथार्थवाद को बढ़ाना चाहिए। वास्तव में आडंबरों का खण्डन करके मानवतावादी धर्म का समर्थन करना चाहिए। इसका मतलब यह है कि धर्म के नाम पर होनेवाले अत्याचार को रोकना चाहिए। वास्तव में धर्म यह है कि एक मानव दूसरे मानव की मदद करने से ही जीवन में सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

**राजनैतिक कथा-साहित्य : यथार्थबोध :-**

स्वातंत्र्योत्तर युग में राजनैतिक कथा-साहित्य की प्रवृत्ति के अंतर्गत राष्ट्रीय आंदोलनों का समावेश न होकर स्वतंत्र भारत की राजनैतिक समस्याओं से की गई है। जैसा कि इस युग में भारत-विभाजन के समय उत्पन्न हुई अनेक समस्याओं को आधार बनाकर कहानियों की रचना हुई थी। इस संदर्भ में मोहन राकेश की "मलवे का मालिक" कहानी के द्वारा यथार्थ का संबंध आधुनिक जीवन के साथ प्रस्तुत किया गया है। इस कहानी में लेखक ने भारत-विभाजन के पश्चात् स्थान परिवर्तन के विडंबनापूर्ण चित्र को इस प्रकार प्रस्तुत किया है-"पूरे साढ़े सात साल के बाद वे

लाहौर से अमृतसर आये थे। हाकी का मैच देखने का तो बहाना ही था, उन्हें ज्यादा चाव उन घरों और बाज़ारों को फिर से देखने का था, जो साढ़े सात साल पहले उनके लिए पराये हो गये थे। हर सड़क पर मुसलमानों की कोई न कोई टाली घूमती नज़र आ जाती थी। उनकी आँखें इस आग्रह के साथ वहाँ की हर चीज़ को दख रही थी जैसे वह शहर साधारण शहर न होकर एक खास आकर्षण केंद्र हो। ...तंग बाजारों में से गुज़रते हुए एक दूसरे को पुरानी चीजों की याद दिला रहे थे...देख, फतहदीना मिसरी बाज़ार में अब मिसौरी की दुकानें पहले से कितनी कम रह गयी हैं।...उस नुक्कड पर भटियारिन की भट्ठी थी, जहाँ अब यह पान वाला बैठा है। ...यह नमक मंडी देख लो, खान साहब। यहाँ की एक लालाइन वह नमकीन है कि बस......।

इस युग के अंतर्गत "महीप सिंह" लिखित "पानी और पुल" शीर्षक में राजनैतिक प्रवृत्ति का चित्रण हुआ था। इस प्रवृत्ति के अंतर्गत इस युग में जो रचनाएँ मिलती हैं उनमें मुख्य रूप से देश की स्वतंत्रता के बाद राजनैतिक समस्याओं का चित्रण है।

**मनोवैज्ञानिक कथा-साहित्य यथार्थबोध** :-

स्वातंत्र्योत्तर युगीन कथा-साहित्य के क्षेत्र के अंतर्गत मनोवैज्ञानिक कहानी मुख्य रूप से विशेष माना जाता है। इस युग में प्रायः सभी कहानीकारों ने मनोवैज्ञानिक कहानियों की रचना की। मानव जीवन में बदलाव लाने के लिए इन लेखकों ने सामाजिक पृष्ठभूमि के अंतर्गत विभिन्न कुंठाओं का चित्रण किया है। शशि तिवारी ने अपनी कहानियों के द्वारा आधुनिक सामाजिक जीवन में होनेवाली अनेक कुंठाओं का व्यंग्यपूर्ण चित्रण किया है। उदाहरण के लिए "जब नैपालिन आयी" शीर्षक कहानी में आजकल के समाज में दहेज के रूप में होनेवाली समस्याओं को व्यंग्य के साथ इस प्रकार स्पष्ट किया है-"सिर से बोझ उतार प्रसन्नता में मित्र जी बाहर आये। "लगन आ रही है" कह कर बैठ गये। आरती की थाली अभी घूम ही रही थी कि पानों की रकाबी गंध की लपटें लहरा रही थी और मित्र जी मन में

कलाबाजियाँ खा रहे थे। भीतर से लगन के सजे सजाये थाल चले आ रहे थे। सबसे आखिर में आये हाथ में एक कोरा लिफाफा लिए शुक्ल जी। लोगों का अंदाज़ था इसी में चेक होगा। एक लाख एक लिफाफे में बंद है। लगन के ग्यारह थाल हैं। पाँच चाँदी के। वाह क्या तकदीर पायी है मित्र जी ने। दो लड़के हैं, दोनों के दोनों हीरा। घर में न बताती कि मुनीम है तो यही समझते कि शुक्ल जी ही हैं। वाह रे भगवान! बड़ी महँगी पड़ी नेपालिन। सुना था आसामी जादू टोना करती है, पर इस नेपालिन ने तो खून पसीना एक कर दिया, जबकि घर में पांव नहीं पड़ा। चलो अच्छा हुआ जो नैपालिन नहीं आयी।"

स्वातंत्र्योत्तर युग में मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के अंतर्गत निर्मल वर्मा जी का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने अपनी रचनाओं में देशी-विदेशी जीवन के विभिन्न मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का चित्रण किया है। उदाहरण के लिए "डेढ़ इंच ऊपर" शीर्षक कहानी में लेखक ने वृद्धावस्था में व्यक्तियों की आशा और आकांक्षाओं के बारे में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उनके जीवन में कितनी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उन समस्याओं का सुंदर चित्रण मिलता है। जैसा कि-"नहीं जनाब मैं बिल्कुल अकेला नहीं रहता। क्या आप जानते हैं, पेंशनयाफ्ता लोगों के अपने शौक होते हैं। मेरे पास एक बिल्ली है....बरसों से मेरे पास रह रही है। अब जरा देखिए, मैं यहाँ बियर पीते हुए आप से लंब चौड़ी बातें कर रहा हूँ। उधर वह मेरे इंतजार में दरवाजे पर बैठी होगी। आपके बारे में मुझे मालूम नहीं, लेकिन मुझे ख्याल काफी तसल्ली देता है कि कोई मेरे इंतजार में बाहर सड़क पर आँखें लगाए बैठा है। मैं ऐसे लोगों की कल्पना नहीं कर सकता जिनका इंतज़ार कोई नहीं कर रहा हो या खुद किसी का इंतज़ार नहीं कर रहे हों। जिस क्षण आप इंतजार करना छोड़ देते है, उस क्षण आप जीना भी छोड़ देते है। बिल्लियाँ काफी देर तक और बहुत सब के साथ इंतज़ार कर सकती हैं। इस लिहाज़ से वे औरतों की तरह हैं। लेकिन सिर्फ इस लिहाज़ से नहीं....औरतों की ही तरह उनमें अपनी तरफ खींचने और आकर्षित

करने की असाधारण ताकत रहती है। डर और मोह दोनों ही....हम अकेले में उन्हें देखकर बँधे लुटे से खड़े रहते है।"

इस युग के आज की दुनिया में मन्नू भण्डारी ने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से बहुत सारी कहानियों की रचना की। उन्होंने स्त्री और पुरुष के बीच का अंतर स्पष्ट करते हुए कहा-"शुरु शुरु में कहानी लिख डालना शायद इतना कठिन नहीं है जितना बाद में कहानीकार हो जाने के "सम्मान और दायित्व" को निभाना। कवयित्री की अपेक्षा नारी कहानीकार के साथ यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है कि उसे बिना लाक्षणिक भाषा का सहारा लिए अधिक खुलकर सामने आना पड़ता है। वह घिसे-पिटे कथानकों और भाव धरातलों को ही लेती रहे, तब तक तो ठीक है, लेकिन जहाँ जीवन और जगत के व्यापक क्षेत्रों को छूने का साहस उसने किया कि प्रत्यक्ष और परोक्ष बर्जनाएँ उसकी ओर उँगली उठाती सामने आ खड़ी होती है। जगह-जगह "निषिद्ध क्षेत्र" की तख्तियाँ उसके आस-पास मंडराती हैं। ऐसे में यह मानसिक द्वन्द्व उसके लिए एक समस्या बना रहता है कि वह कला के प्रति ईमानदीर बरते या जड़ विधि-निषेध के प्रति। शायद नये मन और पुरानी रूढ़ियों का संघर्ष ही इन कहानियों की विषयवस्तु और कहानीकार की मनःस्थिति है।"[1]

इस युग में मनोवैज्ञानिक कथा-साहित्य के अंतर्गत उषा-प्रियंवदा ने आधुनिक युग में मनुष्य के जीवन में रोजी-रोटी की समस्या के द्वारा उत्पन्न हुई सामाजिक और पारिवारिक जीवन में होनेवाली भिन्न-भिन्न परिस्थितियों को "वापसी" जैसी कहानियों के द्वारा स्पष्ट किया।

इस प्रकार से इस युग के मनोवैज्ञानिक कथासाहित्य की प्रवृत्ति के विकास में अमृतलाल नागर, कमल जोशी, निर्मल वर्मा, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, फणीश्वर नाथ रेणु, उषा प्रियंवदा, मन्नू भण्डारी, शशि तिवारी तथा मोहन राकेश आदि कहानीकारों ने मानव जीवन की विभिन्न कुण्ठाओं का चित्रण किया।

---

[1] डॉ.नूरजहाँ, हिंदी कहानी में यथार्थवाद से उद्धृत-पृ.सं.245-246

**स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी का स्वरूप** :-

स्वातंत्र्योत्तर काल में हिंदी कहानी का जो स्वरूप विकसित हुआ है उसका आधार अत्यंत व्यापक है। वस्तुतः आलोच्य कहानी के क्षेत्र में जो बहुरूपात्मकता परिलक्षित होती है उसकी मूल अधुनातन प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं। महानगरीय जीवन को आधार बनाकर अनेक महिला कहानीकारों ने बहुसंख्यक कहानियों की रचना की है। आंचलिकता से संबंधित भी कहानियों की संख्या कम नहीं है। जो भारतीय नगरांकलिक और ग्रामांचलिक जीवन को रूपायित करती है। इन रचनाओं में व्यक्ति परिवार और समाज के जीवन का समग्ररूपात्मक चित्रण करते हुए जहाँ एक ओर संयुक्त परिवार के विघटन एवं एकाकी परिवार के बिखराव के संकेत हैं वहीं दूसरी ओर शताब्दियों से शोषित नारी जीवन में नव चेतना के जागरण के आवाहन के संकेत हैं। इस दृष्टि से आलोच्य कहानी पूर्ववर्ती कहानी से भिन्न है। स्वरूप की दृष्टि से इनमें मूल अंतर ये है कि आदर्श परक दृष्टि के स्थान पर यथार्थ का आग्रह स्वतः स्पष्ट है। प्रस्तुत अध्याय के आगामी पृष्ठों में इस दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर हिंदी महिला कहानी लेखक का जो अनुशीलन किया जा रहा है वह इस तथ्य का रेखांकन करने में समर्थ है कि समसामयिक जीवन की परिवर्तनशीलता ने उसे व्यापक फलक प्रदान किया है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव, पाश्चात्य संस्कृत के अनुकरण की प्रवृत्ति, सारी के स्वावलंबन राष्ट्रीय स्तर पर होनेवाली यांत्रिक उन्नति, वैज्ञानिक प्रगति, उद्योगों का राष्ट्रीयकरण, आर्थिक विषमता के उन्मूलन, सामाजिक समानता के आग्रह आदि के संकेत भी इस कहानी में मिलते हैं। पूर्व युगों में नारी सामाजिक पृष्ठ भूमि में जिस घुटन, कुंठा, हताशा और विनम्र की शिकार थी, उससे मुक्ति को छटपटाहट एवं नवजीवन के स्वप्न को साकार करने की कृत संकल्पता आलोच्य कहानी में मिलती है। जैसा कि प्रस्तुत अध्याय के आगामी पृष्ठ में स्पष्ट किया जायेगा कि आलोच्य कहानी नारी जीवन को संस्कारों से मुक्त कराने का

आंदोलन है, अब नव यथार्थ के कारण जीवन के मूल्य बदल गये हैं, समस्याएँ अधिक जटिल हो गयी हैं। नयी कहानी में आई हुई जटिल समस्याओं, मनोस्थितियों को पूर्ववर्ती शिल्प के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता है। डॉ. सन्तबख्श सिंह के अनुसार- "एक ही क्षण में आनेवाली अनेक मानसिक गुत्थियों को प्रस्तुत करने के लिए शिल्प की जटिलता ने नई कहानी के कथ्य को उकसाया नहीं, वरन् उसके स्वरूप को अधिक स्वाभाविक और प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत करने में सहायता दी।[1] इसी संदर्भ में यहाँ पर उस तथ्य का उल्लेख करना भी असंगत न होगा कि जहाँ प्राचीन कहानी में कथा संदर्भ निश्चित, सीमित और लक्ष्यात्मक होते थे वहाँ आधुनिक कहानियों के कथा संदर्भ असम्बद्ध और अनिश्चित से है। पुरानी कहानी में विचार सत्य और दर्शन आरोपित प्रतीत होते हैं। लगता है कि उन्हें बलात् ठूंसा गया है। वह जबरदस्ती प्रेमचन्द की "पंच परमेश्वर" में है। इसीलिए यह नयी कहानी की पीठिका नहीं है। यह जबरदस्ती कथन भी नहीं, इसीलिए वह नई कहानी की आधार शिला है। इस रूप में आलोच्य युगीन हिन्दी कहानी का स्वरूप परंपरा वादी रचना है। भिन्न है। जिसमें काल्पनिक और आदर्श सत्य की तुलना अनुभूति सत्य या भोगे हुए यथार्थ को अपनाया गया है। नेमिचन्द्र जैन के विचार से उसमें वर्णन करते हुए कथानक पर नहीं, बल्कि विश्लेषण पर किसी विशिष्ट भाव दशा के चित्रण पर अधिक आग्रह है। अपितु नये कथाकार ने क्रमशः कथानक, चरित्र चित्रण, कलाइमेक्स आदि पुरानी रूढ़ियों को रोढ़ दिया है। उसके स्थान पर वह जमीर की सी अनुभूति को अथवा उसके एक बिन्दु, एक विशुद्ध मनःस्थिति, घटना अथवा भावुकता अथवा विचार को लेकर कहानी लिख सकता है और लिखता है।

---

1 नई कहानी- कथ्य और शिल्प, डॉ.सन्तबख्श सिंह पृ.सं. 31

**आलोच्य कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियाँ:**

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि आलोच्य कहानी का विषयगत विस्तार बहुत अधिक है। इस युग में पूर्व युगीन कहानी की सभी प्रवृत्तियों का तो विकास हुआ ही है मनोविश्लेषण एवं आंचलिकता को आधार बनाकर नयी प्रवृत्तियाँ भी विकसित हुयी हैं। इनमें भारतीय जन-जीवन के संपूर्ण रूपात्मक चित्रण का विकास है। स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी कहानी के क्षेत्र में जो विभिन्न आन्दोलन हुये उनसे भी प्रेरित और प्रभावित होकर विभिन्न प्रवृत्तियाँ उद्भूत और विकसित हुयी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समानान्तर देश के विभाजन में भी राष्ट्रीय स्तर पर कहानीकार की चेतना को प्रभावित किया है। प्रस्तुत अध्याय के आगामी पृष्ठों में जिन महिला कहानीकारों ने सक्रिय योगदान दिया है, उनका अनुभव क्षेत्र और संवेदनात्मक धरातल परस्पर पृथक और स्वतंत्रता है "कमलेश्वर के शब्दों में" हर कहानीकार में कुछ कहने के लिए अजब सी अकुलाहट और बेकसी है। जो निश्चय ही इस संक्रान्ति काल की देन है, जिसने एक ओर हमारी सम्बल शक्तियों पर दबाव डाला तो दूसरी ओर हमारी चेतना को भी जाग्रत किया है। इसलिए हम देखते हैं, कि आज की कहानियाँ कल्पना के पंखों पर नहीं उड़ती, बल्कि दुनिया की व्यवहारिक और वास्तविक जिन्दगी से उसका सीधा संबंध है। धरती के हर कण के प्रति लगाव और प्रत्येक कोड के प्रति जिज्ञासु भाव और हर गड्डे को पार देने की सहानुभूतिपूर्ण विकलता उनमें है।[1] इस रूप में यहाँ पर आलोच्य युगीन कहानी की प्रवृत्तियों का विवेचन उसके सामान्य रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

उपर्युक्त मन्तव्य के परिप्रेक्ष्य में ये ज्ञातव्य है कि हिन्दी कहानी के विभिन्न कोणों से ये स्वीकार किया है कि विगत दशकों में हिन्दी का सम्पूर्ण नव लेखन, विशेष रूप से कहानी साहित्य संक्रमण काल की संक्रर पंगडंड़ियों से गुजरने के कारण क्षत

---

1 राजा निरवंशिया, श्री कमलेश्वर, भूमिका, पृ.सं.-5

विक्षत हुआ है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह जैसे कहानीकारों ने यह स्वीकार किया है कि "उस युग के अनेक लेखकों ने तथाकथित आधुनिकता से आक्रांत आँखों में नयापर शैली, शिल्प के स्वस्था प्रयोगों, नये मानव संवेगों संघर्षरत मानवता के जीवन के आस्थावन आया में संक्रमण काल से गुजरती भारतीय संस्कृति की विश्वासपूर्ण पग ध्वनियों में से ढूँढ़ने का प्रयत्न किया, नयापन ढंडा गया, निराश और दिग्भ्रान्त वहाँ ढूंढा गया, जो भारतीय जीवन और विकासवान सांस्कृतिक धारा से पूरी तरह करे हुए थे, उखड़े हुए थे।[1]

इस रूप में आलोच्य काल के जागरूक कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में विभिन्न प्रवृत्तियों का समुचित विकास किया है, जिनमें पूर्व युगीन प्रवृत्तियाँ भी हैं, एवं नवीन प्रवृत्तियाँ भी समाविष्ट है। इनका अवलोकन करने पर यह स्पष्ट आभासित होता है कि स्वातन्त्र्योत्तर कहानी का प्रवृत्तिगत विस्तार बहुत अधिक है। पूर्व युग की भाँति इस काल में भी सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, पौराणिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक एवं आंचलिक प्रवृत्तियाँ मुख्य हैं। इनमें सामाजिक जीवन के रूढ़गत और अधुनातन स्वरूप, सांस्कृतिक विघटन, एतिहासिक आदर्श, धार्मिक कर्मकाण्ड, राजनीतिक हथकण्डों, मानसिक कुण्ठाओं और क्षेत्रीय जीवन का चिन्तन भी किया है। जिसका पृथक-पृथक उल्लेख यहाँ प्रस्तुत है।

**आलोच्य युगीन सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति:**

आलोच्य काल में हिन्दी कहानी क्षेत्रीय जिन प्रवृत्तियों का विकास हुआ है। उनमें सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जैसा कि स्पष्ट किया जायेगा, आलोच्य काल में संपूर्ण राष्ट्र के सामाजिक जीवन में सर्वक्षेत्रीय क्रान्ति परिलक्षित होती है। इस युग में जहाँ एक ओर सामाजिक रूढ़ियों के प्रति नयी पीढ़ी ने विद्रोह किया, वही दूसरी ओर पुरानी पीढ़ी इनसे जुड़ी रही है। वास्तव में पुरानी

---

[1] इन्हें भी इन्तजार है, डॉ. शिव प्रसाद सिंह भूमिका पृ.सं.-6

और नयी दोनों ही पीढ़ियों के कहानीकारों ने इस प्रवृत्ति के अंतर्गत विभिन्न रचनायें प्रस्तुत करते हुए सामाजिक चेतना के जागरण और सामाजिक परिवर्त्तनों का उल्लेख किया है। जिनसे समाज के ऊँच-मध्य और निम्न वर्ग प्रभावित हुए हैं, समाज सुधार की पुरानी पीढ़ी के कहानीकारों ने भी उस प्रवृत्ति के विकास में योग देते हुए यह स्वीकार किया है कि "आदमी सचमुच समाज से अलग नहीं है, समाज का भाग है। समाज से अभिन्न है।"[1]

आलोच्य कालीन सामाजिक कहानी की प्रवृत्ति के विकास में नई और पुरानी पीढ़ी के कहानीकारों ने योग दिया है। उन्होंने साम्प्रदायिक सामाजिक व्यवस्था का चित्रण अपनी रचनाओं में मरते हुए सामाजिक रूढ़ियों की अर्थ हीनता दर्शाया है। उन्होंने अभिनव समाज के निर्माण का आवाहन भी अपनी रचनाओं के माध्यम से किया है। उनकी अवधारणा है कि स्वातन्त्र्योत्तर काल समाज में वर्ग व्यवस्था और जाति प्रथा समाप्त हुई, अछूतों को समानता का अधिकार मिला। नारी की स्थिति में भी सुधार हुआ। इस प्रसंग में यह भी ज्ञातव्य है कि जैनेन्द्र जैसे लेखकों ने जहाँ एक ओर गांधीवादी आदर्श समाज की स्थापना पर बल दिया।[2] यहाँ दूसरी ओर यशपाल जैसे कहानीकारों ने सामाजिक चेतना के जागरण का आवाहन करते हुए क्रान्तिकारी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।[3] इसी प्रकार जहाँ व्यक्ति और समाज की विभिन्न समस्याओं का विश्लेषण फणीश्वर नाथ रेणु ने अपनी कृतियों में किया।[4] वहाँ अमृत राय ने समाज को दूषित व्यवस्था में नारी की हीन स्थिति को प्रत्यक्ष किया।[5] इसी प्रकार भैरव प्रसाद गुप्त ने "धुर हुआ" जैसी कहानियों में सामाजिक जीवन में परिवर्तन का

---

1. प्रस्तुत प्रश्न, श्री जैनेन्द्र कुमार, पृ.सं.-24
2. जैनेन्द्र की कहानियाँ, चौथा भाग, श्री जैनेन्द्र कुमार पृ.सं.- 157
3. पिंजरे की उड़ान, श्री यशपाल, पृ.सं.-90
4. आदिम रात्रि की महक-श्री फणीश्वर नाथ रेणु-पृ.सं.27
5. भोर से पहले, श्री अमृत राय, पृ.सं.90

आह्वान किया।[1] तो दूसरी ओर डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने समाज में व्याप्त सभी प्रकार के शोषण के निर्मूलन का आह्वान किया।[2]

आलोच्य कहानी में सामाजिकता की प्रवृत्ति के अंतर्गत जिन अन्य मूल्यों को विश्लेषित किया गया है उनमें सामाजिक यथार्थ की विकृति यशपाल की "दुखी", "हालत का टुकडा", "कथक", "गर्ढरी" और "आदमी या पैसा" आदि में मिलती है।[3] उपेंद्रनाथ अश्क की "अंकुर", "नासूर" और "फरके" आदि कहानियों में सामाजिक कुरीतियों और विकृतियों का चित्रण हुआ है। मन्मथ नाथ गुप्त ने अपनी "रहमान का धैर्य" नामक कहानी-संग्रह में भ्रष्ट सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन का आह्वान किया है। विष्णु प्रभाकर लिखित "धरती अभी घूम रही है" जैसी कहानियाँ सामाजिक यथार्थ के कटफ स्वरूप को उद्घाटित करती है। सामाजिक कुप्रथाओं के निर्मूलन के लिए मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव आदि ने आह्वान किया। नारी की सामाजिक चेतना के जागरण के संकेत, विशेष रूप से जैसी समस्या है के विरुद्ध जन-चेतना के परिप्रेक्ष्य में माया प्रधान ने "वण्खित वर्ष" जैसी रचनाओं में प्रस्तुत किया है।[4] सतीश जमाली ने "घुन" जैसी कहानियों में मजदूरों और भिखारियों के नारकीय जीवन की यंत्रणा को चित्रित किया है।[5] तो दूसरी ओर रामचंद्र मट्ठु ने रूढ़िवादी परम्पराओं से ग्रस्त समाज की मुक्ति का संदेश अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है।[6] वर्तमान समाज में अस्पृश्यता की समस्या आज भी उतनी ही ज्वलंत है। रामचंद्र भट्ट ने "प्रायश्चित" कहानी में इसका विवेचन किया है। इसी प्रकार से राजेंद्र अवस्थी, प्रदीप पंत, गिरिराज किशोर, लक्ष्मी नारायण लाल, हिमांशु जोशी आदि बहुसंख्यक कहानीकारों ने सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण किया है। तथ्य

---

1 महफिल, श्री गौरव प्रसाद गुप्त, पृ.सं.32
2 कर्मनाश की हार : डॉ.शिव प्रसाद सिंह, पृ.सं.153
3 पिंजडे का उड़ान, श्री यशपाल, पृ.सं.96
4 धर्मयुग अंक 14 अप्रैल सन् 1976, पृ.सं.27
5 प्रथम पुरुष, श्री सतीश जमाली, पृ.सं.24
6 सरिता अंक जुलाई प्रथम सन् 1976, पृ.सं.44

तो यह है कि सामाजिक परिवर्तन और विकास की दृष्टि से बीसवीं शताब्दी का सातवां, आठवां और नौवां दशक एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। शिक्षा के प्रचार और प्रसार ने समाज को जागृत करने वाली सड़ी गली केंचुल को उतार फेंकने में अपना भरसक योगदान दिया था। नागरिकों को परम्परा और रूढ़ियों से मुक्त होकर भी सोचने के लिए दृष्टिकोण मिला। नारी जागरण की दृष्टि से महिला वर्ग भी एक उल्लेखनीय तथ्य है। वर्तमान कहानी पर इन सभी जीवन दृष्टियों की स्पष्ट छाप मिलती है।

इसी प्रकार से आलोच्य कालीन अन्य कहानियों में भी सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का अंकन करते हुए समाज के परिवर्तन का आकलन किया गया है। संबंधित कहानीकारों में भैरव प्रसाद गुप्त ने समाज व्यवस्था के अमूल स्वरूप में "परिवर्तन की आकांक्षा" "सपने का अंत" जैसी कहानियों में की है।[1] डॉ.शिव प्रसाद सिंह ने "माटी की औलाद" जैसी कहानियों में शोषण के निर्मूल का आह्वान किया है।[2] इसी प्रकार से मोहन राकेश ने अपनी "आखिरी समाज" शीर्षक कहानी में आधुनिक युग बोध उद्धरित करते हुए बताया है कि वर्तमान समय में भौतिकवादी दृष्टिकोण ने किस प्रकार से हमारी नैतिक मान्यताओं को विघटित कर दिया है। कमलेश्वर ने "अपनी देश की माँ" कहानी में बताया है कि पत्नी का पति के प्रति अंध विश्वास आदर्श नहीं प्रवर्धन है। जिससे मुक्ति जागृति का लक्ष्य है। "राजा निरवंशिया" में एक लोककथा की पृष्ठभूमि में एक आधुनिक निम्न मध्यम वर्गीय परिवार की कहानी कही गयी है। राजेंद्र यादव की "तीन पग और आलपीन" वर्तमान सामाजिक, आर्थिक विषमताएँ और विवशता के मध्य संबंधों की टूटन को उद्धरित करते हुए बताया है कि वे न्यायालय नहीं शोषण के अड्डे हैं। "साइकिल" में बैलगाड़ी के प्रतीक के माध्यम से नारी की स्थिति को चित्रित किया गया है। एक कमज़ोर लड़की की कहानी में

---

1 सपने का अंत, श्री भैरव प्रसाद गुप्त, पृ.सं.177

2 कर्मनाशा की हार, डॉ.शिव प्रसाद सिंह, पृ.सं.153

हमारी दोषपूर्ण सामाजिक व्यवस्था का दुष्परिणाम चित्रित किया गया है। "खानदानी घर" में भी नारी की सामाजिक स्थिति पर कठोर व्यंग्य किया गया है। निर्मल वर्मा को "माया का मर्म" में बेरोजगार जिंदगी की व्यापक निरर्थकता को व्यंजित किया गया है। "लवर्स" कहानी में नारी के प्रति पुरुष का दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है।

इसी प्रकार से आलोच्य युगीन कहानीकारों में फणीश्वरनाथ रेणु ने सामाजिक परंपराओं को अर्थहीनता "नित्य लीला" जैसी कहानियों में दर्शायी है।[1] अमृतराय की कहानियाँ सामाजिक क्रांति की दिग्दर्शक हैं।[2] उन्होंने "अंधकार के खम्भों मोर से पहले एवं एक नीली तस्वीर" आदि कहानियों में घर की चहारदीवारी में घुटकर दम तोड़नेवाली नारी, खेतों में जूझते किसान, दफ्तर में प्रताड़ित क्लर्क, स्कूल में सिर फोड़ने वाले अध्यापक, मिल में काम करनेवाले मजदूर, ले देकर पेट भरनेवाले निम्न वर्ग आदि का चित्रण किया है।[3] नई चेतना के संकेतों के समानांतर ही रूढ़िवादी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति करनेवाली कहानियाँ भी इस युग में अनेक रचनाकारों ने प्रस्तुत की है। उनके पथ प्रदर्शक हैं-गाँव के ओझा और उनकी दृष्टि से ज्ञान के भण्डार है, पंडित-पाण्डे या साधु-संत। भूत, वर्तमान और भविष्य सभी कुछ उनके विचार से प्राचीन ग्रंथों में लिखा हुआ है।[4]

डॉ.रघुवर दयाल वार्ष्णेय का कथन है "आज कहानी के सामाजिक संघर्ष के रूप में पूर्ण बदलाव पाया है। संवेदना का ढांचा बदला है, यह संघर्ष चाहे नैतिक स्तर का हो या आर्थिक स्तर का, पारिवारिक है या राजनैतिक आज की परिस्थितियों का संघर्ष, सहबोध के स्तर पर प्रमाणित करने की बेचैनी वास्तविकता के स्तर पर उभर कर आ गयी है। जीवन तर्क पर स्थित कर दिया गया है। पूरे जीवन के पैटर्न को

---

1 ठुमरी श्री फणीश्वर नाथ रेणु, पृ.सं.77
2 नई कहानी, अंक जुलाई 1969, पृ.सं.0123
3 जीवन के पहलू, श्री अमृतराय, पृ.सं.173
4 आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक हिंदी साहित्य, डॉ.कृष्ण बिहारी मिश्र, पृ.सं.282

उत्पन्न करने की उसमें शक्ति आ गई है। प्राचीन कहानी जहाँ समाप्त होती थी, नई कहानी वहाँ से प्रारंभ होती है। इसने कहानी के तंत्र को तोड़ा है और इससे बाहर निकल कर ऐसे धरातल पर जा गयी है। जो अनुमान और संभावना से बाहर सामाजिक चेतना से संदर्भित है।[1]

यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश में प्रगति एवं परिवर्तन की गति अत्यंत तीव्र रही परंतु विकास के आयाम भी उसी के समानांतर स्पष्ट होते रहे। इनके फलस्वरूप परंपरागत रूढ़ियों का विरोध हुआ। शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने भी इसे प्रभंवित किया। माया प्रधान ने अपनी "दण्डित दर्प" शीर्षक कहानी में दहेज की समस्या के संदर्भ में नारी समाज के एक यथार्थ पक्ष को उद्घाटित किया है।[2] इसी प्रकार आज के समाज में कृत्रिमता और आडंबर के बोझ में डाल दिया गया है। इसका चित्रण नफीस आफरादी की "बुजदिल" कहानी में मिलता है।[3] इसी प्रकार सतीश जमाली लिखित "पुल" कहानी में समाजवाद को आज की सामाजिक व्यवस्था की मूल आवश्यकता घोषित किया गया है।[4]

## आलोच्य युगीन मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति :-

प्रवृत्ति की पृष्ठभूमि में आधुनिक मनोविश्लेषण शास्त्री, विशेष रूप से फ्रायड एडलर, युग। गेस्टाल्ट, वाटसन एवं मैक्डूगल आदि के सिद्धांत हैं। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मनोवैज्ञानिकता का समावेश हिंदी कहानी के दोष में प्रेमचंद युग से हो चुका था। परंतु इसका समुचित विकास प्रेमचंदोत्तर काल में हुआ। हिंदी के जिन कहानीकारों ने आलोच्य कहानी के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के विकास में योग दिया है, उनमें इलाचंद्र जोशी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जिनकी धारणा है कि

---

1. हिंदी कहानी बदलते प्रतिमान, डॉ.रघुवर दयाल वार्ष्णेय, पृ.सं.134
2. धर्मयुग अंक 12 अप्रैल सन् 1976 पृ.सं.37
3. धर्मयुग अंक 12 अप्रैल सन् 1976 पृ.सं.14
4. प्रथम पुरुष, श्री सतीश जमाली, पृ.सं.25

चूँकि मनोविज्ञान सभी दृष्टियों से उपयोगी सिद्ध हुआ इसलिए आधुनिक कथाकारों ने इसे बड़े आग्रह से अपनाना स्वीकार कर लिया है।[1] जैनेंद्र कुमार,[2] यशपाल[3] एवं उपेंद्र नाथ अश्क[4] आदि ने मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति के विकास में योग दिया है। कहानीकारों ने आधुनिक जीवन में व्याप्त विभिन्न असंगतियों और विषमताओं के परिप्रेक्ष्य में मानव मन की विभिन्न प्रतिक्रियाओं का चित्रण किया है। विधुलता देवी लिखित श्रृंखला की सही कड़ी एक जैसी मनोवैज्ञानिक कहानी है। जिसमें अनियंत्रित और आप्रासंगिक भावुकता के प्रदर्शन के स्थान पर मानवीय मनोरहस्यों के उद्घाटन की आरे विशेष ध्यान दिया गया। इसमें यह भी संकेत है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए यदि कोई जीवन के लिए दृढ़ आधार न होता तो मानवता का लोप होकर स्वार्थता विकसित हो उठती।[5] इसी प्रकार ज्ञानी लिखित "युद्ध" शीर्षक कहानी में काल, मनोविज्ञान और साम्प्रदायिक विद्वेष के प्रति सहज जिज्ञासाएँ की गई हैं।[6] ज्ञानी की एक अन्य कहानी "तीसरे पहर की धूप" में यौन कुण्ठाग्रस्त प्रभाकर जी का मनोविज्ञान उद्घाटित किया गया है।

आलोच्य प्रवृत्ति के कहानीकार मानव मन के चेतन स्तर के समानांतर अर्ध चेतन, अचेतन, स्तरों के समानांतर उसकी मनोग्रंथियों, प्रवृत्तियों एवं कुण्ठाओं का चित्रण करने लगा। यही एक अन्य स्थापना है कि जैनेंद्र जैसे कहानीकारों ने यह स्पष्ट किया है कि आधुनिक संवेदना के निर्माण में मनोविज्ञान की सूक्ष्म पद्धतियों का भी योग है।[7] इसी प्रकार आलोच्य काल के कतिपय कहानीकारों ने मानव मन की सहज भावनाओं का परस्पर विरोधी रूप भी चित्रित किया है। इस दृष्टि से भैरव प्रसाद गुप्त

---

1 हिंदी कहानी की रचना प्रक्रिया-डॉ.परमानंद श्रीवास्तव-पृ.सं.154
2 बलिदान की कहानियाँ-श्री भैरव प्रसाद गुप्त-पृ.सं.140
3 श्रेष्ठ कहानियाँ-सर्वश्री राजेंद्र अवस्थी, पृ.सं.161
4 मेरी प्रिय कहानियाँ-श्री मोहन राकेश, पृ.सं.123
5 हिंदी कहानी अपनी जुबानी, डॉ.इंद्रनाथ मदान, पृ.सं.172
6 हिंदी कहानी की रचना प्रकिया, डॉ.परमानंद श्रीवास्तव, पृ.सं.154
7 बलिदान की कहानियाँ, श्री भैरव प्रसाद गुप्त, पृ.सं.40

लिखित माँ शीर्षक कहानी उल्लेखनीय है।[1] इसी प्रकार राजेंद्र यादव ने "एक कमज़ोर लड़की की कहानी" में मानव मन के अर्द्धचेतन में होनेवाले द्वन्द्व को चित्रित किया है।[2] मोहन राकेश ने नारी मन की सहज मानसिकता के जटिल रूप को दर्शाया है।[3] डॉ.इंद्रनाथ मदान की दृष्टि में मोहन राकेश की "गलस टैंक" जैसी कहानियाँ मनोविज्ञान के सूक्ष्म संबंध रैथों से चुनी गयी है।[4]

आलोच्य काल में कहानी क्षेत्रीय इस प्रवृत्ति का विकास विशेष रूप से हुआ। पुरानी और नयी पीढी के कहानीकारों ने इसे बड़े आग्रह से स्वीकार किया है।[5] उपेंद्रनाथ अश्क ने भी यह स्वीकार किया है कि आज का पाठक लेखक से कहानी में मनोरंजन की अपेक्षा कुछ अधिक मांग करता है। यही कारण है कि अर्द्ध चेतन, अचेतन, अचेतन ग्रंथियों, प्रवृत्तियों और कुण्ठाओं का चित्रण कहानीकार करने लगा।[6] इस दृष्टि से डावी, गोखरू, कैप्टन रसीद, एम्बेसडर, चट्टान आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। आलोच्य युगीन मनोवैज्ञानिक कहानी में जैनेंद्र की देन का महत्व नकारा नहीं जा सकता। एक रात, ग्रामोफोन का रिकार्ड, मास्टर साहब, पत्नी, पानवाला, विक्ट्रीज, ध्रुव यात्रा, पाजेब, तत्सत् और जयसंधि आदि के आधार पर डॉ.परमानंद श्रीवास्तव ने यह स्थापना की है कि आधुनिक संवेदना के निर्माण में दर्शन और मनोविज्ञान की सूक्ष्म पद्धतियों का भी योग है।

आज के युग में व्यक्ति की मानसिकता परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों से आक्रांत रखती है। विजय चौहान लिखित "अभय सिंह" शीर्षक कहानी में यही दर्शाया गया है।[7] इसी प्रकार रमेश उपाध्याय लिखित "अर्थ तंत्र" कहानी पारिवारिक जीवन की

---

1 श्रेष्ठ कहानियाँ, सर्वश्री राजेंद्र अवस्थी, पृ.सं.161

2 मेरी प्रिय कहानियाूं, श्री मोहन राकेश, पृ.सं.123

3 हिंदी कहानी-अपनी जुबानी, डॉ.इंद्रनाथ मयान, पृ.सं.172

4 हिंदी कहानी-अपनी जुबानी, डॉ.इंद्रनाथ मयान, पृ.सं.172

5 मेरी प्रिय कहानियाँ, श्री इलाचंद्र जोशी, प्रस्तावना, पृ.सं.7

6 अश्क की सर्व श्रेष्ठ कहानियाँ, श्री उपेन्द्रनाथ अश्क, भूमिका, पृ.सं.7

7 धर्म क्षेत्र कुरू क्षेत्र, श्रीमती विजय चौहान, पृ.सं.124

पृष्ठभूमि में विलुप्त होते जाते भावनात्मक संबंधों का उल्लेख किया है।[1] विपुला देवी लिखित "श्रृंखला की कोई कड़ी" में मानव मन की परतों की विवृत्ति की गयी है।[2] ज्ञानी लिखित युद्ध शीर्षक कहानी में सांप्रदायिक विद्वेष की पृष्ठभूमि में बाल मनोविज्ञान का चित्रण है।[3] इस प्रकार के बहुसंख्यक उदाहरण इस युग की मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति के विकास में योगदान देनेवाले लेखकों का महत्व दर्शाते हैं। आलोच्य काल में ही तथाकथित पुरानी पीढ़ी के कहानीकारों में अज्ञेय ने मानव चरित्र की प्रतिक्रियाओं, संवेदनाओं का उद्घाटन अपनी अनेक कहानियों में किया है। डॉ.रांगेय राघव ने "गूँगे" जैसी कहानियों में मर्म स्पर्शी भावनाओं की व्यंजना की है। भैरव प्रसाद गुप्त लिखित "माँ" में वात्सल्य और क्रूरता का विरोध भाषा लक्षित किया जा सकता है।[4] राजेंद्र यादव लिखित "एक कमज़ोर लड़के की कहानी" में सविता के मानसिक रूप से दो भागों में बंटे होने का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अंकन है।[5] डॉ.इंद्रनाथ मदान ने मोहन राकेश की ग्लास टैंक कहानी की सूक्ष्म संबंध के रेशों से बुना गया घोषित किया।[6] मोहन राकेश ने "सुहागिन" शीर्षक कहानी में मनोरमा और उसकी नौकरानी काशी के प्रसंग में, दोनों की परिवर्तनशील मानसिकता को प्रस्तुत किया है।[7] विजय चौहान लिखित अभय सिंह कहानी में एक डाकू के मानस परिवर्तन की प्रभावपूर्ण कथा है।[8] आलोच्य काल के कहानीकारों ने वर्तमान युग की यांत्रिकता, अहंप्रधानता, मौलिकता प्रधान दृष्टिकोण आदि जनित मानवीय कुण्ठाओं, संत्रास और जटिलताओं को चित्रित किया है। उदाहरण के लिए रमेश उपाध्याय ने "अर्थ तंत्र" कहानी में यह दर्शाने का प्रयास किया है कि भौतिक

---

1 नवगीत-अंक मार्च 1972, पृ.सं.66
2 धर्म युग-अंक 16 अप्रैल सन् 1970, पृ.सं.27
3 युद्ध, श्री ज्ञानी, पृ.सं.256
4 बलिदान की कहानियाँ, श्री भैरव प्रसाद गुप्त, पृ.सं.40
5 श्रेष्ठ प्रेम कहानियाँ, सं.श्री राजेंद्र अवस्थी, पृ.सं.161
6 हिंदी कहानी अपनी-अपनी जुबानी, डॉ.इंद्रनाथ मदान, पृ.सं.172
7 मेरी प्रिय कहानियाँ, श्री राकेश, पृ.सं.123
8 धर्म क्षेत्र, कुरुक्षेत्र, श्रीमती विजय चौहान, पृ.सं.124

स्तर पर एक परिवार में इच्छा मात्र है। सब कुछ खा जाता है, परन्तु फिर भी ऐसा लगता है जैसे यहाँ कहीं भावनात्मकता जैसी कोई कमी है।

स्वातंत्र्योत्तर मनोवैज्ञानिक कहानी की प्रवृत्ति के अन्तर्गत यौन विषयों पर भी अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की गयी है। यौन कुण्ठाओं को आधार बनाकर भी लिखी गयी अनेक कहानियाँ हैं। सुरेन्द्र कुमार मलहोत्रा अपने संग्रह "पुराना दीयाः सनई रोशनी" में व्यक्ति की यौन कुण्ठाओं से ग्रस्त मानते हैं। प्रगतिशीलता एवं सभ्यता की संज्ञा की अनेक कहानियाँ "सूर्य का जन्म" "प्यार के देवता जागो", "परतों के आर-पार" निर्भय व्यंग्य से युक्त हैं। मनोविज्ञान की दृष्टि से मनहर चौहान की "घर घुसरा" भी एक सशक्त रचना है। जिसमें एक व्यक्ति के हृदय में शंका का अंकुर पनपते चित्रित किया गया है। इसी दृष्टि से मान खोलिया की "गोत्र" और दंड नायक कहानियों की ओर भी संकेत किया जाता है। कुणाल श्रीवास्तव ने "जननी मलिनी" कहानी में दीन भावना से ग्रस्त एक नारी का मनोविज्ञान स्पष्ट किया है। इस रूप में प्रवृत्ति मानव मन की अपरिमित संभावनाओं को दर्शाती है। स्वातंत्र्योत्तर कहानी पर मनोविज्ञान का प्रभाव प्रसिद्ध पाश्चात्य मनोविश्लेषण शास्त्रियों, विशेष रूप से फ्रायड, एडलर, युग, गेस्टाल्ट, वाटसन और मौक्डूगल आदि के सिद्धांतों के माध्यम से दृष्टिगत होता है। इन मनोवैज्ञानिकों द्वारा निर्दिष्ट सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में युगीन कहानीकारों ने मानवीय संबंधों को एक नयी दृष्टि दी। उन्होंने यह इंगित किया कि हमारी मनःस्थितियाँ, मनोवेगों और मनोविज्ञानों का मेरूदण्ड यौन भावनायें ही हैं। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि मनुष्य का अवचेतना जगत अधिक शक्तिशाली होता है और वह स्वप्नों के माध्यम से भी जीवन के व्यावहारिक स्वरूप को प्रभावित करता है। उनकी एक क्रांतिकारी स्थापना यह भी है कि प्रेम और वासना, नीति और अनीति, सच्चरित्रता और चरित्रहीनता आदि की अवधारणा भ्रम मात्र है, क्योंकि यह मनुष्य के अज्ञान जनित है।

## आलोच्य युगीन राजनीतिक कहानी की प्रवृत्ति:-

स्वातंत्र्योत्तर काल में सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक कहानियों की प्रवृत्तियों के समानान्तर ही राजनीतिक कहानी की प्रवृत्ति भी विकसित हुई है। जैसाकि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है। आज के युग में राजनैतिक का प्रवेश जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हो चुका है और वह बहुत विकृत रूप में सम्मग्र जन-जीवन को प्रभावित कर रहा है। यशपाल जैसे कहानीकारों ने राजनीतिक कहानियों को एक बड़ी संस्था में प्रणीत की है। उनकी धारणा है कि नौकरशाही के भगवान अपने दुर्लभ प्रासाद में बैठकर चारों ओर उपकरणों द्वारा जनता के भाग्य का निर्णय करते हैं।[1] वस्तुतः साम्प्रतिक भारतीय जीवन राजनीति से बहुत अधिक प्रभावित है सुदूर और सघन ग्राम्य अंचल भी उससे मुक्त नहीं हो पाये हैं। प्रमुख राजनीतिक विचार धाराओं ने उनके जीवन और चिन्तन को प्रभावित किया है। औद्योगिक विकास, कृषि, श्रम और आर्थिक शोषण के सूत्रों को भी उसमें आधार बनाया गया है। शिक्षा और विज्ञान की उन्नति और प्रसाद के फलस्वरूप ग्राम्य अंचलों में जो परिवर्त्तन आये हैं, उनका भी चित्रण आलोच्य युगीन कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में किया है। इन सभी का निरूपण स्वतंत्रोत्तर कहानी के विविध रूपात्मक स्वरूप का आधार है। स्वातंत्रोत्तर हिन्दी कहानी को अनेक भारतीय और पाश्चात्य राजनीतिक विचार धाराओं ने विशद रूप से प्रभावित किया है। इसके परिणाम स्वरूप उसका राजनीतिक पक्ष बहुत सशक्त रूप में चित्रित हुआ है। ग्राम्य जीवन की राजनैतिक चेतना के संदर्भ में इसका विशेष महत्त्व है। आज सामान्य भारतीय कृषक और श्रमिक जिस ग्राम्य जीवन का प्रतिनिधित्व करता और जिन परिस्थितियों से प्रेरित और प्रभावित हुआ, पूर्व युगों से सर्वथा भिन्न है। राजनैतिक कहानी की प्रवृत्ति के विकास में तथाकथित पुरानी पीढ़ी के अन्य लेखकों में भगवती चरण वर्मा, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार एवं अज्ञेय आदि

---

1 तर्क और तूफान: श्री यशपाल: पृ.सं.-46

प्रमुख हैं। अज्ञेय ने "अकलंक" जैसी रचनाओं में यह दर्शाया है कि राष्ट्र की स्वतंत्रता की रक्षा प्रत्येक नागरिक का सर्वोच्च कर्त्तव्य है।[1] इसी प्रकार अमृत राय ने "आजादी की रेल", उर्फ वाटनिश के पीपे शीर्षक कहानी में आजादी के स्वरूप पर व्यंग्य किया है जो गुलामी की मानसिकता से युक्त है।[2] भैरव प्रसाद गुप्त ने सम्प्रतिक राजनीतिक विचार धाराओं के स्वरूप पर इंसान और मक्खियां में विचार किया है।

आलोच्य काल के कतिपय कहानीकारों ने इस तथ्य की व्यंजना भी अपनी राजनीतिक कहानियों में की है कि आज के समाज में राजनैतिक चारों ओर व्याप्त हो गयी है। डॉ. रांगेय राघव ने "कुठपुतले" जैसी कहानियों में यह बताया है कि यद्यपि हम लोग राजनैतिक दृष्टि से स्वतंत्र अवश्य हो गये हैं। किन्तु आज भी हम परतंत्र कालीन विडम्बनाओं से ही ग्रस्त हैं। उन्होंने आज के जीवन की राजनीतिक अनिश्चितता का व्यंग्यात्मक चित्रण किया है। उपेन्द्रनाथ अश्क ने अपनी राजनैतिक कहानियों में पंजाब के विभाजन, साम्प्रदायिक ढंगों एवं लूटपाट को विषय वस्तु के रूप में ग्रहण किया है। इस प्रकार की कहानियों में "टेबल लोंडा एवं चारा काटने की मशीन आदि कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है। विष्णु प्रभाकर की राजनीतिक कहानियों में "रहमान का बेटा शीर्षक संग्रह उल्लेखनीय है। "सुराज" शीर्षक कहानी में स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद का संघर्ष", "धरोहर" में बंगाल के अकाल, "गगय अथाह" में देश की स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर कुछ बाद तक नरमेध युद्ध, अधूरी कहानी में देश के विभाजनों उपरांत हिन्दू मुस्लिम समस्या, अमिता में आर्य समाजी वर्णन और "मेरा बेटा" में पंजाब के हिन्दू मुस्लिम समस्या का यथार्थ चित्रण दृष्टिगत होता है। फणीश्वर नाथ रेणु ने साम्प्रीतक राजनैतिक जीवन में पनपने वाली अवसरवादिता और आस्थाहीनता का चित्रण "जलवा" जैसी कहानियों

---

1 अमल बल्लरी और अन्य कहानियाँ, श्री अज्ञेय, पृ.सं. - 85

2 लालधरती, श्री अमृत राय, पृ.सं. - 36

में किया है।[1] भारत के विभाजन के पश्चात् शरणार्थी समस्या सर्वाधिक जटिल रूप में विद्यमान थी। इस दृष्टि में डॉ. महीप सिंह लिखित "पानी और पुल" शीर्षक कहानी भी उल्लेखनीय है।[2] कमलेश्वर लिखित राजनीतिक कहानियों में दिल्ली में एक और मौत तथा अपने देश के लोग "मैं" युद्ध विराम के प्रभावों को दर्शाया गया है। मोहन राकेश लिखित "मलवे का मालिक" भी इसी प्रकार की कहानी है। डॉ. शिव प्रसाद सिंह ने भी अपनी "शहीद दिवस" कहानी में ऐसे राजनीतिक समाज सेवियों पर व्यंग्य किया है, जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में जघन्य देशद्रोह किया है। आनंद प्रकाश जैन की "आटे के सिपाही" राजनैतिक कैदियों को आधार बनाकर लिखी गयी कहानी है। राजनैतिक कहानियों की प्रवृत्ति के अंतर्गत श्रीमती विजय चौहन की "धर्म क्षेत्र कुरूक्षेत्र" संग्रह की भी कुछ रचनाएँ उल्लिखित की जा सकती है। रवीन्द्र संगीत शीर्षक कहानी में पाकिस्तानी तानाशाही की भर्त्सना की गयी है।[3]

इसके प्रसंग में राजनैतिक प्रवृत्ति के पोषक कतिपय अन्य कहानीकारों के नाम भी उल्लेखनीय हैं। उदाहरण के लिए उज्जमा लिखित "अन्तिम इच्छा" साम्प्रदायिक विद्वेष की मानसिकता को उद्घाटित करती है। ज्ञानी लिखित "युद्ध" शीर्षक कहानी भारत-पाक युद्ध पर आधारित है। इस प्रकार के बहुसंख्यक उदाहरण इस तथ्य की व्यंजना करने में समर्थ हैं कि साम्प्रतिक कहानीकारों ने वर्तमान राजनीति को निरंतर घिनौने हथकण्डों से ग्रस्त होते जाते दर्शाया है। यह चित्रण व्यंग्यात्मक रूप में श्रीकांत चौधरी लिखित "चिंतातुर", "कर्मयोगी" जैसी कहानियों में विशेष रूप से किया गया है। ग्राम्य जीवन के परिप्रेक्ष्य में भी यह राजनैतिक परिवेश विभिन्न कहानीकारों ने सशक्त रूप से चिन्तन किया है।

1 सपने का अंत श्री भैरव प्रसाद गुप्त, पृ.सं.-127

2 स्वतंत्रता के बाद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ : सं.श्रीविजय पृ.सं.107

2 धर्मक्षेत्र कुरूक्षेत्र, श्रीमती विजय चौहन, पृ.सं.-32

**आलोच्य युगीन धार्मिक कहानी की प्रवृत्ति:-**

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियों में सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और राजनीतिक प्रवृत्तियों के अतिरिक्त धार्मिक कहानी की प्रवृत्ति का उल्लेख भी आवश्यक है। जैसा कि अन्यत्र स्पष्ट किया जायेगा, भारतीय धर्म भावना परम्परा मूलक, उदात्तपरक, आस्तिकतावादी और आस्था पूर्ण है। अनेक कारणों से उसमें पाखण्ड, अन्धविश्वास, शोषण, कर्मकाण्ड एवं प्रजन-विधान आदि का भी समावेश हो गया है। विगत युगों में अनेक सुधारवादी आन्दोलन हुए, जिनका उद्देश्य धर्म के माध्यम से होने वाले सभी प्रकार के शोषण का विरोध करना एवं विशुद्ध माध्यम से होनेवाले सभी प्रकार के शोषण का विरोध करना एवं विशुद्ध मानवतावादी धर्म का प्रसार है। यही कारण है कि आज समाज में अन्ध भक्ति का विलोप हो रहा है और चारों और हमें सब जगह वस्तुओं के टूटने-फूटने और सामाजिक राजनीतिक धार्मिक संस्थाओं में परिवर्तनों के प्रमुख विश्वासों और विचारों में तथा मानव मन की आधार भूत श्रेणियों में परिवर्तन की आवाज सुनाई पड़ रही है।[1] उपर्युक्त मन्तव्य के परिप्रेक्ष्य में यदि साम्प्रतिक धार्मिक कहानियों की प्रवृत्ति पर विचार किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि यांत्रिक युग में धर्म संबंधी अवधारणाओं में परिवर्तन हो रहा है। तथा वर्ग, जाति के धर्म द्वारा निर्दिष्ट वचन शिथिल कर दिये गये हैं। कतिपय कहानी समक्षिकों ने यह मत भी व्यक्त किया है कि आज धार्मिक रूढ़ियों का विरोध चरवाहों, किसानों और मजदूरों के द्वारा सुदूर ग्राम्य अंचलों में भी होने लगा है।[2] इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि आलोच्य कहानी में दृढतापूर्वक धार्मिक रूढ़ियों का विरोध किया गया है। वीरेन्द्र मेहंदी रण लिखित "अनावश्यक पात्र" शीर्षक कहानी में वर्मा

---

1 धर्म और समाज, डॉ.सर्वेपल्ली राधाकृष्णन, पृ.सं.-416

2 हिन्दी कहानी - बदलते प्रतिमान, डॉ.रघुवर दयाल वार्ष्णेय, पृ.सं.-11

नामक पात्र स्पष्ट रूप से घोषित करना है कि "मैं जाति-पाँत में विश्वास नहीं करता हूँ"।[1]

आलोच्य काल में न केवल नयी पीढ़ी के कहानीकारों ने भी धर्म द्वारा नियन्त्रित और निर्दिष्ट बंधनों में शिथिलता आने का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है। यशपाल ने मार्क्सवादी अवधारणा के अनुसार ईश्वर की सत्ता में अविश्वास प्रकट किया है और धर्म द्वारा निर्मित बड़ी व्यवस्था के रूढ़ि रूप को अस्वीकार किया है।[2] इसी प्रकार चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने "दुर्भाग्य" शीर्षक कहानी में नयी पीढ़ी का युवा समाज जाति-पांति के धर्म द्वारा निर्धारित बंधनों को तोड़ डालने को कृत संकल्प है।[3] इसलिए उसे कर्मकाण्ड और अन्ध विश्वासों से जोड़ना उचित नहीं है। उन्होंने धर्म के आस्थापरक और निष्ठामूलक स्वरूप को मान्यता दी है। उन्होंने यह भी अनुभव किया है कि आज के युग में अनेक प्रकार की वैचारिक उन्नति और शिक्षा प्रसार होने पर भी विशेष रूप से ग्राम्य जीवन में अभी भी अन्धविश्वास बढ़ रहे हैं। आज भी रूढ़ि परक कर्मकाण्ड और शोषण मूलक पाखण्ड ने धर्म को जाग्रत कर रहा है और इसलिए यह शोषण का माध्यम बना हुआ है। धार्मिक मान्यताओं, परंपराओं और रूढ़ियों के अर्थ हीन स्वरूप का विरोध भी आलोच्य काल के अनेक कहानीकारों ने किया है क्योंकि वे व्यावहारिक सत्य की नीव पर आधारित हैं।[4] फणीश्वरनाथ रेणु लिखित "ठेस" कहानी में जातिवाद के संत्रास और उसके विरोध आक्रोश का चित्रण है।[5] डॉ. महीप सिंह लिखित "शाई" शीर्षक कहानी जाति भेद को मिटाने का आवाहन करने के साथ अन्तर्जातीय विवाह की संभावना को दर्शाती है।[6] इसी प्रकार जवाहर सिंह लिखित "अषाढ़ का एक दिन" कहानी भी जाति भेद को धार्मिक पृष्ठभूमि में

---

1 पुरानी मिट्टी - नये डार्न, श्री वीरेन्द्र मेहंदी रक्षा, पृ.सं. - 14
2 ओ वैश्वी, श्री यशपाल, पृ.सं.-98
3 वापसी, श्री चन्द्रपाल विद्यालंकार, पृ.सं.-170
4 राजा निख सिया, श्री कमलेश्वर, भूमिका पृ.सं.-5
5 "ठुमरी" श्री फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं. -54
6 कितने संबंध, डॉ. महीप सिंह, पृ.सं. - 93

हिंसा मूलक विडम्बना का मूल्य कारण सिद्ध करती है।[1] पंच परमेश्वर में डॉ. रांगेय राघव ने भी धार्मिक अन्धविश्वासों के निर्मूल का आवाहन किया है।[2] इस प्रकार की बहुसंख्यक रचनाएँ जहाँ एक ओर धार्मिक कहानी प्रवृत्ति को आधुनिक युग में विकासशील सिद्ध करती हैं उसी प्रकार से यह भी इंगित करती हैं कि साठोत्तरी हिन्दी कहानीकारों ने ग्राम्य जीवन में परिव्याप्त धार्मिक अवधारणाओं का यथार्थ परक अंकन अपनी रचनाओं में किया है।

इस प्रकार से आलोच्य काल के विभिन्न कहानीकारों ने धार्मिक कहानी की प्रवृत्ति के विकास में भी योग दिया है। आलोच्य युग में धर्म के क्षेत्र में विभिन्न आन्दोलन भी हुए हैं। जिनकी पृष्ठभूमि में सुधारक परक दृष्टिकोण से रूढ़िवादी धर्म भावना के विरूद्ध नव चेतना के जागरण का आह्वान भी किया गया है। आलोच्य युग के अनेक कहानीकारों ने धर्म को आधार के रूप में मानवतावाद को स्वीकृतियाँ है। और किसी भी रूप में धार्मिक शोषण का विरोध किया है।

**आलोच्य युगीन ऐतिहासिक कहानी की प्रवृत्ति:-**

आलोच्य काल में हिन्दी कहानी के क्षेत्र में जो प्रवृत्तियाँ विकासशील परिलक्षित होती है। प्रवृत्तियों के समानांतर ऐतिहासिक कहानी की प्रवृत्ति का संक्षेप में उल्लेख करना भी असंगत न होगा। यद्यपि इस प्रवृत्ति की कहानियाँ इस युग में अपेक्षाकृत कम लिखी गयी है एवं प्रस्तुत शोध प्रबंध के परिप्रेक्ष्य में उनका विशेष महत्व भी नहीं है। परंतु आलोच्य युगीन कहानी से उसका संक्षिप्त विवरण असंगत न होगा। तथ्यतः इतिहास भी साहित्य का एक रस है। जो ऐतिहासिक कहानी को सिक किए हुए है।[3] और उससे इतिहास की अवगति के साथ इतिहास रस का भी संचार होता

---

1 आषाढ़ का एक दिन, श्री जवाहर सिंह, पृ.सं.-93

2 मेरी प्रिय कहानियाँ, डॉ. रांगेय राघव, पृ.सं.-46

3 आलोचना अंक, अक्तूबर सन् 1953, पृ.सं.13

है।[1] यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि आलोच्य काल में जो ऐतिहासिक प्रवृत्ति की कहानियाँ लिखी गयी हैं उनका संबंध ग्राम्य जीवन के वर्तमान स्वरूप से नहीं है। यह भी एक ज्ञातव्य सूत्र है कि पुरानी पीढ़ी के ही अधिकांश कहानीकारों ने ऐतिहासिक प्रवृत्ति की कहानियाँ अधिक लिखी हैं। ये कहानियाँ विशेष रूप से भारतीय इतिहास के विभिन्न युगों पर आधारित हैं और इनमें अतीत युग के किसी न किसी आदर्श की प्रतिष्ठा की गई है। जो वर्तमान के लिए किसी न किसी में कोई उपयोगिता रखते हैं।

भारतीय इतिहास के विभिन्न युगीन सूत्रों को महज करके राजपूत काल, मुगल काल और ब्रिटिश काल से संबंधित कहानियाँ विभिन्न लेखकों द्वारा प्रस्तुत की गयी हैं। पुरानी और नयी दोनों ही पीढ़ियों के कहानीकारों ने ऐतिहासिक कहानियों की रचना की है। वृंदावन लाल वर्मा लिखित "अरुण जी पंत", चतुरसेन शास्त्री लिखित "नूरजहाँ का कौशल", सत्यव्रत सिन्हा लिखित "दुलारी बेटी", रमेश बख्शी लिखित "दृष्टा", चंद्रदेवी सिंह लिखित "नूरजहाँ के खेत" तथा जहर बख्श लिखित "लोहे की बेड़ियों से अधिक दृढ़" आदि कहानियाँ इन्हीं युगों से संबंधित है। इनमें अतीत युगों का गौरव गान है। और यथासंभव आदर्श और यथार्थ का समन्वय करते हुए ऐसे सूत्र प्रस्तुत किए हैं जो अतीत की उपलब्धियों से वर्तमान को प्रेरणा देने में सक्षम है।

**आलोच्य युगीन सांस्कृतिक कहानी की प्रवृत्ति** :-

आलोच्य काल में कहानी क्षेत्रीय सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक प्रवृत्तियों के समानांतर ही सांस्कृतिक कहानी की प्रवृत्ति का विकास भी हुआ है। यहाँ पर इस तथ्य की ओर संकेत करना असंगत न होगा कि विगत तीन दशकों में सांस्कृतिक क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। न केवल महानगरों में वरन् सुदूर ग्रामों के आंचलित क्षेत्रों में भी जीवन की व्यस्तता

---

1 साप्ताहिक हिंदुस्तान-अंक जून सन् 1955 संपादकीय

फलस्वरूप यह विधान तीव्रता होता जा रहा है। स्वातंत्र्योत्तर ऐतिहासिक कहानी का सांस्कृतिक विध्वंसता की गति आज बहुत तीव्र है।[1] सैद्धांतिक दृष्टिकोण से संस्कृति एक समष्टिपरक अवधारणा परंपरा से प्राप्त विचार, मुख्य कला, शिल्प, वस्तु तथा जागृत संस्कृति के अंग हैं। आदर्शों, मूल्यों, स्थापनाओं और मान्यताओं का समूह संस्कृति है और इसी संस्कृति के सुधार ही किसी समाज की नितांत शैली का निर्माण होता है।[2] मानव जीवन के लिए संस्कृति की नितांत आवश्यकता विचारकों ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया हे। भारतीय दर्शन के अनुसार संस्कृति के पांच अवयव हैं जो कर्म, दर्शन, इतिहास वर्ग तथा रीति रिवाज़ हैं।[3] वास्तव में संस्कृति एक व्यापक क्षेत्रीय अवधारणा है जिसके अंतर्गत साहित्य, संगीत, कला, धर्म, दर्शन, लोक वाटी और राजनीति आदि का समावेश है।[4] इस व्यापक परिप्रेक्ष्य में व्यापारिक समष्टि की चेतना का निवष्टि और आकलन संस्कृति का कार्य है।[5] उपर्युक्त वैचारिक पृष्ठ भूमि में यदि सांप्रदायिक कहानी साहित्य का आकलन किया जाए तो गिरिराज किशोर लिखित "फ्राक वाला घोडा" और "निकट वाला साहस" कहानियाँ सांस्कृतिक विघटन के संकेत प्रस्तुत करती है। ज्ञान रंजन लिखित "शेष होते हुए"[6] फणीश्वर नाथ रेणु लिखित "अग्नि खोर"[7] मोहन राकेश लिखित "जख्म"[8] मन्नू भंडारी लिखित यही सच है[9] तथा राजेंद्र अवस्थी लिखित "अपना शहर" आदि कहानियाँ सांस्कृतिक मूल्यों की विघटनशीलता की साक्षी है।[10]

---

1 संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डॉ.देवराज, भूमिका पृ.सं.1
2 साहित्य परिचय-शिक्षा और भारतीय संस्कृति, विशेषांक संपादकीय, पृ.सं.17
3 कल्याण-हिंदू संस्कृति विशेषांक:पृ.सं.76
4 मेरी प्रिय कहानियाँ-श्री ज्ञान रंजन, पृ.सं.42
5 मेरी प्रिय कहानियाँ-श्री फणीश्वर नाथ रेणे, पृ.सं.127
6 मेरी प्रिय कहानियाँ-श्री मोहन राकेश, पृ.सं.102
7 मेरी प्रिय कहानियाँ-श्री फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.सं.127
8 मेरी प्रिय कहानियाँ-श्री मोहन राकेश, पृ.सं.102
9 मेरी प्रिय कहानियाँ-श्री मन्नू भंडारी, पृ.सं.45
10 मेरी प्रिय कहानियाँ-श्री राजेंद्र अवस्थी, पृ.सं.29

हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में विविध विकास युगों के कथात्मक ह्रास की जो प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है वह भी नवीन प्रयोगों की जन्मदात्री रही है। यही नहीं, उपन्यास के मूल तत्वों के पारस्परिक संतुलन स्थापित करने में भी उसका योग रहा है। उपन्यास के स्वरूप में क्रमशः लक्षित की जानेवाली परिवर्तनशीलता वस्तुतः उसकी विकासशीलता की ही द्योतक है। आधुनिक साहित्य के क्षेत्र में विकास तथा उन्नतशीलता की दृष्टि से तो उपन्यास का विशेष महत्व है ही आधुनिक सभ्यता और संस्कृति की यथार्थ चेतना के वाहक और प्रसारक के रूप में भी उपन्यास का स्थान विशिष्ट है। इसलिए उपन्यास क्षेत्रीय प्रगति के केवल साहित्यिक विकास का आशय ही नहीं ग्रहण करना चाहिए। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में उपन्यास अपने परंपरागत अर्थ से पृथक एक विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। स्वरूप तत्व तथा क्षेत्रीयता की दृष्टि से आधुनिक उपन्यास सांस्कृतिक विकास और उपलब्धियों का साहित्यिक प्रतीक कहा जा सकता है।

साहित्य के अन्य रूपों तथा उपन्यास में परंपरागत और रूढ स्वरूपात्मकता की दृष्टि से यह अंतर है कि जहाँ अन्य रूप भी अपनी पूर्व निर्धारित परिधि में संकुचित है वहीं उपन्यास ज्ञान-विज्ञान की प्रत्येक विधा के क्षेत्र में होनेवाली प्रगति के समानांतर ही अपनी गतिशीलता का भी प्रमाण दे रहा है। इतिहास, सभ्यता, संस्कृति, मनोविज्ञान, दर्शन तथा यहाँ तक कि विज्ञान के क्षेत्रों में भी होनेवाली उपलब्धियों का परिचय उपन्यास के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। मनोविश्लेषण शास्त्रीय सिद्धांतों तथा मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के विकास के समानांतर ही इन विधाओं के संदर्भ में भी औपन्यासिक प्रगति का भाव किया जा सकता है। आज जब हम अंतरिक्ष युग में निवास कर रहे हैं, उपन्यास अपने रूप को अधिक से अधिक समयानुकूल सिद्ध करने के प्रयत्न में है।

पूर्ववर्ती और नवीन उपन्यास का एक अंतर संसार की विशिष्ट चिंतनधाराओं के संदर्भो में भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। बौद्धिक विचार और दर्शन-क्षेत्रीय

विविध आंदोलन अपने सैद्धांतिक रूप में भले ही अद्वितीय कोटि के तथा उच्च स्तरीय हो, परंतु सामान्य जीवन में वे शुष्क, अरोचक तथा अनुपयोगी से समझे जाते हैं। इन्हीं को जब व्यावहारिक आधार पर एक औपन्यासिक कृति में प्रतिष्ठित कर दियाजाता है तब उनमें एक प्रकार की विलक्षण प्रभावात्मकता सी परिलक्षित होने लगती है। इस दृष्टि से जहाँ उपन्यास अपनी स्वरूपगत वैचारिक समृद्धि का परिचय समय-समय पर देता रहा है वहीं दूसरी विशिष्ट चिंतनात्मक धाराओं को भी अपने आप में समाविष्ट करता रहा है।

हिंदी उपन्यास का भावी रूप वर्तमान मानव जीवन में मूल्यगत हास्यात्मकता का भी परिचायक होगा। आधुनिक जीवन वैचारिक संकुलता तथा गत्यावरोध के ऐसे जटिल रूपों का साक्षात्कार करता है जो कभी-कभी भविष्य के उपलब्धयात्मक बिंदुओं को अस्पष्ट कर देते हैं। उपन्यास अपने बहु-क्षेत्रीय रूप विस्तार के साथ जीवन के इस यथार्थात्मक वैषम्य और उसकी विडंबनात्मक परिणति के सम्भाव्य रूप का दृढ़ता से सामना करता हुआ, जीवन को अर्थपूर्णता देने के प्रत्येक व्यावहारिक प्रयत्न का प्रयोग कर रहा है। इस संदर्भ में यहाँ ये ज्ञातव्य है कि आलोच्य युगीन उपन्यास साहित्य की समृद्धि में महिला साहित्यकारों के योगदान का आकलन करते हुए प्रस्तुत अध्याय के आगामी पृष्ठों में उसका सोदाहरण विश्लेषण किया जा रहा है।

**आलोच्य युगीन हिंदी उपन्यास की पृष्ठभूमि :**

स्वातंत्र्योत्तर युग का भारतीय इतिहास में विशेष महत्व है क्योंकि अनेक शताब्दियों के राजनैतिक परतंत्रता के पश्चात् देश स्वतंत्र हुआ और संपूर्ण राष्ट्रीय स्तर में नवजागरण परिलक्षित हुआ।[1] डॉ.रामरतन भटनागर ने निराला और

---

1 निराला और नवजागरण, डॉ.रामरतन भटनागर, पृ.सं.25

नवजागरण शीर्षक कृति में लिखा है कि भारतीय नवजागरण का जन्म बंगाल में हुआ, जहाँ नवीन शक्तियाँ तथा नये व्यक्तियों में नये युग धर्म को समझकर युगांतर की प्रतिक्रिया में योग दिया, जिसके फलस्वरूप हमारे राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नव अरुणोदय के दर्शन हुए। इस्लामी शासन केंद्रों से दूर होने के कारण बंगाल प्रतिक्रिया का केंद्र नहीं बन सका था और उनकी जीवन शक्ति अपराजिता थी जिसके फलस्वरूप वहाँ नये सांस्कृतिक अभियान का आधार बना और वहीं से आध्यात्मिक पुनर्जागरण की लहर उठकर भारतवर्ष के दूर-दूर प्रांतों में पहुँची। प्रारंभ में उसमें स्वदेशी संस्कृति, आध्यात्मक, धर्म, दर्शन साहित्य, कला और विज्ञान सभी क्षेत्रों में बंगाल की अग्रमिता और उदार चेतना महापुरुषों का जन्म हुआ। पश्चिम के प्रयत्नों से ही भारतवर्ष अपनी प्राचीन संस्कृति से परिचित हुआ और ऐतिहासिक एवं विकासशील दृष्टि से उनमें भाव जगत को नई संपन्नता दी। भाषा विज्ञान, नृशास्त्र और तुलनात्मक धर्म की जिन मान्यताओं ने पश्चिम के धार्मिक विश्वासों को ढीला कर दिया, वही भारतीय सांस्कृतिक चेतना को आत्मगौरव दे सके। पश्चिम के संपर्क से प्रबुद्ध भारतीय मनीषी प्राचीन आदर्शों की ओर मुड़ा।[1]

1947 में भारत का अभ्युदय एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में हुआ। यद्यपि परवर्ती काल में भी राजनैतिक चेतना का निरंतर प्रसार हुआ और राष्ट्रीय स्तर पर अनेक राजनैतिक आंदोलन हुए। परंतु उनका उद्देश्य विदेशी सत्ता के विरुद्ध संघर्ष न होकर राष्ट्र निर्माण की भावना थी। इन आंदोलनों के फलस्वरूप देश की जनता में विशेष रूप से निम्न वर्गों में नवीन चेतना का जागरण हुआ। श्री हुमायूँ कबीर जैसे राजनैतिक विचारकों ने यह स्पष्टतः अनुभव किया कि 15 अगस्त सन् 1947 को स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात देशवासियों ने यह महसूस किया कि लगभग दो शताब्दियों तक अंग्रेजी आधिपत्य में रहते हुए भी देश में औद्योगिक वैज्ञानिक और

---

1 निराला और नवजागरण, डॉ.रामरतन भटनागर, पृ.सं.25

शैक्षिक क्षेत्रों में प्रगति हुई। वह एक नवीन राष्ट्र के रूप में देश के नव निर्माण की नियामक भी बनी हुई है।[1]

जैसे के डॉ. अरविन्द हुसैन ऐसे विचारकों ने भी माना है कि सन् 1857 के बाद औपनिवेशिक अंग्रेजी संस्कृति ने भारत में उच्च और मध्यवर्गीय लोगों के मन को वशीभूत कर लिया था। पश्चिम के सांस्कृतिक प्रभावों का विरोध केवल रूढ़िवाद धार्मिक वर्ग और उनके नेतृत्व चलनेवाली अधिकांशों जनता कर रही थी। लेकिन प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर नयी राजनैतिक क्रान्ति सी आ गयी ब्रिटिश सरकार ने उसका शासन देने के लिए वादा लिया था। ये वादा उनकी अधिकताओं को झूठा करने लगा था और उन्हें गुलामी का अहसास देने लगा था। तब उनमें राजनैतिक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता पाने की लालसा उत्पन्न हों उठी थी। अतः वे धार्मिक दलों की ओर मुडे जिनसे अपना नाता उन्होंने हमेशा के लिए तोड़ लिया था और उनके साथ मिलकर उन्होंने विदेशी शासकों के विरुद्ध एक सामान्य लक्ष्य निश्चित कर लिया।[2]

उपरोक्त दृष्टिकोण से यह युग भारत के इतिहास को एक नवीन दिशा की ओर ले जाने वालों का रहा है। राजनैतिक गतिविधियों का प्रसार पर राजनैतिक जागरूकता की सूचक है। इस स्थिति में अराजकता और भ्रष्टाचार भी बढ़े। परन्तु उसका एक नितान्त आवश्यक पक्ष यह भी है कि अत्यंत ओछे हथकंडे अपनाये जाने लगे और उसे प्रशिक्षित वर्ग इतना क्षुब्ध हुआ कि उन्होंने राजनीति से सन्यास लें लिया। चीन, पाकिस्तान और बांगलादेश के युद्धों ने भी देश को प्रभावित किया। नैतिक मूल्यों का संक्रमण और आर्थिक विषमता की वृद्धि होने बेरोजगारी बढ़ी और शैक्षिक क्षेत्रों में अनुगातहीनता और अराजकता व्याप्त हो गई। प्राचीन भारतीय संस्कृति के पुनरूथान के सारे प्रयास निष्फल हुए और पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव

---

1 ब्रिटेन ऐण्ड इण्डिया, श्री हुमायूँ कबीन, पृ.सं.-5

2 राष्ट्रीय संस्कृति, डॉ. अरविन्द हुसैन, पृ.सं. -60

बढ़ता रहा। धार्मिक संकीर्णता, पाखण्ड अनाचार, शोषण, अंधविश्वास और धर्मभसिता के कारण साम्प्रदायिक वेमनस्य और हिन्सा में वृद्धि हुई। उक्त परिप्रेक्ष्य में स्वातंत्र्योत्तर युग की सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पृष्ठभूमि का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। जिन्होंने आलोच्य युग के समग्र उपन्यास लेखन को प्रभावित किया है और जिन महिला साहित्यकारों के उपन्यास को आगामी पृष्ठों में अध्ययन का आधार बनाया वे भी उनसे प्रभावित हुए हैं।

**सामाजिक पृष्ठभूमि :-**

स्वातंत्र्योत्तर युगीन भारत में नवीन चेतना के जागरण के फलस्वरूप सामाजिक क्षेत्रों में अनेकों परिवर्तन हुए। संयुक्त परिवार निरन्तर टूटे जा रहे थे जिसके फलस्वरूप एकाकी परिवार बढ़ते जा रहे थे। जिसके कारण पारिवारिक संबंधों में भी अनेक परिवर्तन हुए। भारत विभाजन के फलस्वरूप भी कई परिवर्तन हुए। रहन-सहन, खान-पान, शिष्टाचार और नैतिकता के परम्परागत सामाजिक मूल्य विघटित हो गए और उनका स्थान नयी उदारवादी दृष्टिकोण ने ले लिया। नारियाँ भी पर्दे से निकल कर शिक्षित और स्वावलम्बी बनी। श्रीमती कमला नेहरू, मीरा बेन, विजय लक्ष्मी पंडित, सरोजनी नायुडु, सूचेता कृपलानी तथा इंदिरा गांधी आदि स्त्रियों ने देश के सभी क्षेत्रों में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। विवाह प्रथा में भी सुधार किया गया। हिन्दू विवाह विरोधक कानून बम्बई सरकार ने सन् 1946 में पास किया था और उसका उल्लंघन करनेवालों को सात वर्ष की कठोर कारावास निवारण कानून पास हुआ और उसके अंतर्गत समान गोत्रीय विवाह को मान्यता दी गई।

सन् 1946 में हिन्दू विवाह मान्यता कानून पास हुआ जिसके अनुसार अन्तर्जातीय विवाहों को स्वीकृति मिली। सन् 1954 में विशेष विवाह कानून पास किया गया जिसके अनुसार हिन्दू नारी को पति की मृत्यु हो जाने के उपरान्त दूसरा

विवाह करने का अधिकार प्राप्त हुआ। और यह भी कानून बना कि यदि स्त्री पुरुष क्रमशः अठारह व इक्कीस वर्ष आयु के हो तो विवाह कर सकते हैं। बंबई में सन् 1947 में बंबई हिंदू संबंध विच्छेद अधिनियम के अनुसार हिंदू नारी को भी संबंध-विच्छेद करने का अधिकार प्राप्त हुआ तथा अनेक संपत्ति अधिकार संबंधी नियम बने। नारी को पहले केवल इस प्रकार के अधिकारों का अहसास मात्र ही था। वह अपने अधिकारों से वंचित थी। 17 जून 1956 को हिंदू कोड बिल के अंतर्गत हिंदू उत्तराधिकार बिल पास हुआ। अनेक शताब्दियों से अत्याचार से पीडित नारी के लिए इस युग में प्रबल समर्थन प्राप्त हुआ। 24 दिसंबर सन् 1954 को वेश्यावृत्ति संबंधी जो अनैतिकता समाज में फैली हुई थी वह प्रायः कम होने लगी थी। सन् 1954 ई. में कस्तूरबा गाँधी मेमोरियल ट्रस्ट की स्थापना हुई जिसने ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ। सन् 1953 में समाज कल्याण संस्था भारत सरकार द्वारा स्थापित हुई। इस प्रकार अनेक सुधारवादी संस्थाओं का निर्माण हुआ तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव उपन्यासकारों पर भी पड़ा। उस युग के विचारों की छाप उस समय के साहित्य पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

अतः सामाजिक परिवर्तन और विकास के एक अन्य तत्त्व का यहाँ पर उल्लेख करना भी नितांत आवश्यक है। वह यह है कि आर्यसमाज जैसी सुधारवादी संस्थाओं ने स्वतंत्रता के बाद भी एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। आर्य समाजी रीति से सन् 1973 में मेरठ की केंद्रीय आर्य समिति के मंत्री श्री इंद्रराज ने भारत पाकिस्तान के युद्ध में शहीद हुए जवानों की विधवाओं का पुनर्विवाह किया। यह एक क्रांतिकारी चरण सामाजिक परिवर्तन का था। प्रत्येक युग में व्यक्ति और समाज के जीवन में आमूल परिवर्तन होते रहते हैं। और इन्हीं परिवर्तनों के आधार पर उन जीवन मूल्यों का विकास होता है। मनुष्य के जीवन में तीव्रगति से मेरुदण्ड बनते हैं। परंतु आज के व्यक्ति के जीवन में जितनी तीव्र गति से और अनेक सुखी परिवर्तन के आधार पर उन जीवन मूल्यों को अपनाने से आज के व्यक्ति और समाज

को अपनी वर्षों पुरानी मान्यताओं से भी संघर्ष करना पड़ रहा है। इसके साथ ही विज्ञान में नये आविष्कार आज के रहन-सहन, विचार और परंपरा के संबंधों आदि में अनेकों परिवर्तन उपस्थित कर रहे हैं। इन दोनों ही स्थितियों के कारण आज के व्यक्ति के जीवन में नये और पुराने का भेद बहुत ही स्पष्ट हो गया है जो रहन-सहन, मान्यताओं और मर्यादाओं सभी कुछ में दृष्टिगत होता है। प्रत्येक परिवार में ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण समाज में पुरानी और नयी पीढ़ी का अंतर स्पष्ट हो चुका है। इस प्रकार आज का व्यक्ति यदि एक ओर पुराने संस्कारों और मान्यताओं से बंधा रहना चाहता है तो दूसरी ओर उन्हें छोड़कर नये संस्कार ग्रहण करने के लिए संघर्ष भी कर रहा है और तीसरी ओर ओट भरकर धुरीहीन भी होता जा रहा है और वह भी धुरीहीन व्यक्तिवादी, निराशावादी, भाग्यवादी, निष्क्रम, आत्मलीन और आत्मभीरु बनता जा रहा है।[1] इस प्रकार से आलोच्य युगीन सामाजिक हीनता के कारण प्रबद्ध वर्ग के द्वारा उनके निर्मूलन की कृत संकल्पता भी परिलक्षित होती है जिससे युगीन उपन्यास भी अनुप्रमाणित है। महिला उपन्यास लेखन की प्रतिनिधि औपन्यासिक रचनाओं की भी यही पृष्ठभूमि रही है।

**राजनैतिक पृष्ठभूमि** :-

शताब्दियों की परतंत्रता से 15 अगस्त सन् 1947 को भारत ने राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त की। परंतु इसी के साथ एक दुखद घटना भारत और पाकिस्तान के विभाजन के रूप में घटित हुई। राजतंत्र के स्थान पर प्रजातंत्र की स्थापना हुई और भारत एक स्वायत्त सत्ता संपन्न गणराज्य बना। महत्मा गाँधी की हत्या भी स्वतंत्रता वी.पी.मेनन ने सरदार वल्लभ भाई पटेल को समझाया था कि भारत के लिए गृहयुद्ध की तरफ बढ़ने की अपेक्षा देश का बँटवारा स्वीकार कर लेना अच्छा होगा।[2] भारत

---

1 आधुनिक हिंदी साहित्य, डॉ.रामगोपाल सिंह चौधरी, पृ.सं.27

2 दि ट्रान्सफर ऑफ पावर इन इंडिया, श्री वी.पी.मेनन, पृ.सं.358

विभाजन के फलस्वरूप एक तो शरणार्थी समस्या सामने आयी जिसके कारण देश के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक ढाँचे में व्यापक परिवर्तन हुए हैं। दूसरी ओर कश्मीर की समस्या ने जटिल रूप धारण कर लिया है। 26 जनवरी सन् 1950 को भारतीय लोकतंत्रात्मक गणराज्य में विलय अस्वीकार कर देने के कारण भारतीय सेना को कार्यवाही ही करनी पड़ी और चार दिन की लड़ाई के पश्चात 18 सितंबर सन् 1947 को हैदराबाद ने आत्मसमर्पण कर दिया। गांधीवादी विचारधारा को भारतीय राजनीति का आदर्श माना गया क्योंकि इसका आधार अध्यात्म और नैतिकता है तथा हमारे कतिपय चिंतक मनुष्य की आध्यात्मिकता और मानवता के आधार पर नवीनादर्शन प्रस्तुत करना चाहते हैं।[1]

आचार्य नरेंद्र देव जैसे चिंतकों ने गांधीवादी विचारधारा को एक नवीन दिशा प्रदान की। इनका विश्वास है कि मानव के आप इतना अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। जीवन के नये सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्य प्रेरणा देने के लिए पर्याप्त है। इन मूल्यों पर जिसका विश्वास है वह इन पर दुःख और यातना भोगते हुए भी अपने धार्मिक विश्वास की भाँति अटल रहता है। आज के युग में सामाजिक अवस्था का पूर्ण परिचय प्राप्त कर रचनात्मक क्रांतिकारी योजनाओं की कार्यान्वित करने की क्षमता रखनेवाला व्यक्ति ही कुछ कर सकता है। सामाजिक संगठन के बिना महान परिवर्तन किए बिना हमारा जिंदा रहना भी कठिन है। समाज के प्रश्न धर्म के दामन में मुँह छिपाने से नहीं भ्रमित होंगे। समाज की उन्नति करने का एक वैज्ञानिक तरीका है। इसको अपनाना होगा।[2] देश की स्वतंत्रता के पश्चात पंडित जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में सर्वतोन्मुखी उन्नति हुई। सन् 1962 में चीन के आक्रमण से स्वतंत्र भारत को एक बड़ा राजनैतिक आघात लगा। सन् 1964 में नेहरू जी की मृत्यु के पश्चात लाल बहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री बने। अनेक कारणों से 26 जून सन् 1975

---

1 पोस्ट इंडिपेंडेन्स जनरेशन, डॉ.कर्मसिंह, पृ.सं.42

2 राष्ट्रीय और समाजवाद, आचार्य नरेंद्र देव, पृ.सं.71

को देश में आपात स्थिति की घोषणा की गयी। सन् 1977 में यह स्थिति हटायी गयी और आम चुनाव हुए। इस चुनाव में जनता पार्टी की विजय हुई और मुरारजी देसाई ने प्रधानमंत्री का पद ग्रहण किया और तत्पश्चात पुनः कांग्रेस की विजय हुई और इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री बनी। वर्तमान में देश में अनेक राजनीतिक स्तर पर जितना व्यापक भ्रष्टाचार आज व्याप्त हो गया है उसका प्रभाव देश के कोने-कोने में प्रत्येक क्षेत्र में पहुँच गया है और स्थिति अत्यंत बीभत्स हो गयी है निसर्गतः ऐसी स्थिति में प्रत्येक निष्ठावान् ईमानदार और प्रबुद्ध व्यक्ति सद्‌गुणमूलक विचारों में आस्था रखने को बाध्य हो गया है उक्त पृष्ठभूमि में यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि इस युग में सांप्रदायिक राजनीतिक अतिरिक्त सैद्धान्तिकता राजनीतिक कदाचित् राष्ट्र का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न बन गयी थी। सांप्रदायिकता तात्कालिक थी परन्तु सिद्धांतों का यह संघर्ष दर्शन तथा मनोविज्ञान के स्पष्ट पर चल रहा था। इस संघर्ष में एक ओर साम्यवाद तथा उसी प्रकार की टोटे लिरटियन व्यवस्थाएँ भी और दूसरी ओर गांधीवाद सर्वोदय तथा समाजवाद के आदर्श थे।[1]

इस प्रकार के मंतव्य इस तथ्य का निदर्शन करते हैं कि स्वातंत्रोत्तर भारत में एक नया राजनैतिक दौर आरम्भ हो गया था जिसका प्रमुख ध्येय वर्गहीन शोषण युक्त समाजवादी समाजवाद की स्थापना करना था। डॉ.रामस्वरूप चतुर्वेदी गोपालसिंह के शब्दों में इन नये राष्ट्रीय लक्ष्य के संदर्भ में गतानसंगत संस्कारों रूढ़ियों, सामाजिक कुरीतियों और पिछड़ेपन तथा विदेशी दासता के मानसिक, प्रशासनिक एवं सामाजिक अवशेषों में स्वतंत्र, सम्मानित और सुखी राष्ट्र के रूप में राष्ट्रीय प्रगति के नवनिर्माण की नेतना आज भी प्रधान राष्ट्रीय चेतना है जो सारे भारतीय जीवन को अनुप्रमाणित कर रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का राष्ट्रीय जीवन राज्यों के विलीनीकरण, जमींदारी प्रथा के अंत अस्पृश्यता निवारण बिल, भूमिसुधार, सहकारी खेती, पंचवर्षीय योजनाएँ तलाक बिल हिन्दू कोड बिल,

---

1 हिन्दी नव लेखन, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ.सं. - 38

तटस्थता, पंचशील और सह-अस्तित्व पर आधारित विदेश नीति विश्व शान्ति में सक्रिय सहयोग आदि एक के बाद एक उठे। राष्ट्रीय तथा साम्प्रदायिक दंगों तथा तटशून्य समस्याओं, कश्मीर पर पाकिस्तानी आक्रमण तथा उत्तरी सीमा पर साम्यवादी चीन के आक्रमण, गतानुगत मान्यताओं और संस्कारों, आन्तरिक वर्गहितों और स्वार्थी तथा विरोधी विचारों के टकराव अनावृष्टि के दैवी प्रकोपों आदि के अवरोधों के परस्पर संघर्ष का जीवन है।[1] इस प्रकार की विचार धाराओं से यह स्पष्ट इंगित होता है कि आलोच्य काल राजनैतिक जागरण की दृष्टि से तो अवश्य महत्व रखता है परन्तु इस युग में स्वरूप और उच्च राजनैतिक आदर्शों का स्थान भ्रष्टाचार युक्त निष्कृष्ट राजनीति ने ग्रहण कर लिया जो यथावत उपन्यासों में भी प्रतिपादित हुई।

**आर्थिक पृष्ठभूमि:-**

स्वतंत्रता के पश्चात् के सामने अनेकों आर्थिक चुनौतियाँ आई। सदियों से भारत एक कृषिप्रधान देश रहा है। कृषि की प्राचीन व्यवस्था के अनुसार संयुक्त परिवार की प्रथा भी चलती रही है। आधुनिक युग में औद्योगिक विकास के कारण पारिवारिक व्यवस्था के संयुक्त रूप का विघटन होने लगा और उसके स्थान पर एकाकी परिवार दिखाई देने लगे। इसी के साथ वे अपने पैतृक व्यवसाय को छोड़कर बनाने के कारण भी एक बड़ी संख्या में देश की आजादी इधर से उधर हुई। महात्मा गाँधी के हरिजन उद्धार आन्दोलन एवं केन्द्रीय तथा प्रदेशिक सरकारों की नीति के कारण आरक्षित सेवा व्यवस्था का सूत्रपात हुआ। नौकरियों में वेतन की असमानता और पूँजीवादी विसंगतियों ने वर्गभेद का विकास किया विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्रीयकरण की नीति के कारण तथा सहकारी संगठनों को सरकारी प्रोत्साहन मिलने कारण भी आर्थिक स्थिति में सुधार का प्रयास किया गया। बड़ो उद्योगों, ग्रोमोद्योगों एवं गृह

---

1 साहित्य परिचय, आधुनिक साहित्य विशेषांक, पृ.सं.-182

उद्योगों के साथ हस्त कला को संरक्षण दिया गया। श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए समय-समय पर अनेक कानून बनाये गये। देश की चतुर्मुखी प्रगति के लिए पंचवर्षीय योजनायें कार्यान्वित की गयी। जमींदारी उन्मूलन करके कृषकों को शोषण से मुक्त किया गया। अस्तुष्ट जनता अपना विरोध आन्दोलनों और हड़तालों के माध्यम से व्यक्त करने लगी। सन् 1953 में धर्मपुर के आयरन एण्ड स्टील वर्क्स में एक महत्वपूर्ण हड़ताल हुई। आसाम और त्रावनकोर कोचीन के चाय बागानों में भी हड़तालें हुई। सन् 1955 में पुनः स्थिति खराब होने लगी। एक तो महँगाई दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी, दूसरी ओर खाद्य सामाग्री की समस्या भी गंभीर रूप धारण करने लगी थी उद्योगपतियों ने घटते हुए लाभ को देखकर मजदूरों की छटनी करनी शुरू कर दी। सन् 1953 में अतिक्रमण को लेकर कानपुर के वस्त्र उद्योगों के श्रमिकों ने एक महत्वपूर्ण हड़ताल की। 80 दिनों की अवधि तक यह हड़ताल चली और इसमें लगभग 45000 श्रमिकों ने भाग लिया। सन् 1956 में बंबई, अहमदाबाद कलकत्ता में राज्यों के पुनर्गठन के प्रश्न को लेकर आम हड़ताल हुई। इसी वर्ष नागपुर, कानपुर, सहारनपुर व पश्चिमी बंगाल की 30 खानों, कारखानों आदि में हड़ताल हुई। पश्चिमी बंगाल गन्दी बस्तियों का भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने 2 अक्टूबर 1952 को श्रमिकों को निवास स्थान का निरीक्षण करते हुए उन्हें नरक कुण्ड कह डाला।[1]

वस्तुतः आर्थिक दृष्टिकोण से आज का युग पूँजीवाद और औद्योगिक का युग है इसलिए कतिपय विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि विभिन्न योजनाओं का सफलीकरण तब तक नहीं हो सकता जब तक की हम युग जीवन की वास्तविकता को न समझ में और अनावश्यक रूप से अंग्रेजी सरकार को दोष न दें। क्योंकि अंग्रेजी व्यापारियों द्वारा वह शोषण, जो भारतीय आर्थिक दुर्दशा का कारण बना, उसने यहाँ

---

1 श्रम की समस्याएँ एवं व्यावहारिक सुरक्षा, श्री आर.पी.सतसैय, पृ.सं.- 468

नवीन राष्ट्र के रूप में हमारा नव निर्माण भी किया।[1] जब तक श्रमिकों की इस स्थिति को सही रूप में नहीं समझा जायेगा उनमें विद्रोह बढ़ता जायेगा और हड़तालें होती रहेगी। सन् 1962 में 1941 हड़तालें हुई। सन् 1966 का वर्ष तो बन्द का वर्ष ही रहा, क्योंकि इस वर्ष सभी क्षेत्रों में भयंकर हड़तालें व ताले बन्दियों हुई। इसका मुख्य कारण यह था कि फरवरी सन् 1967 में आम चुनाव होना था। अतः राजनैतिक दलों ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए विभिन्न वर्गों का खूब दुरूपयोग किया।[2] निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आलोच्य काल में सर्वक्षेत्रीय प्रयासों के होते हुए भी बेरोजगारी हड़तालें, आन्दोलन, घूसखेरी, आर्थिक असमानता और आर्थिक अपराधों में निरंतर वृद्धि होती जा रही है, जिनका यथार्थपरक चित्रण युगीन उपन्यासों में दृष्टिगत होता है।

**सांस्कृतिक पृष्ठभूमि:-**

सांस्कृतिक दृष्टिकोण से स्वातंत्र्योत्तर युग को संस्कृति काल भी कहा जा सकता है। इसका कारण यह है कि इस युग में एक ओर तो प्राचीन भारतीय संस्कृति की सुरक्षा और पुनरूत्थान का प्रयास हो रहा था और दूसरी ओर आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति का अनुगमन भी उतनी ही तीव्रता से हो रहा था। इसी के मध्य एक अन्य सांस्कृतिक परंपरा मार्ग भी प्रशस्त हो रहा था। जिसे समन्वयवादी संस्कृति का कट्टर रूप था और न पाश्चात्य संस्कृति का। इसके विपरीत यह एक मध्यम वर्गीय स्थिति थी, जिसका विकास राष्ट्रीय स्तर पर हो रहा था। इसी के समानान्तर वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रगति के फलस्वरूप भी संस्कृति का क्षेत्र प्रभावित हो रहा था, भारतीय संविधान में सांस्कृतिक एकता की रक्षा के सभी प्रदेशों, जातियों धर्मों और वर्गों की समान अधिकार देने की घोषणा की गयी है। देश की युवा पीढ़ी ने नव जागरण से

---

1 ब्रिटेन ऐण्ड इण्डिया, श्री हुमायुँ कबीर, पृ.सं.-50

2 श्रम की समस्याएँ व सामाजिक सुरक्षा, श्री.ए.सी. सक्सेना, पृ.सं. -466

प्रेरित और प्रभावित होकर अभिनव सांस्कृतिक विकास का दायित्व भी स्वीकारा है। डॉ.रघुवंश ने एक लेख में इस पीढ़ी की एक निम्न मनोवृत्ति का उद्घाटन इन शब्दों में किया है। "विदेश के प्रभाव से इन्होंने केवल इतना ग्रहण किया है कि एक प्रकार की नंगी साहकारिता से शक्ति का प्रदर्शन किया जा सकता है। अन्यथा उनकी अपने देश और अन्ततः देश और समाज की प्रगति की गहरी आसक्ति इसी स्तर पर सृजनात्मक व्यक्तित्व की खोज आदि की मनोवृत्तियों को अपने देश के नये समाज के रचना के साथ भली भाँति समझा जा सकता है इस प्रकार के व्यापक युवक वर्ग खाली जीने के माँग करता है। वह किसी सामाजिक राष्ट्रीय या मानवीय मूल्यों के दायित्व के चक्कर में नहीं पड़ना चाहता है।"[1]

इस रूप में देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् संस्कृति के क्षेत्र में भारतीय पाश्चात्य एवं समन्वित संस्कृतियों का समानांतर विकास परिलक्षित होता है। दूसरे शब्दों में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जब देश में एक धर्मनिरपेक्ष गणतंत्र राज्य की स्थापना हुई तो जनता ने धार्मिक क्षेत्र में भी जागरूकता का परिचय दिया। शिक्षित वर्गों ने विशेष रूप से प्राचीन रूढ़ियों का खंडन किया और सत्य, अहिंसा, त्याग आदि को आध्यात्मिक सूत्रों की अर्थहीनता का अनुभव किया। पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति का मोह स्वतंत्रा के पश्चात् भी नहीं टूट सका। डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र के शब्दों में "यदि विश्व के वस्तु सौंदर्य, कर्म सौन्दर्य और जीवन के सौन्दर्य में रस लेने की क्षमता पैदा कर ली जाय तो जो जितनी अधिक सफलता से ऐसा सौन्दर्य बोध कर सकेगा, वही विश्व की दृष्टि में उतना ही अधिक सामान्य होगा।"[2] वस्तुतः इसी स्थिति के फलस्वरूप संस्कृति के क्षेत्र में सामंजस्यवादी विचारधारा का अभ्युदय हुआ। सत्यव्रत विद्यालंकार ने यह स्पष्ट इंगित किया है कि "समन्वय और सामंजस्य की भावना भारतीय संस्कृति की एक उसी संस्कृति की विशेषता का

1 धर्मयुग, 16 जुलाई सन् 1967 खाली जीने की माँग, डॉ.रघुवंश, पृ.सं.- 26

2 भारतीय संस्कृति, डॉ.बलदेव प्रसाद मिश्र, पृ.सं. -167

परिचायक है। ब्रिटिश शासन के कारण भारत को पाश्चात्य संसार के भौतिकवाद से परिचित होने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ। पर उसे उसने अपने अध्यात्म द्वारा यदि भारत एक नयी संस्कृति के विकास में समर्थ हो सका तो यह संस्कृति संसार के सुख व शान्ति में सहायक होगी यह निर्विवाद सत्य है।"[1] इस रूप में यह युग किसी सीमा तक सांस्कृतिक उन्मेषकारी था, क्योंकि इसमें मानवतावादी संस्कृति का प्रसार हो रहा था। यह संस्कृति मार्क्सवाद से अधिक प्रभावित थी। वह एकांगी विचार न करके सभी वर्गों का ऐतिहासिक विकास के संदर्भ में देखता है। मार्क्सवाद उन वर्गों की रची हुई संस्कृति को आँख मूँदकर ठुकराता नहीं है, न हवा में नयी मानव संस्कृति की रचना करता है। वर्ग युक्त समाज में वर्ग के आधार पर मनुष्य ने जितना भी ज्ञान प्राप्त अर्जित किया है मार्क्सवाद उसका मूल्यांकन करके उसे विकसित करता है।[2] इस रूप में आलोच्यकाल की संस्कृति संक्रान्ति के चक्रव्यूह से निकल कर अभिनव विकास की दिशा में प्रयासशील है और तदयुगीन उपन्यासकारों ने भी उसी रूप में उसकी अभिव्यक्ति की है।

## स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों का स्वरूप और प्रवृत्तियाँ:-

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों का स्वरूप विविधता मूलक है। इस युग में यदि एक ओर पुरानी पीढ़ी के बहुसंख्यक उपन्यासकार रचनात्मक लेखन में सक्रिय थे, तो दूसरी पीढ़ी के अनेक उपन्यासकार भी अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय दे रहे थे। पुरानी पीढ़ी के उपन्यासकारों में पंडित बेचन शर्मा उग्र, भगवती प्रसाद बाजपेयई सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, गोविंद वल्लभ पंत, वृंदावन लाल शर्मा, चतुरसेन शास्त्री, भगवती चरण वर्मा, यशपाल, राहुल सांस्कृत्यायन, उषादेवी मिश्रा, उदयशंकर भट्ट, इलाचन्द जोशी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रांगेय राघव, मन्मथ नाथ

---

1 भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, श्री सत्यकांत विद्यालंकार, पृ.सं. - 660

2 प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं, डॉ. रामविलास शर्मा, पृ.सं. -76

गुप्त। ये उपन्यासकार मुख्य रूप से इन प्रवृत्तियों के क्षेत्र में कार्यरत थे। जो विगत युगों के उद्‌भूत और विकसित हो चुकी थी। इनमें सांस्कृतिक, धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक और मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियाँ इस युग में विकासशील रही है और उन्हीं के समानांतर आंचलिक प्रवृत्ति का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ग्रामांचलों और नगरांचलों आधार बनाकर स्थानीय रंग और क्षेत्रीय विशेषताओं के साथ हिन्दी में आंचलिक उपन्यासों की परंपरा का क्रांतिकारी रूप आरम्भ हुआ। फणीश्वर नाथ रेणु ने बिहार के विभिन्न आंचलों को आधार बनाकर "मैला आँचल", "परती परिकथा" तथा "जुलूस" आदि उपन्यासों की रचना की। शैलेश भटियानी, राजेन्द्र अवस्थी, तृषित, हिमांशु श्रीवास्तव उदयशंकर भट्ट, श्री लाल शुक्ल राही मासूम राजा आदि उपन्यासकारों ने अनेक आँचलिक कृतियों की रचना की। विगत युगीन औपन्यासिक प्रवृत्तियों के विकास तथा उपन्यास के विभिन्न उपकरणों के क्षेत्र में प्रयोग करने की दृष्टि से भी अनेक नवीन उपन्यासकारों के नाम उल्लेखनीय है। जिनमें, अज्ञेय, मोहन राकेश, अमृतराय, शान्तिप्रिय द्विवेदी, देवेन्द्र सत्यार्थी, पहाड़ी अंचल, आनंद प्रकाश जैन, नरेश मेहता, नागार्जुन, विश्वंभरनाथ, मानव, प्रभाकर माचवे, कमल, जोशी, विष्णु प्रभाकर, उषा प्रियंवदा, निर्मल वर्मा, सोमावीरा, मुदुला गर्ग, मन्नू भण्डारी, रमेश बक्षी, शरदा देवडा आदि प्रमुख हैं। उनमें से वृंदावन लाल वर्मा, चतुर सेन शास्त्री, राहुल सांस्कृत्यायन, उषा देवी मित्रा आदि लेखकों ने न्यूनाधिक रूप में आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परंपरा का ही अनुगमन किया है। प्रेमचन्द के परवर्ती काल में हिन्दी उपन्यास के विकास की नयी दिशाएँ मनोवैज्ञानिकता और बौद्धिकता से प्रभावित है। भगवती चरण वर्मा, उदयशंकर भट्ट, यशपाल, इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र कुमार, हजारी प्रसाद द्विवेदी, उपेन्द्रनाथ "अश्क", मन्मथनाथ गुप्त, अज्ञेय, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव देवराज, विष्णुप्रभाकर, रामवृक्ष बेनीपुरी, गुरूदत्त अमृत राय तथा मोहन राकेश आदि के समानांतर ही नयी पीढ़ी के बहुसंख्यक उपन्यासकारों के नाम भी उल्लेखनीय हैं। निरूपमा सेवती,

आनंद प्रकाश जैन, ज्योसना मिलन, धर्मेन्द्र गुप्त, नरेन्द्र कोहली, उषा प्रियंवदा, मन्नू भण्डारी, श्रीलाल शुक्ल, शीला कुमार लोम राजस्थानी याम विगल, अशोक अग्रवाल, उत्तम कुमार, प्रकाश वर्मा, सुनीता जैन, गिरिराज किशोर, नसीम अफरीदी तथा निर्मला जैन आदि इनमें प्रमुख हैं। इस रूप में स्वातंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यास की पृष्ठभूमि और परंपरा की व्यापकता के कारण उसका स्वरूप भी बहुपक्षीय है।

**मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की प्रवृत्ति:-**

आलोच्य युगीन उपन्यासकारों ने जिन विभिन्न औपन्यासिक प्रवृत्ति भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है इस युग के उपन्यासकारों पर पाश्चात्य मनोविश्लेषकों का व्यापक प्रभाव पड़ा है। उन्होंने प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों विशेष रूप से फ्रायड युग, एडला, गेस्टाल्ट, वाटसन, मैकड्गल आदि से प्रेरणा प्राप्त का युग जीवन की पृष्ठभूमि में मानव मनसा के उन प्रतिक्रियात्मक संभावनाओं को प्रस्तुत किया है जो विभिन्न परिस्थितियों में उत्पन्न होती है। इन मनोवैज्ञानिकों में उत्पन्न होती है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य के चेतन मन के समान ही उसके अर्द्धचेतन एवं अचेतन मन भी क्रियाशील होते हैं। मानसिक अंतर्द्वन्द्व ही बाह्य प्रतिक्रियाओं की नियामक होता है। अचेतन मन में स्थित इच्छाओं को फ्रायड ने यौन वासनाओं, एडलर ने हीन भावनाओं तथा युग ने जीवनच्छाओं की संज्ञा प्रदान की है। युगीन मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने इस सिद्धान्तों को व्यवहारतः स्वीकार है और अपने उपन्यासों में मानव मन की अशान्ति, असंतोष, हताशा, कुंठा विस्मृति संघर्ष आदि मनोवृत्तियों का चित्रण किया है।

स्वातन्त्रोत्तर युगीन उपन्यासकारों ने इस धारणा का समर्थन किया है कि मनोविज्ञान मन की चेतन और अचेतन क्रियाओं का निरीक्षण करता है।[1] इसके साथ

1 सामान्य मनोविज्ञान, श्री लाल जी राम शुक्ल, पृ.सं. 4

ही हमारे व्यक्तित्व अथवा मन का वह अंश जिसका विकास रूका हुआ हो और जो बराबर किसी न किसी पिछड़ी दशा में पड़ा रहे वह है अचेतन मन। जितनी अनैतिक, अधार्मिक, असामाजिक इच्छाएँ तथा व्यवहार हम बचपन में करते हैं जिन्हें बड़े होकर हम स्वयं अपने कहने से इन्कार करते हैं। यह अवचेतन मन के निवासी होते हैं।[1] इस दृष्टि से इन्कार करते हैं। यह इस दृष्टि से नयी पीढ़ी के उपन्यासकारों ने अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों का केवल अनुकरण ही नहीं किया है बल्कि अपनी औपन्यासिक शैली परिमार्जित और परिष्कृत कर उसे वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया है। इस संदर्भ में रामकृष्ण कृत "बहके कदम", चन्द्रदेवसिंह कृत "आत्महत्या से पहले",रमेश बक्षी कृत "आखरह सूरज के पौधे", राजकमल चौधरी लिखित "नदी बहती थी" सुरेश सिन्हा कृत "सुबह अंधेरे पथ पर" आदि उल्लेखनीय है। इन उपन्यासकारों ने मानव मन के कुंठित और दमित स्वरूप की प्रतिक्रियात्मक संभावनाओं का उद्घाटन किया है आज का मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार मनुष्य को उसकी अवन्ति, असन्तोषद्ध, झूठा विद्रोह विकृति, नरोशा और विस्कृति आदि को माध्यम से उसके संपूर्ण रूप में विश्लेषित करने का प्रयत्न करने का प्रयत्न करता है।[2] आधुनिक युग में यूरोप में मनोवैज्ञानिकों ने मानव मन की चेतन और अचेतन क्रियाओं का अध्ययन अवरोक्ष अनुभूति के द्वारा तथा उसकी बाह्य क्रियाओं का निरीक्षण करके किया है।[3] इस संदर्भ डॉ.देवराज उपाध्याय ने लिखा है कि "अनुभूति का विषयगत तथा आत्मनिष्ठ पर आग्रह लिखित किसी कृति में पायेंगे तो हम उसे मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहेंगे।[4] आधुनिक कथा-साहित्य ने यूरोप में होनेवाले मनोविश्लेषण शास्त्रीय अनुसन्धान कार्य से व्यापक प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण किया है फ्रायड, एड्लर, युंग, गेल्टाल्ट, वाटसन, तथा मैकडूगल आदि मनोविश्लेषणवादियों ने चेतन, अचेतन और अर्द्धचेतन स्तरों

---

1 रोगी मन, अनुवादक, श्री एस.एन.मुंशी, पृ.सं. -87
2 द नावेल एण्ड द पीपुल, श्री रास् फाक्स, पृ.सं. -20
3 सामान्य मनोविज्ञान, श्री लाल जी राम शुक्ल, पृ.सं.-4
4 आधुनिक कथा-साहित्य और मनोविज्ञान, डॉ. देवराज उपध्याय, पृ.सं. -19

का सूक्ष्म विश्लेषण किया है और इस विवेचन से संबंधित सिद्धान्तों का व्यावहारिक आरोपण स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में भी दृष्टिगत होता है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में विभिन्न शिल्प रूपों का विकास हुआ है। डॉ. शशिभूषण सिंहल का विचार है कि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पात्रों का मानसिक गठन एवं तत्संबंधी प्रक्रिया उपन्यास के अब और इति दोनों हैं। परिस्थितियाँ यहाँ पात्र के मन से घात प्रतिघात करके उससे एकाकार नहीं हो पाती, वरन् पृथक सत्वा के रूप में विद्यमान रहती है वे चलकर करते हुए रंग बिरंगे प्रकाश स्तम्भ की भाँति पात्र मानस को विभिन्न कोणों से प्रकाशित उद्घाटित करते हैं यहाँ घटनाएँ मानव मन का प्रतिफलन नहीं, मानसिक क्रिया के अंशिक परिचायक और उसकी उपसंहार मात्र है।[1] डॉ. रणबीर गंगा ने भी इस मत की पुष्टि करते हुए लिखा है कि "मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार अपने पात्र के अन्तःकरण के संपूर्ण स्थान, उसकी आस-पास की परिस्थितियों की उसके मन पर होनेवाली प्रतिक्रिया, उस प्रतिक्रिया को उसके अन्तःकरण या संस्कार डालने की शक्यता और विभिन्न प्रसंगों में उसके अंतःकरण में उत्पन्न विचारों और प्रकट में होनेवाली विकारों के कम या अधिक होने का पूरा-पूरा चित्रण करना होगा।[2]

तथ्यतः स्वातंत्र्योत्तर युगीन मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के स्वरूप का अध्ययन करने पर इस तथ्य की अनुभूति होती है कि उसके परिणाम स्वरूप सामाजिक चेतना की व्यंजना क्षीण पड़ जाती है।[3] उपन्यासकार सुरेन्द्रपाल कृत "लोक लाज खोई" जीवन शुक्ल कृत "पाये अपनाये", श्री चन्द्र अग्निहोत्री "कुँआ और लपटे" ओम प्रकाश दीपक कृत "कुछ जिन्दगियाँ बेमतलब", मधुकर गंगाधर लिखित "मोती वाले हाथ" आदि उपन्यासों में मध्यवर्गीय प्रबुद्ध व्यक्ति की मानसिक छटपटाहट अंकित

---

1 हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ, डॉ.शशिभूषण सिंहल, पृ.सं.-107

2 हिन्दी उपन्यास में चरित्र चित्रण का विकास, डॉ.रणवीर रांग्रा, पृ.सं.-19

2 हिन्दी उपन्यास, डॉ. सुषमा धवन, पृ.सं. 3ऊ 38

है। यह प्रबुद्ध वर्ग आत्म स्वातन्त्र्य हेतु संघर्षशील है। यशपाल लिखित "बारह घंटे" राजकमल चौधरी लिखित "एक घिसा हुआ चेहरा", श्याम व्यास लिखित "एक प्यासा तालाब", मन्नू भंडारी लिखित "आपका बंटी" उषा प्रियंवदा लिखित "पचपन खम्बे लाल दीवारें", अज्ञेय लिखित "अपने अपने अजनबी" भगवती चरण वर्मा लिखित "रेखा" अटल दीपक लिखित एक बिम्ब तीन परछाइयाँ आदि बहुसंख्यक उपन्यास इसी प्रवृत्ति के है और आज के महानगरों में व्याप्त विसंगतियों से प्रेरित मानव का जीवन का यथार्थ चित्रण करते हैं।

इस संदर्भ में यहाँ पर ये ज्ञातव्य है कि आलोच्य युगीन महिला उपन्यास लेखनों सर्वाधिक संख्या मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की है क्योंकि उन्होंने युग जीवन की चेतना के विकास के समानांतर नारी जीवन की प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाओं का निदर्शन किया। इस संदर्भ में "उषा प्रियंवदा", "सोमाबीरा, राजी सेठ, मन्नू भंडारी आदि की औपन्यासिक रचनाओं से आगे यथास्थान सोदाहरण विश्लेषण किया जायेगा।

**सांस्कृतिक उपन्यास की प्रवृत्ति** :-

आलोच्यकालीन हिंदी उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में जो अन्य औपन्यासिक प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, उनमें सांस्कृतिक उपन्यासों की प्रवृत्ति भी प्रमुख है। ये उपन्यासकार सांस्कृति के व्यापक रूप को ग्रहण करते हैं जो पूरे जीवन को प्रकाशमान करता है। उन्होंने भारतीय संस्कृति के द्वारा जनता को नयी प्रेरणा दी है और अपनी कृतियों द्वारा अंतः मानस तक इस संदेश को पहुँचाया है कि पूर्ण रूप से पश्चिमी सभ्यता में रंग जाना, मिल जाना हमारे लिए सर्वथा उचित नहीं है। सत्यकेतु विद्यालंकार कृत "अन्याय" उपन्यास में यह स्पष्ट किया गया है कि एक पात्र वीरेंद्र, जो पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के अनुगम मन की प्रवृत्ति पर गंभीरतापूर्वक विचार करने पर इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि भारतीय संस्कृति के सामने पश्चिमी

संस्कृतिहीन और अग्राह्य है। राधिका रमण प्रसाद सिंह कृत उपन्यास "राम और रहीम" के पश्चिमी सभ्यता के प्रतीक क्लबों के घृणित एवं नाटकीय जीवन का अश्लील चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसमें अपने शरीर का प्रदर्शन करनेवाली स्त्रियों पर तीव्र प्रहार है जो अपनी सोसाइटी में अपने रंग-रूप और शानोशौकत को बनाये रखने के लिए अपना प्रेम, अपना पति तथा अपनी मर्यादा तक का त्याग कर देती है। इसमें विन्सी सलीम के साथ भागकर दूसरे शहर आ जाती है। जब तक सलीम के पास धन होता है उसके साथ उठती बैठती नाचती गाती है वह क्लब जाती है तो वहाँ की जान होती है वह एक क्षण भी स्थिर नहीं रहती, तितली सी उड़ती फिरती है।"[1] गुरुदयाल सिंह कृत उपन्यास "मढ़ी का दीवा" इसी क्रम का उल्लेखनीय उपन्यास है। इस उपन्यास में भारतीय संस्कृति, परंपराओं तथा भारतीय वेशभूषा आदि के सहज सौंदर्य एवं मोहक आकर्षण का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। भारतीय संस्कृति के अंतर्गत नयी नवेली दुल्हन का परंपरागत चित्र प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ "निम्मे की बहू लजाकर दुहरी-तिहरी हो गयी। जब एक हाथ से नंगे मुँह को ढापते हुए वह ओढ़नी खींचकर घूँघट निकालने लगी तो उसके चेहरे का आधा भाग पीछे खड़े जसबीर को दीख गया। ऐसे ही जैसे बिजली कौंध गयी हो। जसबीर का शरीर सुन्न सा हो गया। इतना थोड़ा गोरा माथा, इतनी बड़ी आँखें और ऐसी लम्बी पलकें कभी न देखी थी। स्त्री में ऐसा कोई आकर्षण होता है, जिसकी तीव्रता को पुरुष सहन भी नहीं कर पाता। जसबीर ऐसा केवल आज ही अनुभव कर पाया था। वह वहीं खड़ा-खड़ा जैसे-जैसे मंत्रमुग्ध सा हो गया। आँखों के सामने कई तरह की अजीब परछाइयाँ काँपने लगीं।"[2]

इसी क्रम में अक्षय कुमार कृत उपन्यास "युग पुरुष राम" में जगदम्बा सीता के रूप में भारतीय नारी के परंपरागत सांस्कृतिक उदात्त, आदर्श, त्याग, सहनशीलता

---

1 राम और रहीम, राधिका रमण प्रसाद सिंह, पृ.सं.276

2 मढ़ी का दिया, श्री गुरुदयाल सिंह, पृ.सं.28

एवं पतिव्रत धर्म की ही प्रतिष्ठा है। राजेंद्र सिंह कृत "युगान्तर" में भी भारतीय संस्कृति के गौरव का सजीव चित्रण है। इसमें उपन्यासकार की यह धारण स्पष्ट हुई है कि भारत अनेक जातियों, धर्मों एवं संस्कृतियों का देश है। अतएव यहाँ की संस्कृति इन सभी का सामंजस्य करने पर ही विकसित हो सकती है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने एक अंग्रेज़ पात्र से कहलाया है "मैं हाल ही में हिंदुओं के त्यौहार होली में शामिल हुआ। वह हम लोगों के "एप्रिल फूल" से बहुत मिलता जुलता है। किंतु उससे कहीं अधिक दिलचस्प है इस गरम मुल्क में पानी का बहुत अधिक प्रयोग होना। बहुत से लोग तो दिन में तीन बार नहाते हैं। होली पूरे दिन भर नहाते ही रहते हैं। किंतु वे मामूली पानी से नहीं रंगीन पानी से नहाते हैं। और दूसरों को भी नहलाते हैं। दूसरा अंतर यह भी है कि हम लोग कपड़े उतारकर गुलाल खेलते हैं और यह लोग कपड़ों के साथ रंग भरे होज में डुबा देते हैं। जिससे देखनेवालों को बहुत आनंद आता है जिस तरह होली का त्यौहार आनंदमय है, उसे विपरीत मोहरम उतना ही विषादमय है। उनकी शोक गीत मुर्सिया सुनकर मेरी आँखों में आँसू आ गये थे। इन दोनों त्यौहारों में विशेषता यह है कि हिंदू और मुसलमान दोनों मिलकर उन्हें मनाते हैं होली में सभी प्रेम के रंग में रंग जाते हैं। ऐसा दृश्य विलायत में कभी देखने को नहीं मिलता। मुझे भी लोगों ने बैर-भाव भुलाकर अपने में शामिल कर लिया और मैं उन्हीं के रंग में रंग गया हूं।"[1] बालभद्र ठाकुर लिखित देवताओं के देश में पर्वतीय अंचल की परंपरा वेशभूषा चित्र प्रस्तुत करती है। बालों और चहरे को तेल से स्निग्ध बनाकर जूड़ा बाँध और जिस पर एक दूसरा ऊनी पट्ट जो अपेक्षाकृत नया साफ भी था।"[2]

मुहम्मद इस्माइल अन्सारी कृत "अंचला" नामक उपन्यास मानवता के चरम विकास एवं मानव जाति की सुखसमृद्धि के लिए विभिन्न संसकृतियों में पारस्परिक

---

1 युगांतर, श्री राजेंद्र सिंह, पृ.सं.14

2 देवताओं के देश में, श्री बलभद्र ठाकुर, पृ.सं.376

समन्वय की भावना की समर्थक है। इसमें उपन्यासकार ने दो विभिन्न सांस्कृतिक वातावरणों में पले प्राणियों के वैवाहिक बंधन में बंधकर सुखी एवं समृद्ध दाम्पत्य जीवन की कल्पना को साकार किया है। उषा का विवाह नज़ीर के साथ हो गया था। भारतीय संस्कृति से वह प्रभावित हो चुकी थी। उसके इस विवाह से न केवल दूसरों को संतोष था, बल्कि वह उसे ठीक समझने लगी थी। नजीर का व्यक्तित्त्व एक सागर की तरह था जिसमें उषा एक गंभीर नदी की भांति समा गयी।"[1] इसी तत्व का दर्शन रजनी पनिकर लिखित उपन्यास "एक काली लड़की" में भी दृष्टिगत होता है कि भारतवासियों के लिए अंग्रेजी सभ्यता का आधुनिकीकरण किसी भी स्थिति में हितकर नहीं है। राजेंद्र मोहन अग्रवाल कृत "उलझी लकीरें" में भी उपन्यासकार ने भारतीय संस्कृति के प्राचीन स्वरूप, मान्यताओं एवं जीवन मूल्यों का प्रतिपादन किया है एवं भारतीय नारी के लिए इन्हीं निर्देशक मूल्यों की श्रेष्ठता स्वीकार करते हुए उसके साथ चलने की प्रेरणा दी है। "इसकी मैं अपेक्षा नहीं करता। यह मेरा अंतिम आदेश है। नारी की शोभा चारदीवारी में है। जब तक वह उसके अंदर है, लक्ष्मी है, राजरानी है। इसके बाहर उसकी स्थिति कटी पतंग की तरह है, जो निराधार नहीं जा रही है। इतिहास साक्षी हे। सीता जब तक लक्ष्मण रेखा के अंदर रही, कोई उनका बाल बाँका भी करने का साहस नहीं कर सका था। परंतु उसके बाहर पग धरते ही जो कॉड हुए, वे जगत विख्यात है।"[2] इस प्रकार इन उपन्यासकारों ने प्राचीन संस्कृति के शाश्वत मूल्यों के प्रति अपनी प्रतिष्ठा तो व्यक्त की है। परंतु उसके साथ ही रूढ़िवादी परंपराओं के प्रति तीव्र विरोध की भावना भी इनमें परिलक्षित होती है। इन उपन्यासकारों ने भारतीय संस्कृति की धरोहर को और अधिक समृद्ध कर नई पीढ़ी को हस्तांतरित करने में विशेष योग दिया है जो युगों तक आनेवाली पीढ़ियों को सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित करती रहेगी।

---

1 अंचला, श्री मोहम्मद इस्माइल अन्सारी, पृ.सं.45

2 उलझी लकीरें, श्री राजेंद्र मोहन अग्रवाल, पृ.सं.45

**ऐतिहासिक उपन्यासों की प्रवृत्ति :-**

स्वातंत्र्योत्तर युगीन प्रमुख उपन्यासों की प्रवृत्ति का विवेचन करना भी उल्लेखनीय है। ऐतिहासिक उपन्यासों में जिन कथासूत्रों का विवेचन किया गया है वे मुख्यतः राजपूत युग, मुगल युग एवं ब्रिटिश युग की गौरवपूर्ण घटनाओं का है जो अतीत को दर्शाता है। इन उपन्यासों का अनेक प्रकार से श्रेणीकरण किया जा सकता है। वे कुछ उपन्यास अतीत को प्रस्तुत करनेवाले हैं। कुछ ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करते हैं कुछ उपन्यास ऐतिहासिक घटनाओं और वातावरण पर आधारित हैं। कुछ पात्र और कथा पर आधारित उपन्यास है ये सभी उपन्यास हैं। इस प्रकार के विभिन्न उपन्यासकारों के विभिन्न उपन्यास उपर्युक्त श्रेणियों से ही संबंधित हैं। यादवेंद्र चंद्र शर्मा चंद्र कृत उपन्यास सन्यासी और सुंदरी भौतिक वादी संस्कृति के स्थान पर अध्यात्मपरक संस्कृति की प्रतिष्ठा करता है। डॉ.रांगेय राघव कृत "मुर्दों काटीला" नामक उपन्यास प्रागैतिहासिक युग पर आधारित है। इस उपन्यास में तदयुगीन सभ्यता और सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण करके आर्यों एवं द्रविडों के संघर्ष का चित्रण किया है। "राह न रुकी" उपन्यास में बौद्ध युगीन कथा सूत्र पर आधारित है जिसमें महात्मा गौतम बुद्ध के उपदेशों का निरूपण है। इसी श्रेणी का एक उपन्यास "मुक्तिदूत" वीरेंद्र कुमार जैन लिखित है जिसमें महावीर स्वामी के शास्वत संदेश का स्वर गूँज रहा है। जब आवेगी काली घटा नामक उपन्यास नाथ संप्रदाय की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हुए आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना के प्रयास में लिखा गया है कि डॉ.शशिभूषण सिंहल के अनुसार "अतीत का सूत्र संचय" और इन सूत्रों का विवेचन इतिहास और मानव जीवन परंपरा का अविच्छिन्न अंग है। मानव जीवन विगत, वर्तमान और भविष्य की कड़ियों से गढ़ी श्रृंखला के आश्रय से निरंतर गतिशील एवं विकासोन्मुख है। मानव जाति का अतीत चिंतन एवं विकासोन्मुख है अतीत सदा

मानव जाति को चिंतन की प्रेरणा देता और उसके वर्तमान जीवन में नवीन प्रयोग का मार्ग प्रशस्त करता है।

आलोच्ययुगीन अनेक उपन्यासकारों ने युग जीवन के यथार्थ की अर्थपूर्ण रूप में प्रस्तुत किया है। इतिहास में हमारी सह जीवंत प्रेरणा में सन्निहित है। जो हमारे सामाजिक जीवन तथा यथार्थबोध को आलोकित करती है। इस दृष्टि से वाल्मीकी त्रिपाठी लिखित "भुवन विजयम", उमाशंकर लिखित "कुणाल की आँखें", बसंत कुमार शायद दूत "बुद्धत्व की ओर" तथा यादव चंद जैन लिखित "टीपू सुल्तान" आदि उपन्यास भी उल्लेखनीय है। नयी पीढ़ी के उपन्यासकार भी इस प्रवृत्ति के द्योतक हैं जिसके आदर्श आज भी भारतीय नारी की प्रेरणा का श्रोत बने हुए हैं। उमाशंकर मिश्र लिखित "दिल पर एक दाग" इतिहास प्रसिद्ध नारी बेगम समरू के चारित्रिक आदर्शों का उदार उदाहरण है। शत्रुघ्न लाल शुक्ल लिखित "गहादित्य" छठीं शताब्दी का वातावरण प्रस्तुत करते हुए भारत के अतीत कालीन गौरव का परिचय देता है। इस संदर्भ में इस तथ्य का भी उल्लेख भी अनापेक्षित न होगा कि व्यावहारिक दृष्टिकोण से ऐतिहासिक उपन्यास अतीत युगों के जीवन का यथा तथ्य विवरण प्रस्तुत करता है। यह विवरण जहाँ एक ओर इतिहास के यथार्थ स्वरूप का बोध कराता है वहीं दूसरी ओर इन संकेतों को भी प्रस्तुत करता है। जिसके माध्यम से मानवता के भावी विकास की आधार भूमि निर्मित है। डॉ.रमेश कुन्तल मेघ ने इतिहास में निहित इसी प्रेरणा का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि इतिहास में हमारी प्रेरणा है जो हमारे सामाजिक जीवन तथा यथार्थबोध को आलोकित करती है। इतिहास केवल महान व्यक्तियों की ही जीवनियाँ नहीं है बल्कि उनमें उन लाखों करोड़ों गुमनाम लोगों के जीवन खंड भी शामिल हैं जिन्होंने इतिहास की मानवीय नेतना का सामान्यीकरण भी पाते हैं।[1] इस युग के कुछ अन्य उपन्यासकारों ने भी सांस्कृतिक एवं राजनैतिक आदर्शों का पोषण करते हुए विभिन्न ऐतिहासिक कथा

---

[1] नागरी प्रचारिणी पत्रिका सं.2021 वर्ष 69 अंक 3

सूत्रों का संयोजन अपनी रचनाओं में किया है जो सत्य, धर्म, नीति और आध्यात्म की अतीत की अनुक्षण धारणाओं पर आधारित है। डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ऐतिहासिक उपन्यासों में "कल्पना और सत्य" शीर्षक कृति की प्रस्तावना लिखते हुए अपना यह मन्तव्य प्रतिपादित किया है जो लेखक विभिन्न क्षेत्रों के लिए अनुसंधानों की आधुनिकतम प्रगति की उपेक्षा करके ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की चेष्टा करता है। वह सजीव पात्रों की रचना करते भी सहृदय पाठकों से रस बोध की आशा नहीं रख सकता। छोटी-छोटी बातों में भी सावधान रहना पड़ता है। सामान्य संबोधन शिष्टाचार के लिए प्रस्तुत शब्द और तत्कालीन अंधविश्वासों के जानेवाले काव्यांश की भी रसबोध में बाधक सिद्ध हो सकते हैं।[1]

स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिंदी ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य की प्रवृत्ति को जिन लेखकों ने समृद्ध बनाने में विशेष रूप से योगदान दिया है उनमें चतुरसेन शास्त्री का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से इस तथ्य का स्पष्टतः प्रतिपादित किया है कि इतिहास में निहित संकेत भावी मानवता के लिए प्रेरणा श्रोत के रूप में विद्यमान होती है और सही रस मग्नता भावी मनुष्य के लिए एक प्रेरक शक्ति होती है। उनका यह भी संकेत है कि इतिहास के सूत्रों पर आधारित उपन्यास को इतिहास रस के उपन्यास की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। "वातायन" शीर्षक कृति में उन्होंने इस विषय में अपने मत का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि "इतिहासकार की स्थिति सत्य के बराबर तो दूसरा असत्य पृथ्वी पर ही नहीं। इतिहास में तो सदैव ही एक सत्य को देखकर दूसरा सत्य उसका स्थान लेता जाएगा। पर साहित्य पर साहित्य में ऐसा नहीं हो सकता। मैंने स्थिति सत्य और चिर सत्य के आधार पर ऐतिहासिक साहित्य को इतिहास से पृथक कर दिया है।[1] अपने प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास "वैशाली की नागरवधू" की भूमिका में भी शास्त्री जी ने

---

1 ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना और सत्य-श्री वी.एम.चिंतामणि-पृ.सं.1

1 वातायन, आर्या चतुरसेन शास्त्री, पृ.सं.28

यही विचार व्यक्त किए है कि उपन्यास इतिहास रस से अवश्य प्रभावित होना चाहिए। भले ही उसके कारण प्रामाणिक तथ्यों और सूत्रों की उपेक्षा करनी पड़ी। साहित्यकार को चिर सत्य के आधार पर जिसमें गवेषणा को स्थान नहीं मिलता है उपन्यास और कहानी की रचना करनी चाहिए और ऐसी रचनाएँ जो साहित्य, संश्लिष्ट हो, जिनका आरंभ एक अनिर्दिष्ट रस है, अपने स्थान पर सूचित हों, साहित्य आचार्यो ने भी मूल रसों को साहित्य सृजन में महत्व दिया हे। परंतु उनके कुछ और निर्दिष्ट रस है जिनमें एक इतिहास रस भी है।[1]

आलोच्ययुगीन ऐतिहासिक उपन्यासकारों में यशपाल में दिव्या और "अमिता" जैसे महत्वपूर्ण कृतियाँ प्रस्तुत करते हुए जहाँ एक ओर इतिहास का निमार्ण किया है। वहीं दूसरी ओर ऐतिहासिक उपन्यास के आवरण में ऐतिहासिक कल्पना की नवीन व्याख्या भी है। उनके विचार से "इतिहास विश्वास की नहीं विश्लेषण की वस्तु है। इतिहास मनुष्य की अपनी परंपरा में आत्म विश्लेषण है। इतिहास के मन्थन से प्रांत अनुभव के अनेक रत्नों में रखते प्रकाशमान तथ्य मनुष्य भाग नहीं करता है। मनुष्य से बड़ा है केवल उसका अपना विश्वास और स्वयं उसका ही रचा हुआ विधान। अपने विश्वास और विधान के सम्मुख ही मनुष्य विवशता अनुभव करता है और स्वयं ही वह उसे बदल देता है।[2] यशपाल की यह भी धारणा है कि हिंसा युद्ध रक्तपात आदि अतीत में इतने इधिक हो चुके हैं कि उनसे मुक्ति का उपाय मनुष्य को सोचना चाहिए क्योंकि इस समय अपने जीवन की व्यवस्था सुधारने के लिए हमारे समाज की प्रमुख भावना निर्माण की है। इस उद्देश्य के लिए युग के विध्वंस से बचे रहना और विश्व शांति की आवश्यकता अनिवार्य है।[3] व्यावहारिक दृष्टिकोण से ऐतिहासिक कथा साहित्य के लिए हम ऐसे किसी भी काल को ले सकते

---

1 वैशाली की नगर वधू, आचार्य चतुरसेन, पृ.सं.776

2 अमिता, श्री यशपाल, पृ.सं.5

3 ध्यानचंद लेख आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कथामुख पृ.सं.10

है जिसकी कुछ ही प्रामाणिकता समकालीन लिखित साहित्य में प्राप्त है। हमारे लिए ऐतिहासिक उपन्यास लिखते समय यह आवश्यक नहीं कि सारे काल की संपूर्ण प्राप्त सामग्री का आंकलन हो क्योंकि यह कभी भी संभव नहीं हो सकता। ऐतिहासिक सामग्री का सामान्य अध्ययन भी पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। क्योंकि उपहास्पद बातों का आ जाना भी संभव है। उपन्यासकार को ध्यान रखना चाहिए कि हमारी एक-एक पंक्ति पर बड़ा निष्ठुर मर्मज्ञ समूह पैनी दृष्टि से देख रहा है। उसके लिए तत्कालीन देश और काल के बारे में जितनी भी ज्ञातव्य बातें हैं, उन सबका समन्वय उसके चरित्र विकास में दिखना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।[1] इस प्रकार से यह ज्ञात होता है कि स्वातंत्र्योत्तर काल में हिंदी उपन्यास की ऐतिहासिक सूत्रों पर आधारित प्रवृत्ति का भी समुचित विकास हुआ है और विगत युगों की तुलना में इस युग में ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने प्रामाणिकता और यथार्थता के निर्वाह की ओर भी अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया है।

**राजनैतिक उपन्यासों की प्रवृत्तियाँ** :-

स्वातंत्र्योत्तर युग राजनैतिक दृष्टि से क्रांतिकारी उथल-पुथल का समय रहा है और उस समय के उपन्यासकारों ने उसे अपनी रचनाओं में दर्शाया भी है। डॉ.मूलचंद के शब्दों में साहित्यकार को अपने सपनों की गजदंती मीनार से नीचे उतर कर यथार्थ का सीधा साक्षात्कार करना चाहिए। न्याय और अन्याय के संघर्ष में साहित्यकार तटस्थ नहीं रह सकता। जीवन के उच्चतर मानवीय मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध होने के कारण उसे सत्य और न्याय का पक्ष लेना ही होगा। यथार्थ तो यह है कि उपन्यासकार परिवर्तन के समय के साथ अपनी वैचारिक श्रृंखला में भी परिवर्तन करता है। "नदी के द्वीप" में अज्ञेय ने स्वीकार किया है कि जीवन एक बार वरण नहीं

---

1 हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, डॉ. त्रिभुवन सिंह-पृ.सं.142

है। वह अनंत कण है। प्रति क्षण हम स्वीकार और परिहार करते रहते हैं।[1] साहित्यकार को तद्युगीन परिस्थितियों का ज्ञान होना ही चाहिए। ऐतिहासिक दृष्टि से उपन्यासों में राजनैतिक प्रवृत्ति का सूत्रपात बहुत पहले प्रेमचंद युग में ही हो गया था। डॉ.मूलचंद के अनुसार हिंदी उपन्यास में इस राजनैतिक पक्षधारिता का समारंभ स्वयं प्रेमचंद ने कर दिया था। परंतु यशपाल, राहुल सांकृतयायन, नागार्जुन, भैरव प्रसाद गुप्त और अमृतराय आदि उपन्यासकार निश्चित रूप से साम्यवाद के दलीय रूप से प्रतिबद्ध है।[2] आलोच्यकाल में उपन्यासकारों ने साम्यवाद, समाजवाद, गांधीवाद, मार्क्सवाद आदि के सिद्धांतों से सूत्र ग्रहण कर अपने पात्रों पर घटित करते हुए वातावरण की रचना की है। इनकी कृतियाँ इन सभी विचारधाराओं का समुचित प्रतिनिधित्व करती हैं। रांगेय राघव के "सीधा सादा रास्ता" और हुजूर में समाजवादी विचारधारा का दर्शन होता है। उन्होंने प्रगतिशील तत्वों के विरोधी तत्वों पर विजय की ओर दर्शाया है। वे सामाजिक विषमता की स्थिति सर्वदा अवांछनीय मानते हैं। पूँजीवादी शोषण और वर्ग वैषम्य के निर्मूलन के लिए उन्होंने क्रांति का मार्ग बताया है। साम्यवादी चेतना से अनुप्रमाणित अमृतराय ने "बीज" "नांगफनी" के देश तथा "हाथी के दाँत" आदि उपन्यासों में स्वातंत्र्योत्तर भारत में पूँजीवादी शोषण के परिवर्तनशील रूपों का चित्रण किया है। भैरव प्रसाद गुप्त लिखित "गंगा मैया", "सती मैया का चौरा", "मशाल" आदि उपन्यासों में मार्क्सवाद का आर्थिक पक्ष प्रतिबिंबित होता है। राजेंद्र यादव ने "उखडे हुए लोग" में आदर्शवाद की आड़ में कोरी व्यावसायिकता वाले समाज की व्यवस्था पर बड़ा प्रहार किया है। शरद और जया नेता भैया के स्वराज्य महल के अपने सपनों का स्वर्ण मानकर उसमें प्रवेश

---

1 हिंदी उपन्यास में प्रतिबद्धता-लेख अरुणिमा-पृ.सं.13

2 हिंदी उपन्यास में प्रतिबद्धता-लेख अरुणिमा-पृ.सं.13

करते हैं। परंतु एक सप्ताह में ही वे मेंहदी के बाड़ में छिपे नागफनी के काँट को देश लेते हैं।[1]

गिरीश अस्थाना लिखित "धूप छाही रंग" उपन्यास में भी पूँजीपतियों के व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के भीतर चलनेवाले षड़यंत्रों एवं श्रमिकों के शोषण का निदर्शन है एक तो वह वर्ग जो अपने अंगीकृत जीवन मूल्यों को तिलांजलि देकर सुख-सुविधा एवं सुरक्षा के वातावरण में ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा है और दूसरा वह है जो अपने रूढ़िपरक जीवन मूल्यों से चिपका रहकर देवनगर सदा के लिए छोड़ देने को विवश है। इसके विपरीत "रंभा" में भैरव प्रसाद गुप्त ने और भी राम शर्मा लिखित "उठते कदम" में उन्होंने यह संकेत किया है कि गाँधीवाद ही भारत की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक व्यवस्था को सुनियोजित कर सकता है। परंतु शिवदान सिंह चौहान यह मानते हैं कि मनुष्य के धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक जीवन का कोई भी पक्ष ऐसा नहीं है जिस पर मार्क्सवाद की अमिट छाप न हो।[2] इस विरोधाभास के होते हुए भी वर्ग वैषम्य की स्थिति को सभी उपन्यासकारों ने समाप्त करने हेतु न मानस को नवचेतना प्रदान की है। यशपाल ने वर्गभेद और समाज की विषमता के चित्रित करने के हेतु नारी को भी एक प्रतीक रूप में प्रयुक्त किया है। यशपाल के "पाटी" कामरेड़ "दादा कामरेड" "मनुष्य के रूप" "झूठा सच" तथा "मेरी तेरी" "उसकी बात" आदि उपन्यासों में कहीं-कहीं अर्थ भी काम से आक्रांत प्रतीत होता है।[3]

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में यहाँ इस तथ्य की ओर भी संकेत करना असंगत न होगा कि स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकार राजनीति की भूमिका को भी साहित्य के विकास के परिप्रक्ष्य में ही स्वीकार करता है। यशपाल जैसे उपन्यासकारों ने भी कृति को ही

---

1 हिंदी साहित्य में प्रतिबद्धता-लेख अरुणिमा, सन् 1976, पृ.सं.13

2 साहित्य युगीन, श्री शिवदान सिंह चौहान, पृ.सं.140

4 हिंदी उपन्यास में प्रतिबद्धता, लेख अरुणिमा, पृ.सं.13

एकमात्र उपाय स्वीकार करते हुए लिखा है कि देश की जनता की मुक्ति केवल क्रांति द्वारा ही संभव है। क्रांति से संघर्ष ही नहीं है हमारी क्रांति का लक्ष्य एक नवीन अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था है इस क्रांति का उद्देश्य पूँजीवाद की समाप्त कर श्रेणी विहीन समाज की स्थापना करना तथा देशी शोषण को समाप्त कर जनता को आत्म निर्णय द्वारा जीने का अवतार देना है। उसका उपाय शोषक के हाथ से शासन शक्ति लेकर मजदूर श्रेणी की स्थापना भी है।[1]

अमृतलाल नागर कृत "अमृत और विष" और श्रीलाल शुक्ला कृत "राग दरबारी" में जन जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं मूल्यहीनता का जो यथार्थ चित्रण किया है वह परोक्ष रूप से युगीन विसंगतियों के प्रति जन भावना को जागृत करना है। सुधा पद्मा ने "उल्टे काँटे सीधे फूल" उपन्यास में जय प्रकाश नारायण समग्र क्रांति की भूमिका को लेकर राजनीति में उतर पड़े विद्यार्थियों की राजनैतिक चेतना की अभिव्यक्ति है। राजेन्द्र मोहन अग्रवाल लिखित "अध्यक्ष कौन हो" उपन्यास में राजनैतिक दिशाहीनता और सत्तालोलुप नेताओं के काले कारनामों का कच्चा चिट्ठा खोला गया है। सत्य प्रकाश पांडेय कृत उपन्यास "सफा", विश्वेश्वर कृत "मरने की जगह" तथा जगदीश चंद्र कृत "आधा पुल" आदि उपन्यासों में आधुनिक राजनीति में फैले हुए भ्रष्टाचार, अनिश्चितता, स्वार्थपरता और दिशाहीनता का यथार्थ चित्रण किया गया है। निष्कर्षतः यह बात स्पष्ट होता है कि आलोच्ययुगीन प्रबुद्ध उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में देश की राजनीति का यथार्थ चित्रण कर जमानत के राजनैतिक भावना से अनुप्रमाणित स्वरूप का चित्रण किया है। इसी संदर्भ में यहाँ पर ये ज्ञातव्य है कि आलोच्य युगीन महिला उपन्यासकारों ने अपनी कृतियों में राजनैतिक जीवन की विभिन्न परिस्थितियों और प्रतिक्रियाओं का नारी की मानसिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में चित्रण किया है।

---

[1] सिंहावलोकन, प्रथम खंड, श्री यशपाल, पृ.सं.144

**सामाजिक उपन्यासों की प्रवृत्ति :-**

स्वातंत्र्योत्तर युग के उपन्यासकारों ने प्रबुद्ध जनता को नवीन चेतना से अनुप्रमाणित करने हेतु सामाजिक कथा सूत्रों में प्रश्रय दिया है। डॉ.सुषमा धवन के शब्दों में स्वातंत्र्योत्तर युग में उपन्यास क्षेत्रीय जिन प्रवृत्तियों का विकास हुआ है। उनमें सामाजिक कथा सूत्रों पर आधारित प्रवृत्ति सर्वप्रमुख है क्योंकि यह हिंदी उपन्यास के उद्भवकाल से लेकर वर्तमान काल तक अग्रज रूप से विकासशील रही है।[1] आलोच्यकालीन उपन्यासकारों में व्यक्ति, जो समाज की सर्वाधिक छोटी किंतु महत्वपूर्ण इकाई है। इसका समग्र रूपात्मक चित्रण जागृत करने की प्रवृत्ति दृषित होती है। वास्तविकता यह है कि स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात समाज के समक्ष प्रगति के नवीन आयाम के अनुपात में नवीन लेखक भी उभरे और प्राचीन लेखकों ने भी युग की मनोदशा को पहचाना। अतः उन्होंने सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन के विविध पक्षों को सफलतापूर्वक स्थापित किया है। डॉ.शशिभूषण सिंघल की धारणा है कि सामाजिक उपन्यास का संबंध समाज से है। स्थायी तथा सर्वसाधारण महत्व के कुछ सामान्य हितों की पूर्ति के लिए शांतिपूर्वक प्रयत्नशील सहयोगी मनुष्यों का समूह समाज है। मनुष्यों या व्यक्तियों के पारस्परिक संबंध, शांतिपूर्ण सहअस्तित्व, मतभेद आदि तथा उसके सामान्य हिपूर्ति की दिश में आयी अड़चने प्रयत्न एवं निष्कर्ष ही सामाजिक उपन्यास की रीढ़ बनकर कार्य करते हैं।[2] इस तथ्य का यहाँ पर उल्लेख करना असंगत न होगा कि कुछ लेखकों ने स्वातंत्र्योत्तर युग में मूलगत संक्रमण और विद्रोही प्रवृत्ति की पृष्ठभूमि में आर्थिक विभीषिका के संभाव को माना है। डॉ.चंडी प्रसाद जोशी के शब्दों में जटिल आर्थिक परिस्थितियों की कटुता मध्यमवर्ग, विशेषतः निम्न वर्ग को क्षीण कर रही थी। अन्य सामाजिक वर्ग प्रबल संकेत लेकर उभर रहे थे और इन दोनों पक्षों के बीच बुद्धिवादी परंतु आर्थिक स्थिति से निस्सहाय

---

1 हिंदी उपन्यास, डॉ.सुषमा धवन, पृ.सं.1

2 उपन्यासकार, वृंदावनलाल वर्मा, डॉ.शशिभूषण सिंघल, पृ.सं.6

मध्यवर्ग बिद रहा था। मध्यम वर्ग उन सामाजिक वर्गों के संघर्ष के युग में अपनी वर्गीय संगठित शक्ति के अभाव में निस्पाद होकर इधर-उधर भटक रहा था। लेकिन फिर भी अपना अस्तित्व वहीं खोज पा रहा था। अतः वह घुटन अनुभव करने लगा था। अपनी अस्तित्वहीनता स्वीकार करना उसे सहन नहीं था और न ही अपने को संगठित कर पाना संभव था। फलतः संगठित भावना के अभाव में मध्यवर्गीय व्यक्ति निरा अकेला रह गया। उसका परिणाम यह हुआ कि मध्यवर्गीय चिंतक व्यक्ति को ही केंद्र मानकर चला। अपनी विकट सामाजिक स्थिति के कारण वह जो घुटन अनुभव करने लगा। उसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि वह समाज पर प्रहार करने के लिए आतुर हो उठा। यहीं से समाज के प्रति विद्रोह का जन्म होता है।[1]

स्वातंत्र्योत्तर युग में शैक्षिक प्रचार एवं प्रसार तथा औद्योगिक एवं वैज्ञानिक उन्नति ने एक ओर सामाजिक विकास में योग दिया। वहीं दूसरी ओर कुछ प्राचीन बुराइयों एवं रूढ़ियों के साथ-साथ नवीन बुराइयों एवं समस्याओं ने भी जन्म लिया। अतः इस युग के विद्वान उपन्यासकारों ने सामाजिक समस्याओं का चित्रण करते हुए नारी जीवन की विविध समस्याओं का भी निरूपण किया है। उनके कथा सूत्र नारी समाज की समस्याओं, बाल विवाह, वृद्ध विवाह, अनमोल विवाह, दहेज प्रथा, विधवा समस्या, वेश्या समस्या, स्त्री शिक्षा, स्त्री समानता एवं स्वावलंबन आदि पर आधारित समस्याओं का निदान प्रस्तुत करते हैं। इन उपन्यासकारों में अनेक दृष्टियों से वैचारिक भी कम नहीं है। उदाहरणार्थ रांगेय राघव, भैरव गुप्त तथा अमृतराय जैसे लेखकों की कृतियों में सुधारवाद के प्रति आग्रह नहीं है। जितनी नैतिक मूल्यों की रक्षा के प्रति कृत संकल्प है सामाजिक प्रगति के मार्ग में बाधक शक्ति के निर्मूलन हेतु ये संघर्ष करने के समर्थक हैं। रेणु श्रीलाल शुक्ल, हिमांशु श्रीवास्तव आदि उपन्यासकारों ने आंचलिक जीवन में पनपनेवाले प्रखरता की ओर इंगित किया है। शिवानी, मन्नू भंडारी, कंचनलता सब्बरवाल आदि की लेख नारी जागरण नारी

---

1 हिंदी उपन्यास समाज शास्त्रीय, विवेचन, डॉ.वंशी प्रसाद जोशी, पृ.सं.331

स्वतंत्रता समानता अथवा शिक्षा के प्रसार का समर्थन करती है। उन्होंने भी पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का अंधानुकरण प्रत्येक परिस्थिति में भारतीय नारी के हेतु हानिप्रद ही माना है। द्वारिका प्रसाद पुरोहित ने उस युग के समाज के वर्ग वैषम्य एवं सज्जनित निदान "इंद्रधनुष" नामक उपन्यास में प्रस्तुत किया है। देशी राजाओं द्वारा निर्धन वर्ग के शोषण, अत्याचार एवं उत्पीड़न से मुक्ति हेतु व्यापक संघर्ष का मार्ग सुझाया है। सावित्री देवी लिखित "जागृत ग्राम" पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति आक्रोश उत्पन्न करते हुए उसका हल आर्थिक समानता एवं ट्रस्टीशिप जैसे सिद्धांतों में प्रस्तुत करता है। बद्रीनाथ लिखित "धुंध में डूबे हुए", पद्मा त्रिवेदी लिखित "मिट्टी के देव", उमेश शास्त्री लिखित "माधवी", विद्या स्वरूप वर्मा लिखित "धूल और चरण" आदि उपन्यासों में भारतीय सामाजिक विकास की दिशा में संयुक्त परिवारों में विभिन्न विघटन को एक बहुत बड़ी बाधा के रूप में स्वीकारा है। इसी प्रकार लक्ष्मी नारायण लिखित "सपने और संसार", नरेश मिश्र लिखित "रूठी रानी", करुणेन्द्र लिखित "इन्सानियत फिर भी जीवित है", श्री रमण लिखित "सरस्वती की आत्मकथा" आदि उपन्यासों में सामाजिक जीवन की विसंगतियों का चित्रण एवं सज्जनित भटकाव, कुंठा, निराशा एवं घुटन से युक्त के जो चित्रण प्रस्तुत किए गए हैं वे युगीन सामाजिक यथार्थ से अनुप्रमाणित है।

* * * * *

## अध्याय तीन

# मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में पारिवारिक यथार्थबोध

# मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में पारिवारिक यथार्थबोध

महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन की मान्यता है कि मानव-समाज का विकास तीन चरणों में हुआ है जंगली, बर्बर और सभ्य। उन्होंने एंगेल्स का हवाला देते हुए लिखा है कि इन तीनों चरणों में मनुष्य के इतिहास का सबसे बड़ा भाग जंगली मानव-समाज का इतिहास है। तब मुनष्य के पास साधनों की कमी थी और उसे अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, व्यक्ति से अधिक समाज पर भरोसा रखना पड़ता था। इसलिए उसकी जो कुछ भी थोड़ी-बहुत संपत्ति थी, वह सामूहिक थी। सभी मिलकर एक दूसरे की रक्षा करते थे, साथ मिलकर भोजन संग्रह करते थे और एक साथ उसका उपभोग होता था। आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन चूँकि वैयक्तिक न होकर सामूहिक था अतः संपत्ति का होना जरूरी था। किंतु इस आदिम साम्यवादी समाज के अंतिम चरण में स्थितियों में परिवर्तन होने लगा। सम्पत्ति के मामले में समाज में असमानता व्याप्त होने लगी।

सामंती समाज में सामाजिक संस्थाओं में परिवार का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। संपूर्ण सामाजिक संस्थाओं में परिवार ही वह मूलभूत सामाजिक व्यवस्था है, यही वह कड़ी है जो व्यक्ति का संबंध समाज से जोड़ता है। व्यक्ति को सामाजिक बनाने में इस परिवार का स्वरूप प्रायः संयुक्त हुआ करता था। संयुक्त परिवार वह है जहाँ रक्त संबंध से कुछ जुड़े परिवार सम्मिलित रूप से रहते हों तथा खान-पान और आर्थिक हितों की दृष्टि से वे सम्मिलित रूप से व्यवहार करते हों। भारतीय समाज व्यवस्था में प्रारंभ से ही संयुक्त परिवार का विशेष महत्व रहा है। एक अर्से तक जो संयुक्त परिवार अपनी एकता के लिए विख्यात था उसमें आज बिखराव और टूटन परिलक्षित होता है। संयुक्त परिवारों के स्थान पर आज व्यक्ति छोटे-छोटे परिवारों में ही सुख की खोज कर रहा है। संयुक्त परिवार की उत्पत्ति भारत में जिस समय में हुई आज की

परिस्थितियाँ उससे नितांत भिन्न हैं। पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता तथा औद्योगीकरण और नगरीकरण के फलस्वरूप भारत की सामाजिक परिस्थितियों में काफी परिवर्तन हो गया है। सामंती समाज व्यवस्था में सामंतों ने न केवल जन-धन का शोषण किया बल्कि पारिवारिक जीवन में भी विघटनकारी स्थितियाँ उत्पन्न कीं।

विद्वानों का मानना है कि आदिम साम्यवादी समाज व्यवस्था के अंतिम चरण में निजी संपत्ति का उदय होने लगा था। कालांतर में मानव-समाज की सामूहिक चेतना में दरार पड़ने लगी। पहले स्त्री-पुरुष संबंधों में जो स्वच्छंदता थी वह धीरे-धीरे और खास तौर पर स्त्री के संबंध में क्षीण होने लगे। जिसका स्वाभाविक दुष्परिणाम यह हुआ कि स्त्री के क्रिया कलाप का क्षेत्र लगातार संकुचित होता गया और अतः वह लगभग पुरुष की दासी बनकर रह गयी। इतिहास के अनुभव से यह प्रमाणित होता है कि इतिहास के विकास के प्रवाह में यदि कोई वर्ग या समुदाय अनेकानेक कारणों से पीछे छूट जाता है तो प्रायः वह दुर्दशा का शिकार होता है। लगभग यही स्थिति पूरी दुनिया में स्त्री समुदाय की हुई है। दुनिया का मध्ययुगीन साहित्य इसका प्रमाण है।

आधुनिकता के आगमन के चलते मध्ययुगीन सामंती जीवन मूल्यों पर पुनर्विचार की प्रक्रिया जब आरंभ हुई तो स्त्री मुक्ति का प्रश्न भी विमर्श का एक मुद्दा बना। भारत में जब आधुनिकता के आगमन से नवजागरण की लहर उठी तो इसके तहत बंगाल, महाराष्ट्र और पंजाब में कई महत्वपूर्ण लेखिकाएँ सामने आईं। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण पंजाब की एक अज्ञात हिंदू औरत थी जिसने "सीमांतनी उपदेश" नाम की किताब लिखी। इस पुस्तक की लेखिका ने सबसे पहले अपने समय की आम औरतों की पिछड़ी हुई चेतना को झकजोरा ताकि वे अपने दिमाग से रूढ़िवादी विचारों को निकाल सके। "सीमांतनी उपदेश" की चर्चा का मकसद यह बताना है कि आधुनिकता ने कैसे सदियों से बंद पड़ी स्त्री के चिंतन की खिड़कियों को खोलने में मदद की। उदाहरणार्थ यौन मामलों में खुल कर बात करना अक्सर स्त्रियों के लिए अस्वाभाविक समझा जाता है। किसी स्त्री की कलम

से इस मुद्दे पर सबसे पहली "बोल्ड" कहलाने वाली अभिव्यक्ति "सीमांतनी उपदेश" में हुई है। सामंती समाज में बेटी का मन रखने के लिए माँ-बाप उसे गहनों से लादे रखते थे। लेकिन उस बाल विधवा की दूसरी शादी करने की हिम्मत नहीं जुटा पाते थे। ऐसे लोगों की कुंद समझ पर प्रहार करते हुए "वर्तमान साहित्य" नामक पुस्तक में लिखा गया है-"वाह री समझ! कोई पूछे इनसे जब आप पलंग पर गरम होती हैं, उस वक्त लड़की के मन का क्या बंदोबस्त करती हो।"[1] स्पष्ट ही भाषं नवजागरण लानेवाले भद्रवर्ग की भाषा से उतने ही अलग और आगे थी जितना इस भाषा में व्यक्त होनेवाला नजरिया। निष्कर्ष यह कि नवजागरण और उसके बाद नये सामाजिक, राजनीतिक संदर्भों के चलते जब छोटे पैमाने पर ही सही, स्त्री के व्यक्तित्व का विकास संभव हो सका तो इसने सीधे-सीधे परिवार रूपी संस्था को झकझोरना शुरू किया। महादेवी वर्मा रचित श्रृंखला की कड़ियाँ नामक पुस्तक से गुजरते हुए बड़ी शिद्दत के साथ यह महसूस किया जा सकता है कि परंपरागत परिवार ही नहीं बल्कि कई बार तथाकथित छोटा परिवार भी कम से कम स्त्री के लिए सुखी परिवार कदापि नहीं होता। अतः यह स्वाभाविक है कि हमारे जमाने की महत्वपूर्ण लेखिकाओं के लिए बदली हुई पारिवारिक स्थिति रचना की विषयवस्तु बने।

कथाकार मन्नू भण्डारी की रचनाओं में स्वाधीनता के शब्द के भारतीय समाज में बदलते जीवन मूल्यों और खास तौर से बदलती पारिवारिक संरचना का यथार्थबोध के स्तर पर अंकित है। स्पष्ट ही इसकी वजह से उनके यहाँ कई बार वाद से पैदा हुई जड़सूत्रता के बजाय बोध से निष्पन्न तरलता के दर्शन होते हैं। पारिवारिक यथार्थबोध को मन्नू भण्डारी की कहानियों में कई स्तर पर देखा जा सकता है। एक ओर यदि उनकी कहानियों में नाभिकीय परिवार की विडंबनाओं संत्रस्त स्त्री का चित्रण भी गहराई के साथ हुआ है। "एखाने आकाश नाई" मन्नू भण्डारी की एक उल्लेखनीय कहानी है। जिसमें संयुक्त परिवार की बदली हुई संरचना का यथार्थ बोध के स्तर पर विद्यमान है। कहानी की एक पात्र

---

1 वर्तमान साहित्य, अंक-5, मई 2002, पृ.सं.103

चाची ने संयुक्त परिवार की वेदना को इस प्रकार स्पष्ट किया है-"जब अपना आदमी ही नहीं पूछे, तो दूसरों को क्या दोष दूँ। तुम्हारी तरह पढ़ी-लिखी होती, तो मैं कमाकर खा लेती। अब तो समझ ही नहीं आता, यह पहाड-जैसी जिंगी कैसे कटेगी। कैसे इस छोटे को बड़ा करूँगी। मकान के इस हिस्से के सिवा मेरे पार तो कुछ भी नहीं है। हिस्से का थोड़ा-बहुत पैसा है, पर सब दबा लिया। माँगती हूँ तो सबको कांटे जैसे लगती हूँ। गौरा को लखनऊ में मैंने साल भर तक अपने पास रखा, पढ़ाया-लिखाया। इस छोरे की कसम खाकर कहती हूँ जो कभी एक पैसा भी लिया हो या उसे तकलीफ़ दी जो। तुम्हें तो याद होगा, तुम शादी होकर आई थीं तब कैसी दिखती थी गौरा......! अब देख लो, कैसी हो गई हो। आज मुझ पर संकट पड़ा तो....."[1] इस रचना में ग्रामीण और शहरी परिवेश में असंतोष है। इस कहानी की स्त्री पात्र सुशिक्षित और स्वावलंबी होने के बावजूद घर-नौकरी-पढ़ाई की त्रिस्तरीय जिम्मेदारियों की वजह से मानसिक और शारीरिक रूप से त्रस्त है। इस संदर्भ में एक बार लेखा इस प्रकार सोचती है- "अकेले होते ही लेखा ने महसूस किया, जैसे इन सबके बीच वह बहुत परायी है। उस घर की एक सदस्या होकर भी वह घर से अलग है। यहाँ आकर उसे बराबर ही लगता रहा है जैसे वह बहुत फिजूलखर्च है; जैसे उसका बहुत-सा कर्तव्य इस घर के व्यक्तियों के प्रति है। पर जिसे वह पूरा नहीं कर रही है। वे दोनों सौ रुपये भेजकर समझते हैं कि सब कुछ कर दिया। दो साल तक अपने काम और पढ़ाई में डूबे रहकर वह तो भूल ही गई थी कि उसका लंबा-चौड़ा परिवार है। उस परिवार की समस्याएँ है। उसके सामने तो उसका अपना भविष्य था, कैरियर था, बड़े-बड़े अरमान थे।"[2] कथानायिका लेखा का व्यक्तित्व मनोविज्ञान की शब्दावली में यदि कहें तो विभाजित व्यक्तित्त्व का उदाहरण है। इस संदर्भ के द्वारा मन्नू भण्डारी लेखा गाँव में आने के बाद भी पुनः अपनी शहरीय जिंदगी के बारे में इस प्रकार सोचती है-"उसे कलकत्ता याद आने लगा। वर्मा और बीनू, शिप्रा, मीनाक्षी माथुर

---

1 मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ.सं.63-64
2 मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ.सं.64

एक-एक करके सब याद आए। सुषमा महिमा के साथ दार्जिलिंग में कहीं घूम रही होगी। जिस दिन विदा किया था, उस दिन सचमुच सुषमा बहुत सुंदर लग रही थी। दिनेश की छुट्टी कब मंजूर होगी। उसने तार से अपने पहुँचने की सूचना दे दी थी, पत्र अभी नहीं लिख पाई थी। कल वह दिनेश को पत्र लिखेगी। टाइप किया हुआ चैप्टर उसके बक्स में रखा है, कल उसे भी निकालेगी। पर कुछ कर पाएगी यहाँ? कल तो उसे चाची के पास भी जाना है। कल वह गौरा से बात करेगी। रमेश और सुरेश को जैसे भी होगा, अपने पास बिठाएगी। वह इस परिवार के लोगों के साथ घुलेगी-मिलेगी। आखिर वह भी इस परिवार की एक सदस्या है।"[1]
वह न तो गाँव में सुखी रहती है और न ही शहर में। कहानी में विस्तार से यह वर्णित किया गया है। जब कथानायिका लेखा शहरीय जीवन की आपाधापी से थक कर सुकून की साँस लेने गाँव जाती है तो वहाँ संयुक्त परिवार के विसंगतियों से ऊबकर शहर की याद में खो जाती है। "एखाने आकाश नाई" की एक अन्य स्त्री पात्र सुषमा भी हमारे जमाने के तथाकथित संयुक्त परिवार की विसंगतियों की शिकार है। सुषमा के माता-पिता स्वार्थवश उनका विवाह करना नहीं चाहते। क्योंकि पुराने संयुक्त परिवारों में कन्या को बचपन से ही पराया धन माना जाता था। संभवतः इसी वजह से विवाह को कन्यादान भी कहते हैं। यह दूसरी बात है कि कन्यादान करने के लिए एक मोटी रकम कन्या शुल्क के रूप में अदा करना उस जमाने की अनिवार्यता थी जो आज भी प्रचलन में है। किंतु कमानेवाली कन्या का परिवार केवल इसलिए विवाह नहीं करता कि उसके चले जाने के बाद माता-पिता की कमाई बंद हो जाएगी। यह बिल्कुल नया पारिवारिक यथार्थ का बोध है जो पूरी शिद्दत के साथ इस कहानी में चित्रित हुआ है। यह ठीक ही नहीं, संयुक्त परिवार के संदर्भ में भी एक हद तक सही है। "एखाने आकाश नाई" कहानी की कथानायिका लेखा के ससुराल का परिवार वस्तुतः एक संयुक्त परिवार है। इस कहानी में बताया गया है कि लेखा के सास को उसका पैसा, उसकी स्वच्छन्दता आदि बहुत पसंद है। लेकिन उसे अपनी बेटी की शिक्षा-दीक्षा कतई पसंद नहीं है।

---
[1] मेरी प्रिय कहानियाँ-पृ.सं.65

यहाँ तक कि गौरा का व्यवस्थित जीवन जीना भी उसे अच्छा नहीं लगता। वस्तुतः यही वह दोहरा मानदण्ड है जिसके चलते घर स्त्री के लिए एक तरह का जेल साबित होता है। गाँव के पारंपरिक वातावरण में लेखा का दम घुटता है। शहर से खुली हवा में सांस लेने आयी थी। एक संदर्भ में लेखा गाँव की हवा के बारे में इस प्रकार सोचती है-"यहाँ तो गर्मी का नाम भी नहीं।"[1] तुरंत थोड़ी देर के बाद गाँव गंदगी के बारे में इस प्रकार कहती है-"यह बदबू किधर से आ रही है?"[2] किंतु यहाँ का वातावरण उसे एक दम घोंटू प्रतीत होता है।

"छत बनानेवाले" शीर्षक कहानी में संयुक्त परिवार की दो स्थितियों पर संतुलित प्रकाश डाला गया है। कहानी के संयुक्त परिवार का एक हिस्सा यदि गाँव में स्थित है तो दूसरा शहर में। कथानायक शरद के पिता रामेश्वर का अपना परिवार गाँव से कटकर लखनऊ में जा बसा है। जहाँ परिवार के तमाम सदस्यों को अपने मन के मुताबिक जीवन जीने की स्वतंत्रता है। इससे भिन्न शरद के ताऊ का परिवार गाँव में सामंती नैतिकता और अनुशासन के तरह सुख-चैन की जिंदगी बिता रही है। मन्नू भण्डारी ने "छत बनानेवाले" कहानी में गहराई के साथ चित्रित किया है कि संयुक्त परिवार की ग्रामीण इकाई में किसी भी सदस्य को सामंती सामूहिक नैतिकता के विरुद्ध आचरण करने का कोई अधिकार नहीं है। इस परिवार में पिता की स्थिति लगभग एक अप्रत्यक्ष तानाशाह की है। जिसके अनुशासन की दौर में शरद की ताँई, उसके चचेरे भाई, परिवार की बहुएँ, बच्चे, सब के सब मज़बूती के साथ बंधे रहने को बाध्य हैं। जाहिर है कि सामंती सामूहिकता के तहत जिंदगी जीनेवाले परिवारों में किसी एक व्यक्ति की रुचि-अरुचि का ध्यान रखने के बजाय परिवार का प्रत्येक सदस्य सामूहिक निर्णय का मौन सहभागी होता है। और तो और ऐसे परिवारों में खाने-पीने तक के मामले में भी व्यक्ति का रुचि का ख्याल नहीं रखा जाता है। "छत बनानेवाले" कहानी का

---

1 मेरी प्रिय कहानियाँ-पृ.सं.62

2 वही-पृ.सं.62

नायक शरद जब अपने ताऊ के घर आता है तो उसकी इच्छा के विपरीत उसे छाछ की जगह लस्सी दी जाती है।

"मजबूरी" कहानी में दो पीढ़ियों के वैचारिक अंतराल से उत्पन्न हुई पारिवारिक समस्याओं को मन्नू भण्डारी ने दर्शाया है। हर एक विवाहित स्त्री अपने बच्चों को प्यार करती है। आजकल के ज़माने और पुराने ज़माने के बारे में तुलना करके देखने से हमको यह पता चलता है कि आजकल माँ-बाप, बच्चे और पति-पत्नी के बीच में प्यार कम होता जा रहा है। एक ही साथ रहकर भी यांत्रिक जीवन बिता रहे हैं। नाभिकीय परिवार के अंतर्गत कुछ परिवारों में माँ-बाप और बच्चों के बीच सिर्फ पैसों का संबंध रहता है, मगर वे कभी भी अपने माँ-बाप का ख्याल नहीं रखते हैं। आजकल के परिवार में एक दो बच्चे पैदा होने से माँ-बाप दोनों को बराबर प्यार नहीं दे पाते हैं। बच्चों के बड़े होने पर नौकरी के लिए परिवार को छोड़कर कहीं दूर जाना पड़ता है। वहाँ खुद के रहन-सहन के तथा अन्य समस्याओं के साथ-साथ वह यांत्रिक जीवन बिताता है। लेकिन पुराने परिवार के बारे में एक बार आलोचना करने से हम यह महसूस कर सकते हैं कि 8 बच्चे! सबको बराबर प्यार कैसे मिलेगा? इस स्थिति से आधारित "मजबूरी" कहानी में बुआ अपने बेटी रामेश्वर को बहुत प्यार करती है। रामेश्वर को बंबई में नौकरी मिलती है। बुआ का वैद्यपति दिनभर औषधालय में रहते हैं। बेटा रामेश्वर की शादी हो जाती है। उसके एक बेटा है और दूसरा होनेवाला है। बेटा-बहू माँ बाप का आदर करते हैं। बरसों के बाद दोनों आनेवाले हैं, बूढ़ी अम्मा गठिया का दर्द भूलकर स्वागत की तैयारियाँ कर रही है। रामेश्वर और बहू के आते ही बूढ़ी अम्मा रामेश्वर की गोद से बच्चे छीनकर ले लेती है। लेकिन बच्चा रोने लगता है। बेटा रामेश्वर नौकरी के कारण दूर रहने से बुआ अकेलापन महसूस करती है। इसलिए कम से कम अपने पोते को साथ में रखना चाहती है। मगर बहू से यह बात कहने में संकोच करती है। एक दिन बहू ने स्वयं माँ से कहा- "अम्मा, इस बार बेटे को आप ही रखेंगी। जैसे भी हो, मैं यहाँ हूँ तब तक उसे

अपने से हिला लीजिए। मैं तो इसके मारे ही परेशान थी, दो-दो को तो......"[1] अम्मा बहू के इस प्रस्ताव से बहुत खुश होकर कहती है-"तुम कह क्यारही हो बहू, बेटू को मेरे पास छोड़ जाएगी, मेरे पास! सच? हे भगवान, तुम्हारी सब बात पूरी हो, तुम बड़भागी होओ। मेरे इस सूने घर में एक बच्चा रहेगा तो मेरा जनम सफल हो जाएगा।"[2] इस प्रकार बुआ अपने पोते को बहुत प्यार करती है तो रामेश्वर अपनी माँ का ख्यान रखता है। इस संदर्भ में एक बार रामेश्वर अपनी माँ से कहता है-"यह क्या अम्मा, तुम कुछ भी गरम कपड़ा नहीं पहने हो! सरदी खा गई तो बीमार पड़ जाओगी। फिर तुम्हें गठिया की भी तकलीफ है, ऐसे कैसे चलेगा? न हो तो बनवा लो कपड़े, मैं रुपये दे दूंगा।"[3] बुआ बेटे की प्यार भरी बातें सुनकर बहुत खुश होती है। लेकिन सबसे ज्यादा उसके लिए खुशी की बात उसके पोते को अपने साथ रखना था। अपने बच्चे को दादी के पास छोड़कर जाते वक्त बहू अपनी सास को कई स्वास्थ्य संबंधी जानकारियाँ देती है। जिससे बच्चे के स्वास्थ्य पर विपरीत असर न पड़े। जैसे दूध का बोतल ठीक से धोने की सलाह। समय पर बच्चे को खिलाना और बड़े-बूढ़ों का आदर और अनुशासन सिखाने की भी हिदायत देती है। लेकिन माँ के अरमान को दादी के प्यार ने पूरा होने नहीं दिया। बुआ के लाड-प्यार ने बच्चे पर कोई अंकुश नहीं रखा। उसके पास कुछ बंधन नहीं होने से बच्चा जो चाहे वह खायेगा और जो चाहे वह करेगा। इस प्रकार बच्चा ज़िद करने लगा। बच्चे को देखने के लिए रामेश्वर एक साल के बाद आया तो बूढ़ी माँ अपने रामेश्वर से इस प्रकार कहती है-"देख रामेसुर, यह तीन-तीन बरस तक घर का मुँह न देखनेवाली बात अब नहीं चलेगी। साल में एक बार तो आ ही जाया कर मेरे लाल! नौकरी की जगह नौकरी है और माँ-बाप की जगह माँ-बाप की। मेरी तबीयत भी ठीक नहीं रहती, किसी दिन भी आँख मूंदी रह जाऊंगी तो मैं तेरी सूरत को भी तरस जाऊँगी। सो कम से कम अपनी

---

1 मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ.सं.21

2 वही-पृ.सं.21

3 वही-पृ.सं.21

इस बुढ़िया माँ को......।"[1] इस प्रकार कहकर बुआ बेटे के सामने रोने लगी। लेकिन दूसरे साल माँ को देखने के लिए रामेश्वर नहीं आया। किंतु उसकी बहू आयी। अपने बेटे का अनुशासनहीन ढंग और जिद करते हुए देखकर बहुत चिंतित होती है और माँ से भला बुरा कहकर अपने बेटे को साथ में ले जाती है। वहाँ जाने के बाद पोते को दादी की याद आती है इसलिए तबीयत खराब हो जाती है। बहू बहुत कोशिश करके बेटे के दिमाग से दादी की यादें निकालती है। वह बच्चा दूसरे बच्चों के साथ खेल-कूद कर जल्दी ही दादी को भूल जाता है। कभी पास-पड़ोसवाले बुआ से पाते के बारे में पूछते हैं तो वह कहती है कि इस उम्र में मैं बच्चे की देखबाल नहीं कर सकती इसलिए मैंने खुद ही बहू से कह दिया कि अपने बेटे को ले जाओ। लेकिन वास्तव में बहू अपने बेटे को खुद ले गयी थी। दूसरों से बचने के लिए बुआ इस प्रकार जवाब देती है। लेकिन मन ही मन बुआ बहुत दुखित थी। अपने गाँव से शिब्बू नामक आदमी बहु के घर जाकर वापस आता है और पोते के बारे में इस प्रकार कहता है कि बच्चा दादी को भूल गया है। यह बात सुनकर बुआ इस प्रकार रोने लगती है-"सुना नर्बदा, बेटू मुझे भूल गया-वह भूल ही गया....."[2]

इस प्रकार इस कहानी में माँ-बाप और बच्चों के बीच प्यार की दूरी के बारे में दिखाया गया है।

"देखो, यह फ्रॉक मत खो देना, सात रुपये मैंने इसकी सिलाई दी है। यह प्याला मत तोड़ देना, वरना पचास रुपये का सेट बिगड़ जाएगा। और हाँ, ग्लास को तुम तुच्छ समझते हो, उसकी परवाह ही नहीं करोगे। पर देखो यह पंद्रह बरस से मेरे पास है और कहीं खरोच तक नहीं है, तोड़ दिया तो ठीक न होगा।"[3] इस प्रकार हर एक चीज के बारे में याद दिलाती है और अन्नु के तबीयत के बारे में रोज एक पत्र लिखने के लिए कहती है। हर एक दिन वहाँ से एक पत्र मिलता था।

---

1 मेरी प्रिय कहानियाँ-पृ.सं.24

2 वही-पृ.सं.29

3 वही-पृ.सं.71

लेकिन एक महीने के बाद तीन दिन तक वहाँ से पत्र नहीं आया तो बुआ बहुत रोने लगी। तभी नौकर पत्र लेकर आता है तो उसके सामने नन्हा सा छोटा बच्चा देख अन्नु का चेहरा बार-बार याद आता है और इस प्रकार सोचने लगती है कि कहीं अन्नु के तबीयत के बारे में कुछ बुरा सुनना पड़ेगा लेकिन उस पत्र से यह मालूम होता है कि बुआ से दिया गया एक कीमती कम सेट टूट गया है। इस कारण से अन्नु का पिता पत्र नहीं लिख पाता है। यह जानकर सयानी बुआ बहुत जोर से हँसी के साथ-साथ रोने लगती है। इस प्रकार कठिन हदय और तीव्र अनुशासन पद्धति को धीरे-धीरे अपने मन से निकाल देती है।

"अनुशासन हीनता" की बढ़ती प्रवृत्ति और इसके कारणों का यथार्थ बताते हुए मन्नू भण्डारी ने ..... की दशक में ही संकेत दे दिये थे। "सयानी बुआ" तत्कालीन समाज के यथार्थ को उजागर करता है। लेकिन अनुशासन की बहुलता या फिर कड़क और अनुशासन कौन सी स्थिति पैदा कर सकता है यह मन्नू भण्डारी की "सयानी बुआ" नामक कहानी में विशेष रूप से उभरा है। "सयानी बुआ" का रहन-सहन, खान-पान, उठना-बैठना आदि तमाम क्रियाओं के लिए वक्त मुकर्रर था। इस तरह की मनःस्थिति को मन्नू भण्डारी एक बार इस संदर्भ में स्पष्ट किया है-"जो पेंसिल वह एक बार खरीदती थी, वह जब तक इतनी छोटी न हो जाती कि उनकी पकड़ में भी न आये तब तक उससे काम लेती थी। क्या मजाल कि वह कभी खो जाए या बार-बार नोक टूट कर समय से पहले ही समाप्त हो जाए। जो रबर उन्होंने चौथी कक्षा में खरीदी थी, उसे नवीं कक्षा में आकर समाप्त किया।"[1] ऐसी स्थिति में अन्नु, एक छोटी लड़की को अपने पिताजी से जबरदस्ती यहाँ यानी कि बुआ के पास पढ़ाने लाती है। बुआ के पास रहने से समय पर सोना, समय पर खाना और समय पर पढ़ना चाहिए। इन सारे नियमों के साथ पलना अन्नु के लिए बहुत कठिन था। एक दिन वह बीमार पडती है। तेज बुखार के कारण डॉक्टर को दिखाया गया। फिर भी बुखार कम नहीं हुआ। अंततः डॉक्टर की सलाह पर बच्ची को घर से कहींदूर, पहाड़ पर ले जाने

की सलाह दी। बच्ची को खुश रखने की डॉक्टरी हिदायत के साथ-साथ "सयानी बुआ" के साथ न ले आने की चेतावनी भी डॉक्टर ने दी। सयानी बुआ इस पर बहुत रोने लगी। लेकिन.... तब भी अपने अनुशासन को सयानी बुआ छोड़ना नहीं चाहती।

आज़ाद भारत की परिवार-व्यवस्था के संदर्भ में "सज़ा" उनकी प्रारंभिक कहानी है। यह एक संयुक्त परिवार की अवधारणा की टूटन से संबंधित एक-एक रेशा कहानी में बारीकी से चित्रित किया गया है। घर का एक-एक सदस्य, एक-एक संबंध संक्रमणकाल में बदलने के लिए किस तरह मजबूत हो जाता है और देखते-देखते, न चाहते हुए भी परिवार का नया रूप किस तरह पहली व्यवस्था का विलोम बन जाता है-कहानी इस निर्मम सामाजिक सत्य को भी उद्घाटित करती है। "सजा" कहानी की आशा का अंतर्द्वंद्व औरत के संशय और अन्तर्द्वंद्व का संकेत देता है। "सज़ा" में एक ओर न्याय में विलंब पर मार्मिक व्यंग्य है। तो दूसरी ओर आर्थिक अभाव के कारण परिवार में आनेवाले बिखराव का मर्मस्पर्शी चित्रण है। बिना किसी अपराध के कारण जेल की सज़ा भोगनी पड़ती है। इस कारण एक सुखी परिवार टूट जाता है। आशा के पिता पर आफिस के बीस हज़ार रुपये चोरी का आरोप लगाया गया। कोर्ट में केस चला। कोर्ट की सज़ा से ज़्यादा परिवारवालों को आर्थिक सज़ा भोगनी पड़ी। इस कारण बच्चों को पत्नी के भाई के घर भेजना पड़ा। इस संदर्भ में आशा की माँ शारदा इस प्रकार कहती है- "उमेश भैया को लिख देना, जो भी वह खर्च करें, हम पर कर्ज ही समझें। मैं उनकी पाई-पाई चुका दूँगी। भगवान कभी हमारे दिन भी बदलेगा ही, नहीं तो अपने को बेचकर उनका कर्ज अदा करूँगी। पर मेरे बच्चों पर थोड़ा रहम करें। ये दुखियारे यों ही अनाथ हो रहे हैं, थोड़ा प्यार इन्हें भी दें। थोड़ा लीला को भी समझा दें।"[2] संयुक्त परिवार में पैसे न होने के कारण रिश्तेदारों में भी विघटन आती है। प्रस्तुत "सज़ा" नामक कहानी की बालिका "आशा" अपने पिताजी को

---

1 मैं हार गई- पृ.सं.68

2 मेरी प्रिय कहानियाँ-पृ.सं.98

बेकसूर का सजा मिलने के कारण पाठशाला के सहपाठियों से व्यंग्यात्मक बातों से आशा की दुःख को और भी बढ़ाने की चेष्टा मन्नू भण्डारी इस संदर्भ के द्वारा स्पष्ट करती है-"हाय-हाय, बेचारी के पिता को जेल हो गई!"[1] और "इतने बड़े लोग भी चोरी करते हैं?"[2]

इस पारिवारिक विघटन को मन्नू भण्डारी ने इस प्रकार स्पष्ट किया है कि बेकसूर आशा के पिताजी को जेल की शिक्षा मिलने के कारण घर की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण आशा को अपने चाचा और चाची के घर में रहना पड़ता है। इस समाज में पैसा हर एक के लिए जरूरी है। चाहे वह अपने ही रिश्तेदार क्यों न हों। दूसरों के बच्चों को खर्च न करना चाहते हैं। इसका प्रत्यक्ष रूप एक संदर्भ के द्वारा आशा के चाचाजी ने 31 तारीख को चाची के हाथ में तनख्वाह रखने से चाची ने इस प्रकार कहा-"अब भाई साहब को लिखा दो कि पचास रुपये नहीं भेज सकेंगे। इस महंगाई के जमाने में दो को पालना ही बहुत भारी पड़ रहा है, फिर हमारे भी तो बच्चे हैं। कौन यहाँ खान गड़ी है।"[3] इस प्रकार मन्नू भण्डारी मध्यवर्गीय परिवार में (पैसों की कमी) उत्पन्न हुए आर्थिक स्थितियों के कारण परिवार विघटित होने की यथार्थता, समाज में और न्यायालय में होने वाले अन्याय आरोपण के द्वारा एक मध्यवर्गीय निर्दोष परिवार के माध्यम से यथार्थबोध का सुंदर चित्रण किया है।

मन्नू भण्डारी की अधिकांश कहानियाँ किसी न किसी संदर्भ में पारिवारिक संबंधों के यथार्थ से जुड़ी हुई है। परंतु "दीवार बच्चे और बरसात", "नकली हीरे", "नई नौकरी", "बंद दराजों का साथ", "छत बनानेवाले", "संख्या के पार", "कमरे कमरा और कमरें", "ऊँचाई", "दरार भरने की दरार","शायद", "रेत की दीवार", "तीसरा हिस्सा", "एखाने आकाश नाई" कहानियाँ और "एक इंच मुस्कान", तथा "आपका बंटी" उपन्यास आदि विस्तृत रूप से पारिवारिक घुटन

---

1 मेरी प्रिय कहानियाँ-पृ.सं.93
2 वही-पृ.सं.93
3 वही-पृ.सं.103

और त्रासदी को स्पष्ट करनेवाली रचनाएँ हैं। पारिवारिक समस्याएँ वस्तुतः पति-पत्नी के एक दूसरे को समझने की शक्ति के अभाव के कारण उत्पन्न होती हैं। इन समस्याओं के द्वारा परिवार के टूटन और विघटन को प्रस्तुत किया गया है। इसके अंतर्गत हम "दीवार बच्चे और बरसात", "बंद दराजों का साथ", "ऊँचाई" आदि कहानियों में पारिवारिक यथार्थ को देख सकते हैं। अर्थात् इन कहानियों में पत्नियाँ जब स्वयं अनुभव करती है कि पति से उनका तालमेल ठीक नहीं बैठ पा रहा है। तब तनाव की स्थिति पैदा हो जाती है। इस तनाव के कारण कोई परिवार पूरी तरह विघटित हो जाता है और कोई विघन की त्रासदी को लगातार भोगता रहता है। "एक इंच मुस्कान" और "आपका बंटी" उपन्यासों में भी पति-पत्नी अगल होने की समस्याओं को दिखाया गया है।

आधुनिक समाज में स्त्री-पुरुष संबंधों की सार्थकता और निरर्थकता की परिभाषाएँ बदल गई हैं। इसी कारण स्त्री-पुरुष संबंधों में नये चित्र प्रतिबिंबित हो रहे हैं। जैसे कि शिक्षा के विकास ने स्त्री को पुरुष के समानांतर चलने की प्रेरणा दी है और इसके साथ-साथ उसे अनेक समस्याओं को और झेलना पड़ रहा है। आज समाज में सबसे ज्वलंत समस्या पति-पत्नी के संबंधों की है। आपसी समझदारी के अभाव से जूझता लगता है हमारा परिवार और समाज और ऐसा लगता है कि सारा कुछ उस "यथार्थ" जनित उन परिस्थितियों पर निर्भर हो जाता है जो संबंधों में तनाव और खटास का कारण बनता है। विज्ञानके बढ़ते चरण ने जहाँ मनुष्य के जीवन को आसपास ला खड़ा किया है वहीं दिलों की दूरियाँ बढ़ाने, मानवीय संबंधों में खटास लाने, व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस संदर्भ में मन्नू भंडारी की "रेत की दीवार" जैसी कहानियों को देखा जा सकता है। जिसमें पति-पत्नी की मध्य आपसी समझ एक भाग्यवादी रेखा की तरह बनकर रह जाती है। वह रेखा जो अगर भाग्यवश मिल गई तो कोण, त्रिकोन, त्रिभुज, चतुर्भुज कुछ भी बन जा सकती है अगर रेखाएँ न मिली तो संबंधों की परिभाषा नदी के दो पाटों में बदल जाती है जो कभी नहीं मिलती। मन्नू भंडारी की कहानियों में यह यथार्थ बिखरा पड़ा है कि मानव तथा उसके सामाजिक

जीवन में प्रगतिशीलता एक ऐसी चादर है जो दुनिया को दिखाने के लिए है। वस्तुतः उसके अंदर कहीं न कहीं प्राचीन, रूढ़िवादी, दकियानूसी परंपराएँ छिपी-दबी रहती हैं। चूंकि समाज का "सनातन धर्म" ही पुरुष प्रधान-सा रहा है। अतः अपने समाज में पुरुष तो "प्रगतिशील" बनकर हवां में मुट्ठियाँ भांजता है लेकिन अंदर ही अंदर वह इसे अपने "अंदर की बात" मानता है कि वह तो स्वयं "विचरण- करे लेकिन नारी वही रूढ़िवादी, दकियानूसी और तथाकथित पारिवारिक परंपराओं का पालन करें। पुरुष समाज की इस पारंपरिक नीतियों और प्रगतिशीलता के विसंगत घोलमेल का ही परिणाम है संबंधों में टूटन। स्त्री भी पुरुष की तरह स्वच्छंद जीवन जीना चाहती है।

आज दाम्पत्य जीवन की स्थिति बदली है। अब परिवार का हर सदस्य स्वतंत्र होना चाहता है। स्वतंत्रता-विचरों की, आचार और व्यवहारों की, कानूनी मान्यताओं की। और इसकी पूर्ति के न होने का परिणाम होता है, परिवार और परिवार की इकाई के कटुता, झगड़े, कडुवाहट और अंततः संबंध-विच्छेद। इसका चित्रण मन्नू भंडारी की कहानी "दीवार बच्चे की बरसात" में है। इस कहानी में पति-पत्नी के अलग हो जाने की चर्चा लोगों के मनोरंजन व उपहास का साधन बनती है। "दीवार, बच्चे और बरसात" नामक कहानी में घर पर ही रहनेवाली औरतें किस प्रकार मुहल्ले की दूसरी औरतों के बारे में हास्य-परिहास की बातें करती है, वही बातें मन्नु भण्डारी मुहल्ले की औरतों में भग्गो भाभी नामक औरत के द्वारा इस प्रकार स्पष्ट करती है-"भग्गो भाभी ने आते ही अपनी दस साल की बिटिया को तो बाहर खेलते बच्चों की बटैलियन में भेज दिया और रहस्यात्मक ढंग से मुस्करा कर पूछा-"क्यों अम्मा, क्या हाल है, तुम्हारी ऊपरी वाली नई किरायेदारिनी के?" "अरे बाबा, अब एक बात हो तो बताऊँ। जानने को तो मैं राई-रत्ती जानूं, पर मैं तो कहूँ, ऐसे भिरष्ट लोगों की बात करके कौन मरी अपनी जीभ गंदी करें।"[1] और इस प्रकार बातें करते-करते समाज की पढ़ी लिखी

---

1 मैं हार गयी-पृ.सं.95

औरतों की निंदा करती हुई दूसरी औरत ने इस प्रकार कहा है-"मैं तो कहूँ, अम्मा! ये पढ़ी-लिखी लड़कियाँ जो न करें सो थोड़ा है। शन्नो बीबी बुरा मत मानना, मैं तो सच्ची बात कहूँ हूँ, इस पढ़ाई निगोड़ी ने औरतों का धरम-करम तो सब डुबो दिया।"[1] आदमी के अहं और सामाजिक परिवेश में उसके टूटने का यथार्थवादी चित्रण, पति-पत्नी के संबंधों, पारिवारिक जीवन और आधुनिक प्रेम आदि का चित्रण दीवार बच्चे बरसात में किया गया है। स्वतंत्रता के बाद आधुनिकता का व्यामोह पुरातन संस्कारों से मुक्ति बिना नूतन से तालमेल बैठाने की कुचेष्टा नारी के जीवन में जो विसंगतियाँ उत्पन्न करती है, उसका यथार्थजनक मनोविश्लेषणात्मक चित्रण दीवार बच्चे बरसात में किया गया है। दीवार बच्चे बरसात कहानी में शिक्षित नारी के बारे में किस तरह चर्चा होती है स्पष्ट किया गया है। मुहल्ले में घरेलू औरतें दोपहर के समय में गपशप करती रहती थीं और भग्गा भाभी मोहल्ले भर का समाचार पाने की टोह में लगी रहती थी। उसी मोहल्ले में शन्नो और शैल दो शिक्षित लड़कियाँ थीं। एक शिक्षित दंपति उसी मोहल्ले में रहने आये थे। पत्नी लेखिका थी। अतः उनका सार्वजनिक जीवन था। उसके पास लोग आते-जाते थे। एक दिन उसे एक मीटिंग में जाना था। अपने पति के लिए खाना बनाकर मीटिंग में चली गयी थी। लौटने पर पति-पत्नी में झगड़ा हो गया। वाद-विवाद के बाद पति ने पत्नी को घर से निकल जाने के लिए कहा। इस संदर्भ में घर की ऊपरवाली औरत के बारे में भग्गो भाभी, बड़ी भाभी से इस प्रकार कहती है-"अब घर से तो अकेली ही गई है, पर होगा कोई यार-दोस्त, जिसके घर जा बैठेगी। मरी के सत्तर यार आया करे थे। धेला-पाई कुछ नहीं ले गई, बड़े ठसके से गई है। हाथ-गले का जेवर तक उतार गई और कह गई कि मैं किसी की दबैल होकर नहीं रह सकूँ। खुद कमाकर खा लूँगी।"[2] इस प्रकार पहने हुए कपड़ों को ही लेकर घर छोड़कर चली गयी। इस कहानी के द्वारा मन्नू भंडारी एक औरत दूसरी औरत की बुराई करने की स्थिति और इसके

---

1 मैं हार गयी-पृ.सं.95

2 वही-पृ.सं.96-97

साथ-साथ शिक्षित नारी पति के दबैल नहीं होकर खुद कमाकर अपने पैरों पर खड़ी होने की स्थिति इसमें यथार्थबोध के धरातल पर केंद्रित किया है।

"नकली हीरे" में अमीर और गरीब के बीच के अंतर के साथ-साथ, पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी के बीच प्रेम की तुलना मूल्यवान वस्तुओं के साथ की गई है। प्रस्तुत कहानी दो बहनों का दांपत्य जीवन के यथार्थ धरातल पर आधारित है। इसमें "एक स्टेट" के भूतपूर्व प्रधानमंत्री के बेटियों के जीवन के बारे में स्पष्ट किया गया है। सरन और इंदु दो बहने हैं। दोनों बहनें धन-दौलत से भरपूर थीं। लेकिन इंदु ने अपनी इच्छा के अनुसार एक साधारण स्कूल मास्टर से शादी की। वह मात्र पांच सौ रुपये में अपनी गृहस्थी चलाती थी। दूसरी ओर उसकी सरन के पति करोड़पति थे और अनेक मिलों के मालिक थे। लेकिन सरन के पति के प्यार के अतिरिक्त सब कुछ था। खाने-पीने, मौज-मस्ती की कोई कमी नहीं थी। सरन के पति उनके लिए कीमती वस्त्र-गहने लाते थे। लेकिन इंदु के लिए उसका पति ही सर्वस्व था। इंदु को वस्त्रों या गहनों का मोह नहीं था। उसका अलंकार सिर्फ उसका पति और उसका प्यार था। उसको अपने दीदी सरन के ऐश्वर्य से कोई ईर्ष्या नहीं थी। इंदु एक बार अपने दीदी के पास आयी। तब मिसेज सरन बहन के लिए एक कीमती हीरे का हार देना चाहती थी। लेकिन इंदु ने स्वीकार नहीं किया। तब मिसेज सरन को शक हुआ कि वो हीरे का हार कहीं नकली तो नहीं था क्योंकि मिसेज सरन एक बार अपनी बहन की इच्छा के अनुसार ट्रंकाल बुक करके पति से बात करने की कोशिश कर रही थी। तब उसके लिए नौकर से जवाब इस तरह मिला था कि-"साहब तो हुजूर अनिता मेमसाहब के साथ डान्स पर गए हैं। आने से हम बोल देगा।"[1] इस संदर्भ से हमको यह समझना चाहिए कि इस कहानी की नायिका को धन-दौलत से ज्यादा अपने पति का प्यार चाहिए था लेकिन पति दूसरी और के साथ घूम-फिर कर नायिका के मन को ठेस पहुँचाता है। इस कारण से दांपत्य जीवन में अलगाव

---

1 यही सच है-पृ.सं.94

उत्पन्न हो जाता है। प्यार एक ऐसी अनमोल चीज है जिसकी तुलना और किसी चीज से नहीं की जा सकती।

"नई नौकरी" कहानी की रमा एक कालेज में इतिहास की प्राध्यापिका है। वह दस साल तक काम करती रही। उसका पति कुंदन एक आफिस में काम करता है। कुंदन रमा को कालेज मं छोड़कर अपने आफिस जाया करता है। उनका बंटी नामक एक बेटा भी है। वे बहुत खुशी से जीवन बिता रहे थे। कुछ साल के बाद कुंदन को डॉ.फिशर ने नई-नौकरी दी। इससे उसकी जिंदगी बदल गयी। कंपनी विदेशी थी, इसलिए उनके घर पर ही विदेशियों को पार्टियाँ देनी पड़ती थी। इस कारण से रमा प्राध्यापिका के रूप में अपना कर्तव्य ठीक से नहीं निभा पा रही थी। हमेशा अपना घर सजाना और पति के साथ हर जगह रहती थी। लेकिन रमा के साथ कहीं पर भी कुंदन नहीं आता था। अब रमा का अस्तित्व पुरुष प्रधान संस्कृति का शिकार बन गया था। नारी का तनाव और टूटन इस कहानी में चित्रित किया गया है। इसमें नायक कुंदन पत्नी की इच्छाओं के प्रति बिल्कुल आदर नहीं देता।

एक दिन बहुत गुस्से में आकर रमा ने कुंदन से कहा कि "अब निभता नहीं कल इस्तीफा दे दूँगी।"[1] तुरंत पति से यह जवाब मिला कि-"छोड़ो भी यार, वैसे भी क्या रखा है एंशिएण्ट हिस्ट्री पढाने में। चोल वंश, चेदि वंश के बारे में न भी जानेंगे तो कौने-सी जिंदगी हराम हो जाएगी।"[2] "इससे तो तुम खूब किताबें पढ़ो, मैग्जीन्स पढ़ो....कुछ छुटपुट क्लासेज अटेण्ड कर लो। बंटी को पढ़ाओ। दुनिया-भर के बच्चे को पढ़ाओ और अपना बच्चा निगलेक्ट हो...."[3] इस तरह इस कहानी में रमा शिक्षित नारी के रूप में एक शो-पीस बन कर रह गयी। यथार्थपरक दृष्टिकोण के साथ विचार करने से नारी के लिए अलग-सा न्याय और पुरुष के लिए अलग सा न्याय यह कहाँ तक सामंजस्य है? विवाह के बाद

---

1 मेरी प्रिय कहानियाँ-पृ.सं.36

2 वही-पृ.सं.36

3 वही-पृ.सं.36-37

स्त्री पति के लिए सब कुछ त्याग देती है। लेकिन पुरुष स्त्री की आलोचनाओं और विचारों को समझने के लिए कोशिश क्यों नहीं कर सकता है?

"बंद दराजों का साथ" कहानी में पति-पत्नी के बीच में दूसरी औरत का प्रवेश होने से किस तरह अलगाव हो जाता है, इसे स्पष्ट किया गया है। वैवाहिक जीवन केवल आकर्षण के सहारे नहीं चल सकता। आकर्षण क्षणिक मात्र है। परस्पर समझौते से दोनों में साहचर्य बना रहता है। आज की नारी पुरुष का हर क्षेत्र में साथ दे रही है। लेकिन पुरुष उसको धोखा देता जा रहा है। पुराने जमाने में नारी-पुरुष के संबंध स्पष्ट और खुले थे। आधुनिक समाज में पुरुष पत्नी के साथ प्रेम का नाटक कर रहा है-एक इतना अच्छा नाटक किसी को पता भी नहीं चलता। मंजरी विपिन के साथ विवाह करने के बाद सुख से जीवन बिता रही थी। अचानक उसे विपिन की एक और जिंदगी का पता चला जिसमें एक दूसरी औरत और इसका एक बच्चा भी है। तब मंजरी भी गर्भवती थी। मंजरी प्राध्यापिका थी। पति के इस व्यवहार से तंग आकर मंजरी अलग हो जाती है। उसके बाद मंजरी अपने तन, मन और अपनी तनहाई से लड़ती है। अंततः अपने बेटे असित को होस्टल भेजकर दिलीप से दूसरा विवाह करती है। कालेज में सहकर्मियों की हरकत से परेशान होकर उसने नौकरी भी छोड़ दी। मंजरी दूसरी शादी करने पर सहकर्मियों के व्यंग को मन्नु भण्डारी ने इस संदर्भ के द्वारा स्पष्ट किया है-"दिलीप अब साथ आ गया था और इसलिए जिंदगी के दस वर्ष एकदम चले गए थे। घर बदल गया था और बिल्कुल नये ढंग से सजाया गया था। नये घर की साज-सज्जा में हमेशा कुछ-न-कुछ गुनगुनाते हुए वह काम किया करती थी। नौकरी उसने छोड़ दी थी, क्योंकि साथियों की नजरों में झांकती हिकारत उससे बर्दाश्त नहीं होती थी। वैसे भी इस काम से वह बहुत ऊब चुकी थी।"[1] छुट्टियों मं असित घर आता था, छुटिअयाँ समाप्त होने के बाद स्कूल से फीस का कार्ड भी आया था। तब दिलीप के मन में आर्थिक कठिनाई की बात सामने आयी थी। उसी वक्त मंजरी को पहली

---

1 मेरी प्रिय कहानियाँ-पृ.सं.46

बार दाम्पत्य जीवन में दरार आ गई। उसकी जिंदगी टुकडों में बंट गई थी। विपिन के औपचारिक पत्र, जिसमें असित का आधा खर्चा देने की बात रहती थी, असित के पत्र, स्कूल की रिपोर्ट आदि कागजात अलग दराज में रहने लगे। नारीत्व और ममत्व के संघर्ष के बीच मंजरी जीवन बिता रही थी।

बंटी की होस्टल की छुट्टियाँ समाप्त होने के बाद अगले साल के लिए "फीस" देनी थी, उस संदर्भ में दिलीप ने कहा कि-"यह स्कूल काफी महँगा है। इस महीने यों भी काफी खर्च हो गया।"[1] इसका मतलब यह है कि दिलीप अपनी ओर से पैसा नहीं देना चाहता था क्योंकि बंटी उसका बेटा नहीं था। इस कहानी में इन सब समस्याओं का मूल कारण विपिन था। विपिन की वजह से मंजरी का जीवन टुकडों में कट गया है।

पारिवारिक यथार्थबोध की दृष्टि से "नई नौकरी" एक हद तक तथा स्थितिवादी कहानी प्रतीत होती है। जबकि यह सर्वविदित है कि यथार्थ कदापि यथास्थिति का पर्याय नहीं होता। इस कहानी की नायिका रमा इतिहास की प्राध्यापिका है। वह अपने काम में खूब रुचि लेती है और अपने जीवन से संतुष्ट है। किंतु एक विदेशी "कंपनी" में उसके पति कुंदन को जब "नई नौकरी" प्राप्त होती है तो रमा अपनी पेशे के साथ न्याय नहीं कर पाती। कुंदन की "नई नौकरी" के साथ यदि बहुत सी सुविधाएं जुड़ी हैं तो अनेकानेक चाही अनचाही जिम्मेदारियाँ भी। विदेशों में पार्टियों का प्रचलन है। इसकी वजह से रमा के रूपर घरेलू जिम्मेदारियों का पहाड़ टूट पड़ता है। इसे रोज कुंदन के साथ पार्टी में जाना पड़ता है या अपने ही घर पर पार्टियाँ देनी पड़ती हैं। नौकरी कुंदन की है पर घरेलू प्लॉट का फर्नीचर, पर्दे, घर की सजावट व्यावसायिक मेहमानों की खातिरदारी आदि में प्राध्यापिका रमा को पढ़ाई-लिखाई की बात तो और दम मारने की फुरसत भी नहीं मिलती। कुंदन की नई नौकरी की वजह से रमा का अस्तित्व और व्यक्तित्व, उसकी इच्छा, आकांक्षा तथा उसका बौद्धिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। वह

---

1 मेरी प्रिय कहानियाँ-पृ.सं.46

अंदर ही अंदर घुरती है। उसे इस बात का क्षोभ है कि उसका पति उसे एक शो पीस समझता है। पुरुष-प्रधान परिवार में एक रचनात्मक व्यक्तित्व संपन्न स्त्री की छटपटाहट ही इस कहानी का केंद्र बिंदु है। किंतु लेखिका ने जिस तरह रमा के अपनी नौकरी के इस्तीफे के निर्णय के प्रति कोई प्रतिरोध दर्ज नहीं किया है। वह इस कहानी के यथार्थबोध को सीमित करता प्रतीत होता है। झुंझलाहट में लिए गए रमा के इस निर्णय पर कुंदन की टिप्पणी है कि "छोड़ो भी यार, वैसे भी क्या रखा है ऐशिएण्ट हिस्ट्री पढ़ाने में। चोल वंश, चोल वंश के बारे में न भी जानेंगे।

इस कहानी में मन्नु भंडारी ने कामकाजी महिलाओं की मानसिक दशा के बारे में यथार्थ रूप से स्पष्ट किया है। विवाह के बाद अगर पति को नई नौकरी मिलने से पति ज्यादा पैसों की ओर आकर्षित होकर वैवाहिक जीवन में पत्नी को प्यार के बदले धन देना और पत्नी के नौकरी को छोटा समझना आदि विषयों को लेकर स्वार्थ पुरुष की बुद्धि को यथार्थबोध के द्वारा स्पष्ट किया है।

संयुक्त परिवार हमारे समाज का एक अभिन्न हिस्सा है। इसके अगर गुण हैं तो अवगुण भी हैं। संयुक्त परिवार में रहनेवाले अक्सर यह महसूस करते हैं कि उनका स्वयं कहीं लुप्त हो रहा है। न कहीं अपनी मर्जी से आने-जाने की स्वतंत्रता, न विचारों की यहाँ तक कि अक्सर खाने-पीने पर भी अपना खुद का वश नहीं रहता। इस असलियत को मन्नू भंडारी ने बड़े ही स्पष्टता से कहानी "छत बनाने वाले" में दर्शाया है। शहर से आया शरद यह देखकर अचंभित होता है कि उसके ताऊजी के शादी शुदा पुत्र अपने पिताजी की विचारधारा को अपनाए हुए हैं-चाहे वो फिर खाने पीने का समय हो, खान पान की रुचि या फिर किस वक्त पर क्या खाना चाहिए।

संयुक्त परिवार के सदस्यों में यह घुटन-अपने व्यक्तित्व का कहानी "एखाने आकाश नाई" में भी दर्शाया गया है। इसमें भी कलकत्ता से विवाहित लेखा अपने गाँव ताजे वातावरण जाती है। वहाँ उसे अपनी भाभी का रसोई केंद्रित जीवन देखकर घुटन महसूस होती है। खुद उसकी भाभी कहती है-"जब अपना आदमी ही नहीं पूछे, तो दूसरों को क्या दोष दूँ! तुम्हारी तरह पढ़ी-लिखी

होती, तो मैं भी कमाकर खा लेती। अब तो समझ में नहीं आता यह पहाड जैसी जिंदगी कैसे कटेगी! कैसे इस छोटे को बड़ा करूँगी। मकान के इस हिस्से के सिवा मेरे पास तो कुछ नहीं नहीं है। हिस्से का थोड़ा-बहुत पैसा है, पर सब दबा लिया। माँगती हूँ, तो सबको काँटे जैसे लगती हूँ। गौरा को लखनऊ में मैंने साल तक अपने पास रखा, पढ़ाया-लिखाया। इस छोरे की कसम खाकर कहती हूँ जो कभी एक पैसा भी लिया हो या उसे तकलीफ़ दी हो। तुम्हें तो याद होगा, तुम शादी होकर आई थी तब कैसी दिखती थी गोरा....! अब देख लो, कैसी हो गई है। पर आज मुझ पर संकट पड़ा तो.....।"[1] एक संयुक्त परिवार में अनपढ़ स्त्री की स्थिति को बड़े ही यथार्थ से लेखिका ने दर्शाया है। पैसे की तंगी, घर खर्च के लिए निरंतर पैसे माँगना और किसी प्रकार से बच्चों का पालन पोषण करना स्त्री के ऊपर ही रहता है।

स्त्री की यह घुटन सिर्फ संयुक्त परिवार में सीमित नहीं है। महानगर में रहते, छोटे परिवारों में भी यह अहसास है। दाम्पत्य जीवन में पति-पत्नी की घुटन और एक खामोश आक्रोश मन्नू भंडारी ने अपनी कई कहानियों में दिखाया है। यह आक्रोश और घुटन सिर्फ कहानी के पात्रों का नहीं है, वरन् यथार्थपरक जीवन का एक आईना है।

दाम्पत्य जीवन में स्त्री की विवशता को "कमरे, कमरा और कमरा" कहानी में और भी सहज रूप से दर्शाया है। अधिक कठिनता से नीलिमा अपनी पढाई खत्म कर नौकरी करती है। मगर विवाह के पश्चात उसकी पढाई सिर्फ एक डब्बे में बंद होकर घर के किसी कोने में खो जाती है। अपनेपति के व्यवसाय में सहायता करती नीलू अपने आप को कहीं खो देती है। रुचि न होकर भी नीलू अपने पति के व्यवसाय में खूब लगन से हाथ बँटाती है। "वह श्रीनिवास के जीवन की, उसके हर काम की भागीदार है, सो उसने स्वीकार कर लिया और अब वह घर के चार कमरों से बढ़कर आफिस के साथ ही कमरों तक फैल गई। श्रीनिवास की अनुपस्थिति में वह नियमित रूप से सबेरे से शाम तक आफिस में बैठती और

---

1 त्रिशंकु-पृ.सं.195

जब घर भी आती, तो आफिस साथ ही आता था। विशेष रूचि न होने पर भी वह इस काम को पूरी मेहनत से करती थी। पर बिना रुचि के मेहनत उसे जल्दी हीथका देती थी।"[1] इस प्रकार विवाह के पश्चात नीलिमा अपनी इच्छाओं की बलि चढ़ाकर अपने पति के इच्छाओं के अनुसार रहती है।

भारतीय परंपरा में पत्नी का पति के प्रति निष्ठावान रहना पहला धर्म है। यह धारण आज भी नहीं बदली है। जीवन के व्यावहारिक धरातल पर अधिकांश पत्नियाँ निष्ठावान होती हैं। उनकी निष्ठा का प्रमाण है कि वे पति की क्रूरता, यातना, आक्रोश, व्यवहार एवं विचार की भिन्नता के बावजूद भी समर्पणशील होती हैं। और अंत तक पति के प्रति समर्पित रहती हैं। स्वतंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में पत्नी के निष्ठावान रूप का पर्याप्त चित्रण "नाशा" नामक कहानी में देखा जा सकता है। आनंदी का पति शराबी है। वह स्वयं नहीं कमाता लेकिन आनंदी जो कुछ कमाकर लाती है वह उससे छीन लेता है और शराब पीता है। पति की बुरी आदतों के कारण उसका बेटा घर से भाग जाता है। बेटा बारह वर्ष के बाद माँ-बाप की सुध लेता है। शराबी शंकर बेटे के आने की खबर आनंदी को देता है और उससे पैसे लेकर शराब पीने चला जाता है। मन्नू भंडारी एक संदर्भ के द्वारा आनंदी के मन की भावनाएँ इस प्रकार स्पष्ट करती हैं-"...शंकर आज के दिन भी शराब पीने गया। क्यों नही वह सारे मुहल्ले में दौड़ता फिरा? क्यों नहीं उसने घर-घर जाकर खबर दी कि किशन आ रहा है? क्यों नही उसके पास बैठकर उसने बात की कि किशन के आने की तैयारी में क्या-क्या किया जाए?..."[2] आनंदी का बेटा किशन आता है। वह देखता है कि उसका पिता अब भी शराब पीता है। वह माँ को अपने साथ ले जाता है। आनंदी वहाँ जाकर पति के लिए बेटे और बहू से छिपकर पैसा कमाती है और अपने पति के पास पैसे भेजती है। पति की आदतें और व्यवहार खराब होने के बावजूद वह पति को छोड़ नहीं पाती। यहाँ आनंदी का चरित्र प्राचीन भारतीय परंपरा को ढोता हुआ दिखाई देता है।

---

1 एक प्लेट सैलाब-पृ.सं.118

2 यही सच है-पृ.सं.100

"घुटन" कहानी की नायिका प्रतिमा पति की ख्वाहिशों के आगे अपनी इच्छाएं त्याग देती है। घुटती है। पति की अनुपस्थिति में अपनी ऊब और घुटन को दूर करने के लिए वह दूसरा रास्ता खोजती है। उसका पति वर्ष में एक-दो बार घर आत है। और घर आकर शराब में ही डूब जाता है। उसकी पत्नी साथ रहकर भी अलगाव की स्थिति से गुजरती है। बावजूद इसके वह चाहती है कि उसका पति भले ही शराबी हो, लेकिन वह उसकी आंखों के सामने रहे। उसके सामने ही शराब पीये। घुटन कहानी के माध्यम से मन्नू भंडारी ने यहाँ भारतीय स्त्री के रूढिवादी परंपराओं को ढोते हुए दिखाया है। नायक की लाख नालायकी के बावजूद नायिका पति को त्यागना नहीं चाहती। भारतीय समाज में नारी की विडंबनाओं को उकेरना ही "घुटन" का यथार्थ है। दूसरी ओर "अकेली" कहानी में सोमाबुआ एक बूढ़ी परित्यक्ता है। जवान बेटे की अकाल मृत्यु ने पिता को सन्यासी बना दिया। सोमा बुआ का जीवन कहानी में ऐसे स्त्री पात्र के रूप में किया गया है जिसका जीवन न विधवा का है और न परित्यक्ता का। वह न परिवार के लिए अवांछनीय है और न प्रासंगिक। ऐसी स्थिति में "अकेली" सोमाबुआ अपने जीवन को ढोने के लिए अन्य उपायों का सहारा लेती है। "अकेली" कहानी समाज की उस नारी के प्रतीक है जो न सधवा है और न विधवा। सोमा बुआ सुहागन है लेकिन उसके "सुहाग" को मानवीय संवेदनाओं से कोई मतलब नहीं। ऐसी स्थिति में नारी जीवन की दैनिक उपयोगिता की ओर इशारा करते हुए मन्नू भंडारी ने सोमा बुआ के चरित्र को समाज के बीच बंटते दिखाया है। "अकेली" सोमाबुआ अपने एकाकीपन को दूर करने के लिए खुद को समाज में बांट देती है। गाँव-पड़ोस में कहीं भी मुंडन, ब्याह-संस्कार हो, सोमा बुआ पहुंच जाती और अपने एकाकीपन को दूर करती। लेकिन सन्यासी बना और हरिद्वार में रमा-बसा उसका पति (यानी भारतीय परंपराओं में श्रेष्ठता का प्रतीक पुरुष समाज का प्रतिनिधि) यह भी गवारा नहीं करता। वह सन्यासी भी है और दुनियादारी करने के लिए वर्ष में एक बार घर भी आता है। घर आकर उसका पति अपना पौरुष इस बात की झाड़ता है कि उसकी पत्नी उसकी अनुपस्थिति में दूसरों के घर क्यों जाती है।

सोमा बुआ के पति की संवेदनहीनता और दबदबे की प्रवृत्ति का "यथार्थ" है। रूढिवादी पुरुष-प्रधान मानसिकता"अकेली" कहानी में इसी मानसिकता के दर्द से उभरा चरित्र सोमा बुआ का है।

बुआ अपने दर्द को भी पड़ोसी राधा से बांटते हुए कहती है-"सुनने को तो सुनती ही हूँ, पर मन तो दुखता ही है कि एक महीने को आते हैं तो भी कभी मीठे बोल नहीं बोलते। मेरा आना-जाना इन्हें सुहाता नहीं। सो तू ही बता राधा। ये तो साल में ग्यारह महीने हरिद्वार में रहते हैं। इन्हें तो नाते-रिश्तेवालों से कुछ लेना-देना नहीं, पर मुझे तो सबसे निभाना पड़ता है। मैं भी सबसे तोड़-ताड़कर बैठ जाऊँ तो कैसे चले! मैं तो इनसे कहती हूँ कि जब पल्ला पकड़ा है तो अंत समय में भी साथ ही रखो, सो तो इनसे होता नहीं। सारा धरम-करम ये ही लूटेंगे। सारा जस ये ही बटोरेंगे और मैं अकेली पड़ी-पड़ी यहाँ इनके नाम को रोया करूँ। उस पर से कहीं आऊँ-जाऊँ, वह भी इनसे बर्दाश्त नहीं होता...."[1]

विवाह के पश्चात् स्त्री अपने पति से प्यार प्राप्त करना चाहती है। पति से प्यार स्नेह और सम्मान न मिलने पर स्त्री में कुंठा उत्पन्न होती है। स्त्री की इसी कुंठा को भंडारी ने "कील और कसक" कहानी में उकेरा है। रानी और कैलाश की नयी-नयी शादी होती है। कैलाश पत्नी की ओर कम ध्यान देकर ऋण से पीछा छुड़ाने के लिए रात-दिन प्रेस में काम करके पैसा कमाना चाहता है। कर्ज उतारने के भूत वशीभूत होकर वह अपनी बीवी तक को भूल जाता है। वह पैसों के लिए एक शेखर नामक नव युवक को अपने यहाँ पेइंग गेस्ट बनाता है। रानी को पति का साथ मयस्सर नहीं। वह अकेली घुटती रहती है। पास-पडोस के लोग और औरतें अपने-अपने परिवारों के साथ अक्सर घूमते देख-देख कर वह कुंठित होती रहती है। एक दिन वह कैलाश से कहती है-"एक दिन मुझे प्रदर्शनी ही दिखा लाओ। देखा न, पडोस की सारी औरतें देख आई।"[2] इस पर उसे कैलाश रूपी पुरुष का जवाब मिलता है-"तूम भी किसी के साथ चली जाती ना! मुझे तो समय

---

[1] मेरी प्रिय कहानियाँ-पृ.सं.12-13
[2] मैं हार गई-पृ.सं.123

नहीं है सैर-सपाटों के लिए।"[1] अपने एकाकीपन से तपती रानी अपने ही घर में रह रहे शेखर की ओर आकर्षित होती है। फिर भी वह पति से जब एक दिन शेखर के साथ प्रदर्शनी देखने जाने की इजाजत मांगती है तो शेखर रूपी परंपरागत रूढ़ीवादी पुरुष मानसिकता का जवाब होता है-"......शेखर के साथ अकेले जाते शर्म नहीं लगती।"

"बाहों का घेरा" कहानी में कम्मो अतीत और वर्तमान के प्रेम में मानसिक दृष्टि से द्वन्द्व एवं तनाव को झेलती है। पति अधिक व्यस्त रहता है। इसलिए पति का उसे पूरा प्यार नहीं मिल पाता। पति की अनुपस्थिति में उसे अपने पूर्व प्रेमी का ध्यान आता है जिसने एक बार उससे कहा था "कम्मो, तुम्हारे बिना मैं कितना अकेला हूँ। तुम्हारी बाँहों के घेरे में बँधकर मेरे सारे संताप दूर हो जाएंगे।"[2] लेकिन कम्मो अपने पति से ऐसा कुछ नहीं कह पाती और रात को केवल बिस्तर का भागीदार बन कर रह जाती है। वह सारा दिन उदास और खिन्न रहती है। बच्चे के साथ दिल तो बहलाया जा सकता है किंतु बच्चा पुरुष जैसी अनुभूति तो नहीं दे सकता। उसके जीवन की एकरसता तब टूटती है जब उसे एक दिन शम्मी का पत्र मिलता है जिसे वह पहले से जानती है और उसकी रिश्तेदार भी है। शम्मी के आने पर कुछ दिन कम्मो के अच्छे कट जाते हैं किंतु उसके बाद फिर वही मानसिक अंतर्द्वन्द्व। वह अपेक्षा करती है कि जब रात को पति के पास जाए तो वह उससे कहे-"कहाँ इतनी देर कर देती हो? यहाँ राह देखते देखते मर गये। क्या काम रहता है ऐसा तुम्हें भीतर?[3] यही कारण है कि उसकी असंतुष्टता इतनी बढ़ जाती है कि वह सोचती है कि आज उसके सामने न माँ का चेहरा उभर रहा है न शैलेन का? न मित्तल का। सब चेहरे मिट गये, रह गई सिर्फ एक चाह दुर्दमनीय चाह। एक ललक कि कोई हो, कोई भी-जो उसे कस कर अपने में समेट ले। जिसकी आँखों में प्यार हो। अपूर्णता हो। कम्मो को इतना भींचे, इतना भींचे कि

---

1 मैं हार गई-पृ.सं.123

2 एक प्लेट सैलाब-पृ.सं.98

2 वही-पृ.सं.108

उसकी हड्डियाँ तक चरमरा जाएँ। हड्डियों को चरमरा देनेवाली प्यार के चाहत की चाह रखने वाली रानी को जब कुछ नहीं मिलता तो वह बच्चे में अपना ठिकाना ढूँढ़ती है।

"एक कमजोर लड़की की कहानी" में रूप जब छोटी थी तभी माँ की मृत्यु हो गई। पिता रमेश बाबू उसके लिए नयी माँ ले आए। लेकिन माँ की ममत्व को नहीं दिला सका। दूसरी पत्नी के कारण रमेश बाबू रूप का स्कूल बंद करवा देता है और घर में काम करते हुए पढ़ाई जारी रखने को कहता है। इससे यह पता चलता है कि रमेश बाबू पिता के स्थान पर रहकर बेटी की इच्छाओं को अपने काबू में रखना चाहता है। इसलिए उनके इच्छानुसार अपनी बेटी रूप को पढ़ाने मामा-मामी के पास भेजते हैं। वहाँ मामा-मामी एक अनाथ लड़का ललित को पालते हैं। रूप जल्दी ही उस घर के वातावरण में घुलमिल गई है। मैट्रिक में वह प्रथम श्रेणी प्राप्त की धीरे-धीरे रूप ललित से प्यार करने लगी। ललित को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेश जाना पड़ता है। ललित विदेश से वापस आने के बाद रूप से शादी करने का वादा करता है। लेकिन फिर अपने पिताजी के इच्छानुसार रूप की शादी वकील से हो जाती है। उसने कभी न मरने की न ही आत्महत्या करने की चेष्टा की। बुझे दिल से गृहस्थ जीवन बिताती रही। यहाँ पर भी रूप के पति वकील साहब हमेशा अपने काम में व्यस्त रहते हैं। रूप को बचपन से लेकर यौवन और विवाहोपरांत भी प्रेम की कमी महसूस होती है।

"शायद" नामक कहानी के द्वारा मन्नू भंडारी पति-पत्नी के बीच में उत्पन्न होनेवाली आर्थिक तनावों को उभारा है। कहानी में राखाल और माला पति-पत्नी हैं। राखाल जहाज पर मेकैनिक था। दो या तीन साल में एक बार घर आता है। हर एक महीने पैसे इकट्ठा करके घर भेजता है। पत्नी द्वारा लिखे हुए पत्रों से घर का समाचार जानता और अपना कर्तव्य निभाता है। लेकिन पत्नी के साथ नहीं रह पाता है। पत्नी माला भी पत्नी और माँ बनकर घर की पूरी जिम्मेदारियों को संभालती है और पति की राह देखती है। आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण माला अपनी छोटी बच्ची बुलबुल को बीमारी से बचा नहीं पाती है। उसकी अकाल

मृत्यु के बाद तीन साल के बाद दो महीनों की छुट्टी लेकर राखाल घर आता है। बुलबुल की मृत्यु की खबर सुनकर बहुत चिंतित होता है। राखाल तीन साल के बाद घर आने से पत्नी एक बार पति से इस संदर्भ में इस प्रकार अपनी मन की व्यथा को प्रकट करती है-"मुझे तो दो साल काटना ही इतना भारी पड़ता था, इस बार तुमने पूरे तीन साल लगा दिए। पूजा पर कितनी-कितनी राह देखी! बेचारे बच्चों को एक-एक नया कपड़ा तक न दिलवा सकी। दादा की बिजली की दुकान खूब अच्छी चलने लगी है, सो यह लाइट तो जरूर लगवा दी। पर इतना नहीं हुआ कि बहन के बच्चों को एक-एक कपड़ा ही दिलवा देते। टुकुर-टुकुर मेरे बच्चे दूसरों के घर में ताकते रहे।" पति के दूर रहने पर भी और बहुत सारी आर्थिक समस्याएँ होने पर भी पति के साथ ही माला जीवन बिताना चाहती है। जबकि राखाल के साथ जहाज पर काम करने वाले एक सहकर्मी की पत्नी दूसरे आदमी के साथ रहने लगी है। लेकिन राखाल का माला के ऊपर बहुत ही विश्वास है क्योंकि माला कभी भी राखाल को छोड़नेवाली औरत नहीं है। यहाँ अनेक समस्याएँ होने पर भी पति-पत्नी के बीच में समझौता है। छुट्टियाँ समाप्त होने के बाद राखाल फिर से जहाज पर चला जाता है। इस प्रकार लेखिका एक मध्यवर्गीतय परिवार में उत्पन्न होनेवाली समस्याओं के साथ-साथ आदर्श पति-पत्नी का चित्रण किया है।

"संख्या के पार" कहानी में एक स्त्री की जरूरत, एक माँ की ममता और एक बच्ची के लालन-पालन तथा उसके शिक्षण से जुड़ी वेदनाओं को दर्शाया गया है। कहानी के मूल में ममता, क्रूरता, मानवीय संवेदनाओं और पुरुष की कठोरता आदि तत्वों का इस प्रकार समावेश किया है कि भारतीय समाज का "यथार्थ" उभर कर सामने आता है। "संख्या के पार" कहानी की नायिका विधवा होने के बाद अपनी शारीरिक और मानसिक जरूरतों को पूराकरने की गरज से अपने दूध मुंहे बच्ची प्रमिला को उसके नाना-नानी के घर छोड़कर भाग जाती है। बहू के भाग जाने से उसके सास-ससुर नाराज होते हैं।

सास-ससुर ही नहीं अपने माँ-बाप भी उसे घृणा करते हैं। वर्षों बाद प्रमिला की माँ रहस्य रूप में बाबा से छिपकर प्रमिला से मिलने आती हैं। मगर बाबा को पता चल जाता है और इसका प्रत्यक्ष रूप मन्नू भंडारी इस संदर्भ में बाबा के द्वारा स्पष्ट करती हैं-"वह नहीं आ सकती.....इस घर में पाँव भी नहीं रख सकती। सच कहता हूँ, वह आयी तो मैं उसकी टाँगे तोड़ दूँगा।"[1]

एक नारी  नारी का दुश्मन भी बन सकती है और दूसरे रूप में नारी दूसरी नारी के ममत्व को भी जान सकती है। शायद इसलिए प्रमिला की नाना नानी से इस प्रकार पूछती है-"एक बार अगर वह प्रमिला को देख ही लेगी तो क्या हो जाएगा....? वह माँ है.... तुम उसका दुःख क्यों नहीं समझते?"[2]

अंत में प्रमिला की माँ बहुत साहस के साथ प्रमिला को देखने आती है और प्रमिला को भी पहली बार अपनी माँ को देखकर बहुत खुश हो जाती है। अपनी बाबा के कारण यह खुशी एक ही क्षण में समाप्त हो जाती है। तुरंत बाबा बहुत गुस्से में आकर बेटी से इस प्रकार कहता है-"सुनती हो? लो, यह चेक इसे दे दो और कह दो रुपये-पैसे की तकलीफ़ न देखे.....।"[3]

अपराध बोध का भार उठाए:पारिवारिक दुर्दशा के बीच में "रेत की दीवार" कहानी में नायक रवि का चित्रण किया गया है। रवि इंजिनीयरिंग फाइनल की छुट्टियों में घर आता है। वह माता-पिता, भाई-बहन और परिवार जनों से मिलकर खुश होने के बजाय उनकी अवस्था देखकर व्यथित होता है। और उसमें अपराध-बोध उत्पन्न होता है।

रवि को लगा छोटे भाई होने की बीमारी का चिकित्सा न कर पाना, बहन चंद्रा का कॉलेज में भर्ती हो न पाना, माँ का महरी का काम करना, माँ की आँखों का ऑपरेशन स्थगित रखा जाना, पिता का दफ्तर के बाद शाम में किसी दुकान में हिसाब-किताब करने जाना आदि क्लेश और संतोष भरी बातें कोई नहीं बताता।

---

1 एक प्लेट सैलाब-पृ.सं.89

2 वही-पृ.सं.92

3 वही-पृ.सं.94

सब इधर-उधर की बातें करके रह जाते है। अम्मा के प्यार दुलार से वह बेचैन है। उसे लगता है कि अनजाने में उस पर बोझ लादा जा रहा है। वह परिवार की आर्थिक स्थिति को देख कुंठाग्रस्त हो जाता है। वह चाहता है कि बाबू उससे कह दें रवि तुम्हारी पढ़ाई मेरे बस की बात नहीं है। तुम्हारी पढ़ाई से ज्यादा टोनी की जान है। तुम्हारी अम्मा की आँखें हैं। पर उनका कहना तो दूर, उसका संकेत भी नहीं करते तो उसे लगता है कि उसके मन पर असह्य बोझ है। वह सोचता है- इंजीनियर बनकर भविष्य कहाँ है? बेकार इंजीनियरों की यूनियन में शामिल होना पड़ेगा। विदेश में भविष्य बन सकता है। लेकिन विदेश जाने के लिए "पुल एण्ड पुश" की जरुरत है। इस प्रकार रवि अपने घर की आर्थिक स्थितियों को याद करते हुए चिंतित होता है। अम्मा बाबू के अतिरिक्त सहनशीलता उनका त्याग, चंदा की समझदारी यह सब उसे उसके खिलाफ गुप्त षडयंत्र लगता है। यह सब सोचकर उसका मन डूबने लगता है। वह अपने को अपराधी इसलिए भी समझता है कि परिवार की उस अनवस्था के लिए वह स्वयं जिम्मेदार है। परिवार की अनवस्था के लिए जिम्मेदार न होते हुए भी जिम्मेदार का एहसास उसे होता है और वह स्वयं को अपराधी मानने लगता है। इसमें वह द्वन्द्व में पड जाता है।

लेकिन "क्षय" कहानी में कुंती नामक युवती को परिवार का आर्थिक भार अपने हाथों में लेना पडता है। यहाँ एहसास करने का मौका नहीं है। क्योंकि घर में टी.बी. से ग्रस्त बीमार पिता और आठवीं में पढ़ने वाला छोटा भाई टुन्नी है। इसमें कुंती एक स्कूल टीचर है। घर की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण मंदबुद्धि सावित्री को पढ़ाना पडता है। वह एक धनवान बाप की बेटी है। खुद का भाई टोनू पास न होने से कभी स्कूल प्रधानाध्यापक के साथ बात करने के लिए नहीं जाती है। लेकिन यहाँ मंदबुद्धि सावित्री को पास कराने की बात अपने स्कूल के सहकर्मियों के साथ बताने में हिचकिचाती है। क्योंकि वह एक आदर्श जीवन बितानेवाली युवती है। वह एक नवयुवती होने के कारण अपनी हमउम्रवाली दूसरी लड़कियों के बारे में सोचने लगती है। मन्नू भंडारी ने नारी व्यथा को इस प्रकार उकेरा है-"उसके बराबर की और लड़कियाँ कितनी मौज करती हैं। घूमना-

फिरना, सैर-सपाटे, हँसी-मज़ाक.... उसके जीवनमें तो यह सब दूर-दूर तक भी नहीं है।... क्या कभी भी नहीं होगा? क्या उसका सारा जीवन यों ही निकल जाएगा? जितना रुपया वह कमाती है, उसमें कितने ठाठ से वह रह सकती है। पर वह तो जानती ही नहीं कि ठाठ क्या होता है। मौज क्या होती है। पापा क्या अब कभी अच्छे नहीं होंगे?.... कितने दिन तक वे इस तरह पड़े रहेंगे?.... टुन्नी होता तो वह कल ही उसके साथ सिनेमा जाती। कब टुन्नी बड़ा होगा और उसके कंधों का भार हल्का करेगा? सच अब तो वह ऊब गई है।"[1] मन की व्यथा के साथ-साथ पारिवारिक जिम्मेदारियों से चिंतित नारी का यथार्थ है मन्नू भंडारी की "क्षय" कहानी। "क्षय"-जो भारत नहीं-घुला-घुला कर मारता है। नारी के घुलघुल मरने का "यथार्थ" इस कहानी में सामने आया है।

प्रेम-संबंधों में बदलाव-वैवाहिक संबंधों की भांति स्त्री पुरुष के कुछ समय से प्रवीण हो पाने की भरसक कोशिश करती आ रही थी। शारिरिक पवित्रता का मूल्य भारतीय नारी के संस्कारों में इस गहराई तक बैठा हुआ है कि वह साधारणतया इसका उल्लंघन नहीं कर पाती। इसका उल्लंघन वह केवल असाधारण परिस्थितियों में लाचार होने पर ही कर सकती है। भारत में मूल्यों का विघटन अभी इस सीमा तक नहीं हुआ। इसके अभिन्न रूप में मन्नू भंडारी ने "ऊँचाई" कहानी की रचना की। इस कहानी की नायिका न केवल शारीरिक मर्यादा का उल्लंघन करती है बल्कि उसे अपने पति के सामने स्वीकार करने का दुस्साहस भी करती है। इसलिए "ऊंचाई" कहानी बहुत विवादास्पद कहानी रही है। यह कहानी छपते ही मन्नू भंडारी की कड़ी आलोचना हुई थी। क्योंकि इस कहानी की कथानायिका शिवानी विवाह के पश्चात अपने प्रियतम अतुल के साथ शारीरिक संबंध रखने के लिए तैयार हो जाती है। इस कहानी में शिवानी और शिशिर पति-पत्नी हैं। अतुल शिवानी का प्रियतम था। शिवानी और शिशिर का बच्चा प्रिटी होस्टल में रहता है। आठ साल तक सुखमय जीवन बिताने के बाद एक बार शिशिर को अपनी पत्नी और अतुल के साथ शारीरिक संबंध के बारे में पता

---

1 यही सच है-पृ.सं.19

चलता है। उनसे यह बात सही नहीं जाती और शिशिर के मन में विश्वास टूटने पर एक असहाय भावना उत्पन्न हो जाती है। उसका इस प्रकार शिवानी से यह कहना कि-"किस आधार पर अविश्वास करूँ, कौन सा कारण है जो विश्वास न करूँ-तुम अपना शरीर तक एक पुरुष को दे आई कैसे इतनी बड़ी बात को पचाकर बड़े स्वाभाविक ढंग से चल पड़ी?"[1] आधुनिक समाज में स्त्री के सोच विचार बदल गये है। इसलिए शिवानी पति से इस संदर्भ में इस प्रकार समझाना चाहती है-"शरीर देने के बाद औरत के लिए अस्वाभाविक हो जाना क्या अनिवार्य ही है? और छिपाने के पीछे भी तुम्हें धोखा देने या छलने का उद्देश्य कतई नहीं था। सिर्फ इसलिए छिपाया था कि तुमसे सहा नहीं जाता। तुम बहुत कष्ट पाते। अतुल के पलों से ही तुम कहीं कचोट का अनुभव करते थे।"[2] इसमें लेखिका ने दाम्पत्य जीवन की नई सच्चाइयों को बड़े साहस एवं निर्भीकता के साथ चित्रित किया है।

दाम्पत्य जीवन की नई सच्चाई को मन्नू भंडारी इस प्रकार स्पष्ट करना चाहती हैं कि इस संदर्भ में शिशिर, शिवानी से इस प्रकार कहता है-"कष्ट से बचाया, इसके लिए शुक्रगुजार हूँ और सोचता हूँ, इस पर अब अधिक बहस न करके तुम्हें भी अधिक कष्ट न दूँ। इसलिए हमेशा के लिए अपने से मुक्त ही कर दूँ। यों यह बात मैं तुम्हें लिखकर भी बतला सकता था, पर जाने क्यों लगा कि जिस तरह विवाह के लिए दोनों की उपस्थिति अनिवार्य है वैसे ही विच्छेद के समय भी दोनों को ही उपस्थित रहना चाहिए।"[3]

इस संदर्भ के द्वारा मन्नू भंडारी पति-पत्नी के बीच में किसी एक कारण से दोनों के बीच में मानसिक तनाव उत्पन्न होने से उस संबंध विच्छेद के लिए वाद-विवाद से भी ज्यादा दोनों पक्षों में समझौता की जरूरत के बारे में नये ढंग से दाम्पत्य जीवन को यथार्थ बोध के स्तर पर उन्होंने स्पष्ट किया है।

---

1 एक प्लेट सैलाब-130

2 वही-130

3 वही-131

दूसरे आदमी से संबंध रखकर भी शिवानी अपने पति शिशिर को बोलने के लिए कभी भी हिचकिचाती नहीं है। पुरुष अहंकार शिशिर इस वास्तविकता को सहन नहीं कर पाता। इसका प्रत्यक्ष रूप मन्नू भंडारी शिवानी के द्वारा इस प्रकार स्पष्ट करती हैं-"यदि हमारे संबंधों का आधार इतना छिछला है, इतना कमजोर है कि एक हल्के से झटके को भी संभाल नहीं सकता, तो सचमुच उसे टूट ही जाना चाहिए।"[1] अगर समझने की शक्ति पुरुष में है तो यानी कि "ऊँचाई" कहानी में शिशिर में है तो संबंध को फिर से पवित्र बना सकते हैं। इस धरातल को स्पष्ट करने के लिए मन्नू भंडारी शिवानी के द्वारा इस प्रकार स्पष्ट करती है-"शायद तुम ठीक ही कहते हो, क्योंकि अब तो सचमुच ही मुझे इस संबंध में कोई पवित्रता नज़र नहीं आती। मैं तो सोचती थी यह संबंध इतना ज्यादा पवित्र है कि सारे संसार की अपवित्रता भी इसमें आकर पवित्र हो जाती है। पर जरा-से स्पर्श से यदि......।"[2]

"तीसरा आदमी" में भी कथानायिका आधुनिक दृष्टि से जीवन बितानेवाली एक विवाहित नारी है। लेकिन इस कहानी का नायक प्राचीन परंपराओं का पोषक है। इसमें सतीश और शकुन पति-पत्नी हैं। एक दूसरे को बहुत चाहते हैं। सतीश एक ऑफिस में क्लर्क है और शकुन एक स्कूल टीचर। सतीश को कभी भी घर में तीसरा आदमी आना पसंद नहीं है। सतीश के मन में शकुन के प्रति हमेशा शंका की भावना रहती है लेकिन शकुन निर्मल मन से दूसरों से प्यार करती है। अगर उसके मन में किसी के प्रति प्रेम की भावना हो या ईर्ष्या की भावना हो तो भी पति के सामने स्पष्ट करती है। इस संदर्भ में शकुन एक बार अपने पुराने प्रेम प्रसंग के बारे में बताती है-"वह कैसे केवल उसकी पलकों को ही चूमा करता था।"[3] तब से सतीश ने कभी भी शकुन के पलकों को नहीं चूमा। उसे लगता कि

---

1 एक प्लेट सैलाब-131
2 वही-132
4 यही सच है-पृ.सं.37

अगर वह अपनी पत्नी के पलकों को चूमता है तो उसे पुराने प्रेमी की याद आएगी। वह इस संदर्भ में बडा ईर्ष्यालू और शंकालू है।

विवाह के दो-तीन साल तक तो सुखमय दांपत्य जीवन रहा। विवाह के तीन साल के बाद भी बच्चा न होने के कारण शकुन बहुत चिंतित थी। क्योंकि हर एक स्त्री के मन में विवाह के पश्चात सहज ही मातृत्व जागती है। वह डॉक्टरी जांच करवाती है लेकिन डॉक्टर पति की जाँच भी आवश्यक बताता है। शंकालु मन सतीश डॉक्टर के पास जाने से मना करता है। सतीश को कभी घर में तीसरा आदमी आना बिल्कुल पसंद नहीं है। ऐसी मनःस्थिति में एक बार सतीश के घर शकुन के बचपन की दोस्त अलोक लेखक के रूप में पत्नी से मिलने आता है तो शकुन अपने घर में आये हुए मेहमान आलोक को अच्छा खाना बनाकर खिलाती है और दोनों मिलकर घंटों तक साहित्यिक चर्चा भी करते हैं। इस पर सतीश के मन में शकुन के प्रति शंका उत्पन्न होती है। दफ्तर में वह काम करने के बदले बैठकर यही सोचा करता था कि उसकी बीवी आलोक के साथ क्या कर रही होगी। इसलिए एक दिन पत्नी से बिना बताए आफीस से छुट्टी लेकर अचानक घर जाकर रंगे हाथों में पत्नी को पकड़ना चाहता है। यहाँ सतीश के स्वगत कथन द्वारा उसकी मनःस्थिति को उभारा गया है। "लात मारकर वह दरवाजा तोड़ दे और भीतर दोनों को रंगे हाथों पकड़ ले।" शकुन को अलोक से बातें करनी थीं। इसलिए तो छुट्टी ली थी। मगर शंकालू पति सतीश भी दोपहर को आफीस से छुट्टी लेकर घर पहुँचता है और घर के बाहर के दरवाजे से पत्नी शकुन और शकुन के दोस्त अलोक अंदर उन दोनों के बीच में होनेवाली बातों को सुनने की चेष्ट करता है। पर बातों का तो कोई सिलसिला ही नजर नहीं आता। भीतर क्या हो रहा है आखिर? कैसे जाने, कहाँ से जाने।"[1] इस प्रकार अपने ही घर में चोर की तरह घुसने की सोचता है। मगर साहस नहीं होता। वह सड़कों के इधर-उधर घूम फिर कर शाम को घर वापस आता है। शकुन कहती है-"देखो अब अलोक

1 यही सच है-पृ.सं.37

जी को स्टेशन छोड़ने तुम ही चले जाना। मुझे घर ठीक करना है और कापियाँ देखनी हैं। दो दिन से इस चक्कर में कुछ किया नहीं, कल सारे नंबर देने हैं।"[1] पत्नी के मुँह से यह बात सुनने के बाद उसे थोड़ा सा आराम मिलता है। तभी उसकी अंतर्मन की शंका विलुप्त हो गयी। इस छोटे विषय को लेकर सतीश क्या-क्या सोचने लगा था और पश्चाताप के मन से इस तरह मन ही मन विचार करने लगा-"उसने एक बार फिर सबेरे से अब तक की सारी बातें याद कर डालीं। अगर अपने मन के संदेह से मुक्त होकर देखें तो कहीं तो कुछ नहीं है। एक भी तो बात ऐसी नहीं हुई जिसे वह आधार बनाकर यों कष्ट पाए। नहीं, नहीं, यह उसकी ही हीन भावना है जो उसे हर बात के दस-दस अर्थ लगाने को मजबूर कर देती है।"[2] शंका के कारण कभी-कभी परिवार विघटन हो सकता है।

"इन्कम टैक्स और नींद" कहानी में पुराने और आधुनिक विचारधारा के द्वन्द्व और संघर्ष को उकेरा गया है। इसमें डॉ.दयाल पुराने विचारकों के प्रतीक हैं, तो डॉ.महिमा आधुनिक विचारों की। यानी कि इन्कम टैक्स कहानी में ग्राम्य और शहरी संस्कृति के साथ-साथ दो पीढ़ियों के अंतर का चित्रण किया गया है। इसमें डॉ.दयालप्रसाद चतुर्वेदी होमियोपैथिक, बाल रोग विशेषज्ञ हैं। उनके पास बहुत कम पेशेंट आते हैं। उनके भाई लखनऊ में रहते हैं। उनकी भतीजी महिमा एलोपेथी की डॉक्टर है। डॉ.दयाल का बेटा महिम उसका हमउम्र है। भाई उसे भी डॉक्टर बनाना चाहते थे, किंतु डॉ.दयाल को एलोपैथी में विश्वा नहीं और वे उसे इंजीनियर अथवा वकील बनाना चाहते थे। लेकिन महिम किसी धन्नासेठ का इंकम-टैक्स बचाने के लिए हिसाब लिखनेवाला क्लर्क बन गया। हमेशा डॉ.दयाल अपने आपको बड़ा डाक्टर समझता है। उनकी डिस्पेंसरी ठीक से नहीं चलने पर भी महिमा के सामने पेशेंट के भीड-भाड के बारे में बात करते हैं कि कुछ लोगों का व्यक्तित्व इस प्रकार है कि अपने पास कुछ न होने पर भी बडप्पन की बातें करते हैं। क्योंकि इसका एक कारण है कि अपने अहं में डूबकर हीन ग्रंथि से ग्रस्त

---

1 यही सच है-पृ.सं.50

2 वही-पृ.सं.60

है। वास्तविक रूप में महिमा एक सरकारी अस्पताल में काम करती है और प्राइवेट प्रेक्टिस भी करती है। इसके लिए एक मोटर की जरूरत है, शौक नहीं। दूसरी तरफ डॉ.दयाल पुराने विचारों को अपनाने के कारण एक बार अपनी बेटी सरोज के विवाह संबंधी प्रस्ताव के बारे में सोचने लगते हैं कि सरोज मैट्रिक में पढ रही है। उसके लिए लड़का ढूंढ़ना चाहिए। यानी कि उनके विचार में लड़की का जल्दी विवाह करना चाहिए। तुरंत अपनी भतीजी महिमा के बारे में सोचने लगते हैं कि महिमा 26 बरस की हो गई है लेकिन अभी तक शादी नहीं हुई। इसका मूल कारण अपना भाई, लडकी का विवाह जल्दी न करके उसकी जिंदगी खराब कर रहा है। इससे यह पता चलता है कि डॉ.दयाल लड़की का जल्दी विवाह करके सरोज के विचारों पर ठोस पहुँचाते हैं।

हीन ग्रंथि से ग्रसित डॉ.दयाल के नाम पर एक बार महिमा के सामने इन्कम-टैक्स आफिस से रिटर्न सबमिट करने का पत्र आया है तो डॉ.दयाल, डॉ.महिमा के सामने अपने अहं के पूर्ति से सतुंष्ट होकर गहरी नींद सोते हैं। क्योंकि डॉ.दयाल के पास कम पेशेंट आने के कारण इन्कम टैक्स भरने की जरूरत नहीं थी इसलिए वह गहरी नींद सोते हैं। एक तरफ से डॉ.दयाल का व्यक्तित्व व्यंग्य बन गया है। एक ही परिवार में रहनेवाले हैं लेकिन सोने का ढंग अलग है। एक-एक सदस्य की यथार्थ भावना इस कहानी में झलकती है।

जार्ज लुकाच के अनुसार उपन्यास का सिद्धांत महाकाव्य और उपन्यास की तुलना करते हुए लिखा गया है कि-"इतिहास का ऐसा युग महाकाव्य का युग होता है जब पूर्ण निजत्व की दिशा में विवेक द्वारा पूर्व निर्धारित आवेग ही एकमात्र सही मार्ग होता है। जब आत्मा साहसिकता की खोज में बाहर की ओर बढती है त्साहसिकताओं के बीच जीती है किंतु वह खोज के वास्तविक त्रास और प्राप्ति के वास्तविक खतरे से अपरिचित बनी रहती है।"[1] प्रकृति का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करते हैं तो इससे यह साफ जाहिर हो जाता है कि ये दोनों साहित्यिक रूप

---

1 उपन्यास का सिद्धांत-पृ.सं.71।

दो भिन्न आधारगत परिस्थितियों के उपज हैं-"महाकाव्य का स्वभाव बच्चे जैसा ही सरल होता है। जबकि उपन्यास इसके ठीक विपरीत परिपक्व एवं सशक्त होता है।" वस्तुतः लुकाच इस सिद्धांत के प्रतिपादक हैं कि महाकाव्य के पात्रों तथा उस समाज के बीच जिसमें वे रहते थे एक संतुलन था जो अब विलुप्त हो चुका है। सुप्रसिद्ध विचारक "राल्फ फॉक्स" का भी मानना है कि आधुनिक समाज में मध्ययुगीन समाज की सामुदायिकता की भावना लुप्त हो चुकी है और जन समुदाय की अभिव्यक्ति उपन्यास के द्वारा ही संभव है। इस दृष्टि से हिंदी उपन्यासों पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि भारत में मध्यवर्ग के उदय से किसी न किसी रूप में उपन्यास के उदय का संबध होना चाहिए। क्योंकि व्यक्ति का संघर्ष, वैयक्तिक स्वाधीनता आदि मूल्यों का सीधा संबंध मध्यवर्ग से है। यह ठीक है कि आरंभ में हिंदी उपन्यासों में ज्यादातर गाँवों का चित्रण मिलता है। किंतु यदि प्रेमचंद को ही प्रतिमान मानें तो उनके उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन के विडम्बनाओं के चित्र कम नहीं मिलते। आगे चलकर रचनाकारों ने अपनी औपन्यासिक कृतियों के द्वारा मध्यमवर्गीय जीवन के उस कडुवे पारिवारिक यथार्थ को बोध के स्तर पर महसूस करना शुरु किया जो एक लंबे समय तक साहित्य क्षेत्र में प्रायः अविवेचित रहा। इस क्रम में जैनेंद्रकुमार और आगे चलकर अज्ञेय ने महत्वपूर्ण रचनात्मक पहल की। किंतु इनके उपन्यासों में कई बार पारिवारिक जीवन के यथार्थ के बजाए व्यक्ति की अंतःचेतना का आत्यन्तिक विश्लेषण अस्तित्ववादी दार्शनिक शब्दावली में होने लगा। यह ठीक है कि ऐसी औपन्यासिक कृतियों के माध्यम से पहली बार हिंदी पाठकों का परिचय कुछ ऐसे औपन्यासिक चरित्रों से हुआ जिनके मायम से वे स्त्री-पुरुष के बीच पनपते नये भाव-बोध से रू-ब-रू हो सकें। किंतु यही इन महान कही जानेवाली औपन्यासिक कृतियों की सीमा भी बन गयी। इसका कारण यह है कि यह नया भाव-बोध भारत के आम मध्यमवर्गीय परिवारों की समस्याओं से बहुत हद तक घुला मिला नहीं था। केवल "नदी के द्वीप" या "अपने अपने अजनबी" से गुजरते हुए इस तथ्य को सत्यापित किया जा सकता है।

उपन्यास की अंतर्वस्तु का संबंध बहुत हद तक शहरी मध्यमवर्गीय पारिवारिक जीवन के यथार्थ से है। यह कृति आधुनिकता-बोध के तहत रचित उपन्यासों की परंपराओं में एक उल्लेखनीय कृति है। इसमें एक ही साथ वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक विसंगतियों को उकेरा गया है। रचना के केंद्र में समसामयिक शहरी मध्यवर्गीय परिवारों की बहुस्तरीय समस्याएँ हैं। इसी वजह से कुछ लोग इस रचना को एक समस्य प्रधान उपन्यास भी मानते हैं। वस्तुतः इस उपन्यास की समस्या का संबंध कुल मिलाकर आधुनिकतावादी जीवन पद्धति में रचे-पगे परिवारों के त्रासद यथार्थ से है। जहाँ स्त्री-पुरुष पारंपरिक पति-पत्नी की शब्दावली से अभिहित हैं। पर उनके संबंधों में एक भयानक दरार पड़ गई है। स्पष्ट ही इसका सबसे बड़ा खमियाजा बच्चे को भुगतना पड़ता है। ऐसा नहीं है कि इस बदले हुए पारिवारिक यथार्थ की विसंगतियों के कारणों का बोध आधुनिकतावादी जीवन शैली में आकंठ डूबे दम्पत्ति को नहीं है। सच्चाई तो यह है कि आदमी इन सारी स्थितियों से भली-भाँति अवगत होने के बावजूद अपने पक्ष में तर्क गढ लेने में माहिर है। अगर परिवार का कोई सदस्य इन तमाम तर्कों के बीच निरीह जिंगदी जीने के लिए अभिशप्त है तो वह है परिवार का संबसे नन्हा सदस्य बंटी। डॉक्टर चंदकांत बांडिवाडेकर के अनुसार "यह सही है कि बादल के मानस का इतना सवांगपूर्ण और वास्तविक चित्रण पहली बार हिंदी साहित्य में हुआ है, यह भी सही है कि बंटी की कतिपय समस्याएँ माता-पिता से जुड़ न पाने की विवशता से उभरी हैं और यह भी सही है कि कुछ अंशों तक यह आधुनिक जीवन की जटिलता का शाप है जिसे हम पहचानते तो हैं परंतु जिसका समुचित हल या निदान हमारे पास नहीं है। "आपका बंटी" इस दृष्टि से कोई आदर्श, कोई उत्तर, कोई हल प्रस्तुत नहीं करता।"[1]

"आपका बंटी" एक ऐसी औपन्यासिक कृति है जिसमें तथाकथित आधुनिक परिवारों के यथार्थ को कुछ सीमा तक व्यापक, गहन एवं वास्तविक संदर्भ में अत्यंत संवेदनशील व्यक्तियों को एक दूसरे से टकराते, जुडते, टूटते

---

1 उपन्यास स्थिति और गति-पृ.सं.243 लेखक डॉ.चंद्रकांत म.बांदिवाडेकर

और तोड़ते हुए दिखाकर हमारे यथार्थबोध को अधिक सामंजस्य, अधिक व्यापक अधिक, गहन और परिपक्त बनाने का रचनात्मक उद्यम किया है। "आपका बंटी" तलाक-शुदा पति-पत्नी वाले परिवार में बच्चे की विवशता और करुणापूर्ण स्थितियों का यथार्थ चित्रण है। जिसको समझे बिना और जिससे गुजरे बिना इस कृति की संपूर्णता ग्रहण करना या पचाना संभव नहीं है। भारतीय मध्यम वर्ग का पारिवारिक जीवन जटिल स्थिति से गुज़र रहा है। सम भाव पारिवारिक जीवन, समन्वयी वृत्ति, समहनशीलता और कर्तव्यबोध धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है। व्यक्तिवादी आकांक्षा प्रबल बनती जा रही है। परिवार के सदस्यों के बीच विवेचन-विश्लेषण कर किसी बिंदु पर पहुंचने की इच्छाएँ लुप्त हो गई हैं।

अकेलापन, आधुनिक समाज को एक मुख्य समस्या है। समाज के किसी एक वर्ग में यदि यह समस्या भीषण रूप धारण कर चुकी है तो वह है उच्च मध्यमवर्ग में। जाहिर है कि इस वर्ग के सदस्यों की सबसे बड़ी समस्या है उनका अहं (ईगो)। इस अहं का विस्फोट न केवल परिवार के बाहर अपितु कई बार पारिवारिक संबंधों में भी दिखाई पड़ता है। ऐसे परिवारों में जब यह समस्या विकराल रूप धारकी है तो वहाँ कोई बीच-बचाव करनेवाला भी नहीं होता। प्रायः पति-पत्नी अपने मामले में किसी दूसरे का हस्तक्षेप पसंद नहीं करते। परिणामतः पति-पत्नी के बीच तनाव बढ़ते-बढ़ते एक सीमा का अतिक्रमण होने लगता है और उनमें तलाक की नौबत आ जाती है।

बंटी के माध्यम से लेखिका ने इस सवाल को स्वाभाविक रूप में उठाया है। बंटी कहता है-"पर मम्मी को तो ऐसा न हीं करना चाहिए न? मम्मी उसे पापा की बात बताती क्यों नहीं है? कितनी ही बार उसने मम्मी से यह बात करनी चाहि, पर जब भी वह ऐसी बात करता है, ममी का चेहरा जाने कैसा-कैसा हो जाता है। उसे डर-सा लगने लगता है। फिर उससे कुछ भी नहीं पूछा जाता। इस बार पापा आएंगे तो वह पापा से पूछेगा कि वे दोनों दोस्ती क्यों नहीं कर लेते?"[1] वस्तुतः

---

1 आपका बंटी-पृ.सं.15

मौजूदा तथाकथित आधुनिक पारिवारिक यथार्थ के मद्देनज़र यह एक ऐसा सवाल है जिसका कोई आसान जवाब खोज पाना शायद असंभव है। पति-पत्नी के परस्पर तनाव के चलते दोनों का जीवन नरक हो जाता है। दोनों में चाहे-अनचाहे अकेलेपन का शिकार होते हैं। जिसका सबसे खराब असर परिवार में छोटे बच्चों के मानसिक विकास पर पड़ता है।

"आपका बंटी" में पति-पत्नी के अलगाव में उपजी त्रासदी का वर्णन कुछ ऐसे है-"साथ रहने की यंत्रणा भी बड़ी विकट थी और अलगावों का त्रास भी। अलग रहकर भी वह ठंडा युद्ध कुछ समय तक जारी ही नहीं रहा। बल्कि अनजाने ही अपनी जीत की संभावना को एक नया संभल मिल गया था कि अलग रहकर भी शायद सही तीरके से महसूस होगा कि सामनेवाले को खोकर क्या कुछ अमूल्य खो दिया है।"[1] हमारे समय के पारिवारिक जीवन के यथार्थ को देखते हुए ऊपर कथित "संभावनाओं का नया सम्बल वस्तुतः एक सदिच्छा मात्र प्रतीत होता है। कारण यह है कि मानवीय संबंध केवल तर्क शास्त्र के आधार पर नहीं चलते। कई बार यह भी देखा जाता है कि परिवार के सदस्यों और खास-तौर से पति-पत्नी के बीच एक बार तनावपूर्ण दूरी बन जाने पर वह कभी खत्म होने के बजाय लगातार बढ़ती चली जाती है। स्मरणीय है कि अकेलापन ऐसे दंपत्ति की नियति होती है।

तलाक के बाद शकुन का डॉ.जोशी नामक एक विधुर से जहाँ परिणय सूत्र में बंधती है वहीं उसका पूर्व पति अजय मीरा नामक महिला के साथ विवाह कर लेता है। दूसरे शब्दों में कहे तो एक परिवार विखण्डित होता है और जगह उसकी दो नये परिवार वजूद में आते हैं। अजय से टूटकर क्षत-विक्षत शकुन जब अपने बेटे बंटी को बोर्डिंग स्कूल भेजकर अकेलापन के अनुभव ही चरम स्थिति में होती है। उसे डॉ.जोशी का चेहरा याद आता है। जिनसे बंटी की बीमारी के दरमियान उसका परिचय हुआ था। लेखिका के शब्दों में "बीमारी के कारण ही दोनों का परिचय हुआ था। धीरे-धीरे कारण हट गया बस परिणाम बाकी रह

गया। वह पति से अलग होकर रहती है। यह सारा शहर जानता है। इसलिए एक बार भी बंटी के पापा के बारे में नहीं पूछा था। हाँ, अपनी पत्नी की मृत्यु का समाचार जरूर दे दिया था और फिर बिना कुछ कहे ही बहुत कुछ कह दिया था।"[2] कहने का तात्पर्य यह है कि शकुन के प्रति डॉ.जोशी ने ही सबसे पहले रुचि दिखायी जिसे कालांतर में शकुन ने भी स्वीकार कर लिया और दोनों परिणय सूत्र में बंध गये। बावजूद इसके शकुन के इस नये पारिवारिक जीवन का यथार्थ भी विडबंनापूर्ण है। मोटे-तौर पर तो वह अपने इस नये पति के साथ एक सामान्य और सुखद जीवन व्यतीत कर रही है और उसके इस नये जीवन का यथार्थ यहीं तक सीमित नहीं है। सच तो यह है कि डॉ.जोशी के साथ तथाकथित सुखद जीवन जीने के बावजूद उसका व्यक्तित्व कहीं न कहीं गहरे स्तर पर विभाजित है। वह अजय से अलग होकमर भी कहीं न कहीं अपने पूर्व जीवन के तनाव को जाने-अनजाने झेलने के लिए अभिशप्त है। अपने पुत्र बंटी को वह अजय के विरुद्ध हथियार के रूप में इस्तेमाल करने की कोशिश करने की बात सोचती है। पर यह सब उसके लिए कहीं से भी आहलाद का विषय नहीं है।

"एक इंच मुस्कान" राजेंद्र यादव तथा मन्नु भंडारी द्वारा रचित एक प्रयोगधर्मी उपन्यास है। विदेशी भाषाओं में साहित्यिक रचना क्षेत्र में इस तरह के प्रयास होते रहे हैं। किंतु हिंदी मे यह अपने ढंग का संभवतः पहला और अनोखा रचनात्मक प्रयास था। इसमें परंपरागत त्रिकोणवादी (पति-पत्नी और वह) फार्मूले का इस्तेमाल करते हुए इसे लोकप्रिय अर्थ में रोमांटिक बनाने की चेष्टा की गई है। जब कि लेखकीय वक्तव्य में बिल्कुल उससे भिन्न बात कही गई है। प्रसंगात राजेंद्र यादव ने लिखा है कि "मेरे लिए उपन्यास एक प्रबुद्ध व्यक्ति के आत्मान्वेषण की सफल या असफल प्रक्रिया थी। और मैं उसे हर बार परंपरागत त्रिकोणवादी उपन्यासों से अलग हटाने की कोशिश करता था। शायद भीतर कहीं यही आशंका थी कि प्रारंभकर्ता का सुअवसर पाते ही मैंने उसे सिंहावलोकन का

---

1 आपका बंटी -पृ.सं.37

2 आपका बंटी-पृ.सं.47

रूप दे दिया था और कोशिश की थी कि इस अतीत यात्रा में अमर अपने आपको और अपने व्यक्तित्व के निर्माण तत्वों को तटस्थ संदर्भ और निष्पक्ष परिवेश में ही देखें-एक अलग व्यक्ति की निगाह से अमर-रंजन-अमला के संबंधों और उनकी इस स्थिति के अर्थ को पाये.....शायद यही कारण है कि मेरा हर अध्याय किसी न किसी रूप में अंतरावलोकन का गवाक्ष या दो घटनाओं के बीच का अंतराल बनकर आया है। अर्थात् क्रियाओं का नहीं प्रतिक्रियाओं का समाहार अधिक है।"[1] मोटे तौर पर इस उपन्यास का एक आम पाठक अमला को अमर एवं रंजना के दाम्पत्य में दरार पैदा करनेवाले एक नकारात्मक चरित्र के रूप में देख सकता है। किंतु लेखकीय दृष्टि में "रंजना और अमला, अमर की संगति का निरुपण ही अमर का आभ्यांतरिक द्वन्द्व है। उपलब्धि की महानता और क्षुद्रता से कलाकार की कला यात्रा को न जाँचकर, प्रयत्न की निष्ठा और अभिव्यक्ति की आकुलता को कसौटी बनाया जाए तो इन दोनों मूल्यों को शायद कुछ समझा जा सकेगा। निश्चय ही अमर खंडित व्यक्तिव का प्राणी है और उसका आंतरिक व्यक्तित्व दो भागों में बँटा है.....प्रेम, विवाह, सुख-सुविधा के परंपरागत संस्कार कभी-कभी उन्हें प्राप्त करने की चाह, अर्थात् एक ओर मानवीय नैतिकताबोध दूसरी ओर श्रष्ठा व्यक्तित्व की उच्चतर मुक्ति कामना।"[2]

पारिवारिक यथार्थबोध की दृष्टि से "एक इंच मुस्कान" उपन्यास में नायक अमर और उसकी पत्नी रंजना के बीच जिस तनाव की सृष्टि होती है उसकी सबसे बड़ी वजह अमला नहीं, बल्कि खुद अमर का विभाजित व्यक्तित्व है। व्यक्ति के विभाजित व्यक्तित्व के कारण ही कई तरह के पारिवारिक रिश्ते काफी हद तक उलझ जाया करते हैं। सामान्यतः इस समस्या को लोग केवल एक मनोवैज्ञानिक समस्या कहकर टाल देते हैं किंतु गौर करने की बात यह है कि इसके चलते पारिवारिक जीवन की बुनावट, परिवार के सदस्यों की मनोदशा तथा मानवीय संबंधों के कोण में बदलाव आने से पारिवारिक जीवन का जो नया यथार्थ

---

1 एक इंच मुस्कान-पृ.सं.247

2 वही - पृ.सं.247

प्रकट होता है वह पारंपरिक पारिवारिक जीवन मूल्यों में निष्ठा रखनेवाले सदस्यों को भीतर तक झकझोर देता है। "एक इंच मुस्कान" उपन्यास का कथानायक अमर एक ऐसा रचनात्मक व्यक्तित्व संपन्न मनुष्य है जिसकी कल्पना बहुत दूर तक उड़ान भरना चाहती है। इस उड़ान में किसी भी बाधा-बंधन की स्थिति मंजूर नहीं है। रंजना के साथ अमर के संबंध का आयाम सीमित है। वह उसकी पत्नी है। एक ऐसी पत्नी जो अपने पति पर अपना पूर्ण अधिकार चाहती है। इसके बदले सुशिक्षित और नौकरी-पेशा आधुनिक स्त्री होने के बावजूद उसके जीवन में पति से भिन्न किसी दूसरे पुरुष के लिए कोई जगह नहीं है। साफ शब्दों में कहें तो "रंजना बीसवीं शताब्दी के तीसरे चरण की वह आधुनिक भारतीय नारी है जो नवजागरण युगीन दाम्पत्य के आदर्शों से एक सीमा तक बंद है। इसके विपरीत अमला का व्यक्तित्व खुला हुआ है। वह जिंदगी के तमाम मुद्दों पर द्वन्द्वात्मक ढंग से विचार करती हुई प्रतीत होती है। उसके बारे में मन्नू भंडारी ने अमर के मुख से कहलवाया है कि "आवेग और उन्माद के क्षणों में भी अमला संयम और विवेक नहीं खोती।"[1] अमर जब उसे विवाह कर लेने की सलाह देते हुए कहता है-"तुम विवाह कर लो अमला! तुमने स्वयं अभी स्वीकार किया है कि तुम्हारे दुःख का सबसे बड़ा कारण है-पुरुष का अभाव। तब तो इसका एक मात्र निवारण है विवाह। क्यों व्यर्थ ही इसे टालती हुई आ रही हो? कटु चाहे कितना ही हो, पर यह सत्य ही है कि सब कुछ पाकर भी पुरुष के अभाव में नारी अपूर्ण ही है।"[2] तो वह इस प्रकार इस सलाह को अस्वीकार कर देती है आर ऐसा कहते हुए वक्त उसके स्वर में कोई आक्रोश या उन्माद नहीं बल्कि एक ठंडी दृढ़ता थी। उसका मानना है-"कोई भी पुरुष मेरे जीवन का पूरक हो, यह मेरे अहं को सहिय नहीं, और समझ लो, यह अहं अमला का पर्याय है। मैं विवाह करना नहीं चाहती, उस ऊँचाई को पाना चाहती हूँ जहाँ जाकर जब कुछ निरर्थक सा लगने लगा।"[3] कहना न

---

1 एक इंच मुस्कान-पृ.सं.164

2 वही-पृ.सं.164

2 वही-पृ.सं.164

होगा कि अमला का उपर्युक्त वक्तव्य वस्तुतः अस्तित्ववादी दार्शनिक शब्दावली में मानव व्यक्तित्व की पूर्णता-अपूर्णता तथा मानवीय इच्छा आकांक्षा की सार्थकता-निरर्थकता को लेकर एक जबरदस्त रचनात्मक टिप्पणी है। प्रसंगवश गोदान की मालती का स्मरण स्वाभाविक है जो कथिपय भिन्न शब्दावली में लगभग इसी अंदाज़ में प्रोफेसर मेहता के विवाह प्रस्ताव को ठुकरा देती है। मालती का मानना है कि विवाह के बाद प्रोफेसर मेहता के भीतर का पुरुष उसके ऊपर हावी होने की कोशिश कर सकता है। "एक इंच मुस्कान" की अमली भी विवाह संस्था का जमकर विरोध करती है। वह अमर से सवाल करती है-"एक बात पूछूँ अमर? तुम विवाह करके बहुत सुखी हो! नारी के अभाव में ही तुम्हें विवाह करने के लिए विवश किया, भाग्यवान थे कि तुम्हारा परिचय एक ऐसी नारी से था जो तुम्हें प्यार करती थी। तुम्हारी सारी अच्छाइयों और बुराइयों को प्यार करती थी। एकांतिक और एकनिष्ठ प्यार। फिर भी पूछती हूँ, क्या तुम सुखी हो? जो किसी भी व्यक्ति के लिए जीवन का चरण सुख हो सकता है वही तुम्हें कष्ठ दे रहा है। ....और यहीं आकर लगता है कि हम दोनों के जीवन में कहीं साम्य है और तभी तुम मुझे बहुत अपने-अपने से लगते हो।"[1] ऐसे स्वच्छंद विचारों वाली स्त्री के साहचर्य में रहनेवाले पुरुष के भीतर अपने वैवाहिक जीवन को लेकर द्वन्द्व पैदा हो जाना स्वाभाविक नहीं है। लेकिन अमर के निजी पारिवारिक जीवन के यथार्थ की विडबंना यह है कि रंजना के साथ भी उसका लगभग प्रेम विवाह हुआ था। जो जीवन उसे कभी ताज़ी हवा के झोंके की तरह प्रतीत होता था और वह अब ऊबड़ लगने लगा। सवाल उठता है कि अमर और रंजना के दाम्पत्य में आयी इस तब्दीली का कारण क्या रंजना के व्यक्तित्व में निहित है? अथवा या अमर के द्वन्द्व ग्रस्त मानस का व्यावहारिक दुष्परिणाम है? इस मुद्दे पर गहराई के साथ विचार करने पर हम पाते हैं कि अमर आरंभ से ही विवाह का सख्त विरोधी था। वस्तुतः जिन दिनों रंजना के साथ उसका प्रेम-प्रसंग चरम पर था उन्हीं दिनों वह विवाह को एक ऐसा समझौता बताता है जो कला को पथ-भ्रष्ट

---

[1] एक इंच मुस्कान-पृ.सं.164

करता है। एक स्थान पर वह रंजना से कहता है-"मैं विवाह नहीं कर सकूंगा, रंजना....जीवन का यह सुःख शायद मेरे लिए नहीं है....विवाह अपने आप में एक समझौता है। सोचो, विवाह के लिए नौकरी करनी होगी, बंधी हुई निश्चित जिंगदी बितानी होगी....और जैसे-जैसे उत्तरदायित्व बढ़ता जाएगा, सीमाएँ और संकीर्ण होती जाएगी...इतनी संकीर्ण...इतनी संकीर्ण...नहीं, नहीं रंजना यह सब करने का मतलब होगा अपनी हत्या करना। तुम्हारी हत्या करना यह सब मैं नहीं कर सकूंगा।"[1] उपर्युक्त उद्धरण से गुज़रते हुए यह स्पष्ट होता है कि अमर के मन में विवाह विरोधी विचारों के बीज आरंभ से ही मौजूद थे। किंतु रंजना के साथ अपने गहन अंतरंग संबंध के चलते वह न चाहते हुए भी परिणय सूत्र में बंध गया। उसके आरंभिक पारिवारिक जीवन के यथार्थ पर दृष्टिपात करने से यह बात उतनी स्पष्ट नहीं होती। बावजूद इसके रंजना के साथ उसकी बातचीत, जीवन शैली आदि के मद्देनज़र यह कहना युक्तियुक्त होगा कि उस दरमियान भी उनके पारिवारिक जीवन में अनेकानेक अंतर्विरोध मौजूद थे। और तो और उपन्यास में आये विवरण के अनुसार विवाह के पूर्व अमर को इसके लिए मानसिक रूप से तैयार करना अकेले रंजना के वश की बात नहीं थी। इस कार्य को टण्डन दम्पति अंजाम देते हैं। अमर की बदली हुई मानसिकता से अवगत होने पर रंजना अति प्रसन्न हो जाती है-"रंजना स्वयं अपने में एक ऐसा मानसिक परिवर्तन महसूस कर रही है कि आसमान की ओर ताकती है तो सतरंग इंद्रधनुष खिल उठते हैं और नीचे की ओर निहारती है तो क्यारियों में खिले रंग बिरंगे फेल झूम कर मुस्करा उठते हैं। बहुत दिनों बाद फिर उसकी बाल सुलभ चंचलता लौट आयी है और मन है कि उड़ा-उड़ा फिरता है।"[2] ध्यान देने की बात यह है कि जिस दाम्पत्य जीवन की इमारत ऐसे बालू की भीत पर टिकी हो उसके सदस्यों के पारिवारिक जीवन का यथार्थ विसंगतिपूर्ण और कटु होना अस्वाभाविक नहीं है।

---

1 एक इंच मुस्कान-पृ.सं.49

2 वही-पृ.सं.125

परंपरागत पारिवारिक जीवन मूल्यों की यह बुनियादी माँग है कि पति-पत्नी एक दूसरे के प्रति न केवल एकनिष्ठ हों, बल्कि वे परस्पर समर्पित भी हों। जिस परिवार में इन मूल्यों को लेकर थोड़ी भी लापरवाही होती है वहाँ प्रायः पारिवारिक जीवन के विश्रृंखलित हो जाने की संभावना होती है। अमर की पत्नी रंजना लगभग इसी जीवन मूल्य में विश्वास करती है। स्पष्ट ही उसके भीतर अमर के प्रति आत्म समर्पण के साथ-साथ एक अहं भी है। वह अमर और एक अच्छे घर को लेकर जहाँ तृप्त है वहीं अमर के लिए घर परिवार का बंधन उसके रचनात्मक व्यक्तित्व के विकास में बाधक प्रतीत होता है। अमर को किसी भी रूप में एक पारिवारिक प्राणी के रूप में चित्रित नहीं किया गया है। वह नहीं चाहता कि उसका पूरा जीवन संतान के पालन-पोषण में नष्ट हो जाए। इसी वजह से वह अपनी पत्नी रंजना को गर्भपात के लिए बाध्य करता है। किंतु वह रंजना से घृणा नहीं करता। वस्तुतः रंजना का आत्म समर्पण उसे कम आकर्षित नहीं करता। बावजूद इसके अमर वैवाहिक जीवन की तनावपूर्ण स्थितियों में तथा विवाह से पूर्व विवाह के लिए निर्णय लेने के क्षणों में टूटता और जीता है। यहाँ प्रतीत होता है कि एक उपन्यासकार के रूप में मन्नू भंडारी शत प्रतिशत रंजना के पक्ष में दिखाई देती है। राजेन्द्र यादव लिखते हैं-"वह (मन्नू भंडारी) कथा के पात्रों के साथ इतनी अधिक एकाकार हो जाती है कि उनका दुर्भाग्य उसे अपने दुर्भाग्य सा लगता है। उपन्यास का अमर, रंजना का शत्रु नहीं, मन्नू का शत्रु हो गया था और वह कथा की समस्याओं और संभावनाओं के प्रति ईमानदार न रहकर अमर की खबर लेने पर अधिक उतारू हो गयी थी।"[1]

"एक इंच मुस्कान" में पारिवारिक यथार्थ का एक दूसरा पहलू यह है कि पारिवारिक संबंधों में बिखराव आने पर मनुष्य अपने खालीपन को भरने के लिए जब किसी का साथ चाहने लगता है तब इसका दुहरा असर होता है। उपन्यास में ध्यान देने की बात यह है कि अमला अविवाहित स्त्री होने के बजाय परित्यागी है। अपने जीवन के खालीपन को भरने के लिए वह कैलाश और अमर का साहचर्य

---

1 एक इंच मुस्कान-पृ.सं.246

चाहती है। चूँकि कैलाश उसकी दिमागी भूख नहीं मिटा पाता इसलिए कालांतर में वह अमर की ओर आकृष्ठ होती है। स्पष्ट ही इसका सीधा असर अमर के दाम्पत्य जीवन पर पड़ता है। परिणामतः रंजना अमर के प्रति पूर्ण समर्पित होने के बावजूद खुद को उपेक्षित महसूस करती है तथा अपने दायरे में लगातार अकेली असहाय होती चली जाती है। यह दूसरी बात है कि बाद में वह संबंध विच्छेद हो जाने पर दूसरा विवाह कर लेती है। कुल मिलाकर यह कहना असंगत न होगा कि इस उपन्यास में विवाहोपरांत विवाहेतर संबंध तथा मनुष्य की महत्त्वाकांक्षा के चलते पारिवारिक जीवन की अर्थहीनता का यथार्थ चित्रण किया गया है।

मृणाल पान्डे ने लिखा है-"उपन्यास साहित्य की दुनिया का संयुक्त परिवार है। उसकी कोई उपशाखा मात्र नहीं है। उसमें कहानी का इतिवृत्तात्मक तत्व भी है और अपने सघन भावात्मक क्षणों में कविता भी। उसकी घटनाओं के बहावों में स्पष्ट नाटकीय तत्व भी है और दार्शनिकता बड़ी निष्कर्षों में निबअंध की तटस्थ आलोचनात्मकता भी है। उपन्यास का विराट स्फीतिमय यह कलेवर हमारे भारतीय संयुक्त परिवार की से इस निबिड़ कोलाहलमय, कुछ-कुछ कन्फ्यूजिंग पर मूलतः अविभाजित और सहृदय खानदान को लिए दिए में कोई पाँच-एक दषकों तक अपने वहाँ की भावुक दार्शनिक, ऊष्ण-आर्द्र जलवायु में नये-नये कल्ले फेंकता, पनपता, सरसराता रहा किया।"[1] चूँकि महाभोज मूल रूप से एक राजनीतिक अंतरवस्तु वाली औपन्यासिक कृति है। इसलिए इसमें पारिवारिक संबंधों के बीच उत्पन्न अंतरविरोधों के चित्रण पर बहुत ज्यादा बल नहीं दिया गया है। बावजूद इसके करीब से देखने पर इस कृति में भी एक सीमा तक पारिवारिक यथार्थ को महसूस किया जा सकता है। "महाभोज" में दाँ साहब के परिवार का जिस रूप में वर्णन किया गया है उसको देखते हुए कई बार आश्र्चर्य होता है क्योंकि इस पूरी कृति में यह कहीं दिखाई नहीं पड़ता कि उनके संतान, बहु

---

1 पमर्वाग्रह 46-47 पृ.सं.43

बेटी, भाई-बंधु आदि उनके साथ बंगले में रहते हैं या नहीं और यदि रहते हैं तो दॉ-साहब का उनसे कितना और किस सीमा तक वैयक्तिक संबंध है। यदि वे उस सबसे भरे पूरे हैं और फिर भी उनके इतने ही अलग हैं जितना कि और परिवार बातों से तो फ़िर उनको किस कोटि का मनुष्य माना जाए। पूरे उपन्यास में दॉ-साहब की पत्नी जमुना बहन संभवतः केवल एक बार ही दिखाई पड़ती है। उपन्यासकारों के शब्दों में-"तभी जमुना बहन खुद ही नाश्ते की ट्रे लेकर पहुँची। बड़ी सफाई और सलीके से कटा हुआ लँगड़ा आम, तले हुए मखाने, केसरिया संदेश और शहद पानी।"[1] दॉ-साहब बड़ी आत्मीयता से उनका स्वागत करते हैं और वे ट्रे दॉ-साहब के सामने रखकर बगल में बैठ जाती हैं। नये पति से किसी तरह का गिला या शिकायल नहीं है। जब कोई संकट की स्थिति आती है तो वे दॉ-साहब से अधिक चिंतित होती हैं औरज ब संकट टल जाता है तो उन्हें प्रसन्नता भी दॉ-साहब से अधिक होती है। एक स्थान पर जमुना बहन दॉ-साहब को राजनीति से सन्यास ले लेने की सलाह देती हुई कहती है-"शुक्र है भगवान का कि सब बातें सलट गईं। आजकल राजनीति में घटिया तरह की जो घालमेल चलती हैं उसे देखकर लगता है कि तुम जैसे सन्त आदमी को तो सन्यास ले लेना चाहिए।"[2] वस्तुतः दॉ-साहब के प्रेम में पगी जुमना बहन को कुछ नहीं सूझता। लेखिका के शब्दों में "इस उम्र में भी सुरखी फैल गयी जमुना बहन के गालों पर। गदगदाती बोली मेरा मन कहता है, चुनाव भी तुम ही जीतोगे। सौ फ़ीसदी।"[3] इस मधुर वक्तव्य पर दॉ-साहब की टिप्पणी है-"लो अब गृहलक्ष्मी ने कह दिया तो बस जीत गये। अब संदेह कैसा?"[4] उपन्यासकार के शब्दों में "और फिर दोनों परम तृप्त और प्रसन्न भाव से बनारस का लंगडा और केसरिया संदेश खाते रहे।"[5] सच तो यह है कि उनको पति के साथ बैठने का समय ही नहीं मिलता।

---

1 महाभोज-पृ.सं.146
2 वही-पृ.सं.147
3 वही-पृ.सं.148
4 वही-पृ.सं.148
5 वही-पृ.सं.148

दॉ-साहब भी अपनी पत्नी से राजनीति के बारे में कोई बातचीत भी नहीं करते। जमुना बहन अपने पति के बड़प्पन से कुछ ज्यादा ही संतुष्ट प्रतीत होती है। परे उपन्यस में दॉ-साहब अपनी पत्नी से कहीं भी अपने परिवार के सदस्यों के बारे में कुछ नहीं पूछते। स्वयं जमुना बहन भी इस तरह का कोई उल्लेख नहीं करती। पारिवारिक यथार्थ की दृष्टि से क्या यह संभव है कि दॉ-साहब और उनकी पत्नी जमुना बहन के सिवाय वस्तुतः ऊपर-ऊपर यह सब उनके एक अनुशासित और निसृह व्यक्ति होने के लक्षण प्रतीत होते हैं। किंतु यदि यही सच है तो यह समकालीन राजनीतिक अंतर्वस्तु उपन्यास लेखन का एक रचनात्मक और विरल पक्ष है। गिरिराज किशोर का कहना है कि ऐसा नहीं लगता कि रचनाकार का उद्देश्य इस पक्ष को जागरूक करना था। उनके शब्दों में "कुछ ऐसा लगता है अभिप्राय कुछ और है, अभिव्यक्ति कुछ और।"[1] इस उपन्यास में बिंदा और रुक्मा का दाम्पत्य पारिवारिक जीवन के यथार्थ का एक नितांत भिन्न पहलू प्रस्तुत करता है। बिंदा को जो पुलीस पूछताछ के लिए पुलीस स्टेशन ले जाती है तो रुक्मा भी उसका साथ नहीं छोड़ती। उपन्यासकार ने इसका चित्रण इस रूप में किया है-"चौकीदार के साथ बिंदा आया। साथ में बाईस-चौबीस साल की एक औरत ने दुवा सलाम कुछ नहीं, पत्थर की तरह सक्त चेहरा लिए दरवाजे पर खड़ा है बिंदा। सॉवला चेहरा, ताकि नाक-नक्श और घटी हुई देह। चेहरे पर न किसी तरह का भय, न क्रोध....सिर्फ एक अनाशक्ति.....।"[2] सक्सेना जब बिंदा से पुलीस स्टेशन के भीतर आने के लिए कहता है तो बिंदा के साथ रुक्मा भी अंदर जाती है। इतना ही नहीं जब बिंदा से पूछा जाता है कि वह कल बयान देने क्यों नहीं आया? तो उपन्यासकार के शब्दों में -"बिंदा कुछ कहता उसके पहले ही रुक्मा बोली सरीर ठीक नहीं था इनका। ताप चढ़ा था, कैसे आते?"[3] पूछताछ के दौरान जब बिंदा आवेश में आ गया तो "रुक्मा ने उसके आवेश पर अंकुश लगाने

---

1 महाभोज-पृ.सं.121
2 वही-पृ.सं.114
3 वही-पृ.सं.114

के लिए कस कर उसकी बाँह पकड़ ली।"[1] जब पुलीस ने बुरी तरह से बिंदा की पिटाई की तो "रुक्मा बिंदा की पीठ सहलाने लगी और बड़ी याचना भरी दृष्टि से उसने सक्सेना की ओर देखा।"[2] एक अन्य स्थान पर रुक्मा और बिंदा के बीच गहरी आत्मीयता को दर्शाते हुए उपन्यासकार ने लिखा है "रुक्मा ने पानी भी नहीं पिया हाथ जोड़-जोड़कर यही रिरियाती रही....रुक्मा के आँसुओं में जैसे बिंदा के सारे तैश और आवेश को धो दिया।"[3] कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि यदि एक ओर इस उपन्यास में दाँ-साहब और जमुना बहन का सुखी संपन्न पारिवारिक जीवन का यथार्थ चित्रित हुआ है वहीं दूसरी आरे इसमें बिंदा और रुक्मा के विडबंनापूर्ण जीवन के कटु यथार्थ का वर्णन भी है।

---

1 महाभोज-पृ.सं.115

2 वही-पृ.सं.117

3 वही-पृ.सं.121

अध्याय चार

# मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में सामाजिक यथार्थबोध

## मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में सामाजिक यथार्थबोध:-

"मार्गरिट हार्कनेस" को लिखे गये एक पत्र में एंगेल्स ने लिखा था कि "मेरी राय में, यथार्थवाद का अर्थ तफ़सील सच्चाई का आम परिस्थितियों में आम चरित्रों का सच्चाई भरा पुनर्सृजन है।"[1] अपने इसी पत्र में एंगेल्स ने लिखा था कि "लेखक के विचार जितने छुपे रहे, कला की कृति उतनी ही अच्छी होती है। मैं जिस यथार्थवाद की बात कर रहा हूँ वह लेखक के दृष्टिकोण के बावजूद उभर सकता है।"[2] जाहिर है कि एंगेल्स बुनियादी तौर पर एक राजनीतिक विचारक तथा दार्शनिक थे। अर्थशास्त्र में मार्क्स एंगेल्स की गहरी रुचि सर्वविदित है। बावजूद इसके एंगेल्स ने स्वीकार किया है कि फ्रान्सीसी उपन्यासकार बाल्जाक की रचनाओं के माध्यम से उन्हें फ्रान्सीसी समाज का जितना ज्ञान मिला उतना इतिहासकारों, अर्थशास्त्रीयों तथा सांख्यिकीविदों की पुस्तकों से नहीं मिल पाया। एंगेल्स के शब्दों में "बाल्जाक ने फ्रान्सीसी समाज का पूरा इतिहास समेटा है, जिससे मुझे आर्थिक तफ़सीलों तक के मामले में (उदाहरण के लिए क्रांति के बाद चल तथा अचल संपत्ति की पुनर्व्यवस्था के बारे में) इस अवधि के सारे विशेषज्ञों-इतिहासकारों, अर्थशास्त्रियों तथा सांख्यिकीविदों- की पुस्तकों से कहीं अधिक जानकारी मिली"[3]

एंगेल्स के उपर्युक्त पत्र की चर्चा का मकसद यह बताना है कि उपन्यास का अपने समय-समाज से गहरा रिश्ता होता है। रैल्फ फाक्स के अनुसार "उपन्यास हमारे आधुनिक, बुर्जुवा समाज का महाकाव्य है। कला के इस रूप में अपना पूर्णतम विकास इस समाज की यौवनावस्था में प्राप्त किया, और ऐसा लगता है कि हमारे समाज में बुर्जुवा साहित्य की न केवल सबसे प्रतिनिधि उपज है, बल्कि उसकी श्रेष्ठतम उचना भी है। यह कला का एक नया रूप है।"[4]

---

1 मार्क्स एंगेल्स: साहित्य तथा कला, पृ.सं.-107

2 वही, पृ.सं.-107

3 वही, पृ.सं.-108

4 उपन्यास और लोकजीवन, लेखक रैल्फ फाक्स पृ.सं.31

सच तो यह है कि केवल उपन्यास ही नहीं बल्कि संपूर्ण कथा-साहित्य का अपने समय समाज के साथ गहरा संबंध हुआ करता है। यथार्थ की दृष्टि से यदि विचार करें तो कविता के मुकाबले कथा-साहित्य ज्यादा यथार्थ परक हुआ करता है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि जिन दिनों भारत का दुःखद विभाजन हुआ हिन्दी के कई छायावादी और प्रगतिवादी कवि रचनारत थे। बावजूद इसके उन्होंने इस त्रासदी पर कोई महत्वपूर्ण कविता नहीं लिखीं। जब कि यह सर्वविदित है कि हिन्दी के कई उपन्यासों एवं कहानियों की अंतरवस्तु भारत विभाजन की त्रासदी है। किन्तु जहाँ तक कथा-साहित्य के संदर्भ में समाज का तात्पर्य है, यह मूल्यतः एक मध्यवर्गीय समाज है। "मैकेल जिराफा" ने अपनी पुस्तक में उपन्यास के बारे में इस मुद्दे पर लिखा है कि "One must remember that, as far as the Novel is concerned, society is an essentially middle-class nation. As the middle class increased in numbers and power, so novelists saw society, or at any rate, social man, as more and more taken up with the idea of society in its entirety."[1]

उपर्युक्त विमर्श के मद्देनज़र मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि यदि एक ओर मन्नूजी की रचनाएँ गहरे स्तर पर सामाजिक यथार्थ का बोध कराने में सक्षम हैं, तो दूसरी ओर उनमें परंपरा के नाम पर समाज में प्रचलित विभिन्न मिथों को तोड़कर नये सामाजिक सत्य को चित्रित करने की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। इस संदर्भ में मन्नूजी की कहानियों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि उनकी "यही सच है" शीर्षक कहानी सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से हिन्दी की एक अद्वितीय कहानी है। "यही सच है" की नायिका दीपा आजाद भारत की एक ऐसी आधुनिक लड़की है जो अपने निर्माण की प्रक्रिया में दूसरे शहर में संघर्षशील रहते हुए अपने जीवन के मार्ग को खुद चलाने की क्षमता रखती है। मन्नू भण्डारी की दीपा भारतीय स्त्री के बने बनाये मिथ को

---

1 Fictions: Michel Zeraffa, Penguin books 1976 Page No.33

इसलिए तोड़ने में सक्षम है क्योंकि वह एक ही साथ दो-दो पुरूषों को पसंद करनेवाली लड़की है। एक अवसर पर छुप-छुप कर रहनेवाला कविनुमा प्रेमी। सच तो यह है कि दीपा कानपुर से कलकत्ता और कलकत्ता से कानपुर तक की यात्रा ही नहीं करती, इन दो शहरों में रहनेवाले अपने दो प्रेमियों के बीच झूले की तरह झूलती भी है और दोनों चोरों को छूती है। सवाल उठता है कि एक ही साथ दो पुरूषों को पसंद करनेवाली यह स्त्री क्या भारतीय समाज में प्रचलित स्त्री विषयक मिथ को नहीं तोड़ती है? वस्तुतः वह एक ऐसी आधुनिक स्त्री है जो हजारों वर्षों से निर्मित भारतीय स्त्री विषयक मिथ को तोड़कर एक नये सच को सामने रखती है। "सच दीपा का मन और झूठ है भारतीय स्त्री का सैकडों हजारों वर्षों से निर्मित मिथ।[1]

मन्नू जी के रचना संसार से गुजरते हुए हम यह पाते हैं कि स्त्री के भीतर निहित मानसिक अंतरद्वंद्व को लेकर वहाँ अनेकानेक रचनाएँ मिलती हैं। कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि मन्नू भण्डारी का कथाकार मन स्त्री मुक्ति के सवाल से जुड़े सारे आयामों से लगातार रचनात्मक घात-प्रतिघात की इस स्थिति में रहा है। "यही सच है" के सच से भिन्न एक दूसरा सच भी है जिसे उनकी "ऊँचाई" कहानी व्यक्त करती है। दूसरे शब्दों में यदि कहें तो "यही सच है" कहानी जहाँ स्त्री-पुरुष संबंधों के नये जीवन मूल्यों के पक्ष में है तो "ऊँचाई" कहानी में स्त्री-पुरुष संबंधों के स्थापित मूल्यों और नये जीवन मूल्यों के बीच अंतरद्वन्द्व को उभारती है। इस कहानी की नायिका शिवानी के अंतरद्वन्द्व के माध्यम से कहानीकार ने स्त्री मानसिकता से संबंधित एक ऐसी समस्या पर विचार किया है जिसे मोटे-तौर पर विवाहेतर संबंध के नाम से पुकारा जाता है। आठ साल तक शिशिर के साथ दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने के उपरान्त अचानक शिवानी की मुलाकात अतुल नामक अपने पूर्व प्रेमी से होती है, जो अब तक अविवाहित है। वह उसे अपने घर बुलाती है पर अतुल उसका आमंत्रण स्वीकार करने से इन्कार कर देता है। अतुल इलाहाबाद में रहता है। जब अपने बेटे प्रिटी को होस्टल

---

[1] अभिदा( पत्रिका ) जनवरी 1999 पृ.सं.34

छोड़ते हुए शिवानी अतुल के यहाँ पहुँचती है वह उसे तुरंत लौटजाने की सलाह देता है। किन्तु शिवानी ऐसा नहीं करती अतुल के साथ एकांत के क्षण में जो मानसिक और शारीरिक उद्वेवलन होता है उसके चलते दोनों जाने अनजाने, चाहे-अनचाहे एकमेक हो जाते हैं। एकमेकता के इस आनंद के आदान-प्रदान के बाद शिवानी शरीर से तो कलकत्ता लौट आयी लेकिन इसका मन बलाहाबाद में ही तंगा रहा गया है। कुछ महीनों बाद जब यह राज़ शिशिर के सामने खुलता है तो शिवानी साफ-साफ सच को स्वीकार कर लेती है। स्पष्ट ही इसकी वजह से शिशिर को गहरा मानसिक आघात पहुँचता है। परिणामस्वरूप शिशिर घर छोड़कर चला जाता है। किन्तु शिवानी अपने बारे में शिशिर के मन में दुबारा विश्वास खायम करने में सफल हो जाती है। एक स्थान पर वह शिशिर से कहती है कि "मेरे जीवन में तुम्हारा जो स्थान है उसे कोई नहीं ले सकता, किसी के कितने ही निकट चली जाऊँ, चाहे शारीरिक संबंध भी स्थापित कर लूँ पर मन की जिस ऊँचाई पर तुम्हें बिठा रखा है, वहाँ कोई नहीं आ सकता, किसी से उसकी तुलना करने में भी तुम्हारा अपमान है।"[1] अतः इस कहानी में बताया गया है कि शिशिर और शिवानी दोनों में सुलह हो जाती है और उनके पारिवारिक जीवन की सामाजिक मर्यादा बिगड़ने से बच जाती है । जाहिर है कि हमारे दौर में जब कि हिन्दी कहानी विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक एवं तथाकथित क्रांतिकारी भटकावों का इस कदर शिकार हो रही है कि श्रेष्ठ कहानी की पहचान तक लुप्त हो गयी है, तो ऐसे में मन्नू भण्डारी की कुछ अल्पख्यात कहानियाँ हमें आश्वस्त करती सी प्रतीत होती है।

सामाजिक यथार्थबोध की दृष्टि से मन्नू भण्डारी की "नशा" कहानी हिन्दी कथा-साहित्य में अन्यतम रचना है। इसमें लेखिका ने नशाखोरी जैसी सामाजिक बुराई के यथार्थ से रचना के स्तर पर जूझने का साहस किया है। यह साहस इसलिए भी काबिले-तारीफ है क्यों कि इस मुद्दे पर चर्चा करते वक्त प्रायः लोग नशासेरी की रोकथन के लिए सक्त कायदे कानून बनाने और उन्हें लागू करने की

---

1 कथाकार मन्नू भण्डारी, लेखिका अनिता राजूरकर, पृ.सं. - 59

जरूरत पर बल देते हैं। किन्तु सरकारी नियम कानून के द्वारा नशाखोरी से लड़ना एक बात है और साहित्य सृजन के क्षेत्र में इस समस्या से रचना के स्तर पर जूझना बिलकुल भिन्न है।

"नशा" शीर्षक कहानी में आनंदी नामक औरत के द्वारा सामाजिक यथार्थ का बोध होता है। इसमें आनंदी का पति बहुत शराब पीता है और पीने के लिए पैसा नहीं मिलने से बहुत गुस्से में आकर पत्नी को मारता है। इन दोनों का एक मात्र बेटा किशन् है। बचपन में अपने पिता का विरोध करके घर छोड़कर बाहर चला जाता है। फिर बारह साल के बाद बेटे के वापस आने की सूचना मिलने से आनंदी बहुत खुश होती है। इस खुशी में इस तरह मन ही मन दुःखित होती है - "बारह साल बाद उसका बेटा आ रहा है - एकाएक चबूतरे पर बैठकर ही आनंदी फूट-फूटकर रो पड़ी। ऊपर से सदा ही शान्त रहनेवाले पर्वत के भीतर का ज्वालामुखी जब फूटता है तो कोई भी शक्ति उस आवेग को रोक नहीं पाती। बारह साल बाद वह कल अपने किशनफ को देखेगी। उसका बेटा उसका खोया हुआ बेटा वापस आ रहा है। ......शंकर आज के दिन भी शराब पीने गया। क्यों नहीं वह सारे मुहल्ले में दौड़ता फिरा? क्यों नहीं उसने घर-घर जाकर खबर दी कि किशन् आ रहा है? क्यों नहीं उसके पास बैठकर उसने बात की कि किशन् के आने की तैयारी में क्या-क्या किया जाए? ...... तैयारी? उसकी आँखों के सामने ताँबे की खाली कटोरी घूम गई। शंकर के प्रति तीखी घृणा और विरक्ति से उसका मन भर गया।"[1]

जिस दिन से उसका बेटा घर से भाग गया था, आनंदी ने तुलसी पर दिया जलाना छोड़ दिया था। इस संदर्भ में वह अपने वैवाहिक जीवन का स्मरण करती है। इसे लेखिका इस प्रकार दर्शाती है- "दस साल की आनंदी जेवरों से लदी-फँदी इस घर की पुत्रवधू बनकर आई थी। उसकी सास ने उससे चबूतरे पर दीया जलवाया था और कहा था कि अपने सुहाग की मनौती माँग लेना, बहू। रोज इस

---

1 नशा, पृ.सं. - 94

पर दीया जलाना, घर की यह तुलसी कलय-तरू है।"[1] तब आनंदी सुहाग का अर्थ भी नहीं जानती थी लेकिन मनौती के साथ हर रोज दीया जलाना चाहती थी अब यह सब कुछ उसके मन से बहुत दूर हो गया है। उसकी दृष्टि में अब यह सब बेकार है क्योंकि अपने वैवाहिक जीवन में शराबी पति के साथ उसे अनंत समस्याएं झेलनी पड़ रही है। इसलिए सब कुछ उसकी नज़र में अब व्यर्थ था।

बारह साल के बाद जब उसका इकलौता बेटा घर वापस आ रहा है तो उस समय आनंदी बहुत खुश होती है। बेटा किशन् घर आते ही पैसों का बटुआ अपनी माँ को देकर नहाने जाता है। उसी समय पति द्वारा पैसा माँगने पर बेटे को बिना बताये वह बटुए से उसे दो रूपए दे देती है। उस पैसे से शंकर शराब पीकर घर आता है और आनंदी को खूब मारता है। तब माँ अपने बेटे किशन् से कहती है- "बचा बेटे किशन् बचा।"[2] किशन् को पहले अपनी माँ के ऊपर बहुत गुस्सा आता है क्योंकि पैसे देकर उसने खुद अपने प्राण को कष्ट क्यों पहुँचाया? तब आस-पास के लोग किशन् से कहते हैं कि - "ले जा भइया, अपनी माँ को। बड़े-बड़े दुःख सहे हैं बेचारी ने।"[3] एक औरत यह भी कहती है- "अरे किशन् इस गाय को ले जा शंकर कसाई के घर से। कसाई भी अच्छा जो एक दिन ही मारकर छुट्टी कर देता है इससे तो"[4]

ध्यान देने की बात यह है कि मन्नू भण्डारी ने आनंदी को किसी क्रांतिकारी स्त्री की तरह प्रस्तुत करने का अपनी ओर से कोई प्रयास नहीं किया है। यदि ऐसा न होता तो आनंदी अपनी पति शंकर को बुलाकर पुत्र और पुत्रवदु के साथ बहुत आराम से अपना बाकी जीवन व्यतीत कर सकती थी। जिसे हम नशाखोरी जैसी सामाजिक बुराई के खिलाफ लेखिका की रचना दृष्टि के रूप में रेखांकित कर सकते थे। किन्तु मन्नूभण्डारी ने नशाखोरी के चलते उत्पन्न इस घिनौने सामाजिक यथार्थ को चित्रित करते हुए भी सहज मानवीय संवेदना को नज़रंदाज

1 यही सच है, पृ.सं. - 102
2 वही, पृ.सं. - 106
3 वही, पृ.सं. - 106
4 वही, पृ.सं. - 106

नहीं किया है। इसी कारण इस कहानी में शंकर सामाजिक दृष्टि से हीन पात्र होने के बावजूद अंत तक आनंदी की सहानुभूति से वांछित नहीं हो पाता। आनंदी सिलाई करके धनादेश द्वारा शंकर को पैसे भेजती रहती है। कहना यह है कि घृणास्पद सामाजिक स्थितियों का चित्रण करने के बावजूद कहानीकार उस शाश्वत, मानवीय संवेदना को रेखांकित करना नहीं भूलतीं। जिसमें किसी भी कहानी की रचनात्मक शक्ति निहित हुआ करती है।

सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से "गीत का चुबन" कहानी में चित्रित तथ्य एवं जीवन का सत्य विचारणीय है। प्राकृतिक अनिवार्यता के तहत स्त्री की परिभाषा देह है जिसका प्राकृतिक उद्देश्य मातृत्व का कर्मकांड, यौन शुचिता, सती और वैधव्य महोत्सव जैसी अन्य अनेक मूल्यान्वित प्रथाएँ मात्र ऐतिहासिक गढ़त है, प्रामाणिक वास्तविकताएँ नहीं।[1] किन्तु समाज में ऐसी महिलायें ज्यादा संख्या में हैं जो स्त्री शरीर धारणा करने के बावजूद पितृसत्तात्मक मूल्यों व मान्यताओं को ही सबसे बड़ा सच मानती हैं। "गीत का चुंबन" कहानी की नायिका कनिका की सबसे बड़ी समस्या यह है कि वह एक ओर अपने व्यक्तित्व के विकास का कोई मौका हाथ से नहीं जाने देना चाहती पर दूसरी ओर जिस कवि निखिल का वह सफलता की सीढ़ियों पर चढ़ने के लिए इस्तेमाल करती है, उससे लगातार एक दूरी बनाकर रखना चाहती है। कुल मिलाकर यह दोहरा मानदंड है। जहाँ तक निखिल का सवाल है, वह भी एक तरह से दोहरे मानदंड का जीवन जी रहा है। जहाँ एक ओर वह अपनी निजी ज़िंदगी के संदर्भ में कोई दखल नहीं पसंद करता। वहीं दूसरी ओर कनिका को लेकर उसका नजरिया भिन्न है। उसके भीतर अपने इस भिन्न नजरियें को लेकर एक अपराध-बोध भी है। कनिका से चांटा खाने के बाद लिखे गये उसके पत्र में भी यह अपराध-बोध झलकता है: "सच तुमने मेरी आँखें खोल दी शारीरिक संबंध के परे भी लड़के-लड़की की मित्रता का कोई

1 हंस, फरवरी 2000, पृ.सं. -153

आधार हो सकता है, और इसीलिए मुझे उस दिन का अपना व्यवहार कचोट रहा है। मुझे तुम पर जरा भी गुस्सा नहीं, अपने पर ही ग्लानि है।"[1]

सवाल यह खड़ा होता है कि निखिल की ग्लानि क्या भारतीय समाज में पितृसत्तात्मक सामाजिक मूल्यों को तोड़ने में कोई मदद करती है? वस्तुस्थिति बिलकुल भिन्न है। निखिल की ग्लानि भले ही कहानी में एक पुरूष के आत्मसाक्षात्कार से उत्पन्न हुई प्रतीत होती है। पर वह अन्ततः एक मध्यवर्गीय पुरूष का स्त्री को लेकर गहरा अन्तर्द्वन्द्व है जिसके तहत वह अनिर्णय की स्थिति में है। दूसरी ओर कनिका के माध्यम से भारतीय निम्नमध्यवर्गीय स्त्री का द्वन्द्व भी सामने आता है। वह ऐसी तथाकथित आधुनिक स्त्री है जो खुद को भली-भाँति समझने में असमर्थ है। निखिल से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर चूंकी कनिका को हरदम निखिल का इंतजार रहता है। वह निखिल से प्रेम करती है इसलिए निखिल का खुला व्यवहार पसंद न करने के बावजूद वह उससे घृणा नहीं कर पाती। यह और कुछ नहीं बल्कि कथा नायिका के मन का अंतर्द्वन्द्व है जिसे वह खुद समझने तथा सुलझाने में अक्षम है। एक ओर अपने हृदय की आवाज तो दूसरी ओर स्त्री-पुरूष संबंधों को लेकर प्रचलित सामाजिक मान्यताओं के प्रति संस्कारगत निष्ठा के चलते कनिका अनिर्णय की स्थिति में है। कहानी का अंत जिस तरह होता है उसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि परम्परा से मान्य सामाजिक मान्यताएँ आदमी के जीवन-मूल्यों को बहुत दूर तक प्रभावित करती हैं और कई बार जाने-अनजाने मनुष्य उसके सामने घुटने टेकने के लिए बाध्य हो जाता है। कुल मिलाकर यह कहानी अपने समय के सामाजिक यथार्थ की जटिलता के सरलीकरण की कहानी है।

एक भिन्न संदर्भ में इस सरलीकरण को मन्नू भण्डारी की "रानी माँ का चबूतरा" कहानी में भी लक्षित किया जा सकता है। जाहिर है कि अंधविश्वास हमारे सामाजिक जीवन का यथार्थ है और ध्यान से देखने पर पता चलता है कि इससे सबसे ज्यादा ग्रस्त वे लोग हैं जो समाज के सबसे निचले श्रेणी से आते हैं।

---

1 मैं हार गई, पृ.सं. - 34

प्रायः उच्चवर्ग या मध्यवर्ग के लोग शिक्षा-दीक्षा की वजह से ज्यादा जागरूक हुआ करते हैं। चूँकि इसकी कमी सबसे ज्यादा निम्नवर्ग में होती है इसलिए वह विभिन्न प्रकार के अंधविश्वासों का शिकार होता है। यदि ठीक से सर्वेक्षण किया जाए तो किसी भी-समाज के हर वर्ग में कोई न कोई अंधविश्वास जरूर दिखाई देता है जिसके सामुदायिक कारण होते हैं। पर निम्नवर्ग को अपने अंधविश्वास की जितनी कीमन चुकानी पड़ती है, उतनी शायद अन्य वर्ग के लोगों को नहीं।

इस वास्तविकता, से नितान्त भिन्न स्थिति को मन्नू जी ने "रानी माँ का चबूतरा" शीर्षक कहानी में चित्रित किया है। कथानायिका गुलाबी एक कर्मठ स्त्री है। वह गाँव में सेठ द्वारा बनवाये तथाकथित "रानी माँ का चबूतरा" पर झाँकने तक नहीं जाती जहाँ पूर्णिमा को ग्रामीण स्त्रियाँ दीपक जलाकर संतान के हित में तरह-तरह की मनौती मानती हैं। मन्नू भण्डारी की ही "नशा" कहानी की आनंदी से नितान्त भिन्न गुलाबी अपने शराबी पति को झाड़ू मारकर घर से निकाल देती है तथा मेहनत-मजूरी करके अपने बच्चों को पालती है। उसे न तो किसी की दया की जरूरत है न ही लोकनिंदा की परवाह। उसमें एक जबर्दस्त आत्म-विश्वास है। बस्ती के लोग उस पर तरह-तरह के ताने कसते हैं पर वह उनके सामने कभी झुकती नहीं। कारण यह कि लोग किसी प्रकार की सहायता तो नहीं करते केवल व्यंग्य करते हैं। बच्चों को कोठरी में बंद करके काम पर जाने को लेकर जब लोग उस पर व्यंग्य करते हैं तो वह कहती हैः "आ हा ! बड़े आए बस्तीवाले! पहले कोठरी खोलकर जाती थी तो मेरा छोरा सरकते-सरकते मोरी में आकर गिर गया। किसी ने उठाया तो नहीं। बड़े अपने बनते हैं।"[1] गुलाबी मन्नू भण्डारी की एक जूझारू नायिका है जो हमारे समाज के कड़वे यथार्थ से हर मोर्चे पर लोहा लेने को तैयार है।

हमारे समय के सामाजिक यथार्थ के एक पहलू का सम्बंध धर्म की आड़ में होनेवाले स्त्री के शोषण से है। कहना न होगा कि इस तरह का दुष्कर्म संसार के

---

1 मन्नू भण्डारीः श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ.सं. 30 31

तमाम धार्मिक समुदायों में व्याप्त है। हिन्दू मठ, इस्लामी धार्मिक संस्थाएँ, चर्च, बौद्ध विहार, कबीरपंथी मठ सब जगह स्त्री का किसी न किसी रूप में यौन शोषण किया जाता है। रेणु के "मैला आँचल" उपन्यास में कबीरपंथ के एक मठ में लक्ष्मी नामक छोटी बच्ची के यौन शोषण का मर्मभेदी चित्रण मिलता है। जाहिर है कि प्रायः धार्मिक संस्थाओं में शीर्ष पर पुरूषों का आधिपत्य होता है। और वहाँ के धर्माचार्यों द्वारा ही स्त्रियों का शोषण होता है। मन्नू भण्डारी ने "ईसा के घर इन्सान" शीर्षक कहानी में ईसाई पादरियों द्वारा किये जानेवाले दुष्कर्म को साहस के साथ बेनकाब किया है। जब तथाकथित शुद्धिकरण के नाम पर एक दिन फादर ने जूली नामक एक "नन्" का यौन शोषण किया तो इसके चलते वह लग-भग जिंदा लाश बनकर रह गयी। इस कहानी में श्रीमती शुक्ला जूली के बारे में विवरण देती हुई रत्ना से कहती हैः "जूली फोर्थ इयर का क्लास ले रहीं थी। कीट्स की कोई कविता समझाते-समझाते जाने क्या हुआ कि उसने एक लड़की को बाँहों में भरकर चूम लिया। ....... बात सारे कॉलेज में फैल गई। मदर बड़ी नाराज भी हुई और चिन्तित भी। जूली को उसी समय चर्च भेज दिया और वे सीधी फादर के पास गई।"[1] श्रीमती शुक्ला रत्ना को संकेतिक रूप में बताती हैं कि फादर ने जूली का यौन शोषण किया जिससे उसकी सारी मस्ती गायब हो गयी। इस कहानी में विस्तार के साथ अनेक ऐसे विवरण भरे पड़े हैं जिनसे पता चलता है कि किस प्रकार चर्च की थोपी हुई मर्यादाओं के चलते धर्मभिक्षुणियाँ घुटन की जिन्दगी जीने के लिए अभिशप्त होती हैं। कहानी में बताया गया है कि रत्ना जब एक दिन "नन्" को हिन्दी सिखाने कॉलेज जाती है तो कोई खूबसूरत-स्त्री नन् चिल्ला चिल्लाकर रोते हुए कह रही थीः "मैं अपनी जिन्दगी को, इस रूप को चर्च की दीवारों के बीच नष्ट नहीं होने दूँगी। ....... मैं इस चर्च में घुट-घुटकर नहीं मरूँगी ...... मैं भाग जाऊँगी, मैं भाग जाऊँगी।"[2] वस्तुतः मन्नू भण्डारी की यह कहानी यदि एक ओर सामाजिक यथार्थ के एक अछूते पहलू से

---

1 मैं हार गई, पृ. -12

2 वही, पृ. - 20

हमें अवगत कराती है तो दूसरी ओर धार्मिक दबावों के बीच अपनी प्राकृतिक एवं मानसिक प्यास के चलते अतृप्त स्त्रियों की व्यथा को भी चित्रित करती है।

अनमेल विवाह भारतीय सामाजिक जीवन का एक कड़वा यथार्थ है जिसके बहुत सारे कारण है। "एक कमजोर लड़की की कहानी" में मन्नू भण्डारी ने इस कड़वे सामाजिक यथार्थ को कहानी का विषय बनाया है। मातृहीन बालिका रूप इस कहानी की नायिका है जो न चाहते हुए भी एक वकील साहब से ब्याह दी जाती है जिसके बाद वह एक असंतृष्ट जीवन बिताने के लिए बाध्य है। रूप के मामा-मामी के यहाँ रहने वाले अनाथ बालक ललित के प्रति उसका अनुराग जीवित है, पर खुद अपने जीवन के पक्ष में सही निर्णय लेने में वह अक्षम है। भावना और विचार के धरातल पर उसके भीतर विद्रोह अंकुरित होता है पर यथार्थ की चट्टान के नीचे वह दब जाता है। इस प्रकार विद्रोह न कर पाने की वजह से जहाँ वह एक ओर सामाजिक यथार्थ से टकरा नहीं पाती है वह दूसरी ओर खुद स्वयं के प्रति भी अन्याय करती है। यदि कहानीकार चाहती तो बड़ी आसानी से रूप को एक विद्रोहिणी नारी के रूप में चित्रित करके उसे ललित के साथ सुखी जीवन बिताते हुए दिखा सकती थीं। पर यह यथार्थ के प्रति यथार्थ विरोधी नजरियाँ होता। सच तो यह है कि लेखिका ने यथार्थ को उसी रूप में चित्रित किया है जो स्वाभाविक है। "ललित" जब रूप से अपने साथ भाग चलने का प्रस्ताव करता है तो रूप कहती है: "यह तुम क्या कह रहे हो ललित? जानते हो मेरी माँग में किसी और के सुहाग का सिंदूर है- अग्नि को साक्षी देकर मैं उनकी हो चुकी हूँ।"[1] इस मानसिकता के विपरीत ललित स्वाभावतः आजाद ख्याल है। वह प्रेम में सामाजिक और पारिवारिक बंधनों को महत्व नहीं देता। एक स्थान पर वह रूप से कहता है:"जहन्नुम में गई दुनिया और जहन्नुम में गये तुम्हारे पिताजी! पिताजी को बिटिया इतनी ही दुलारी होती न तो कुएँ में न ढकेल देते। तुम्हें पिताजी की भावनाओं का ख्याल है, दुनिया भर का ख्याल है, पर मेरे अरमानों का

---

1 मैं हार गई, पृ. 3063

कुछ ख्याल नहीं....तुम मुझसे दण्ड चाहती हो न। तो समझ लो, मैं यही दण्ड तुम्हें देना चाहता हूँ, मैं तुम्हें ले जाना चाहता हूं, भगाकर ले जाना चाहता हूँ।"[1] इतने खुले आमंत्रण के बावजूद यदि रूप अन्ततः अपने पति वकील साहब के साथ ही अनिच्छापूर्वक जीवन बिताती हुई चित्रित की गई है तो यह सामाजिक यथार्थ का ही चित्रण माना जाएगा, क्योंकि आज भी ज्यादातर भारतीय स्त्री खुद अपने ही संस्कारों से छुटकारा पाने में असमर्थ है। प्रसंगवश अर्चना वर्मा का यह सवाल महत्वपूर्ण प्रतीत होता है कि यदि स्त्री को विद्रोह करना है तो आखिर किससे? उन्हीं के शब्दों में :"पर किससे विद्रोह और किससे स्वाधीनता? सबसे पहले अपने ही अंदर बैठी, पितृ-सत्तात्मक समाज के निर्णयों, मूल्यों-मर्यादाओं में ढली और आस्थाओं में पगी उस औरत से जो अपनी निर्भयता को अंकुशित, निर्णय को संचालित और अभिव्यक्ति को ग्रस्त करती है। खतरे का निशान दिखाकर सावधान करती है। इस पथ से पहले जा चुके पैरों के निशान मिटा देने को उकसाती है। कहाँ है स्वेच्छा? कहाँ है स्वाधीनता?..... परंपरागत समाज की नींव अगर स्त्री की शर्मिंदगी पर टिकी थी तो बेशक वह हिल उठी है.....जरूरत है देह को पुरुष के स्वामित्व से मुक्त करके अपने अधिकार में लेने की क्योंकि यौन शुचिता, पातिव्रत, सतीत्व जैसे मूल्य स्त्री के सम्मान का नहीं, पुरुष के अहंकार की दीनता और असुरक्षा का पैमाना है। पितृसत्ता के मूल्य हैं और स्त्री की बेड़ियाँ। "[2]

सवाल यह खड़ा होता है कि विचार-विमर्श के धरातल पर स्त्रीवादियों की जो बातें हमें सहज आंदोलित एवं प्रभावित करती हैं उनका भारतीय समाज में और खास तौर से स्त्री के जवीन में क्या स्थान है? दूसरे शब्दों में कहें तो विचार-विमर्श करते हुए हम जो बाजी जीत जाते हैं वही कई बार कथासृजन के दौरान जीतना आसान नहीं होता। कारण यह है कि एक कथाकार के लिए आदमी केवल तर्कशास्त्र की कसौटी पर कसा जाने योग्य पात्र नहीं होता। सच तो यह है कि कथा

---

1 एक कमजोर-लड़की की कहानी, पृ.सं.63

2 हंस, जनवरी-फरवरी 2000, पृ. 5

रचना में वह चरित्र जो टाइप होने के साथ एक व्यक्ति भी होता है, इस तरह चित्रित किया जाता है कि उस अकेले व्यक्ति में ही कई टाइप दिखाए जा सकते हैं। "हर आदमी, यहाँ तक कि सीधे-से सीधा आदमी भी टाइपों का एक मिश्रण होता है। तथाकथित चरित-भेदों में लोगों को सीधा-सपाट दिखाया जाता है। हम लोगों का जिन व्यक्तियों से सिर्फ एक ही प्रकार का संबंध होता है। वे सब लोग हमें उसी तरह दिखाई पड़ते हैं। बहुमुखी चरित्रों में दृष्टियों और संबंधों का समन्वय होता है और उन्हें सामाजिक जीवन, निजी जीवन आदि विविध संदर्भों में दिखाया जाता है।"[1] कहने का तात्पर्य यह है कि सामाजिक जीवन में यदि कोई चरित्र बुद्धिवादी है तो जरूरी नहीं कि निजी जीवन में भी वह बुद्धिवादी ही हो। इसी प्रकार सामाजिक जीवन में जो चरित्र भावुक है वह निजी जीवन में नितांत तार्किक हो सकता है।

उपर्युक्त चर्चा के मद्देनज़र मन्नू भण्डारी की "जीती बाजी हार" कहानी विचारणीय है। इस कहानी में नलिनी, आशा एवं मुरला नामक जिन लड़कियों को चित्रित किया गया है उनमें बौद्धिकता के साथ-साथ अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास की आकांक्षा भी है। किंतु कालांतर में इनमें से दो ने विवाह करके अपना घर बसा लिया। दूसरे शब्दों में कहें तो नलिनी और आशा की सारी बौद्धिकता अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास की सारी इच्छा प्रचलित सामाजिक जीवन पद्धति के आगे कमज़ारे पड़ गयी। मुरला ने अविवाहित रहने का निर्णय लिया और उसके व्यक्तित्व का स्वतंत्र विकास भी हुआ। पर वह अन्ततः जिंदगी की बाज़ी जीतकर भी हार जाती है। जो मुरला एक जगह वक्तव्य देती है कि "शादी करके मैं अपने वक्तव्य को नहीं बेच सकती.....सहारा उसे चाहिए जो अपने को अबला समझे! मैं सबला हूँ, मैं सबला हूँ, मुझे किसी का सहारा नहीं चाहिए। बच्चों को तो मैं अपनी उन्नति में बाधक समझती हूँ।"[2] वही अन्ततः अपनी मित्र आशा

---

1 रेने वेलेक : आस्टिन वारेन साहित्य-सिद्धांत (अनुवाद) लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, पृ.42

2 मैं हार गई, पृ.41

की पुत्री को अपने पास रखना चाहती है। उसके भीतर सुपुत्र ममत्व जाग उठता है। सच तो यह है कि स्त्रीवादियों में से कुछ रेडिकल कही जानेवाली विचारकों ने चाहे मातृत्व की कितनी भी खिल्ली उड़ाई हो पर उसके महत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। प्रसंगवश मृदुला गर्ग का मतव्य देखा जा सकता है:"मातृत्व के अनेक आयाम ही नहीं हैं, हर आयाम, अनेक पूर्वग्रहों से जुड़ा हुआ है। ज्यादातर पूर्वाग्रह, मातृत्व को महिमा-मंडित करते हैं। युगों से करते आये हैं। पर बीसवीं सदी में उग्र नारीवाद ने जन्म लिया। मातृत्व को स्त्री के पाँव की बेड़ी बतलाया और एकदम विपरीत पूर्वग्रह को जन्म दिया। यहाँ तक कि गर्भपात के अधिकार को, नारी-स्वातंत्र्य का पर्याय बना दिया गया।.....पर आज का नारीवाद मातृत्व को व्यापक संदर्भ दे रहा है। पोषक तत्व के रूप में मान्यता देकर उसे स्त्री का सहजात गुण बतला रहा है। गर्भ गिराने के साथ-साथ बिना विवाह ही नहीं, बिना पुरुष संसर्ग गर्भधारण करने का अधिकार मांग रहा है।"[1]

भारतीय समाज में नारी के दोहरे मानदण्ड प्राचीन काल से विद्यमान हैं। एक ओर तो वैदिक साहित्य में यह लिखा हुआ है कि "यत्र पूज्यंते नार्यस्तु, तत्र पूज्यंते देवता।" तो दूसरी ओर रामचरितमानस में तुलसी लिखते हैं कि ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी ये सब ताड़न के अधिकारी। एक ओर सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा, काली, वैष्णवी, कात्यायनी, कूशमांडा जैसे शब्द हिंदू संस्कृत में मौजूद है। दूसरी ओर कुंती और द्रौपदी को वह सम्मान प्राप्त नहीं है, जो नारी का होना चाहिए। महाभारत की द्रौपदी पाँच पतियों की पत्नी होने के नाते यह पुरुष वर्ग द्रौपदी को सम्मान नहीं देता हैं। सीता और सावित्री का अस्तित्व सदा पति और परिवार की इच्छाओं की पूर्ति करने वाली औरत की छवि है। इस छवि को समाज मान्ट करता है। किंतु राम को अदम्य प्रेम करनेवाली, सास-ससुर की अनिच्छा के विरुद्ध, वन गमन करनेवाली, रावण के प्रेमपूर्व प्रलोभनों और डराने-धमकाने को अविचल भाव से झेलने की शक्ति रखने वाली सीता को कोई नहीं मानता। लवकुश प्रसंग के बाद सीता आत्म-सम्मान सहित धरती में समा जाने का फैसला

---

1 हंस, फरवरी 2000, पृ.सं.168

करती है-सीता का प्रतिरोध मौन प्रतिरोध है। यह उसकी दुर्बलता का प्रतीक कतई नहीं माना जा सकता। पुरुष सत्तात्मक समाज कभी भी नारी के उजले और स्वस्थ स्वरूप को सामने लाने का साहस नहीं जुटा पाता।

कोई भी समाज या व्यवस्था ऐसी सचेत स्त्री का सम्मान नहीं करता, जो अपने उपमान पर आँसू न बहाए, न धरती में समाकर आत्महत्या कर ले और अपमान करनेवाली व्यवस्था को समूल नष्ट करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हो जाए। औरत समाज व्यवस्था और परिवार की संस्था को कायम रखनेवाली धुरी है-जो अपने अपमान को भाग्य का लेख न मानकर अपमान करनेवालों को सबक सिखाने में तत्पर रहती है।

यह विडंबना है कि नारी के दोहरे रूप और उसके उज्जवल पक्ष को समाज हमेशा नकारता आया है। इसलिए अघोषित निर्णयों की मूल्य संरचना को तोड़ना बेहद जरूरी है। एक ही धुरी पर घूमते-घूमते क्या उसे स्वतंत्र विचारण की चाहत कभी पैदा नहीं हुई? स्त्री के संबंध में हिंदू समाज का दावा पुरुष की कुंठा है। स्त्री परंपरागत पुरुष समाज और सभ्यता तथा संस्कृति की दौड़ में यदि आगे निकल जाती है तो उसे होड या प्रतियोगिता का नाम दिया जाता है। भारतीय पुरुष का अंतर्मन चूँकि परम्परा से बंधा है। इसलिए अपने तमाम उदारवादी दृष्टिकोण के बावजूद यह स्त्री की स्वतंत्र इच्छा को स्वीकार नहीं कर पाता।

वास्तव में समाज जो भी विश्लेषण करता है, उन्हें बार-बार सोचना चाहिए कि नारीवाद न तो मार्क्सवाद है न पूंजीवाद। स्त्री सब जगह है, हर वाद में, सूक्ष्म में और विस्तार में है। स्त्री को मानव होने की वह गरिमा हिंदू धर्म नहीं देता। शास्त्रों में वह काम की वस्तु थी। हमारा सभ्य पुरुष समाज इस पर मौन है। एक संबंध से मुक्त होने की विवशता से लेकर नये सिरे से बंधनों की मजबूरी के पीछे स्त्री कितनी आहत, असहाय और अपमानित होती है इस स्थिति से पुरुष वर्ग की निरंकुशता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

वास्तव में नारीवाद का मुद्दा, उन समस्याओं को अभिव्यक्त करता है, जिन्हें अब तक इतिहासकार केवल पुरुष के संदर्भ में ही देखने के अभ्यस्त रहे हैं।

पुरुष सारे अनुभवों के सारतत्व के रूप में, स्त्री को पारिभाषित करता है, पर ऐसा क्यों? भारतीय समाज में स्त्री दोतरफा भार झेलती हुई इक्कीसवीं सदी के संकरे द्वार पर खड़ी है। जहाँ पुरुष सूक्ष्म अनुसंधान के बाद जूज्य या कलंकित की परिभाषा देकर उसे अलग-अलग कटघरे में भेजता है। अर्थात् पुरुष की आँखें स्त्री का मूल्यांकन करती हैं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से आ.हजारी प्रसाद द्विवेदी तक नारी मूल्यांकन परक दृष्टि आज नारियों को पीडाजनित मानसिकता से गुजरने के लिए विवश करता है।

"आ.महावीर प्रसादर द्विवेदी ने अपना प्रथम नारी आलेख "जापान की स्त्रियाँ" (सरस्वती सन् 1905 संख्या-I पृ.सं.212) में लिखा है कि जापान की स्त्रियाँ शिक्षित हैं पर वहाँ की स्त्रियाँ स्वतंत्र नहीं हैं। वे अपने पति के कुटुम्बियों का आदर करती हैं। पति को तो वे स्वामी, क्या देवता समझती हैं। हमारे देश के समान जापान में भी स्त्रियों को हर अवस्था में दूसरों के अधीन रहने की शास्त्राज्ञा है। लड़कपन में माता-पिता, विवाह हो जाने पर पति और विधवा हो जाने पर पुत्र के आश्रय में रहती है। वे हृदय से पति की सेवा करती है। जापानी स्त्रियों के बहाने भारतीय स्त्रियों पर मनु-महादेश (अध्याय 5, श्लोक 48) का फंदा कसने का काम सर्वप्रथम महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया। इसके बाद फिर उन्होंने सरस्वती पत्रिका के जनवरी 1907 के पृ.सं.11 में स्त्री शिक्षा की आलोचना लेख प्रकाशित किया। महावीर प्रसाद द्विवेदी विधवा नारियों के लिए भी धर्म प्रवक्ता जैसी भूमिकाएँ निभाते रहे।"[1] यह धारणा कि आम स्त्री को केवल पत्नी और माँ की भूमिका का निर्वाह करना चाहिए।इसके अतिरिक्त कि आकांक्षा उसे नहीं करनी चाहिए। वस्तुतः एक पक्षीय दृष्टिकोण है। यदि पुरुष अपने व्यक्तित्व के सभी पक्षों का विकास करना चाहता है तो स्त्रियों के लिए भी इसे सहज एवं स्वाभाविक माना जाना चाहिए। कामकाजी महिलाएँ पारिवारिक दायित्वों के साथ-साथ अपनी व्यवसाय संबंधी आकांक्षाओं को पूरा करती है। अपने दोनों दायित्वों संबंधी

---

[1] अपने समय के साहित्य पर सोचते हुए : डॉ.बूलीकांर, पृ.सं.64

आकांक्षाओं को पूरा करती है। अपने दोनों दायित्वों का निर्वाह करते-करते वह दोहरी भूमिका के दबाव से तनावग्रस्त भी होती है।

हमारी सामाजिक संस्कृति का निर्माण स्त्री पुरुषों के समान सहयोग और त्याग पर ही हुआ था। कालांतर में स्त्री का त्याग बढ़ा किंतु इस त्याग का गलत अर्थों में प्रयोग समाज ने किया। समाज की नियंता का गौरव प्राप्त करने की अधिकारिणी स्त्री के साथ क्या-क्या अन्याय नहीं देखे जाते हैं। सबसे बड़ी विडम्बना तब सामने आती है जब पुरुष "सहकर्मी के साथ संबंध की बात आती है। समाज की कुदृष्टि स्त्री की मानसिकता में अनावश्यक तनाव जनति समस्या उपस्थित करती है। हमारे समाज में पारिवारिक संबंधों के सिलसिले में तलाक, हत्या-आत्महत्या की घटनाएँ सुनने को मिलती हैं। मुख्य कारण पति-पत्नी के रिश्तों के व्यावसायिकता, अहं का टकराव संदेह और सहयोग वृत्ति का अभाव और कुंठाजनित अविश्वास है।

स्त्री और पुरुष दोनों का ध्यान रखना चाहिए कि उन्हें आपसी स्वार्थ के रिश्ते कायम नहीं करने हैं। बल्कि मानसिक समायोजन करना है। हमारे सामने एक ज्वलंत प्रश्न है कि स्त्रियों की दुनिया विस्तृत होने से क्या संबंधों का कोई नया नियम बन जाता है जिसे अपनाए बगैर स्त्री-पुरुष अपरिचय और आपसी मुठभेड़ की युग्म बुराइयों से मुक्त होकर एक दूसरे के साथ सहज रिश्ता कायम नहीं कर सकते? स्त्री के लिए तो यह संघर्ष दोहरा है। किसी भी सामान्य व्यक्ति की लड़ाई तो उसकी है ही, स्त्री होने के कारण एक-दूसरे स्तर पर भी उसे लगातार मोर्चाबद्ध रहना पड़ता है जिसमें पुरुष बार-बार सवाल खडा करता रहा है। यह संघर्ष अलग-अलग जगह भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में विभिन्न आर्थिक दबावों के बीच अलग-अलग स्तर पर आज भी चल रहा है।

भारतीय संस्कृति में स्त्री को पुरुष वर्ग ने जो सांस्कृतिक अर्थवत्ता दी है उसके परिणाम में स्त्री को पुरुष का शोषण झेलना पड़ रहा है। सांस्कृतिक विरासत में नारी कर्तव्यों की सीमा मातृत्व गुण के कारण व्यक्तिगत और सार्वजनिक क्षेत्र में एक दायरा बनाया गया है। इस दायरे को संस्कृति और परंपरा ने चिरस्थायी

बना दिया। धर्म और संस्कृति की नज़र स्त्री के लिए हमेशा टेढ़ी रही-राजनीति उसे हमेशा मोहरा बनाती रही और पुरुष ने उसे सजावट की वस्तु और भोग्या ही समझा। स्त्री की समस्या समग्र मानवीय समस्या होते हुए एक अलग समस्या है। औरत आधी दुनिया है, आधा भारत है फिर उसे मानवीय गरिमा से इस तरह वंचित क्यों रखा जाता है। क्योंकि पुरुष का वर्चस्व समाज में पहले स्थापित हुआ था। बाद में वर्ग, जाति, परिवार आदि संस्थाओं का ढांचा बना। अंत में स्त्रियाँ गौण रूप में उसमें जमा दी गई। इसके फलस्वरूप वह अपनी पारंपरिक भूमिका में बंधी रह गई। सभ्यता और संस्कृति ने उसे दैहिकता से परे नहीं जाने दिया। कारण एकदम साफ है।

"दीवार बच्चे और बरसात" कहानी में मन्नू भण्डारी ने इस सामाजिक यथार्थ को स्पष्ट किया है। इस आधुनिक समाज में अभी तक बदलाव नहीं आया है। ज्यादातर विवाहित नारियाँ घर-घर ही बैठकर अपने ही गल्ली के आस-पडोसवालों के घर का पूरा समाचार जानने की कोशिश करती हैं। चाहे वह पढ़ी-लिखी हो या अनपढ़ हो, तरह-तरह के विषयों पर विमर्श करती हैं। प्रस्तुत कहानी में इस प्रकार के विषयों को देख सकते हैं। मन्नू भण्डारी ने इस प्रकार स्पष्ट किया है-"अब घर से तो अकेली ही गई है, पर होगा कोई यार-दोस्त, जिसके घर जा बैठेगी। मरी के सत्तर यार आया करैं थे। धेला-पाई कुछ नहीं ले गयी, बड़े उसके से गई है। हाथ-गले का जेवर तक उतार गई और गई कि मैं किसी की दबैल होकर नहीं रह सकूँ। खुद कमाकर खा लूँगी।"[1]

आधुनिक नारी को समाज किस प्रकार दबाकर रखना चाहता है इस संदर्भ से पता चलता है-"अरे रहने दो, भौत देखी हैं ऐसी हिम्मतवाली! किसी से पहले से ही साँठ-गाँठ कर रखी होगी, जिसके बूते पर उछल रही होगी। बिना मरद की सह पाये औरत में ऐसी हिम्मत नहीं आ सकै। क्यों शन्नौ बीबी? तुम भी तो पढ़ी-लिखी हो, बोलो, यों घर छोड़कर अकेले कमा कर खा सको हो, क्यों?"[2]

---

1 मैं हार गई, पृ.96-97
2 वही, पृ.97

ज्यादा पढ़ी-लिखी औरत के बारे में भग्गो भाभी ने कहती है कि -"अब कोई एक बात हो तो बताऊँ, वहाँ तो हर बात में ही झगड़ा होता था। असल बात तो यह है कि ज्यादा पढ़-लिखकर और आज़ादी पा-पाकर छोटियों के दिमाग बिगड़ जावे हैं। एक तो ब्याह उसका पच्चीस बरस की उमर में हुआ। भला अब तुम्हीं बताओ, यह भी कोई ब्याह की उमर है। पच्चीस बरस की उमर में तुम जानो, मैं तो चार बच्चों की माँ हो गई थी। सुनै हैं, पहले तो वह कहा करे थी कि मैं ब्याह करूँगी ही नहीं। बस साइकिल लेकर सारा शहर नापा करे थी। माथा उघाड़ कर, दो चोटे लटकाकर न जाने कहाँ-कहाँ के छोरों के बीच ही-ही-ठी-ठी हुआ करे थी, मौज मिले तो कौन मरा ब्याह करेगा? फिर मैं बहुत रोई बतावें, सारे घर वाले दुखी हो गये तो रानीजी ने ब्याह किया पर ब्याह के बाद वह मौज-मस्ती कहाँ से आवै, जो पहले थी, बस रोज झगड़े होने लगे।"[1]

इस कहानी से स्पष्ट होता है कि अज्ञानता के कारण औरतें इस प्रकार अपनी ही जड़ काट रही हैं।

"अभिनेता" कहानी में छल-कपट और धोखेबाज आदमी के व्यक्तित्व के बारे में मन्नू भण्डारी ने स्पष्ट किया है। इस दुनिया में सबसे ज्यादा श्रेष्ठ जन्म मानव का जन्म है। लेकिन ऐसी मानव प्रेम के बहाने लड़कियों का जीवन खराब कर रहे हैं। हर एक के मन में विश्वास की भावना जगाने के बजाय तोड़ने की कोशिश कर रहे हैं। आधुनिक समाज में चाहे वह नारी हो या पुरुष एक दूसरों के बीच बढ़ती हुई इस नाटकबाजी का सुंदर चित्रण मन्नू भण्डारी "अभिनेता" नामक कहानी में दर्शाया है।

अभिनेत्री रंजना अनजाने में शादी-शुदा और बच्चों वाले एक बाप से प्यार करती है। वह आदमी इतना बड़ा नाटक करता है कि सामनेवालों को विश्वास करना ही पड़ता है। इसका प्रत्यक्ष रूप दिलीप है जो कि रंजना से कहता है कि -"तुम लाख तर्क कर सकती हो, वे सब मैं भी जानता हूँ, पर मानता नहीं। प्रेम की एकान्तिकता में मेरा बड़ा दृढ विश्वास है। तुम चाहे मुझे दकियानूस कहो

---

1 मैं हार गई, पृ.सं.97-98

या पुराणपंथी, पर लैला-मजनू का प्रेम ही मेरे प्रेम का आदर्श है। कल, मान लो, किसी कारण से मैं तुम्हें नहीं पा सकूँ, तो, सच कहता हूँ, जान दे दूँ! तुम्हारे बिना तो मैं अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकता!"[1]

रंजना दिलीप की बातों पर विश्वास करती है। और एक संदर्भ में शादी के बारे में दिलीप, रंजना के मन में आशा की भावना उत्पन्न करता है-"यहाँ से मैं देहरादून जाऊँगा और वहाँ से दिल्ली इस बार घर जाकर मैं शादी की बात भी तय कर आना चाहता हूँ, जिससे बस, लौटते ही हम लोग शादी कर लें। बस, यही समझ लो, पंद्रह दिनों की बात है।"[2]

इस प्रकार आशा दिलाकर रंजना से पैसे भी लेकर जाता है। और जाने के पहले रंजना अपनी जन्मदिन तक वापस आने के लिए भी कहती है। मगर दिलीप वापस नहीं आता। रंजना कारण जानने की बहुत कोशिश करती है। अंत में दिलीप के पिता द्वारा लिखा गया एक पत्र रंजना को मिलता है। उस पत्र में पत्नी और बच्चों को वापस ले जाने की सूचना दी गयी है।

तब रंजना दिलीप के बारे में सोचती हुई कहती है कि -"मैं तो केवल रंगमंच पर ही अभिनय करती हूँ पर तुम्हारा तो सारा जीवन ही अभिनय है। बड़े ऊँचे कलाकार और सधे हुए अभिनेता हो तुम, मेरे दोस्त।"

इस प्रकार मन्नू भण्डारी स्पष्ट करती है कि प्रेम के रूप में बढ़ते हुए अत्याचारों से अविवाहित नारी का मन किस प्रकार घायल होता है और दूसरी ओर विवाहित स्त्री अपने पति के दूसरी लड़कियों के साथ घूम फिरने पर भी चुपचाप सहन कर समाज में अपनी इज्जत बचाने के लिए चार दीवारों के अंदर किस प्रकार जीवन बिताती है उसका रूप प्रस्तुत कहानी में यथार्थ के साथ दर्शाया है।

"रानी माँ का चबूतरा" कहानी के द्वारा लोगों में फैली हुई सामाजिक अंधविश्वासों का प्रत्यक्ष रूप मन्नू भण्डारी ने स्पष्ट किया है। इन अंधविश्वासों के

---

1 मैं हार गई, पृ.सं.83

2 वही, पृ.सं.84

साथ एक स्त्री दूसरी स्त्री के जीवन में किस प्रकार कष्ट पहुँचाती है इस कहानी के द्वारा पता चलता है। कहने के लिए हमारा समाज आधुनिक समाज है मगर कुछ विषयों में जनता के अंदर बदलाव नहीं आया है। इस विषय को "गुलाबी" नामक एक युवती के द्वारा पता चलता है।

हमारे भारत देश की जनता में भक्ति की भावना ज्यादा है। शायद इस कारण ही अनेक मंदिरों की स्थापना हुई है। कोई विदेशी हमारे भारतवासियों को देखकर यह सोचने लगता है कि धर्म के नाम पर यहाँ के लोग एक प्रकार का व्यापार कर रहे हैं। अगर उदाहरण के लिए किसी गरीब व्यक्ति के परिवार में पैसों की कमी है तो घर में बैठकर या मंदिरों में जाकर प्रार्थना करने से वह समस्या हल हो जाएगी क्या? हाँ प्रार्थना से मन को शांति मिलेगी। यह तो यथार्थ है शायद इसलिए विदेश के बालक वर्ग 15 साल की उम्र से मेहनत करके अपने जीवन के बारे में खुद का निर्णय लेते हैं। एक तरफ पाश्चात्य की सभ्यता कुछ विषयों में सही है। क्योंकि अगर वहाँ कोई मेहनत करके पैसा कमा रहे हैं तो सामनेवाले किसी के जीवन में कष्ट नहीं पहुँचाता है। इस विषय के आधार पर "गुलाबी" के जीवन को देख सकते हैं।

"गुलाबी" अपने शराबी पति से अनेक यातनाएँ भोगती है। इसलिए वह पति के बिना अपने बच्चों के साथ मेहनत करके जीवन बिताती है। अपने ही गाँववालों में "रानी माँ का चबूतरा" के प्रति एक अंधविश्वास है। काकी को धन्नी इस चबूरे के महत्व को समझाती है -"कोई दस साल पहले की बात होगी, हमारे नगर-सेठ के बेटे पर शीतला माई का कोप हुआ। पानी की तरह पैसा बहाया, वैद-हकीमों का ताँता लग गया। पर शीतला माई तो कोई और ही खेल खेलने आई थीं। वे इन दवाइयों से क्यों शान्त होती भला? सब हार गए, और शीतला माई बच्चे पर ऐसी जमकर बैठीं कि न उसे मरने दें न जीने दें। माँ तो सेवा करते-करते सूखकर काँटा हो गई। न खाने की सुध न सोने की। भाग से एक साधू द्वार पर आया। रानी माँ की सूरत देखकर ही सारी बात समझ गया। वह कोई ऐसा-वैसा साधू भी नहीं, शीतला माई का भेजा हुआ साधू ही था। बोला, बैठी, तेरा

बच्चा मौत के मुंह में है, पर तेरे प्रताप से ही बचेगा। सात दिन तू अन्न-जल का त्याग कर दे, तेरा बच्चा उठ खड़ा होगा। रानी माँ के प्राण तो पहले ही आँखों में आये थे, उस पर सात दिन अन्न-जल का त्याग! सबने बहुत समझाया कि साधू की बातों में मत आओ, पर वह नहीं मानीं सो नहीं मानी। सात दिन बाद बच्चा तो उठ खड़ा हुआ उस देवी के दर्शन करने को, अरथी ऐसे उठी कि राजा-महाराओं की भी क्या उठेगी! नगर-सेठ ने बहू......." "जब उसकी अरथी उठी तो आसमान से केसर की बूँदें बरसी थीं। और तमाशा देखो, इतनी भीड़ में से क्या मजाल जो एक छींटा भी दूसरे पर पड़ जाए। बस खाली अरथी पर ही पड़ रहे थे छींटे।....."[1] इसलिए "फिर सेठजी ने अपने बगीचे में रानी माँ की याद में एक चबूतरा बनवाया। हर पूरनमासी को नगर की औरतें वहाँ दीया जलाने जाती हैं, अपने बच्चों के लिए मनौती मनाती हैं।"[2]

तब से यह चबूतरा गाँववालों के मन में बहुत प्रसिद्ध बन गया है और दूसरी ओर इस चबूतरे के कारणलोगों के मन में अंधविश्वास की भावना भर गई है। गुलाबी इस प्रकार के अंधविश्वासों के साथ जीवन चलानेवाली स्त्री नहीं है। एक संदर्भ में काकी ने गुलाबी के बारे में इस प्रकार विमर्श किया है-"बड़े बच्चे पाल रही है मुँहझौंसी। सबेरे उस कालकोठरी में बंद करके जाती है तो शाम को आकर खोलती है।"[3] इस बात पर गुलाबी इस संदर्भ के द्वारा अपनी वेदना को गाँववालों के सामने व्यक्त करती है-"आ हाँ! बड़े आए बस्तीवाले! पहले कोठरी खोलकर जाती थी तो मेरा छोरा सरकते-सरकते मोरी में आकर गिर गया। किसी ने उठाया तो नहीं! बड़े अपने बनते हैं। छोरा भी तो जाने किस माटी का बना हुआ है, सारे दिन मोरी के सड़े पानी में सड़ता रहा, पर मरा नहीं; मर जाता तो पाप काटता।"[4]

---

1 मन्नू भण्डारी:श्रेष्ठ कहानियाँ-पृ.सं.29-30
2 वही-पृ.सं.30
3 वही-पृ.सं.31
4 वही-पृ.सं.31

इसके साथ-साथ उनमें आदर्श की भावना भी है। एक संदर्भ के द्वारा गुलाबी के आदर्श का पता चलता है-"किसी के दान-पुन्य पर पलने वाली नहीं है गुलाबी। थूकती है तुम्हारे चंदे पर।"[1]

गाँववाले उसकी मदद नहीं करते हैं। ऊपर से गुलाबी के हर एक विषय के बारे में जानना चाहते हैं। गुलाबी के घर का छत टूट जाने से बारिश की समस्याओं को लेकर पहले से ही चिंतित होकर ठेकेदार से थोड़ी-सी सीमंट और चूना माँगकर रात में खुद घर में काम करने लगी तो पड़ोस के घर के मर्द ने अपनी पत्नी से इस प्रकार पूछने लगा-"आधी रात को क्या कर रही है गुलाबी?"[2] तुरंत पत्नी ने इस प्रकार जवाब दिया-"तेरी कबर खोद रही हूँ। जाने कैसे लोग हैं इस बस्ती के कि गुलाबी के काम में टाँग अड़ाए बिना इन ससुरों की रोटी हजम नहीं होती।"[3]

पंद्रह दिन अपने बच्चों को छोड़कर चली जाती है। तो गाँववाले बहुत चिंतित हो जाते हैं कि बच्चों को छोड़कर गुलाबी कहाँ चली गयी होंगी? अंत में एक दिन गाँव के ही दो आदमी अचेत गुलाबी के शरीर को उठाकर ला रहे हैं। काका और काकी ने गुलाबी को पानी पिलाया और गुलाबी के अंगिया से एक पुड़िया को देखा तो उसमें-"काँच की दो छोटी-छोटी हरी चूडियाँ और शिशु-सुरक्षा केंद्र की पाँच रुपये की रसीद थी।"[4]

अपने बच्चों को खिलाने-पिलाने के लिए अपने शरीर को कष्ट देकर पैसा लाती है। मन्नू भण्डारी इस कहानी में गुलाबी को आदर्श और आधुनिक नारी के रूप में यथार्थ दृष्टि से दर्शाया है।

गुलाबी में जितना हिम्मत और ताकत है उतना हिम्मत और ताकत आजकल की पढ़ी-लिखी औरतों में नहीं है। इस रूप को भी प्रस्तुत कहानी में देखा जा सकता है।

---

1 मन्नू भण्डारी:श्रेष्ठ कहानियाँ-पृ.सं.36
2 वही-पृ.सं.36
3 वही-पृ.सं.37
4 वही-पृ.सं.40

"रेत की दीवार" एक सामाजिक, पारिवारिक और मनोवैज्ञानिक कहानी है। इसमें मन्नू भण्डारी ने एक मध्यमवर्गीय परिवार में उत्पन्न होनेवाली समस्याओं का सुंदर चित्रण किया है। एक मध्यमवर्गीय परिवार का पिता अपने बच्चों के माध्यम से समाज में अपने नाम और इज्जत को बढ़ाने की भावना मन में रखकर अपने चार-पाँच बच्चों में से सिर्फ एक ही बच्चे को उच्च शिक्षा दिलाने के लिए प्रयास करता है। पिता की इस इच्छा को मन्नू भण्डारी बालू से बनाया हुआ दीवार के साथ तुलना करती है। क्योंकि एक मध्यमवर्गीय पिता के मन में बहुत सारी आशा और आकांक्षाएँ रहती। मगर पैसों की कमी के कारण उनकी आशा और आकांक्षाओं के साथ मजबूत दीवार नहीं बन पाता है। इसलिए ऐसी दीवार को मन्नू जी बालू के दीवार के रूप में चित्रित करती है।

प्रस्तुत कहानी में रवि के पिता अपनी बेटी से ज्यादा बेटा रवि की पढ़ाई पर ज्यादा ध्यान रखता है। इतना ध्यान रखता है कि अपनी छोटी बेटी टोनी का इलाज भी नहीं करा पाता साथ ही अपनी पत्नी को एक चश्मा भी नहीं खरीद पाता। आस-पड़ोसवालों से और रिश्तेदारों से भी बहुत निदां सुनना पड़ता है। फिर भी बहुत हिम्मत के साथ समस्याओं को पार करने का प्रयास करता है। एक बार अपने ही रिश्तेदारों से इस प्रकार व्यंग्य की बातें सुननी पड़ती है-"भाई तुम्हारा जिगरा है कामता बाबू, कि रवि को इंजीनियर बना रहे हो। वजीफा-उजीफा मिलता तो और बात थी। हर महीने आधी तनख्वाह निकाल कर दे देता कोई हँसी-खेल नहीं। हमसे तो भाई निभा नहीं। इण्टर के बाद ही कैलाश को काम में लगा दिया।"[1]

इन व्यंग्यों का रवि के पिता के मन पर कोई असर नहीं होता। वे कहते हैं कि -"अरे यही सोचा बिट्ठल बाबू कि नौकरी के कोल्हू में जिंदगी भर पिलना ही है। अच्छा पढ़ा-लिखा लेंगे तो जिंदगी बन जाएगी। इंजीनियर बन जाएँगे तो

---

1 त्रिशंकु, पृ.सं.135-136

बड़ी अफ़सरी, मान-सम्मान, पैसा सभी कुछ तो मिलेगा पढ़ाई छुड़वा देते तो कहीं क्लर्की-फिलर्की करते।"[1]

इस प्रकार मन्नू भण्डारी ने अपनी कहानियों में मध्यमवर्गीय परिवारों की इच्छा और अनिच्छा का गहराई से आंकलन लिया है जोकि यथार्थ की धरातल से जुड़ा है।

"त्रिशंकु" कहानी में मन्नू भण्डारी आधुनिकता के नाम पर होनेवाले सामाजिक अन्याय को यथार्थ के रूप में दर्शाया है। हमारे समाज को आधुनिक बनाने के लिए लोग बड़े-बड़े भाषण देते है। लेकिने प्राचीन स्क्कृति और सभ्यता में बदलाव को जनता में देख नहीं पाते हैं। कहा जाता है कि कोई अच्छाई और स्वर्ग और नरक के बीच की जिंदगी बिताना पड़ता है। इस प्रकार की स्थिति को "त्रिशंकु" कहा जाता है।

इस "त्रिशंकु" कहानी में मन्नू भण्डारी स्वयं आधुनिकता और अनुशासन के बारे में इस प्रकार कहती है-"घर की चार-दीवारी आदमी को सुरक्षा देती है पर साथ ही उसे एक सीमा में बांधती भी है। स्कूल कालेज जहाँ व्यक्ति के मस्तिष्क का विकास करते हैं, वहीं नियम कायदे और अनुशासन के नाम पर उसके व्यक्तित्व को कुंठित भी करते हैं......बात यह है बंधु, कि हर बात का विरोध उसके भीतर ही रहता है।"[2]

मन्नू भण्डारी आधुनिकता को स्पष्ट करते हुए कहती हैं कि -"आधुनिकता का गलत अर्थ मत लगाइए। यह बाल कटाने और छुरी-काँटे से खानेवाली आधुनिकता कतई नहीं है। यह है ठोस बुद्धिजीवियों की आधुनिकता। यह क्या होती है सो तो ठीक-ठीक मैं भी नहीं जानती। पर हाँ, इसमें लीक छोड़ने की बात बहुत सुनाई देती है। आप आँखों पर लीक से चिपक कर आइए, दुलत्ती खाइए।"[3]

---

1 त्रिशंकु, पृ.सं.136

2 वही , पृ.सं.105

3 वही , पृ.सं.106

आजकल के विवाह संबंधों के बारे में मन्नू भण्डारी कहती है कि - "विवाह-संस्था एकदम खोखली हो चुकी है.....पति-पत्नी का संबंध बड़ा नकली और ऊपर से थोपा हुआ है......और फिर धुआँधार ढंग से विवाह की धज्जियाँ उड़ाई जाती है। इस बहस में अक्सर स्त्रियाँ एक तरफ़ हो जाती और पुरुष एक तरफ़ और बहस का माहौल कुछ ऐसा गरम हो जाया करता कि मुझे पूरा विश्वास हो जाता कि अब जरुर एक दो लोग तलाक दे बैठेंगे। पर मैंने देखा कि ऐसा कोई हादसा कभी हुआ नहीं।"[1]

संस्कारों से भरी हुई इस विवाह प्रथा से बेहतर, फ्री-लव और फ्री-सेक्स है। इस आधुनिक स्वातंत्र्य जीवन में फ्री-लव और फ्री-सेक्स के बारे में मन्नू भण्डारी एक संदर्भ में तनु की माँ के द्वारा इस प्रकार स्पष्ट करती है-"ब्याह को कोसेंगे तो फ्री-लव और फ्री-सेक्स को तो कोसना ही पड़ेगा। इसमें पुरुष लोग उछल-उछल कर आगे रहते-कुछ इस भाव से मानो बात करते ही इसका आधा सुख तो वे ले ही लेंगे।"[2]

तनू की माँ ने प्रेम-विवाह किया है और दूसरी औरतों को आधुनिकता के बारे में उपदेश भी देती है। लेकिन यह उपदेश और यह आधुनिकता तब लुप्त होती है जब खुद की बेटी बड़ी होती है तो अपने ही मुहल्ले में रहनेवाले पड़ोसी घर के युवकों के द्वारा बेटी को छेड़कानी सुनना पड़ता है। तब तनु की माँ उन नव युवकों के साथ अपनी बेटी की दोस्ती करवाती है। तनु की माँ की दृष्टि में यह आधुनिकता है। तनु की माँ को इस प्रकार का आधुनिक जीवन न मिलने के कारण अपनी बेटी को "फास्ट क्लचर" के साथ बड़ा करने के लिए प्रयास करती है। इसलिए पुरुष मित्रों के साथ दोस्ती करवाती है। वह दोस्ती के कारण तनु, शेखर नामक युवक से प्रेम करना शुरु करती है। घंटों-घंटों तनु का शेखर से बातें करना, तनु की माँ को बिल्कुल पसंद नहीं है। क्योंकि समाज से अपनी बेटी तनुकी बुराई सुनना पड़ता है। तनु की माँ समाज से डरती है और अपनी बेटी को

---

1 त्रिशंकु, पृ.सं.106

2 वही, पृ.सं.106

अनुशासन में रहने के लिए आदेश देती है। समाज के जिन लोगों ने "मुक्त रहो और मुक्त रखो" कहा था वही लोग आज तनु की निंदा करने लगे। इस संदर्भ में लोगों की निंदा स्पष्ट होती है-"शुरु में जिन लोगों ने "मुक्त रहो और मुक्त रखो" की बड़ी प्रशंसा की थी, उन्होंने मुक्त रहने का जो रुप देखा तो उनकी आँखों में भी कुछ अजीब-सी शंकाएँ तैरने लगीं।"[1] और तनु की माँ के एक मित्र ने तनु की मामी से इस प्रकार कहा-".....तनु तो बड़ी फास्ट चल रही है।"[2] और एक संदर्भ में पड़ोस की औरतों ने तनु की मामी से इस प्रकार पूछा-"अच्छा? शाम को रोज ही आपके घर बैठे रहते हैं तो सोचा आपके जरुर कुछ लगते होंगे।"[3]

इस प्रकार मन्नू भण्डारी ने आधुनिकता में भी पुरातन संस्कारों के फैले हुए दृढ़ जड़ों को समाज से अलग नहीं कर सकने की यथार्थता को यथार्थबोध के रूप में स्पष्ट किया है।

मानव इस समाज में अकेला जीवन नहीं बिता सकता है। हर एक के लिए साथी की जरूरत है। शायद इस कारण बच्चों को बचपन से माँ-बाप की सहायता चाहिए और यौवन में पति या पत्नी का सहारा चाहिए। बुढ़ापे में बच्चों के सहारे की जरूरत है। शायद इस कारण विवाह प्रथा अभी भी चल रही है। लेकिन हमारे भारतीय संस्कृति में यह प्रथा इतने भयंकर रूप में प्रचलित है कि विधवा या पति या पत्नी में अलगाव से दोनों में एक प्रकार का तनाव उत्पन्न हो जाता है। इस मानसिक तनाव के कारण आजकल के मानव का जीवन कुंठाओं से भरा है। पहले ज़माने में अनमेल विवाह होता था अगर पति की मृत्यु हो जाने से स्त्री कम उम्र में विधवा बन जाती थी और कुछ घटनाओं में उसे पति के साथ जला भी दिया जाता था। इसको सती प्रथा कहते हैं। सती के कारण तब एक ही बार में दर्द समाप्त हो जाता था। मगर आधुनिक समाज में स्त्री जीवित रहकर कुंठा के रूप में जलनेवाली आग को मन में रखकर संघर्ष के साथ आगे बढ़ती रही है। और

---

1 त्रिशंकु, पृ.सं.112

2 वही , पृ.सं.112

3 वही , पृ.सं.115

विधवा होने पर भी पुरुष के बराबर नौकरी करके जीवन बिता रही है। किंतु आधुनिक समाज में स्त्री-पुरुष के बीच के मानसिक तनाव को कोई दूर नहीं कर पाता, नारी आगे बढ़ते हुए, जनता को बदलते हुए समाज के साथ तनावपूर्ण जीवन बिता रही है। अगर इस आधुनिक समाज में नारी अपनी ही मर्जी से जीवन बिताना चाहती है तो "समाज" ऐसी औरत को आराम से जीने नहीं देता है। इस "समाज" से डरकर शायद हर एक मानव अपनी-अपनी इच्छाओं को दबाकर एक प्रकार के मानसिक तनाव की जिन्दगी बिता रहा है। इसका प्रत्यक्ष रूप "संख्या के पार" नामक कहानी में मन्नू भण्डारी ने दर्शाया है। प्रमीला की माँ बचपन में ही दूध पीती हुई बच्ची को छोड़कर किसी दूसरे पुरुष के साथ भाग जाती है। कारण यह है कि प्रमीला के पैदा होने के बाद उसका पति मर जाता है। इस प्रकार किसी के साथ भागनेवाली लड़की को इस समाज यानी कि भारतीय समाज में सम्मान नहीं मिलता है। शायद इस कारण से प्रमीला की माँ को उसका दादा घर वापस नहीं आने देता है। एक संदर्भ में मन्नू भण्डारी ने इस प्रकार दर्शाया है-"तुम लाख रोओ, रोते, रोते मर भी जाओ तब भी वह इस घर में नहीं घुस सकती। उसने इस शहर में घुसने की हिम्मत ही कैसे की? तुम कहला दो कि वह शहर छोड़ कर चली जाए। मेरा धरम-करम, सुख-चैन सब मिट्टी में मिला दिया......।"[1]

इस संदर्भ से यह जानना चाहिए कि बिटिया की खुशी से ज्यादा समाज के प्रति कर्तव्य की भावना स्पष्ट हो रही है। इस प्रकार के यथार्थ के बारे में मन्नू भण्डारी ने प्रमिला की माँ और दादा के रूप में दर्शाया है।

"स्त्री सुबोधिनी" नामक कहानी में मन्नू भण्डारी ने प्रेम के रूप में होनेवाले अन्याय के बारे में दर्शाया है। एक विवाहित आदमी अपने ही ऑफीस में काम करनेवाली एक अविवाहित नायिका के साथ प्यार के रूप में एक अच्छा नाटक करता है। आजकल की नाटकबाजी प्यार के बारे में चित्रण करते हुए मन्नू भण्डारी कहती है कि -"डॉक्टरों का नर्सों से, प्रोफेसरों का अपनी छात्राओं से,

---

1 एक प्लेट सैलाब, पृ.सं.90

अफसरों का अपनी स्टेना-सेक्रेटरी से प्रेम हो जाने का हमारे यहाँ आम रिवाज है। यह बात बिलकुल अलग है कि उनकी ओर से इसमें प्रेम कम और शगल ज्यादा रहता है।"[1]

शिंदे अपने ऑफीस की स्टेनो से आठ साल प्यार का नाटक चलाता है। अंत में नायिका को पता चलता है कि शिंदे शादी शुदा और बच्चोंवाला बाप है। यह प्रेम का नाटक अपनी पत्नी को पता चलने के कारण शिंदे पत्नी को नहीं छोडता मगर दूसरी जगह चला जाता है। कभी-कभी आफीस के काम के नाम पर प्रेमिका को देखने के लिए आता है और बहुत मीठी सी बातें करता है। एक दिन के बाद शिंदे से गृहप्रेवश के दिन बुलावा आता है। मगर प्रेमिका के मन में वहाँ जाने के लिए तनिक मात्र इच्छा भी नहीं थी। लेकिन अनजाने ही शिंदे के घर जाती है। शिंदे के घर, परिवार और जायदाद के सामने प्रेमिका के लिए कहीं पर भी स्थान नहीं है। मन्नू भण्डारी प्रेमिका के मन की व्यथा को इस प्रकार स्पष्ट करती है-"राम धुन की तरह तुम मेरी हो, तुम मेरी हो" की रट लगाने वाले शिंदे साहब, बताइए तो, आपकी जिंदगी के इस सारे तामझाम में मैं कहाँ हूँ......मैं कितनी हूँ?"[2]

और एक संदर्भ में मन्नू भण्डारी त्रिशंकु कहानी में नायिका के द्वारा यथार्थ को स्पष्ट करते हुए दूसरी औरतों को संबोधित करते हुए कहती है-"इस देश में प्रेम के बीज मन और शरीर की "पवित्र भूमि" में नहीं, ठेठ घर-परिवार की उपजाऊ भूमि में ही फलता फूलता है। भूल कर भी शादीशुदा आदमी के प्रेम में मत पड़िए। "दिव्य" और "महान प्रेम" की पैदावार ही नहीं होती। दो नावों पर पैर रखकर चलनेवाले "शूर वीर" जरुर सरेआम मिल जाएंगे।"[3]

इस प्रकार मन्नू भण्डारी प्रेम के रूप में होनेवाले सामाजिक अत्याचार को यथार्थबोध के रूप में स्पष्ट करती है।

---

1 त्रिशंकु, पृ.सं.66

2 वही , पृ.सं.77

4 वही, पृ.सं.78-79

कहने के लिए या बोलने के लिए हमारा भारत आधुनिक समाज है। लेकिन सच पूछा जाय तो अभी भी पुरातन संस्कारों को नहीं छोड़नेवाला आधुनिक समाज है। भारतीय समाज की चार प्रमुख समस्याओं-स्त्री समस्या, छुआछूत हिन्दू-मुस्लिम समस्या और किसान समस्या आदि हैं। जिस दौर से प्रेमचंद ने लिखना शुरू किया था, उस वक्त भारतीय स्त्रियाँ दोहरी गुलामी झेल रही थी। वे मानते हैं कि स्त्रियाँ गुलाम हैं, इसलिए शोषित भी हैं और कई अन्य किस्म की समस्याओं के दलदल में धंसी हैं। वे इस तथ्य से भलीभाँति परिचित थे कि "आधी आबादी" को दरकिनार कर भारतीय समाज का विकास संभव नहीं है। इसलिए प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में स्त्री से जुड़ी विधवा समस्या, विधवा विवाह, बेमेल विवाह, तलाक की समस्या, वेश्या समस्या आदि पर काफी प्रकाश डाला और कुछ रचनाओं में इससे मुक्ति का रास्ता भी बताया। स्त्री की तमाम समस्याओं के लिए उन्होंने व्यवस्था और पुरूष को जिम्मेदार ठहराया है।

प्रेमचंद के लेखन पर गांधीवादी विचारों का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। गांधीवाद के प्रभाव का ही नतीजा था कि वे भी महात्मा गांधी और प्रेमचंद दोनों को दलित प्रेम तथा छुआछूत विरोध के मुद्दे पर जोड़ने की कोशिश करते हैं। गांधी राजनीतिक आंदोलन से तो प्रेमचंद साहित्यिक लेखन से भारत की इस सबसे बड़ी समस्या के खिलाफ बिगुल बजा रहे थे। महात्मा गांधी ने कहा था - "अस्पृश्यता या छुआछूत अगर हिन्दू धर्म में हो तो मुझे कहना पड़ेगा कि इसमें शैतानियत भरी हुई है। वह धर्म नहीं है जब तक प्रत्येक हिन्दू अपने चमार-भंगी आदि भाइयों को भी अपने सगे भाइयों की तरह हिन्दू नहीं समझेंगे, तब तक मैं उन्हें हिन्दू नहीं समझूंगा।" ठीक उन्हीं दिनों प्रेमचंद साहित्य के मार्फत लोगों को बता रहे थे - "क्या मंदिरों के पुजारियों और मठों के महंतों से हिन्दू जाति बनी हुई है। अगर आपके देवता ऐसे निर्बल हैं कि दूसरों के स्पर्श से ही अपवित्र हो जाते हैं तो उन्हें देवता कहना ही मिथ्या है। देवता वह है जिसके सम्मुख जाते ही

चांडाल भी पवित्र हो जाए।" इन उद्धरणों को प्रस्तुत करते हुए जितेन्द्र जी ने ठीक ही लिखा है कि प्रेमचन्द के समय में इस तरह का विचार व्यक्त करना बड़े कलेजे की बात थी। उन्होंने जिस गंभीरता से लिखा और लिखने का परिणाम झेला, उससे यह बात साफ हो जाती है कि वे इस मसले को लेकर भीतर तक उद्वेलित थे।

मनुष्य जीवन की यह विडंबना है कि ज्यों-ज्यों मनुष्य अपने भौतिक विकास की ओर बढ़ता है त्यों-त्यों वह समता और बंधुता के अपने नैसर्गिक मूल्यों को खोता जाता है। भौतिक विकास के लिए वह संस्थाएँ बनाता है और ये संस्थाएँ उसकी नैसर्गिक आकांक्षाओं को कुचलती जाती हैं। इसके विपरीत साहित्य-कलाएँ उसकी नैसर्गिक आकांक्षाओं को पोषित करती हैं तथा उन्हें कुचले जाने से बचाती हैं।

दलित समुदाय पर एक और दिलचस्प प्रसंग है। कभी किसी दलित के पास मोटर देखकर लोगों की यह छींटाकशी सुनने में आती है - मोटर पर चलते हैं, दलित किधर से है? धारणा कुछ ऐसी बन चुकी है कि दलित है तो उसे किसी चीज का शौक नहीं होना चाहिए। वह मुर्गा खाता न दिखे, मरे पशु का मांस या जूठन खाता दिखना चाहिए। उसे फटे कपड़ों में नंगे पैर दिखना चाहिए। यह बात सही है कि देश में बेपनाह गरीबी है। लेकिन इस आर्थिक प्रश्न से छोटा नहीं है सांस्कृतिक अस्मिता का सवाल। हजारों बरस के इतिहास में दलित संस्कृति का नामोनिशान इस धरती से मिटा दिया गया। ब्राह्मण ने दलित को अपमानित करने के लिए उसके बोध वृक्ष तक को कटवा कर जलवाया। जहाँ सूर्य मंदिर से लेकर मीनाक्षीपुरम् तक स्वर्ण के हजारों भव्य मंदिर और तीर्थ है, दलित खण्डहरों से संतोष करता रहा है। पश्चिमी सभ्यता जब ये मंदिर देखती है तो सीना सवर्ण का फूलता है। बुद्ध के निशानों के बाद पेरियर, फुले, साहूजी या आंबेडकर के ऐसे कौन से निशान नागपुर दीक्षा स्थली के अलावा है जिन्हें देखकर दलित रोटी का सुख नहीं तो सम्मान का सुख तो उठाए।

आजकल के आधुनिक समाज में भी अछूतों के प्रति कम भावना अभी भी है। अगर दलित राष्ट्रपति हुआ यह बड़ी कृपा की बात थी। पर वह प्रधानमंत्री बने इसका विरोध करने में कड़ी चोटी का जोर लगा दिया जाएगा। इसका प्रत्यक्ष रूप मन्नू भण्डारी के "महाभोज" नामक उपन्यास में देख सकते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में गाँव के उच्च जाति के बड़े-बड़े नेता लोग हरिजनों के साथ अन्याय और अत्याचार करते हैं। उस अत्याचार को रोकने के लिए बिसेसुर नामक एक हरिजन युवक इस अन्याय के खिलाफ लड़ना चाहता है। थोडा बहुत शहर में पढ़कर अपने गाँव का उद्धार करना चाहता है। लेकिन इन बड़े-बड़े नेताओं को बिसेसर का व्यवहार बिलकुल पसंद नहीं है क्योंकि बिसेसुर हरिजन युवक होने के नाते इसकी बातें कोई नहीं मानता है और अन्त में बिसेसर की हत्या की जाती है। इसका सामाजिक यथार्थ मन्नू भण्डारी प्रस्तुत उपन्यास में दा-साहब नामक पात्र के द्वारा स्पष्ट करती है- "इसमें जद की क्या बात हुई दा-साहब। इन हरिजनों के बाप-दादा हमारे बाप दादा के सामने सिर झुकाकर रहते थे। झुके-झुके पीठ कमान की तरह टेढ़ी हो जाती थी। और ये ससुरे सीना तानकर आँख में आँख गड़ा कर बात करते हैं - बरदाश्त नहीं होता हमसे।"[1]

इस प्रकार जाति भेद के भाव को देख सकते हैं। नीच जाति के लोगों का शोषण किया जाता है। शायद इस शोषण के कारण, बिसू की हत्या की जाती है। गाँववालों के मन में बिसू एक भगवान के समान है। जाति नाम के साथ-साथ किसानों का जमींदारों के द्वारा शोषण किया जाता है। इस प्रकार के सामाजिक शोषण को रोकने के लिए बिसू ने बहुत कोशिश की थी मगर वह कोशिश, कोशिश ही रह गया समाज में बड़े-बड़े नेता अन्याय को रोकने के लिए सच्चाई के मार्ग पर चलनेवाले ये ही लोग बिसू की हत्या करवाते हैं। सुकुल बाबू "महाभोज" उपन्यास के विरोधी दल के पात्र है। बिसू की मौत के बारे में सुकुलबाबू ने अपना दुःख प्रकट करते हुए इस प्रकार कहा- "बात केवल बिसू की मौत की नहीं है....... यह आप सब लोगों के जिन्दा रहने का सवाल है.......अपने

---

1 महाभोज, पृ.सं. 146

पूरे हक के साथ जिन्दा रहने का। यह मौत कुछ हरिजनों की या एक बिसू की नहीं.......आपके जिन्दा रहने के हक की मौत है। आपका यह हक जरा-से स्वार्थ के लिए गाँव के धनी किसानों के हाथ बेच दिया गया है......और यही हक मुझे आपको वापस दिलवाना है। जुलुम ने आप लोगों के हौसले तोड़ दिये हैं, इसलिए मैं लड़ूँगा आपकी यह लड़ाई।......आखिरी दम तक लड़ूँगा। आप लोग साथ देंगे तो भी.....नहीं देंगे तो भी.......।"[1]

इस प्रकार सुकुलबाबू नाटकीय रूप से लोगों में विश्वास दिलाने का प्रयास करते है। राजनीति क्षेत्र में ज्ञान होने पर भी सुकुलबाबू में अंधविश्वास की भावना मन्नू भण्डारी इस प्रकार दर्शाती है - ज्योतिष पर अनंत विश्वास है सुकुल को। तरह-तरह के नगजड़ी हुई चार बड़ी अंगूठियाँ पहन रखी हैं। गले और बाजू में गंडे-तावीज भी बँध हुए मिल जायेंगे। नीलम तो अभी पिछले महीने ही पहना। पहले भी किसी ने पहनकर आज़माने को कहा था, पर हिम्मत ही नहीं पड़ी। बड़े तेज मिज़ाज वाला पत्थर है नीलम।"[2]

राजनीति क्षेत्र में भी अंधविश्वास देखने को मिलता है। समाज में अंधविश्वास एक हिस्सा बन गया है। चाहे वह उच्चवर्ग हो मध्यवर्ग या नीचवर्ग हर एक वर्ग में अंधविश्वास एक महामारी के रूप में फैल गया है।

गाँव सरोहा में विधानसभा की एक सीट के लिए उपचुनाव होता है, जिसमें दो विरोधी शक्तियाँ अपनी शक्ति बनाए रखने के लिए कमर कस रही हैं। एक ओर वर्तमान मुख्यमंत्री दा साहब का उम्मीदवार लखनसिंह है तो दूसरी तरफ भूतपूर्व मुख्यमंत्री सुकुल बाबू। सुकुलबाबू इस उपचुनाव में विजयी होकर अपनी खोई हुई सत्ता प्राप्त करना चाहते है, जबकि दा-साहब सुकुलबाबू की जीत को अपने मंत्रिमंडल के लिए खतरा समझते हैं। इन दो दलों के माध्यम से ही बिसू की मौत होती है। इस मौत को लेकर ये दो विरोधी दल जनता में विश्वास दिलाने और गरीब जनता से वोट माँगने का प्रयास करते हैं। बिसू को इन्हीं लोगों ने मार

---

1 महाभोज, पृ.सं. 30-31

2 वही, पृ.सं. 24

डाला इस विषय को पूरे गाँव की जनता जानती है मगर ये दोनों नेताओं ने गाँव के लोगों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए प्रयास करते हैं और मुख्यमंत्री दा-साहब उच्चस्तरीय जाँच का ऐलान करते हैं, जबकि गाँव के लोग जानते हैं कि बिसू की हत्या जोरावरसिंह ने करवाई है। उसे जहर देकर मारा गया है। मुख्यमंत्री की छाया में पला जोरावर इस घटना को हत्या के बदले आत्महत्या में बदलने में सफल हो जाता है। इतना सब कुछ जानने पर भी उच्चस्तरीय जाँच के लिए एस.पी. सक्सेना गाँव में आते हैं लेकिन डी.आइ.जी. सिन्हा ने तो पहले ही रिपोर्ट तैयार कर ली है कि बिसू ने आत्महत्या की है। और अंत में बेकसूर बिसू के मित्र बिंदा को जबरदस्ती हत्यारों के रूप में चित्रित करके बिन्दा को गिरफतार किया जाता है।

दा-साहब के शांतस्वभाव के बारे में मन्नू भण्डारी इस प्रकार दर्शाती है - "शहर के सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति दा-साहब अपने निजी कमरे के एक कोने में अकेले बैठे हैं - मौन, गम्भीर, कुछ-कुछ चिन्तित और परेशान भी। पर चिन्ता है कि उसके कोई आसार बाहर नहीं है। चेहरे की सौम्यता ने उसे भीतर ही ठेल रखा है। फिर भी इतना जरूर लग रहा है कि गहरे में डूबे हुए हैं। हाँ, बीच-बीच में फोन की घंटी बजती है तो कुछ क्षणों को उबर आते हैं। पर बात में कहीं कोई हड़बड़ी या परेशानी नहीं। वही उनका अपना खास अन्दाज-कम शब्द, सधी आवाज। बात को अपने से, अपने मन से होने वाली उथल-पुथल से काटकर भी किया जा सकता है - यह गुर कोई दा साहब से सीखे। सीखना चाहे तो इतनी विशेषताएँ हैं दा-साहब में कि सीखने वाला मजे में पूरी जिन्दगी खपा सकता है। पर आज के इस हाय-हाय वाले जमाने में किसके पास रखा है इतना धैर्य! तभी तो कोई छाया तक नहीं छू सकता है उनकी।"[1]

इस प्रकार दा-साहब बड़ी-बड़ी समस्या को बहुत शांत स्वभाव के साथ निपटाते हैं वे चाहे तो वह किसी की हत्या भी कर सकते हैं या और कुछ भी कर

---

1 महाभोज, पृ.सं.

सकते है । इस प्रकार के स्वभाववाले लोग को बहुत आसानी के साथ अन्याय कर सकते हैं। सच्चे मन से देश की सेवा और गरीबों की सहायता करने के बदले, गरीब और मासूम गाँववालों को कठपुतली बनाकर नचाने की चेष्टा इन नेताओं की मुख्य प्रवृत्ति बन गई है। एक बार कुर्सी प्राप्त करने के बाद यानी कि सत्ता हाथ में आने के बाद रूपयों से और अधिकार से देश के बड़े-बड़े मिल-मालिकों को शिक्षामंत्रियों को पुलिस अफसरों को, वकीलों को पत्रकारों को और डाक्टरों को खरीदकर अपने घर का पालतू कुत्ता बनाते हैं। समाज-सेवा करने के बदले लोगों के साथ अन्याय कर बैठते हैं। इसका प्रत्यक्ष रूप मन्नू भण्डारी "महाभोज" उपन्यास में पत्रकार और पुलिस अफसरों के माध्यम से दर्शाती है । "मशाल" के संपादक दत्ता बाबू सत्तारूढ़ पार्टी के गुणगान गाने में लग जाते हैं तो उन्हें अनेक सरकारी सुविधाएँ मिलने लगती हैं। दा-साहब के इशारों से ही पत्र का रंग बदल गया है इस खुशी को दा-साहब अपनी पत्नी जमुना बहन के साथ बैठकर इस प्रकार चर्चा करते है - "हूँ! मुस्कराये दा-साहब पत्नी की समझ पर थोड़ा प्रसन्न भी हुए, कोई एक महीने पहले ही बुलाकर समझाया होगा इसके संपादक को, और अखबार का रंग ही बदल गया। कमी नहीं है समझदार लोगों की, बस सही ढंग से दिशा-निर्देश करनेवाला कोई नहीं। "और इस वाक्य के साथ ही मन अखबार से छिटककर एकाएक देश के साथ जुड़ गया- "देश की दुरवस्था का सबसे बड़ा कारण ही है - सही नेतृत्व का अभाव छात्रों को देखो - युवकों को देखो - किसान-मजदूरों को देखो, सब-के-सब दिशाहीन से भटक रहे हैं- कोई दिशा दिखानेवाला ही नहीं।"[1] और आगे दा-साहब लखनसिंह से पत्रकार के बारे में इस प्रकार कहते हैं - अखबारों को तो आजाद रहना ही चाहिए। वे ही तो हमारे कामों का, हमारी बातों का असली दर्पण होते हैं मेरा तो उसूल है कि दर्पण को धुँधला मत होने दो। हाँ, अपनी छवि देखने का साहब होना चाहिए आदमी में। बड़ी हिम्मत और बूता चाहिए उसके लिए। इससे जो कतराता है, वह दूसरे को नहीं, अपने को ही छलता है।" "कैसे-कैसे संपादकीय

---

1 महाभोज, पृ.सं. 147

छापे थे, कैसी-कैसी तस्वीरें छापी थीं उस आगजनी की घटना की! और अब क्या चुप रह जायेंगे? आने दीजिए उनका अगला अंक। देखिए, क्या सनसनीखोज बनकर आती है सारी बात!"[1]

इस प्रकार दा-साहब बिना आवेश के साथ अपने मन की बातों को स्पष्ट करते है। और समाज यानी की जनता की रक्षा करने वाले पुलीस वर्ग के बारे में मन्नू भण्डारी दा-साहब, पात्र के द्वारा इस प्रकार स्पष्ट करती है - "यह मत भूलो कि पुलिस और कानून के हाथ बहुत लम्बे होते हैं और आँखें काफी तेज। न देखें तो हाथी तक को न देखें, पर उतर आयें तो फिर चींटी तक भी नहीं बच सकती - न नजर से, न गिरफ़्त से।"[2]

दा-साहब के विरोध में कोई बात करें तो ऐसे लोगों को कहीं न कहीं अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष रूप में सजा मिलेगी। उच्चस्तरीय जाँ च के लिए एस.पी. सक्सेना गाँव के जोगेसर साहू, महेश शर्मा, हीरा, बिंदा आदि के बयानों के पश्चात् सक्सेना इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि बिसू ने आत्महत्या नहीं की है, जरूर उसकी हत्या कर दी गई है। इसका प्रतिफल मन्नू भण्डारी एस.पी. सक्सेना पात्र के द्वारा इस प्रकार दर्शाती है - "अपने सस्पेंशन का आर्डर पढ़ने के बाद भी जैसे कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई सक्सेना के मन में - न दुःख की, न पश्चात्ताप की!"[3]

पर दा-साहब के संकेतों पर चलनेवाले डी.आई.जी. सिन्हा को आई.जी. बना दिया जाता है। न्याय को अन्याय के रूप में बदलने की साहस डी.आई.जी पात्र के द्वारा मन्नू भण्डारी इस प्रकार यथार्थ को स्थापित करती है - "बहुत गौर से सारे केस को देख चुका हूँ मैं, और रिपोर्ट भी करीब-करीब तैयार ही है - इट्स ए क्लीयर केस आफ सुसाइड। आप यह रिपोर्ट देख जीलिए, कोई छोटा-मोटा चेंज करना हो तो कर दीजिए। वैसे खास जरूरत नहीं पड़ेगी। लेकिन बयान

---

1 महाभोज, पृ.सं. 15-16

2 वही, पृ.सं. 138

2 वही, पृ.सं. 156

सबके लीजिए और पूरे लीजिए। गाँववालों को पूरी तरह तसल्ली हो जानी चाहिए कि बात अनकही नहीं रही। तो सारा उत्साह बुझ गया था सक्सेना का! जब रिपोर्ट तैयार ही है तो फिर जाकर उन्हें करना ही क्या है। मात्र ब्लौटिंग - पेपर की तरह लोगों की कही बातें सोखकर ले जाना है। वह भी इस तरह की निष्कर्ष निकाले-इट्स ए क्लीयर केस ऑफ सुसाइड।"[1]

एस.पी.सक्सेना, डी.आई.जी. सिन्हा के इस रिपोर्ट को देखकर आश्चर्य चकित हो जाता है और सक्सेना, डी.आई.जी से इस प्रकार कहता हैं - "ओह, नो सर! यह हो नहीं सकता। यह सरासर गलत है। मैंने इस केस का रेशा-रेशा उधेड़कर देखा है। मैं........।"[2] और इस केस को और भी मजबूत करने के लिए डाक्टरी रिपोर्ट भी है। लेकिन वास्तविक रूप में देखा जाय तो डाक्टर की तुलना भगवान से की जाती है क्योंकि डाक्टर होने के नाते दूसरे "प्राण" मानव को बचाने के लिए अंतिम क्षण तक प्रयास करता है। इस महाभोज उपन्यास के द्वारा मन्नू भण्डारी दा-साहब की अन्याय को हमारे आँखों के सामने रखने के लिए इस प्रकार कोशिश करती है - "डाक्टरी रिपोर्ट में जिस जहर की बात है, यह दस-बारह घंटे बाद असर करनेवाला है। वह जहर इस खाने के साथ ही पहुँचा है बिसू के पेट में।"[3]

दूसरी ओर देखा जाय तो, शिक्षा के माध्यम से भावी-पीढ़ी लोगों में चेतना लाना हर एक का कर्तव्य है ज्यादा-से-ज्यादा शिक्षा मंत्री के द्वारा नवयुवकों को सत्तामार्ग चला सकते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में शिक्षा-मंत्री त्रिलोचन सिंह दा-साहब की बात न सुनने से उस पद को रावत के नाम पर दिलाने की सूचना करते हुए दा-साहब, रावत से इस प्रकार कहता है - "शिक्षा मंत्री का पद खाली हो रहा है। रावत, तुम सँभालो इस भार को। लोचन ने वैसे भी कोई सन्तोषजनक काम किया नहीं इस क्षेत्र में। मेरे हिसाब में सबसे महत्वपूर्ण है यह पद - भावी पीढ़ी का

---

1 महाभोज, पृ.सं.111

2 वही, पृ.सं.156

3 वही, पृ.सं.157

निर्माण करने का सारा दायित्व इसी मंत्रालय पर है। स्वीकारो इस चुनौती को।"[1]

दा-साहब गरीबों के प्रति सहानुभूति दिखाने के लिए जनता के सामने एक अच्छा नाटक करते हुए इस प्रकार कहते है - "कितना बड़ा सपना था बापू का हमारा हर गाँव और हर ग्रामीण आर्थिक रूप से स्वतंत्र बने......समर्थ बने। आज इस सपने की दिशा में पहला कदम बढ़ाया है, पर पूरा तो यह आप लोगों की मदद........आप लोगों के सहयोग से ही होगा। मैंने पहल कर दी.......पूरा आप कीजिए।"[2] और आगे गरीब के बारे में सुकुलबाबू इस प्रकार कहने लगता है - "रहने दीजिए! इन लोगों को आज एक पैसे का फायदा दिखायी दे तो कल के लिए पूरी जिंदगी गिरवी रख देंगे अपनी। ये करेंगे क्रान्ति !"[3]

इस प्रकार मन्नू भण्डारी सत्ता हाथ में आने के बाद और कुर्सी को प्राप्त करने के लिए जनता की सेवा करना, देश की रक्षा करना किस प्रकार भूलकर धन और अधिकार के साथ बड़े-बड़े अफसरों को खरीदकर अपने हाथ की कटपुतली बनाने की चेष्टा यथार्थ धरातल पर दर्शाती है।

आधुनिकता बोध के नाम पर आज विभिन्न कोणों से अनेक समसामयिक समस्याएँ उठाई जा रही है, जिनमें प्रमुखता स्त्री-पुरुष के उन जटिल और उलझावपूर्ण संबंधों को, मिल रही है जो संदर्भ में विकसित हो रहे हैं। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि हर युग का साहित्य अपने समय के तापमान को

---

1 महाभोज, पृ.सं.135

2 वही, पृ.सं. 68-69

3 वही, पृ.सं. 75

अंकित करने का प्रयत्न करता है। मन्नूभण्डारी का "आपका बंटी" इस नकली आधुनिकता से दूर आज की महानगरीय जिन्दगी के एक पहलू की तीखी वास्ताविकता का सही बोध कराने वाला उपन्यास है। लेखिका ने तलाकशुदा पति-पत्नी और उनकी सन्तान को केन्द्र में रख कर उसके चारों ओर की स्थितियों का ऐसा जाल बुना है और उसकी वास्तविकता का ऐसा चित्र खींचा है जो संवेदनशील और विचारशील पाठक को झकझोर देने की शक्ति रखता है। बंटी एक ऐसे माता पिता की सन्तान हैं, जो एक दूसरे से अलग होने का फैसला कर चुके हैं। उसकी माँ शकुन किसी कॉलेज की प्रिंसिपल है और बंटी माँ के ही साथ रहता है। कुछ दिनों के अन्तराल में शकुन और बंटी के पिता बत्रा कानूनी रुप से तलाक ही नहीं ले लेते, दोनों अलग अलग विवाह भी कर लेते हैं। बंटी इस सारी स्थिति के बीच "शट्ल कॉक" की तरह मार खाता रहता है। मन्नूभण्डारी को इस बीच के बंटी की मानसिकता को प्रस्तुत करने में अद् भुत सफलता मिली है। बंटी हमारे सामने आधुनिक युग के लिए एक चुनौती बन कर खड़ा है। वह हमसे अपनी स्थिति के लिए जवाब माँग रहा है, और हम शायद जवाब देने में बिलकुल असमर्थ है।

सामाजिक यथार्थबोध का यह भी एक कारण है कि इस समाज में एक दूसरे की मदद करने के बजाय बुराईयाँ ही ज्यादा करता है। मन्नूभण्डारी के "आपका बंटी" उपन्यास में ज्यादातर पति-पत्नी के बीच के तनाव और बच्चों की मानसिकता देखने को मिलती है। प्रस्तुत उपन्यास मनोवैज्ञानिक उपन्यास होते हुए

भी सामाजिक उपन्यास भी कहा जाता है। लेकिन बहुत कम घटनाओं के द्वारा मन्नुभण्डारी ने सामाजिकता को दिखाने की चेष्टा की है।

मध्यवर्गीय सामाजिक चेतना को आधार बनाकर चलते हुए विवेच्य उपन्यास की कथावस्तु के पात्र आन्तरिक एवं बाह्य व्यक्तित्व की दृष्टि से अपने आप में पूर्ण हैं। अजय, शकुन एवं डॉ. जोशी आदि पूर्ण शिक्षित पात्र हैं जो आन्तरिक एवं बाह्य दृष्टि से व्यक्तित्व के धनी हैं। उनमें बौद्धिक एवं चारित्रिक गुण विद्यमान हैं। बंटी अवस्थानुरुप चिन्तनशील है। उपन्यास में प्रमुखता: "बंटी" जोकि मध्यवर्ती अथवा केन्द्रीय पात्र है, इस के अतिरिक्त शकुन, अजय, फूफी, डॉ. जोशी, वकील चाचा आदि का सम्बल लेकर उपन्यास का सृजन किया गया है। जोत, अमि, टीटू, कुन्नी, विभू, कैलाश एवं दीपक आदि बंटी के समवयस्क बाल - चरित्र हैं। मीरा, माली, हीरालाल, बंशीलाल एवं दीपा आंटी की अति संक्षिप्त किन्तु महत्वपूर्ण भूमिकाएँ हैं।

भारतीय विवाह को संस्था में कुछ बुराईयाँ है और अच्छाईयाँ भी है। सच पूछा जाय तो भारतीय नारी की दशा बहुत दयनीय है क्योंकि नारी के जीवन में विवाह के बाद अच्छा पति मिलने से उस पति के साथ खुशी से जीवन बिता सकती है। लेकिन विवाह के बाद पति - पत्नी दोनों में किसी कारण वैवाह्कि जीवन में दरार उत्पन्न होने से एक प्रकार की मानसिक कुंठा उत्पन्न हो जाती है। प्रस्तुत उपन्यास में शकुन और अजय पति - पत्नी हैं इन दोनों का एकमात्र बेटा बंटी है। अपने - अपने अंह के कारण एक दूसरों के साथ एडजेस्ट नहीं हो पाता है। पति - पत्नी के बीच में बंटी एक खिलौना बन जाता है। इस प्रकार टूटे हुए परिवार को भारतीय समाज में सम्मान नहीं मिलता है और वैसे भी एक नारी दूसरी नारी के लिए दुश्मन बनना सहज है। इस सहज यथार्थ को मन्नूभण्डारी प्रस्तुत उपन्यास में बंटी के साथ शकुन के पडोसिन का व्यवहार को इस प्रकार [1] दर्शाती है - "आ गये बंटी। छुट्टी के दिन तो तुम्हारा सूरज भी इसी घर में उगता

---

1 आपका बंटी, पृ. 13

है और इसी घर में डूबता है।"[1] और उसी पडोसिन की बेटा टीटू भी बंटी से इस प्रकार कहता है - " तेरे ममी-पापा में तलाक जो हो गया है।"[2] बंटी को तलाक माने क्या होता है उसके प्रति उसका ज्ञान शून्य है लेकिन इस प्रकार की बातों को समाज की ओर से सुनना पड़ता है।

जब शकु न डॉ. जोशी से शादी करना चाहती है तो वह बात पहले ही पडोसिन को पता चलती है पडोसिन, शकुन से इस प्रकार पूछने लगती है - "क्या बताऊ भैनजी, पडोस में रहकर भी कभी आना नहीं होता। दोपहर को घंटा - आध घंटा निकल भी जाए, पर सबेरे शाम को तो पलक झपकने तक को फुरसत नहीं मिलता"।[3] और आगे सीधे यह बात शकुन से पूछती है - नहीं भैनजी! मैं तो पीकर आई हूँ। और यों सच पूछो तो आज तो मिठाई खाने आई हूँ। मुझे तो कल रात को ही इन्होंने आकर खुशखबरी सुनाई। बोले, तुम जाकर बधाई तो दे आओ। यों आना-जाना चाहे बच्चों तक ही है फिर भी पड़ोसी तो है ही!"[4] इस प्रकार पड़ोसिन अपने मन की बातें पूछने के बाद फिर शकुन से कहती है- "मेरी तो भैनजी, आप जानो दूसरों के बारे में ताक-झांक करने की आदत ही नहीं है। अब पड़ोस में रहते हैं तो दिखता तों सभी कुछ है, पर इधर-उधर पूछताछ करूँ, कुछ कहूँ-सुनूँ ऐसा मेरा स्वभाव ही नहीं। फिर आप पढ़ी-लिखी ठहरी, प्रिंसिपाल ठहरी, सो तरह-तरह के लोग आएँगे ही आपके पास।"[5]

मन्नू भण्डारी फूफी के द्वारा भी दूसरे विवाह प्रस्ताव के बारे में इस प्रकार दर्शाती है- "जवानी यों ही अन्धी होती है बहूजी, फिर बुढ़ापे में उठी हुई जवानी। महासत्यानाशी! साहब ने जो किया तो आपकी मट्टी-पलीद हुई और अब आप जो कर रही हैं, इस बच्चे की मट्टी-पलीद होगी। चेहरा देखा है बच्चे का? कैसा निकल आया है, जैसे रात-दिन घुलता रहता भीतर ही भीतर।"[6]

---

1 आपका बंटी, पृ. 13
2 वही, पृ. 14
3 वही, पृ. 126
4 वही, पृ. 126
5 वही, पृ. 126
6 वही, पृ. 129

इस प्रकार मन्नू भण्डारी ने नारी-मनोविज्ञान का ज्यादा सहारा लेकर भारतीय संस्कृति और अंतर्राष्ट्रीय संपर्कों की संस्कृति में विकसित भारतीय पति-पत्नी के बदलते-टूटते संबंधों के बीच से आधुनिक नारी के जीवन के कुछ ऐसे पक्षों को पहचानने की कोशिश की है जो एकदम नये लगते हैं और जिनसे सामाजिक संदर्भों में आज के मानवीय संबंधों के कुछ विशिष्ट एवं नये आयाम अन्वेषित हो सके हैं।

मन्नू भण्डारी ने "एक इंच मुस्कान" में सामाजिक चिन्ताओं और सरोकारों को भी दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया है, अपितु प्रेम-कथा के पारंपरिक त्रिकोण के मध्य भी सामाजिक सवालों से जूझने की चेष्टा की है। प्रेम की समाज-बाह्य स्थिति को स्वीकृति नहीं दी जा सकती अपितु व्यक्ति के पारिवारिक-सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही प्रेम पल्लवित हो सकता है। विवेच्य उपन्यास व्यक्ति-स्वातन्त्र्य, नारी-स्वातंत्र्य की दृष्टि को केन्द्र में रखकर एक अत्यंत प्रबुद्ध सुशिक्षित नारी के माध्यम से आधुनिक जीवन-स्थितियों और तीव्र द्वंद्व से निकलकर रंजना और अमला तक पहुँच गयी है।

व्यक्ति-मानव की प्रतिष्ठा के साथ ही उपन्यास अस्तित्व में आता है क्योंकि उसका उद्भव ऐसे ही समाज में संभव था जहाँ व्यक्तिवादी विचारों का उदय हो चुका हो। और शुरू से ही वह सामाजिक परिवर्तन का प्रतिबिम्ब, आलोचनाप्रवृत्त और अक्सर अग्रगामी चेतना का वाहक रहा हो।

उपन्यास मनुष्य की स्वतंत्रता को प्रकट करता है या मनुष्य का अवमूल्यन करता है- इसका निर्णय बहुत सरलता से नहीं किया जा सकता। अनेक बार जिन उपन्यासों में मनुष्य संत्रस्त और विवश है, रचनाकार की यथार्थ विषयक तीव्र चेतना के कारण उनमें हम वर्तमान की चुनौतियों को पाते हैं और इस कारण वे कृतियाँ हमारी होती हैं।

प्रेम-कथा को सामाजिक आयाम देते हुए इसी स्तर पर भारतीय समाज के स्त्री और पुरूष के लिए बनाये गये दुहरे पैमानों को चुनौती ही नहीं देती, पूर्णतः भंजित करती हुई स्त्री-पुरूष संबंधों की पुनर्पड़ताल करती है। कथानक में प्रेम-

कथा के समस्त तत्व और घटक, प्रेम की त्रिकोणात्मक स्थिति, वांछित एकान्त, आदि होते हुए भी यह उपन्यास सामान्य प्रेम-कथानकों के रास्ते नहीं चलता।

प्रस्तुत "एक इंच मुस्कान" नामक उपन्यास सहयोगी उपन्यासों की परम्परा में "ग्यारह सपनों का देश" सशक्त रचना होते हुए भी इसे नायक-विहीन उपन्यासों की कड़ी की रचना बिना किसी विवाद के ठहराया जा सकता है। ऐसा होना स्वाभाविक ही था जबकि पुरूष पात्र राजेन्द्र यादव और स्त्री पात्र मन्नू भण्डारी ने सम्भाल रखे थे। संपूर्ण उपन्यास अमर, रंजना और अमला के अपने-अपने अंह और अपने-अपने व्यक्तित्व को एक दूसरे से भिन्न एक टक दिखाता है, जिसकी परिणति टूटन है। इस टूटन में जहां गहरी उदासी है वहीं उस उदासी पर एक इंच मुस्कान की खोखल उसे और भी गहरा देती है। त्रिकोण के चौखटे में तीव्र और विस्फोटक संबंधों की अति तब देखी जाती है जब अमर एक साथ दो स्त्रीयों की ओर आकर्षित होता हैं, रंजना, जिसे वह कालेज के दिनों से जानता और प्रेम करता है। अमर के अनुरोध पर वह अपने घरवालों को छोड़कर उसी नगर में आ जाती है जहाँ अमर रहता है। दूसरी ओर अमला, धनी पिता की पुत्री, अपने पति द्वारा परित्यकता, अमर की रचनाओं की प्रशंसक। रंजना उसे विवाह के लिए प्रेरित करती है, अमला उसे महान लेखक के रूप में देखना चाहती है और उसे विवाह करने को मना करती है जबकि कहीं अवचेतन में वह उससे बंध होती है। अमर को अमला की ही बात अच्छी लगती है किन्तु परिस्थितिवश उसे रंजना से शादी भी करनी पड़ती है, जिस का परिणाम वैवाहिक जीवन में अशांति होता है। वे अलग भी रहने लगते हैं, पर रंजना गर्भवती है इसलिए वह फिर साथ रहने का प्रयास करते हैं। किंतु अमर रंजना को गर्भपात गिराने के लिए मजबूर करता है, इससे दोनों के बीच दरार और बढ़ जाती है। अंत में रंजना किसी दूसरे शहर में नौकरी करने चली जाती है। उधर अमला के जीवन में भी परिवर्तन होते है। वह अपने वर्ग और परिवेश से कटती जाती है। अन्त में पुरी के एक होटल में अमर और अमला की फिर भेंट होती है। पर दोनों इतने बदल गये होते है कि एक दूसरे को ग्रहण नहीं कर पाते। इस संपूर्ण स्थिति में कोई एक

नया तत्व है, जो आधुनिक जीवन, उसके बदलते हुए दबावों और तनावों तथा उनकी परिस्थितियों के सूचक है।

आधुनिक समाज इन बंधनों को तोड़ने की प्रयास करते हुए मन्नू भण्डारी "एक इंच मुस्कान" नामक उपन्यास के पात्रों के द्वारा स्वतंत्र जीवन का चित्रण किया है। हमारे समाज में जिस तरह छुआछूत की भावना फैला हुई है उसी प्रकार अमीर, गरीब और मध्यवर्ग की भेदभाव भी है। लेखिका उच्च और मध्यवर्ग को लेकर प्रस्तुत उपन्यास में अमला कैलाश और अमर के द्वारा स्पष्ट किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में अमला और कैलाश धनिक वर्ग के लोग हैं। अमला पति के द्वारा परित्यकता नारी है। मगर कैलाश अमला से शादी करना चाहता है। क्योंकि कैलाश में अमला के प्रति प्यार से ज्यादा धन के प्रति अपेक्षा है। और वैसे ही कैलाश अनेक स्त्री मित्रों से संबंध रखता है एकबार कैलाश अपने घर आये हुए एक स्त्री के साथ किस प्रकार व्यवहार करता है। उस व्यवहार को मन्नू भण्डारी इस प्रकार स्पष्ट करती है - "एक साल पहले ही जब डाक्टर गुप्ता की साली बम्बई से आई थी तो कैलाश उचित-अनुचित का विवेक खोकर उसके पीछे घूमा था।"[1] इस लडकी के साथ इतना सब कुछ करने के बाद भी अमला से ही अमर शादी करना चाहता है। क्योंकि अमला के पास धन है। लेकिन अमला को यह सब कुछ पसंद नहीं है। लेखिका अमला की व्यक्तित्व को इस प्रकार स्पष्ट करती है- "कोई मुझे प्यार करें........ मेरे व्यक्तित्व को, मेरे अस्तित्व को, मेरी हर बुरी-अच्छी चीज को.....।"[2]

इससे यह पता चलता है कि अमला धन से भी ज्यादा व्यक्तित्व को ज्यादा प्रमुखता देती है।

एक जगह लेखिका वर्तमान सभ्यता और संस्कृति को लेकर अपने विचार अपार धनी और विलासी जीवन व्यतीत करनेवाले कैलाश के माध्यम से यों प्रकाश डालती है....."सिनेमा, पार्टी, नाच, कैबरे, पीना, पिलाना ये सब उसके

---

1 एक इंच मुस्कान, पृ.सं. 80

2 वही, पृ.सं. 81

व्यक्तित्व का एक बहुत बड़ा भाग बन चुके हैं। और मुझे इन सब में अरूचि होते अब नफरत हो चली है। जब कैबरे आर्टिस्ट पुरूषों की हजारों, लोलुप, भूखी लपलपाती आँखों के बीच नग्न प्रायः खड़ी होती है तो पता नहीं क्यों, मुझे लगता है जैसे किसी ने मुझे ही नंगा करके खड़ा कर दिया है। पाप-पुण्य मैं नहीं मानती, मर्यादाओं और सीमाओं को भी मैंने कभी महत्व नहीं दिया, पर किसी की मजबूरी का यों फायदा उठाया जाय, यह मुझसे सहन नहीं होता। अपनी इच्छा से, आत्मा की प्रेरणा से कोई कैसी ही बेहयाई करे मैं कभी निंदा या आलोचना नहीं करूँगी पर....."[1]

अमला एक साधारण आदमी के साथ मित्रता करना चाहती है। वह साधारण आदमी अमर है। अमर एक साहित्यकार है। वह मध्यवर्ग की लेखक है। कभी-कभी अमर से साहित्य के बारे में चर्चा भी करती है। एक दिन अमला अमर को अपने घर बुलाती है और अमर को बाहर घुमाने ड्राइवर के साथ कार में जाती है। लोगों के सामने अमला अपने स्टेटस को कम नहीं करना चाहती है। इसलिए अमला अमर के साथ (गाडी) कार में पीछेवाली सीट पर नहीं, ड्राइवर के पास जा कर बैठती है इसका प्रत्यक्ष रूप लेखिका इस प्रकार स्पष्ट करती है- "ड्राइवर ने पीछे वाला दरवाजा खोल लिया। लेकिन अमला सीधी ड्राइवर के पास वाली सामने की सीट पर जा बैठी।"

इस प्रकार अमला अपने स्टेटस को लोगों के सामने कम नहीं करना चाहती है और दूसरी ओर स्वतंत्र रूप से रहने पर भी समाज से डरती है क्योंकि कहीं लोग अमला और अमर को लेकर कुछ कहेंगे। उच्च-मध्यवर्ग के बीच के अंतर को लेखिका इस प्रकार समझाने का प्रयास करती है कि जितना मध्यवर्ग खुलकर बिना मतलब के जीवन बिताता है उतना उच्च वर्ग नहीं कर सकता है बेमतलब कोई किसी के लिए कुछ भी नहीं कर सकते हैं और उच्च वर्ग के लोगों में चाहे दुःख हो या खुशी हो, वह भी साफ-साफ लोगों के सामने खुलकर स्पष्ट नहीं कर पाते हैं क्योंकि समाज में अपने स्टेटस को लेकर डरते हैं। इस प्रकार का भाव

---

1 एक इंच मुस्कान, पृ.सं. 80

उच्च-मध्यवर्ग में भी देख सकते हैं। इस समाज के लोग अपनी-अपनी इच्छाओ से नहीं समाज की इच्छानुसार ही आगे बढ़ना चाहते है। शायद इसका ज्वलंत उदाहरण लेखिका अमर और अमला के माध्यम से स्पष्ट करती है। एक बार अमर जोर से हंसता है तो तुरंत अमला अमर से कहती है- "इतने जोर से नहीं हंसते हैं अमर........।" [1] इस प्रकार हंसी में रोक लगाने की चेष्टा के द्वारा लेखिका बंधे हुए समाज के यथार्थ को हमारे सामने खड़ा करती है।

लेखिका प्रस्तुत उपन्यास में और एक समस्या को स्पष्ट करती है वह है परंपरागत विवाह एवं प्रेम विबाह की तुलना करके विवाह और पारिवारिक जीवन की समस्याएँ। प्रस्तुत उपन्यास में प्रेम-विवाह को महत्व देनेवाला अमर रंजना के साथ विवाह करने के बाद भी सुखी नहीं है क्योंकि वह केवल प्रेम चाहता है, एक बंधन को नहीं। एक समान भाव वाला नारी का साहचर्य उसको अपेक्षित है ताकि वह अपना लेखन कार्य सुचारु रुप से संपन्न कर सके। अमर रंजना के बिना नहीं रह सकता है यह शब्द अमर के मुँह से सुनकर रंजना अपने माँ-बाप और परिवार को छोड़कर अमर के पास दिल्ली आ जाती है। सिर्फ उसके प्रेम के लिए। मगर रंजना के साथ विवाह करने के बाद उसके ऊपर एक बंधन युक्त उत्तरदायित्व आ पड़ता है। ज्यों ही वह प्रेमी से पति बन जाता है अपनी स्थिति उसे अखरने लगती है। यदि वह शादी नहीं करता और रंजना पूर्ववत् उसकी सहचरी ही बनी रहती तो शायद दोनों में सामंजस्य बना रहता। इतना ही नहीं, रंजना के साथ-साथ वह अमला के प्रति भी अनुरक्त है। एक से अधिक नारियों के साथ प्रेम उसी प्रकार की अशांति को पैदा करता है जिस प्रकार की मनहूस अशांति का सामना अमर को करना पड़ा है। दूसरी ओर अमला विवाह को मात्र एक धोखा मानती है। लेखिका अमला की इस भावना को स्थापित करती है। और अमला अमर से इस प्रकार कहती है - "देखते नहीं, विवाह करके भी पिछले दस वर्षों से मैंने उस व्यक्ति की सूरत तक नहीं देखी, और तुमसे बिना विवाह किए भी पिछले इतने वर्षों से घनिष्ठ मित्रता का संबंध निभाती आ रही हूँ - चाहे तो

---

1 एक इंच मुस्कान, पृ. 208

जीवन-भर भी निभा सकती हूँ। और कहो तो आज ही, इसी क्षण सब कुछ तोड़-ताड़कर अलग भी हट सकती हूँ। पर इस सब में विवाह का प्रश्न आता ही कहाँ है? मित्रता के अस्थायित्व-स्थायित्व के लिए विवाह कितना कमज़ोर, निर्बल और निरर्थक आधार है, इस बात की सच्चाई को मुझसे अधिक और कौन जानता होगा भला?"[1] अमला विवाह को अपने जीवन में व्यर्थ मानती है लेकिन मन ही मन चिंतित होती है। उसे सिर्फ एक पुरूष की आवश्यकता है। अंततः असाधारण बनने और उन्माद की स्थिति में पहुँचने के लिए वह विवश हो जाती है।

उधर रंजना प्रेम-विवाह के द्वारा सुख पाने के लिए अपने माँ-बाप को छोड़कर अमर से शादी करती है। आखिर क्या हुआ? एक बार रंजना अमर की लिखी हुआ डायरी पढ़ती है और उसके बाद अमर के जीवन में रंजना का स्थान जानकर, अमर को रंजना इस प्रकार पत्र लिखती है- "इस प्रकार स्वेच्छा से विवाह करके मैं अपने परिवार और परिचितों के बीच एक आदर्श उपस्थित करना चाहती थी। अब तो लगता है, लोगों का इस पर से विश्वास ही उठ जाएगा। एक अच्छी चीज़ को हमने गलत सिद्ध कर दिया।"[2]

लेखिका ने रंजना के द्वारा प्रेम-विवाह को स्थापित करने के लिए प्रयास किया लेकिन अंत में प्रतिफल टूटन और घुटन भर जीवन के रूप में रह गयी है।

अमला ने परंपरागत विवाह किया मगर उस परंपरागत विवाह में भी टूटन और घुटन ही नजर आती है। लेखिका ने परंपरागत विवाह के माध्यम से वैवाहिक जीवन का सुख लोगों तक पहुँचाने के लिए अमला नामक पात्र की सृष्टि की मगर लेखिका यह विश्वास नहीं दिला सकी है और अंत में असफल हो जाती है।

मौनींदा अमर से प्रेम-विवाह की असफलताओं की चर्चा तो मन्नू भण्डारी इस प्रकार स्पष्ट करती है- "नहीं मिस्टर अमर, मैं मज़ाक नहीं कर रहा। आप

---

1 एक इंच मुस्कान, पृ.सं. 75

2 वही, पृ.सं. 185

मेरी बात पर गौर करके देखिए। इधर प्रेम-विवाह जिस तेजी से असफल होते जा रहे हैं, उससे लोगों के मन में डर पैदा होने लगा है। इन विवाहों में से अधिकांश की उम्र दो साल भी नहीं होती। दो-तीन साल जैसे-तैसे खिच-खिच, किच-किच में बिताए, फिर वही तलाक, लीगल सैपरेशन, कानूनी खींच-तान..... मैं पूछता हूँ, आखिर परम्परागत विवाह ही क्या बुरे थे? हमारे आसपास जाने कितने उदाहरण हैं जहाँ माँ-बापों की, की हुई शादियाँ है और मियां-बीवी दसियों वर्षों से सुख से रह रहे है। शकुन जैसा एकाध अपवाद छोड़ दो.....। अभी उसी दिन एक दोस्त का अमेरिका से लौटा हुआ लड़का कहता था कि अंकल, कोई भी छठे-सातवें तक पढ़ी सीधी-सादी लड़की, पापा से कहिए, तलाश कर दें..... मुझे ये सब स्ट्रीमलाइण्ड, पढ़ी-लिखी नहीं चाहिए.....मैं तो दंग रह गया।"[1]

लेखिका यह स्थापित करना चाहती है कि ज्यादा पढ़ लिखकर भी मनुष्य वैवाहिक जीवन को निभाने में असमर्थ होता है। इस प्रकार लेखिका ने समाज में छिपे हुए आधुनिक रूपी पुरातन संस्कारों को यथार्थ रूप में स्पष्ट किया है।

प्रेम से युक्त सहानुभूति पूर्ण वातावरण में ही पुरूष और नारी के स्वस्थ संबंधों का विकास हो सकता है, चाहे वह प्रेम विवाह हो अथवा परंपरागत। जितनी व्याकुलता, मानसिक संघर्ष तथा आंतरिक उत्पीड़न अमर, रंजना और अमला को सहना पड़ा है। उसका लेश मात्र भी टंडन और मंदाकिनी को नहीं। एक इंच मुस्कान के इस यथार्थ का सामना जीवन में कहीं न कहीं करना ही पड़ता है।

---

[1] एक इंच मुस्कान, पृ.सं. 204-205

## अध्याय पाँच

# मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में राजनैतिक यथार्थबोध

## मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में राजनैतिक यथार्थबोध:-

मन्नू जी जिन दिनों कहानियाँ लिखती रही हैं इन दिनों में राजनीति का प्रभाव सामाजिक और व्यक्ति जीवन पर अधिकाधिक होता रहा है, इसलिए उनकी कहानियाँ राजनीतिक प्रभाव से सर्वथा मुक्त नहीं रह सकीं। उनका राजनीतिक चिन्तन "महाभोज" जैसे उपन्यास में अपने उग्र रूप में फूट पड़ा है। उस रूप में प्रकट होने से पहले उसकी क्रमिक भूमिका अवश्य बनी होगी। उस भूमिका की झाँकी उनकी कहानियों में मिलती है जैसे "मैं हार गई", "हार", "अलगाव" और "तीसरा हिस्सा" इन कहानियों में पहली दो कहानियाँ राजनीति से अधिक प्रभावित हैं। और दूसरी दो कहानियों पर उसका हल्का-सा प्रभाव दिखाई देता है। "मैं हार गई" कहानी समकालीन नेताओं पर जबरदस्त व्यंग्य है। सुंदरी और सुरा का उपभोग करके भी नैतिक उपदेश देनेवाले नेता चरित्र की दृष्टि से कितने पतित हैं उसकी ओर एक संकेत इस कहानी में मिलता है। मन्नू जी चाहती है कि एक आदर्श नेता का निर्माण हो परन्तु उनकी चाह निरर्थक हो जाती है। एक कवि द्वारा रची गयी कविता "बेटे का भविष्य" सुनकर कहानी की नायिका "मैं" विचलित हो जाती है। वह एक नेता के चरित्र का निर्माण करने की कोशिश करती है परन्तु हर बार उसे असफलता ही हाथ लगती है। क्योंकि इस कहानी की नेता एक गरीब परिवार में पैदा होने के कारण परिवार की देखभाल और देश की सेवा दोनों कार्य एक साथ संभाल नहीं सकता। उसके मन में देश के प्रति श्रद्धा और भक्ति है और अन्याय को रोकने की तमन्ना भी है मगर दवा-इलाज के लिए घर में पैसा न होने के कारण उसके पिता की मृत्यु हो जाती है। उसकी बूढ़ी माँ ने रोते-रोते प्राण तो नहीं, पर आँखों की रोशनी खो दी। घर में उसकी एक विधवा बुआ और एक छोटी क्षयग्रस्त बहन थी। इन सबका भरण-पोषण का भार उस पर आ पड़ा। पैसा कमाने के लिए उसके पास कोई साधन नहीं है। मन्नूजी एक संदर्भ में नेता से सच्ची देश भक्ति की अपेक्षा करती है और नेता की दमनीयता को इस प्रकार स्पष्ट करती है कि "तुम नेता होने जा रहे हो या कोई मजाक है? जानते नहीं,

नेता लोग कभी अपने परिवार के बारे में नहीं सोचते, वे देश के, संपूर्ण राष्ट्र के बारे में सोचते हैं। तुम्हें मेरे आदेश के अनुसार चलना होगा। जानते हो, मैं तुम्हारी स्रष्टा हूँ, तुम्हारी विधाता।"[1] इस गरीब नेता के लिए देश के प्रति कितना गौरव है और कर्तव्य को निभाना उतना ही मुख्य है। इसलिए गरीब नेता एक संदर्भ के द्वारा स्रष्टा से इस प्रकार कहता है- "यह सब तो ठीक है, पर मैं अपनी अन्धी माँ की दर्द-भरी आहों की उपेक्षा किसी भी मूल्य पर नहीं कर सकता। तुम मुझे कहीं नौकरी क्यों नहीं दिला देती? गुज़ारे का साधन हो जाने से मैं बाकी सारा समय सहर्ष देश-सेवा में लगा दूँगा। तुम्हारे सपने सच्चे कर दूँगा। पर पहले मेरे पेट का कुछ प्रबन्ध कर दो।"[2] इस प्रकार अपनी कल्पना के अनुसार आदर्श नेता की रचना करने का प्रतीकात्मक अर्थ है। कहानी की नायिका सोचती है कि ऐसे नेता के चरित्र को ढूँढ़ा जाय, जो हर तरह से आदर्श हो, उसमें देश सेवा के प्रति लगन हो, देश के प्रति प्यार हो, किसी भी तरह से भ्रष्टाचार उससे न हो और कोई दुराचरण उसको न छुऐ। गरीब होने के कारण यह नेता देश और अपने परिवार के प्रति न्याय नहीं कर पा रहा है। अंत में गरीब नेता अपनी क्षयग्रस्त बहन का इलाज कराने के उद्देश्य से गाँव के बड़े-बड़े जमींदारों से पैसों की सहायता न मिलने के कारण चोरी करने घर से निकलता है। इसलिए लेखिका सोच-विचार करके दूसरी बार अमीर नेता की कल्पना करती है क्यों कि पैसा न होने के कारण गरीब नेता अपने कर्तव्यों को नहीं निभा सका। इसलिए इस अमीर नेता के द्वारा देश की रक्षा करना चाहती है मगर अमीर होने के कारण अधिकार या सत्ता को हाथ में लेकर वह पीना शुरू कर देता और देश के बारे में सोचना ही छोड देता है। इस बार भी स्रष्टा ने अमीर नेता को इस प्रकार समझाने की कोशिश की है। वे चिल्लाने लगती है और कहती है- "जानते हो, तुम किससे बातें कर रहे हो? मैं तुम्हारी स्रष्टा हूँ, तुम्हारी निर्माता। मेरी इच्छा से बाहर

---

1 मन्नू भण्डारी: श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ.सं.: 66

2 वही, पृ.सं.: 66

तुम्हारा कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं।"[1] यह अमीर उन्मादी नेता एक संदर्भ में स्रष्टा से इस प्रकार कहने लगता है - "अरे। तुमने अपनी कलम से पैदा किया है। मेरे इन दोस्तों को देखा। इनकी अम्माओं ने इन्हें अपने जिस्म से पैदा किया है। फिर भी वे इनके निजी जीवन में इतना हस्तक्षेप नहीं करतीं, जितना तुम करती हो। तुमने तो मेरी नाक में दम कर रखा है। ऐसा करो, वैसा मत करो। मानो मैं आदमी नहीं, काठ का उल्लू हूँ। सो बाबा ऐसी नेतागिरी मुझसे निभाये न निभेगी। यह उम्र, दुनिया की रंगीनी और घर की अमीरी। बिना लुत्फ उठाये यों ही जवानी क्यों बर्बाद की जाये? यह सब करके क्या नेता नहीं बना जा सकता?"[2] इस प्रकार एक गरीब नेता अपनी क्षय ग्रस्त बहन की चिकित्सा कराने के लिए पैसा न होने के कारण चोरी करने तैयार हो जाता है तो दूसरी ओर अमीर नेता के पास ज्यादा धन होने के कारण शराबी बनकर घूमता फिरता है। परन्तु देखा यह जाता है कि इन दोनों में से कोई एक आदर्श नेता नहीं बन सका। इसलिए एक आदर्श नेता के चरित्र को गढ़ने में कहानी की नायिका हार जाती है। स्पष्ट है कि उस हार में यह स्वीकृति है कि वर्तमान नेताओं में सभी तरह की बुराइयाँ भरी पड़ी हैं। ये नेता मक्कार, भ्रष्टाचारी, दुराचारी और दुर्व्यसनों में लिप्त हैं।

"तीसरा हिस्सा" कहानी का शेराबाबू जनता पार्टी के मंत्रियों के चरित्र का संकेत करता है। शेराबाबू जो कि एक पाक्षिक पत्रिका के संपादक रह चुके थे। आर्थिक संकट के कारण उनकी पत्रिका अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकी। जो समसामयिक राजनीति का सवाल उल्लेख मात्र बनकर रह जाता है। शेराबाबू मंत्रियों की और अखबार वालों की मिलीभगत पर व्यंग करते हुए एक संदर्भ में इस प्रकार कहते हैं-"जनता पार्टी के मंत्रियों की तस्वीरें......उनकी जीवनियाँ.......उनके इण्टर्व्यूज........उनकी प्रशंसा......प्रशस्ति......लानत है स्साले इन संपादकों पर। दोगले और बेपेंदी के। अच्छा है बेटा, तुम यही करो। जो शक्ति-स्थान पर बैठा है उसके चरण चापों और अपनी सात पुश्तों को तार

---

1 मन्नू भण्डारी: श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 69

2 वही, पृ. 69

लेने का सिलसिला बिठा लो। अरे, कम से कम कुछ करके चरण थकने तो देते इनके फिर चाँपते। पर इतना सबर किसको? लेखक, संपादक, अध्यापक, सबके सब चले जा रहे हैं लाइन लगाकर। जय कुर्सी मैया। यह तो शेरा बाबू ही स्साला उल्लू का पट्ठा है जो सिद्धांतों की दुम पकड़े-पकड़े सबका लतियाव सहता रहता है। एक दिन ऐसे ही दफ़ा भी हो जाएगा.......कोई दो आँसू बहाने भी नहीं आएगा।"[1]

पुराने जमाने में राजा अपनी राज्य के प्रजा का हाल जानने के लिए गुप्त रूप में जाकर समाचार पाने का प्रयत्न करते थे। वही राजा इस आधुनिक समाज में स्वयं जनता की हालत जानने के बदले अपने स्वागत सत्कार के लिए क्या क्या करते हैं इस संदर्भ के द्वारा एक माली के जन्मदिन के अवसर पर मन्नू जी ने इस प्रकार दशार्या है-"मल्होत्रा साहब आते ही मिस दास को लेकर बुके और फूलमालाओं का आर्डर देने निकल गए। मंत्री महोदय के चरणों में अर्पित होनेवाला बुके बहुत नफ़ीस होना चाहिए। नफ़ीस और लाजवाब। ये कलम घिस्सू क्लर्क नफ़ासत क्या समझे इसलिए आफिस की सबसे नफ़ीस चीज़ को बगल में बिठाकर खुद गए हैं।"[2]

इन मामलों के कारण साधारण जनता के जीवन में कितनी समस्याएँ झेलनी पड़ती हैं इस कहानी के द्वारा स्पष्ट होता है-"तीसरा हिस्सा" और "अलगाव" कहानी में राजनीति का बहुत सीधा प्रभाव नहीं है। केवल मंत्रियों के दुष्चरित्रों की ओर हल्का सा संकेत है। "अलगाव" कहानी में चित्रित हुई बिसेसर की हत्या का मामला रफा-दफा करने के पीछे मुख्यमंत्री तक की सहमति का संकेत मिलता है। पढ़-लिखकर समाज-सेवा और अन्याय रोकने के बदले स्वयं अन्याय को प्रोत्साहन देना कहाँ तक उचित है? कुर्सी और अधिकार को प्राप्त करने के लिए बेसहारा लोगों के साथ क्या कुछ करने को तैयार है। इसका सही अर्थ "वृन्द" के दोहे में देख सकते हैं:-

---

1 त्रिशंकु, पृ.सं.146
2 वही , पृ.सं.151

"सबै सहायत सबल के, कोऊ न निबल सहाय।

पवन जगावत आग को, दीपहि देत बुझाय।।"

इसका मतलब यह है कि बलवान की सहायता सभी करते हैं। निर्बल की मदद कोई नहीं करता। असल में बलहीन को ही सहयोग की अपेक्षा रहती है। इसी प्रकार जैसे हवा आग को प्रज्वलित करती है। लेकिन दीप को बुझा देती है। इस कहानी में एस.पी. सक्सेना निर्दोष बिसेसर की हत्या की जाँच के लिए गाँव में आते हैं। अनपढ़ और मासूम गाँववाले एस.पी.सक्सेना के साथ बहुत गौरव और प्रेम से बात करते हैं। एस.पी. सक्सेना बिससेर की माँ हीरा को बुलाकर बेटे की हत्या का कारण पूछने लगते हैं। हत्या के पहले वह चार साल तक जेल में रहा और जेल से छूटने के बाद "दा साहब" बिससेर से मिलने आया। तब "हीरा" के मन में यानी कि गरीब लोगों के मन में अमीर के प्रति किस प्रकार सम्मान की भावना रहती है उस भावना को मन्नू जी ने एक संदर्भ में हीरा के द्वारा स्पष्ट किया है-"हाँ साहेब, तभी छूटा। हम तो बड़ा जस गाई हैं इस सरकार का। फिर बिसू को छोड़ा। और दा साहब तो देवता आदमी हैं। हम गरीबों को कैसा मान दिया। हमार घर आए.....हमार पीठ पर हाथ फेरा.....सा दी......नहीं तो कौन पूछता है गरीबन का दुख-दर्द......"[1]

सत्ता हाथ में रखकर नेता अपने छल-कपट को लोगों के सामने बिना व्यक्त किए नाटकीय ढंग से गरीब के प्रति सहानुभूति दिखाने की जो चेष्टा करते हैं वह उपर्युक्त संदर्भ के द्वारा हमें स्पष्ट हो जाती है।

बिसेसर चौदह क्लास तक शहर में पढ़कर हरिजनों की सेवा करने के उद्देश्य से गाँव वापस आता है। गाँव के बड़े-बड़े खेत के मालिक किस प्रकार हरिजन मज़दूरों के प्रति अन्याय करते हैं यह बिसेसर को पता है। उस अन्याय को रोकने के लिए बहुत बार बड़े मालिकों के साथ झगड़ा भी करता है। लेकिन ये मालिक लोग बिसेसर को कभी-कभी धमकाने की कोशिश करते हैं। इसका सही

---

1 त्रिशंकु, पृ.सं.167

उदाहरण हमें कहानी के इस अंश में देखने को मिलता है:-"झगड़ा का सरकार, बस जोरावर बुला-बुला कर धमकाता था खूब कि देख रे बिसुआ-तू जो हमारे मजदूरों को भड़काएगा न, तो अबकी बार तो तुझे जेल ही भिजवाया थं अब काले पानी भिजवा दूँगा। बिसुआ भी खूब झगड़ा करता था। हम तो खूब समझाते थे सरकार पर एको नहीं सुनता था हमारी। गरीबों को लेकर बड़ा दरद था उसके मन में दुख नहीं देखा जाता था उनका।"[1]

पढ़े-लिखे नवयुवकों को लेकर बिसेसर के मन में मतभेद की भावना थी क्योंकि अपने ही गाँव में "महेश शर्मा" नामक एक युवक क्लास स्ट्रगल और कास्ट स्ट्रगल के ऊपर रिसर्च-प्रोजक्ट करने दिल्ली से आया है। उमेश शर्मा को मालूम है कि बिसेसर हरजिन दलों के पक्ष में रहता है। अन्याय के खिलाफ लड़ने की क्षमता बिसेसर में है, मगर उमेश शर्मा इस अन्याय को रोकने का प्रयत्न कभी भी नहीं करता है। इस संदर्भ में बिसेसर एक बार इस प्रकार कहता है-"अरे, केवल नाराज ही नहीं, लड़ता था बाकायदा हमसे कि आप जैसे पढ़े-लिखे लोग खाली तमाशबीन ही बनकर बैठे रहेंगे तो इन गरीबों की लड़ाई कौन लड़ेगा? नेताओं का हाल तो देख ही रहे हैं......वे तो हजारों-हजारों जिंदगियों से कुर्सी का मोल-भाव करते हैं बस। कुर्सी मिलने के बाद उन्हें कोई मतलब नहीं। आप लोग इसी तरह अलग-अलग बैठे कागज पोतते रहेंगे और गरीबों के साथ इसी तरह जुलुम होते रहेंगे....।"[2]

एस.पी. सक्सेना गाँव वालों से किस प्रकार सभी बातें उगलवाता है लेकिन उन्हें भरोसे में रखता है कि उनके साथ न्याय होगा क्योंकि एस.पी. सक्सेना को दा-साहब पहले ही सावधान कर देते हैं कि तुम्हें गाँव वालों के साथ किस प्रकार पेश आना है जिससे उनका विश्वास जीत सके। दा- साहब कहते हैं -"देखा भाई, बहुत धीरज और सहानुभूति से पेश आना लोगों के साथ। ऐसे कि उनका विश्वास जागे। जो बात आप जानते हैं उसे भी पूछिए और धैर्य से सुनिए। मरीज को उसी

---

1 त्रिशंकु, पृ.सं.169

2 वही , पृ.सं.174

डाक्टर पर भरोसा होता है जो उसकी पूरी बात सुनता है, ध्यान से, धीरज से। एक बार विश्वास जमा कर चाहे तो फिर डाक्टर जहर भी पिला सकता है। पी लेंगे बिना दुविधा के। बड़ी चीज़ होती है विश्वास। इसलिए लोगों के मन में विश्वास जगाइए। असंतोष नहीं होना चाहिए गाँव वालों के मन में किसी तरह का।"[1]

समाज के सत्ताधारी लोग अज्ञानी लोगों के लिए विश्वास को एक साधन के रूप में इस्तेमाल करके किस प्रकार लाभ उठाते हैं इस बात का पता उनके इन शब्दों से चलता है-"पूरा विश्वास जीत लिया सक्सेना ने गाँववालों का....ऐसा पुलिस अफ़सर तो आज तक देखा ही नहीं। कैसे प्यार से, धीरज से, हौसला बँधा-बँधा कर बात पूछता था। कोउ डाँट-डपट नहीं.... कोउ गाली-डण्डा नहीं।"[2]

अंत में एस.पी.सक्सेना गाँववालों के मन में नाटकीय रूप विश्वास भर कर, नेता के पक्ष में रहकर एक रिपोर्ट के द्वारा स्पष्ट रूप से कहता है कि- "बिसेसर ने जहर खाकर आत्महत्या की।"[3]

इस प्रकार अफ़सरों का शासन के पक्ष में झुकाव और देहातियों की अज्ञान अवस्था के कारण किसी अन्याय और अत्याचार पीड़ित को न्याय मिल सकने में विश्वास न होने जैसी स्थिति का चित्रण इस कहानी में है।

20 वीं शताब्दी में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की चेतना इस देश में बड़ी प्रबल हुई है। यह स्वतंत्रता पति और पत्नी के बीच के रिश्ते से मिली है। सैकड़ों वर्षों से भारतीय नारी ने स्वतंत्र अस्तित्व खो दिया था। वह स्वतंत्र रूप ने उसे नई जीव नदी और स्वतंत्र रूप से सोचने की क्षमता प्राप्त की। साधारणतः सामाजिक रूप में पति-पत्नी के बीच में कुछ कारणों के वजह से अलग-अलग होना मामूली बात है। लेकिन राजनीतिक विषय को लेकर पति-पत्नी के बीच में मतभेद होना एक

---

1 त्रिशंकु, पृ.सं.160
2 वही , पृ.सं.176
3 वही , पृ.सं.176

मुख्य बात बन गयी है। आधुनिक हो या पुराना समाज हो या एक परंपरा चलती आ रही है कि जो पति का मत हो उसी मत को पत्नी को स्वीकारना है।

एक अन्य "हार" नामक कहानी में दीपा और शेखर दोनों अपने-अपने स्वतंत्र अस्तित्व को स्थापित करना चाहते हैं। उनकी यह आकांक्षा धीरे-धीरे एक राजनीतिक मतभेद के रूप में बदल जाती है। पति जिस पार्टी की ओर से चुनाव में खड़ा हो जाता है उस पार्टी के विरोधी का साथ पत्नी देती है। पत्नी पति को हराने की कोशिश करती है। चुनाव प्रचार के दौरान पति-पत्नी के विरोध में आयोजित प्रचार सभाओं में भी सक्रिय हिस्सा लेती है। दीपा अपने पति को हराने के लिए उस हार को भी पार्टी के कोष में दे देती है। उस हार को पति ने बड़े प्यार के साथ उपहार के रूप में स्वीकारना चाहता है1 अंत में इस मत भेद को दीपा को स्वीकारना पड़ता है कि राजनीतिक मतभेदों का बुरा प्रभाव घर पर नहीं आने देना चाहिए। इस प्रकार वह अपने हार को स्वीकार कर लेती है। विरोध का इतिहास मानव जीवन का इतिहास है। शैतान पहला विरोधी है। और विरोध हमारी राजनीति का भी अविभाज्य अंग है। वह उतना ही पुराना है जितना हमारा स्वतंत्रता का संघर्ष। विरोध कब और किसका नहीं होता है। प्रजांतत्र विरोध का विधि सम्मत मंच देने की प्रक्रिया मात्र है। विचित्र और रोचक तथ्य है कि जितना पुराना विरोध है, उतना ही पुराना सर्वसम्मति का आग्रह भी। सर्वसम्मति बनाने के चक्कर में दल टूटते रहे। योग्य लेकिन उपेक्षित व्यक्ति अंदर ही अंदर सुलगते रहे। अनुकूल परिस्थिति में लावा बन कर विरोध फूटा और दल टूटा। सर्वसम्मति और निर्विरोध निर्वाचन तो गाँधी जी के समय में भी नहीं था। जब इनका प्रिय पात्र डगमगाता, तब वह कहते-जवाहर को वोट देना, मुझे वोट देना है। सुभाष चंद्र बोस इस घटना से इतने क्षुब्ध हुए कि दल ही छोड़ दिया। कांग्रेस और कांग्रेस ही क्यों, हर राजनीतिक दल के अमीबा शैली में विभाजन का कारण यही प्रजातंत्र का लिबास ओढ़े अधिनायकवाद है मेरा चयन सबको स्वीकार करना चाहिए। यही है सर्वसम्मति।

स्वतंत्र पहुँच के भीतर थी। प्रांतीय समितियों ने जो नाम सुझाये थे उनमें जवाहर के मुकाबले सरदार वल्लभ भाई का पलड़ा भारी बैठता था। इस बार गाँधी जी ने उनसे ही अनुरोध किया कि वह अपना नाम वापस ले ले। अगर वह ऐसा न करते, चुनाव लड़ते और देश के प्रधानमंत्री बनते तो देश का इतिहास बदल जाता। काश! उन्होंने ऐसा ही किया होता। प्रजांतत्र में विरोध और विपक्ष अपरिहार्य होते हैं। उन्हें सत्तापक्ष जेसा ही सम्मान मिलना चाहिए। विरोध के स्वर बदाने का परिणाम ही विस्फोट है। टूट-टूट कर बिखरते दल। अब वैचारिक और सैद्धांतिक प्रतिबद्धता राजनीति का आधार नहीं है। राजनीति का आधार है इससे मिलनेवाला लाभ। सामान्य व्यक्ति को इस दलदल से दूर रहना चाहिए। यहाँ रहने का मूल्य है मौन। "मौन स्वीकृति लक्षणम्"। उसे ही बहुमत का सत्य बताकर बनती है सर्वसम्मति। सेठ गोविंददास ने हिंदी बिल का विरोध किया था। सत्तापक्ष के सदस्य होने पर भी और मुख्य सचेतक से चेतावनी मिलने पर भी।

अब बयार उलटी बह रही है। विरोध रंचमात्र भी सहन नहीं किया जा सकता। फलतः जो विरोध हीं, वे जूता फेंक कर माइक तोड़कर विरोध प्रकट कर रहे हैं। जब सहजमार्ग बंद हो जाएंगे तो असहज अशोभनीय मार्ग खुलेंगे ही। अब चारों तरफ परस्पर असहिष्णुता की राजनीति पनप रही है। आलोचना, विरोध, देशहित और जनहित के विरुद्ध जानेवाले निर्णय, नीति और आचरण का पर्दाफाश बिलकुल बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। आज जो विरोध करेगा, उसकी बोलती बंद कर दी जाएगी। उसकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, पारिवारिक- हर स्तर पर नाकेबंदी की जाएगी। जब वह अकेला रह जाएगा तो कुछ और करने की क्या जरूरत रह जाती है। शर्मदार होगा तो खुद ही मर जाएगा। राजाज्ञा के विरुद्ध खडे होनेवाले कर्मठ अधिकारियों के साथ यही होता है। सत्तापक्ष का दागदार चेहरा दिखानेवाला हर आइना तोड़ दिया जाता है। ऐसी जलवायु में केवल मूर्ख और चाटुकार ही पनप सकते हैं और पनप रहे हैं।

इस प्रकार होनेवाले राजनीतिक अत्याचारों के ऊपर "महाभोज" नामक उपन्यास की रचना मन्नु जी ने किया है। कहीं कम तो कहीं ज्यादा। राजनीति में

धन-बल और बाहुबल का जोर हर जगह है। अगर हमारे देश के नेता और मतदाता इस पर अंकुश लगाने का उपाय नहीं ढूँढ़ेंगे, तो वह दिन दूर नहीं जब स्थितियाँ हमारे हाथ से निकल जाएंगी।

वर्तमान राजनीति में जो भ्रष्टाचार दिखावा, शोषण, भाई-भतीजावाद, मूल्यों का पतन, नैतिक पतन आदि समाहित हैं। वह किसी से छिपा नहीं है। वास्तव में राजनीति का क्षेत्र में किस प्रकार भ्रष्टाचार और धोखा किया जाता है मंत्री पद प्राप्त करने के लिए किस प्रकार नैतिकता को ताक पर धर दिया जाता है, जनसाधारण के मतों को अपने पक्ष में करने के उद्देश्य  से पैसे पानी की तरह किस प्रकार खर्च किया जाता है-"इन सारी बातों का चित्रण "अलगाव" कहानी और "महाभोज" नामक उपन्यास में दर्शाया गया है।

"महाभोज" से मन्नू भंडारी कथाकारिता के नये चरण में प्रवेश करती है और अब तक के कथा संदर्भो से भिन्न राजनैतिक संदर्भ उठाती है। "महाभोज" आज के राजनैतिक छल-धन्धों, हथकण्डों और कूटनीतिक दुश्चक्रों का जीवंत आलेख है जिसमें यह स्पष्ट बताया गया है कि आज की राजनीति एक ऐसी अंधी दौड है जिसमें जीवन, मूल्यों व भावनाओं का कोई महत्व नहीं है।

मुख्यतः सम्पूर्ण कहानी का केंद्रीय तत्व बिसेसर की मौत है। यद्यपि मौत करुणा की वस्तु है। तथापि आज वह एक राजनैतिक हथकण्डों का माध्यम बन कर रह गयी है। राजनीतिक हथकंडों के कारण व्यवस्था में जो सडांध आ गई है उसी को विश्लेषित किया गया है।

यह सही है कि पहले गाँव की हर घटना केवल गाँव तक ही सीमित रह जाती थी। उससे बेखबर, अछूता रह जाता था। किंतु अब लगता है कि दोनों के बीच की दूरी अब सिमट गई है। बिसू की मौत कोई बहुत बड़ी घटना नहीं है- महत्वपूर्ण है तो केवल उस मौत से फायदा उठाना। गाँव में न जाने कितनों को तो मौत अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। और वह कोई बहुत बड़ा हादसा नहीं बनता।

"सच पूछा जाए तो बड़ा न आदमी होती है न घटना। यह तो बस कर मौके-मौके की बात होती है।" और इस घटना के कारण सरोटा गाँव के पत्ते का हिलना भी एक घटना की अहमियत रखता है। राजनैतिक दाँव-पेंच के आगे साधारण जनता कठपुतली बन जाती है और कटपुतली बनता है। मध्यमवर्ग अर्थात् बुद्धिजीवी वर्ग। कॉडवेल ने कहा है कि "इतिहास का सबसे कमीना वर्ग मध्यमवर्ग है।"

राजनैतिक नेता गिरटि की तरह रंग बदलते रहते हैं। अपने स्वार्थ पूर्ति हेतु अनेकों हथकंडों का प्रयोग करते हैं-विशेषकर मौत को भुनाने की चेष्टा। ऊपर से शांत, सौम्य, गंभीर दिखाई देनेवाले दा-साहब छल-छंदों, कूटनीतियों, क्रूरताओं को छिपाए हुए हैं। गीता द्वारा अपने ऊपर मुखौटा चढ़ाये रहता है। अपनी वास्तविकता पर पर्दा-पर्दा डाले रखने के लिए न कर गंभीरता भरी बातों के लिए सरल तथा कम शब्दों का प्रयोग करते हैं। बिसेसर की मृत्यु से उनमें किसी भी प्रकार की हलचल नहीं प्रकट होती है। हर स्थिति को सहजता से अपनाने का नाटक अच्छा खेल लेते हैं। लखन को जिताने का प्रयास जारी रहता है। वे हर तरह के व्यक्ति को संभालने में सक्षम हैं। "वरना कोई आश्चर्य नहीं कि पार्टी के झण्डे के नीचे-ही-नीचे उनकी जड़ें काटने का काम भी चालू रहे।" लखन द्वारा किए गए किसी भी सवाल का जवाब पूर्ण रूप से नहीं देते।

यह सही है कि अपने स्वार्थ के लिए, अपनी इच्छाओं, अभिलाषाओं के लिए किसी अन्य व्यक्ति की बलि बड़ी आसानी से चढ़ाई जाती है। और इस अमानवीय कार्य के बाद भी वह देवता-रूप धारण करता है। केवल दिखावा। और दा साहब शायद अपनी इसी सडांध को गीता के मुखौटे में ढके हुए हैं।

गाँव से कुछ परे हरिजन टोली की झोंपड़ियों में आदमियों सहित आग लगा दी गई थी। जिसके कारण सभी गाँववालों में घृणा, तनाव, गुस्सा, नफरत सनसनाता रहा। यह केवल किसी एक समय और एक गाँव की घटना नहीं है। आज के समाज में राजनैतिक हथकंडों के कारण अनेक गाँव इस क्रूरता का शिकार बन रहे हैं।

बिसु के इस हत्यारे को जानते हुए भी प्रत्यक्ष रूप से इसे नहीं बताया जाता है। और इस घटना का प्रभाव चुनाव पर मुख्य रूप से पड़ता है। विरोधी दल के नेता सुकुल बाबू यद्यपि दस वर्ष से मुख्यमंत्री का पद संभाले हुए थे। और हारने के पश्चात राजनीति के सन्यास लेने की बात भी करते हैं तथापि कुर्सी का लालच जनता की सेवा के आवरण में, उनके द्वारा चुनाव लड़ने पर बाध्य कर ही देता है। बिसू की मौत जैसे उनके लिए वरदान बन गई। "बिसू की मौत.... लगता है जैसे खाली थाली में परोसकर मौत आ गया है उनके सामने। अपनी हार को जीत में बदलना है उन्हें इस मौके का फायदा उठा कर।" और बिसू के प्रति उनके मन में कृतज्ञता की भावना भर गयी। नेताओं में इन सारे गुण रहने के कारण सुकुलबाबू दस वर्ष तक मुख्यमंत्री के पद पर  हैं। बासठ वर्ष की आयु में सब झेल चुके थे। सुकुल बाबू का दल बिसेसर की मौत को लेकर नारे लगाने लगा। सुकुल बाबू का "बिसेसर के मर जाना" सिर्फ गाँववालों की दृष्टि में आने के लिए एक बहाना हथियार था। किंतु वहाँ पहुँचने के बाद ही यह पता चलता है कि बिसेसर के माँ-बाप शहर गए हुए हैं तो उन्हें कुछ शंका होती है। तब वे यही सोचते हैं कि जरूर दा साहब ने कोई चाल चली होगी। चुनावों के दौरान इस प्रकार की स्थितियाँ आ जाती हैं। खास तौर पर विरोधी पक्ष को लेकर। और दा साहब हर तरह से अपने पंजों को मजबूत बनाते हैं। बिसेसर की मौत को लेकर "मशाल" में जो छपता है उसके लिए वे दा साहब को खरीद लेते हैं। और उस मौत की खबर के कारण दूसरा अंक चाहे शाम तक निकले किंतु पहला अंक रोकना ही है। "मशाल" को खरीदते हैं। सम्पादकों, विधायकों, पुलिस अधिकारी सिन्हा आदि सभी दा साहब के यहीं बिक जाते हैं। हर कार्य दा साहब के आदेश पर, अप्रत्यक्ष रूप से चलने लगता है। जैसे उनका सिन्हा  से कहना "देखो भाई तुम मामले की तह तक जा और दूध को दूध और पानी को पानी करो। यह काम है तुम्हारा। समझे? इस तरह की उलझी हुई बातों में अपना दुहरा अर्थ स्पष्ट करते हैं।"

बिसू की मौत को लेकर दा साहब ने सुकुल बाबू पर यह आरोप लगाया था कि "उन्होंने एक छोटी सी घटना को महत्व अपने राजनीतिक स्वार्थ के लिए मनमाने ढंग से विकृत करके लोगों में बिना वजह तनाव बढ़ाने का निन्दनीय काम किया है।" यह बात उन्होंने "मशाल" में छपवाई थी। साथ ही बिसू की मौत को हत्या न कहकर आत्महत्या कहा था। इस घटना के लिए दा साहब हर तरह के हथकंडे अपनाते हैं। डी.आई.जी. सक्सेना वास्तविकता को जानने का प्रयत्न करता है। जो किसी को भी मंजूर नहीं। वह इस घटना की अतल गहराई तक जाकर उसके रेशे-रेशे उधेड़ना चाहता है और सहायता बिसू के मित्र बिंदा से लेता है जो कि इस घटना के कारण रुक्मा क्रूर हो जाता है कि बिसू की इच्छा पूरी करने के लिए संघर्ष करता जाता है। किंतु अंत में ऐसा जाल फैलाया जाता है कि बिंदा को ही बिसू का हत्यारा कह कर सजा हो जाती है। बिंदा और सक्सेना को लेकर दा साहब में एक प्रकार की सनसनी बनी है। इस संबंध में दा साहब के समक्ष एक गंभीर मसला यह एक आया कि "एक वह बिंदा, वैसे ही करेला ..... ऊपर से चढ़ने को नीम मिल गया।" उन्हें डी.आई.जी. द्वारा अधिक जांच पड़ताल करवाना भी अखरता है। क्योंकि उनकी दृष्टि में बिसू की मौत एक घटना है जिसको भुनाने का प्रयत्न करते हैं। उसके प्रति करुणा का भाव नहीं आता। मनुष्य कितना स्वार्थ लोलुप हो गया है कि अपनी इच्छाओं को खून से भी अधिक महत्व देने लगता है। और दा साहब अपनी अनुभवशीलता की दाद को ज्यादा दिन नहीं चला सकें पासा पलट गया। "कभी-कभी दोशियान कोंवा भी विण्टा पर बैठता है।" दा साहब के लिए यह उक्ति उचित ही है।

बिंदा का आक्रोश घटना को स्पष्ट करने हेतु बढ़ता ही जाता है। बिंदा दा साहब को कुछ भी समझने का प्रयत्न नहीं करता। क्योंकि इस राजनैतिक व्यवस्था में किसी भी प्रकार का न्यायसंगत नहीं होता। हर चीज, हर घटना को रद्दी में डालने की आदत बन गई है। बिंदा की स्त्री रुक्मा भी हत्यारे को बतलाने में सहायता करती है। बिंदा पुलिस की लाठियों का निशाना बनता है। शायद बिसू के पश्चात बिंदा को निशाना बनाने का प्रयत्न है। जिस सत्य को उजागर करने का

प्रयत्न बिंदा करता है उसे उसी का हत्यारा घोषित कर दिया जाता है। और सक्सेना झूठे प्रमाण जुटाकर निर्दोश व्यक्ति को ऐसे जाल में फसा देता है कि वह अंत तक छटपटाता रहता है। और यह छटपटाहट वस्तुस्थिति को उसके दुश्चक्र को जानते हुए उसमें फसा दिए जाने की तिलमिलाहट है।

दा साहब सुकुल बाबू सिन्हा साहब, पन्ना आदि सभी मुध्यवर्ग के प्रतिनिधि हैं और ये सबके सब बेईमानी और शैतानी से भरे हैं। इस सब में बिसू की मौत मानवीय संवेदनाओं और मानवीय मूल्यों के पतन की ओर संकेत करती है। मध्यवर्ग की मक्कारी, धोखेबाजी, भ्रष्टाचार क्षुद्रता और पाखंड आदि पर से नकाब हटाती है।

किंतु मूल्यों का संघर्ष बचा है-बिंदा में, जिसे गलत काम करना स्वीकार नहीं। मनुष्यता बची है सक्सेना में, रुक्मा में-जो कि आगजनी की घटना का सही प्रमाण देने का साहस रखता है। सही निर्णय के इंतजार में सिर्फ संघर्ष जारी है।

उपन्यास की समाप्ति व्यवस्था के परिवेश की त्रासदी से होती है। त्रासद वीरता इस उपन्यास को शक्ति प्रदान करता है। उपन्यास भारतीय सांप्रदायिक, राजनैतिक जीवन की सही तस्वीर पेश करता है। यद्यपि सारे पात्र काल्पनिक हैं किंतु यह स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है कि वास्तविक मूर्ति को देखकर ही पात्रों को गढ़ा गया है।

एक और वास्तविकता झलकती है - पुलिस में हो तो भ्रष्टाचार और अत्याचार की जुगलबंदी पुलिस समाज पर कितना क्रूर दबाव बनाती है और उस क्रूर दबाव के नीचे कितना कुछ टूट जाता है, नष्ट हो जाता है। पुलिस के भ्रष्टाचार और अत्याचार की खबरें रोज ही पढ़ने-सुनने को मिलती हैं। इन खबरों का हिस्सा अपराध जगत् की उन खबरों से ज्यादा नहीं तो कम भी नहीं होता जिन्हें रोखने के लिए पुलिस प्रशासन की स्थापना की जाती है। पूरे देश के पैमाने पर पुलिस भ्रष्टाचार और अत्याचार की कहानी अनंत है। यह जानी-मानी सच्चाई है कि भारत का राजनैतिक-प्रशासनिक जीवन भ्रष्टाचार की समस्या से गंभीर रूप से ग्रस्त है। भ्रष्टाचार की इस व्याप्ति में पुलिस का भ्रष्टाचार भी आता है। पुलिस

के मामले में खास बात यह मानी जा सकती है कि भ्रष्टाचार का कलंक शुरू से उसके माथे पर लगा है और उसके चरित्र का स्थायी भाव बन चुका है। 1902 में बने भारतीय पुलिस आयोग ने पुलिस को "भ्रष्ट और दमनकारी" पाया था। आज भी उसके चरित्र में ये दो "विशिष्टताएँ" ही प्रधान हैं। 1977 में धर्मवीर की अध्यक्षता में बने राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने पुलिस व्यवस्था की व्यापक छानबीन के बाद पाया कि "जनता की नजर में पुलिस अपने कर्तव्यों का निर्वाह करने में राजनैतिक पक्षपात, क्रूरता, भ्रष्टाचार और अकुशलता के लिए कुख्यात है।

प्राचीन समाज से लेकर आज तक कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए नागरिक जीवन में पुलिस की मौजूदगी अनिवार्यता रही है। साथ ही पुलिस का भ्रष्टाचार भी और उस भ्रष्टाचार के आगे आम नागरिकों की असहाय और दयनीय स्थिति थी। सामाजिक-राजनैतिक प्रक्रियाओं में बदलाव के साथ मानव जीवन के व्यापार और गतिविधियाँ भी बदलती हैं। पुलिस के भ्रष्टाचारी रूप की विशेषता यह है कि वह मानव जीवन के प्रत्येक व्यापार और गतिविधि में भ्रष्टाचार की व्याप्ति आश्चर्यजनक है। ग्रामीण, कस्बाई, नगरीय और महानगरीय जीवन की सभी बस्तियाँ इसकी चपेट में हैं। सौ करोड़ से ज्यादा आबादी के देश में कोई अकेला व्यक्ति तो शायद ऐसा मिल जाए जो अपने जीवन में पुलिस-भ्रष्टाचार का शिकार न हुआ हो, लेकिन ऐसी किसी पारिवारिक इकाई का मिलना असंभव है। पुलिस के फंदे में एक न एक दिन सभी को फंसना पड़ता है। अन्य मारों की तरह पुलिस की मार भी गरीब भारत पर ही ज्यादा पड़ती है। हालांकि अमीर भारत को भी कई बार उसके सामने घुटने टेकने पड़ते हैं। राजनैतिक सत्ता पुलिस को अपने पक्ष में इस्तेमाल करती है। लेकिन कई बार सत्ताच्युत नेताओं तक को पुलिस का रगड़ा लग जाता है। पुलिस का भ्रष्टाचार जाति, धर्म, उम्र, लिंग, पेशा आदि कटघरों को नहीं मानता।

भारत की विशाल जनसंख्या में पुलिस की संख्या अत्यल्प है। लेकिन उसके भ्रष्टाचारी हाथ इतने लंबे हैं कि जीवन में कभी न कभी सभी को उसकी मुट्ठी गरम करनी पड़ता है। इक्का-दुक्का ऐसे संस्कारी पुलिसवाले भी होते हैं जो स्वयं

भ्रष्टाचार की पहल नहीं करते लेकिन "हिस्सा" उन्हें भी पहुँचता है। पुलिस प्रशासन में थाना इकाई तक का कोई पुलिसकर्मी, ऊपर की कमाई से बच पाए, यह संभव नहीं है। अपराध करके दंड से बचने की मानव प्रवृत्ति के कारण ही अपराध करनेवाला दंड से बचने या कम दंड पाने की जुगत में पुलिस को रिश्वत खिलाता है। इस तरह पुलिस के साथ वह भी आधा भ्रष्टाचारी बनता है। लेकिन जिसने अपराध नहीं किया है या जिसके प्रति अपराध हुआ है, वह भी पुलिस को रिश्वत देने के लिए अभिशप्त है।

यहाँ प्रेमचंद के उपन्यास "गोदान" का एक रोचक प्रसंग देखा जा सकता है। होरी का छोटा भाई शोभा उसकी गाय को जहर देकर भाग जाता है। गाय मर जाती है। मामले की तहकीकात के लिए दरोगा बिना किसी रपट के ही गाँव में आता है और आते ही शोभा के घर की तलाशी का ऐलान कर देता है। बिचौलिए दरोगा को बताते हैं कि होरी से पचास रुपये का डौल बैठना भी मुश्किल है। दरोगा "पुलिस कार्रवाई" का करिश्मा अच्छी तरह से जानता है। वह तलाशी का ऐलान दोहराता-तिहराता है। होरी को घर की इज्जत की फिक्र पड़ जाती है। वह मदद के लिए सूदखोरों की ओर ताकता है जो तत्परता से मदद का हाथ बढ़ाते हैं। अंत में तीस रुपयों का सौदा तय होता है। दरोगा और बिचौलिए रकम को आधा-आधा बांटने का निर्णय लेते हैं। होरी जब अँजुरी में रुपये लेकर दरोगा को भेंट करने चलता है तो उसकी पत्नी धनिया का उग्र हस्तक्षेप पुलिस के रिश्वतखोर चरित्र को सरेआम नंगा कर देता है। दरोगा को खाली हाथ लौटना पड़ता है। रेणु के "मैला आंचल" में आज़ाद भारत का दरोगा अधिक छुट्टा है। हंसेरी (समूह में हिंसक हमला करना) कांड में संथालों के खिलाफ मामला बनाने के लिए वह पांच हजार रुपये रिश्वत लेता है। संथाल तहसीलदार विश्वनाथ के खेत से बीहन लूटते हैं। तहसीलदार की आरे से सारा गाँव लड़ने जाता है। शिवशंकर सिंह का बेटा हरगौरी हंसेरी में मारा जाता है। तहसीलदार बिचौलिया बनकर उल्टे उसी से दरोगा को पांच हजार रुपये की रिश्वत दिलवाता है। होरी की गाय मारी गयी, फिर भी उसके सामने रिश्वत देने की नौबत आयी।

शिवशंकर सिंह का बेटा जान से गया, ऊपर से उसे पांच हज़ार रुपया भी भरना पड़ा। यह पुलिस भ्रष्टाचार की महिमा है।

पुलिस प्रशासन की मुख्य फोर्स "कांस्टेबलरी" है जो थानों और चौकियों में रहती है। आम जनता का पुलिस प्रशासन की थाना इकाई से ही साबका पड़ता है। पुलिस भ्रष्टाचार का अधिकांश यह इकाई ही संपन्न करती है। पुलिस थाने में शिकायत या सहायता के लिए जेब को भारी करके जाना होता है। खाली जेब जानेवालों को खाली गालियाँ, धक्के और डंडे ही मिलते हैं। पुलिस सुधार की जब भी बात की जाती है तो अधिकांश सुझाव "कांस्टेबलरी" से संबंधित होते हैं। भारतीय पुलिस सेवा के तहत बने उच्च पुलिस अधिकारियों का जनता से सीधा संबंध नहीं होता। आम जनता की नज़र में इन बड़े अधिकारियों की छवि बेहतर होती है। कुछ वरिष्ठ पुलिस अधिकारी पुलिस की भ्रष्टाचारी छवि के प्रति चिंता भी व्यक्त करते हैं। लेकिन उच्च पुलिस अधिकारियों के भ्रष्टाचार का खुलासा भी यदा-कदा होता रहता है। बड़े शहरों में ज़मीन पर बड़े पैमाने पर होनेवाले अवैध कब्ज़ों के मामलों में अक्सर बड़े पुलिस अधिकारियों की मिली भगत होती है जो कभी-कभार सामने भी आ जाती है। पुलिस में उच्च पदों पर भले ही कम भ्रष्टाचार होता हो या वह सामने न आ पाता हो, पुलिस भ्रष्टाचार की जिम्मेदारी पूरे पुलिस महकमें की बनती है।

अन्य महकमों के मुकाबले पुलिस महकमे की "विशिष्टता" यह है कि यहाँ भ्रष्टाचार के आगे-आगे अत्याचार चलता है। पुलिस एक हाथ से डंडा चलाती है, दूसरे हाथ से रिश्वत खाती है। उसका डंडा केवल थाने में ही नहीं चलता, सरेबाज़ार भी चलता है। बात से पहले हाथ छोड़ना पुलिस की सहज आदत में शुमार होता है। औपनिवेशिक काल से लेकर आज तक पुलिस अत्याचार की कहानी फैली है। देशी-विदेशी नागरिक और मानवाधिकार संगठनों की रपटों और सामान्य पत्र-पत्रिकाओं में पुलिस अत्याचार के विस्तृत ब्यौरे मिलते हैं। पुलिस का अत्याचार अक्सर क्रूरता की हद तक पहुँच जाता है। विशेष इलाकों से विशेष

कानूनों से लैस पुलिस जो अत्याचार करती है, उसकी अलग श्रेणी बनती है। दैनंदिन कार्रवाई में भी पुलिस की क्रूरता के मामले मिलते रहते हैं।

"अपने व्यक्तिगत दुःख-दर्द, अन्तर्द्वन्द्व या आन्तरिक "नाटक" को देखना बहुत महत्त्वपूर्ण, सुखद और लगी हो तो सिर्फ़ अपने अन्तर्जगत में बने रहना या उसी का प्रकाशन करना क्या खुद ही अप्रासंगिक, हास्यास्पद और किसी हद तक अश्लील नहीं लगने लगता? सम्भवतः इस उपन्यास की रचना के पीछे यही प्रश्न रहा हो। इसे मैं अपने व्यक्तित्व के रूप में ही देखती हूँ। बाकी प्रत्याशाएँ और आरोप तो आपके अपने हैं।"[1] इस प्रकार मन्नू भण्डारी ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से जीवन की अनेक सच्चाइयों को स्थापित किया है।

हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में 1978 के लगभग प्रकाशित "महाभोज" एक नये मोड़ का संकेत देता है। जो महिला लेखिकाओं में लम्बे समय से चले आते गतिरोध और एकरसता को तोड़ता है। यह उपन्यास इस क्षेत्र में एक नये क्षितिज कायम करता है। मन्नूजी के इस उपन्यास को देखकर लगता है कि वे बड़ी सहजता से नयी संभावनाओं को वे उपस्थित कर सकी है। कुछ लोग उन्हें समकालीन हिन्दी लेखन, जनवादी रचना धर्मिता से जोड़ते हैं। "महाभोज" अपने समय की प्रतिबद्ध रचना है। इस उपन्यास में हरिजन युवक की हत्या हो जाती है। वह हत्या किस प्रकार होती है और उसे छिपाने के लिए कौन-कौनसी राजनैतिक चालें चली जाती हैं उनका लेखा-जोखा यथातथ्य हुआ है।

मन्नू भण्डारी ने नारी मन की उलझनों और उनके परिवर्तित ऐसे परिवेश के सीमित विकल्पों को बड़े प्रभावशाली और हृदयग्राही ढ़ंग से चित्रित किया है। "महाभोज" में उनकी प्रतिभा का विस्तार जिन दिशाओं में हुआ है उनसे उनकी सम्भावनाएँ स्पष्ट होती हैं। चमत्कारिक शैली में लिखा गया कुरू कुरू स्वाहा एक विशाल परिदृश्य को अपने आप में समेटने का यत्न करता है और अपने अनेक दृश्यों में आशातीत सफ़लता भी प्राप्त करता है, पर फिर भी वह विशिष्ट

---

1 महाभोज, पृ.सं. 6

अनुभवों का उपन्यास होकर ही रह जाता है। दुःख यह है कि सीमित अनुभव-खण्डों के अन्य लेखक मन्नू भण्डारी की तरह स्वनिर्मित दायरों को तोड़ने का यत्न नहीं करते।

गिरिराज किशोर के शब्दों में "ब्लर्ब मैटर में महाभोज को उपन्यास धारा में एक नये मोड़ की तरह माना गया है। साथ ही साथ यह भी कहा गया है कि हिन्दी में आमतौर से लिखे जाने वाले उपन्यासों से यह एकदम भिन्न है। अन्त में जो बात विशेष रूप से सम्प्रेषित होती है और अपनी ओर आकर्षित करती है, वह है : एक व्यक्ति की मौत राजनीति के अखाडों में खेलने वालों के लिए मानों गिद्धों के महाभोज का जुगाड़ कर गयी उसके मानवीय दुःख-दर्द का पक्ष, करूणा, ममता आदि भावनाऐं-इन राजनीतिक गिद्धों के लिए भोजन, इस्तेमाल की चीज मात्र रह गयी।"[1]

समकालीन राजनीतिक माहौल पर लिखी जाने वाली हर रचना एक विशेष प्रकार की तैयारी और मानसिकता की अपेक्षा रखती है। मन्नूजी के उपन्यास के बारे में जो स्थिति अनजाने बना दी गयी है उसके बारे में स्थिति स्पष्ट हो जाना जरूरी है। "महाभोज" उपन्यास मौजूदा परिस्थितियों के बीच राजनीति के संदर्भ में आम आदमी की नियति की व्यथा, कथा कहता है। आज की अमानवीय स्तरहीन राजनीति में आम आदमी की व्यथा का कोई स्थान नहीं। उसके सामने मानवीय रिश्तों की चटक, बदरंग है। ऐसी राजनीति विद्वेष है जिसे हम सबने भोगा है। लेखिका ने इस घिनौनी, कुरूप और मक्कार राजनीति को भरपूर उभारा है। उपेक्षित हरिजन बस्तियों में आगजनी, नृशंस हत्याकांड एवं शोषण का विष फैल रहा है जिससे शोषित तबकों में संज्ञाशून्यता, हताशा, व क्रोध उत्पन्न हुआ है। राजनैतिक चुनाव, एक दूसरे के काफी निकट आ गये हैं। अधिकांश राजनीतिज्ञ अपनी उद्देश्यपूर्ति के लिए अपराधियों का सहारा लेने में

---

1 पूर्वग्रह( उपन्यास पर एकाग्र) गिरिराज किशोर , पृ.सं. 117
संपादकः अशोक वाजपेयी

नहीं चूकते और अपराधियों ने अपने अपराध छिपाने के लिए राजनीति का सहारा लिया है। इस प्रकार देश में अपराध का राजनीतिकरण हुआ है।

"महाभोज" में कुल मिलाकर पैंतीस पात्रों की सृष्टि की गई है। पर बिसू, बिसेसर, दासाहब, सुकुल बाबू, त्रिलोचन रावत, बिंदा, रुक्मा, हीरा, सक्सेना ही उल्लेखनीय हैं। सारे चारित्रिक मुद्दों के साथ पात्र जीवंत हैं और उनकी छटपटाहट, पीड़ा, एक व्यवस्था त्रिकोण से जुड़ी हुई है। गाँव सरोह में विधान सभा की एक सीट के लिए उपचुनाव होता है जिसमें दो विरोधी शक्तियाँ अपनी शक्ति बनाए रखने का प्रयास करती हैं। एक ओर वर्तमान मुख्यमंत्री दा-साहब का उम्मीदवार लखनसिंह है तो दूसरी तरफ भूतपूर्व मुख्यमंत्री सुकुल बाबू। सुकुल बाबू इस उपचुनाव में विजयी होकर अपनी खोई हुई सत्ता प्राप्त करना चाहते हैं जबकि दा-साहब सुकुल बाबू की जीत को अपने मंत्रिमंडल के लिए खतरा समझते हैं। ऐसी परिस्थितियों में बिसू की मौत हो जाती है। अब सत्तारूढ़ पार्टी और विरोधी दल अपने-अपने ढंग से बिसू की मौत को आगे कर जनता में अपना विश्वास कायम करना चाहते हैं। सुकुल बाबू और दा-साहब अपने को गरीबों के हमदर्द घोषित करने लगते हैं। गाँव के लोगों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए जानते हैं कि बिसू की हत्या जोरावर सिंह ने करवाई है। उसे जहर देकर मारा गया है। मुख्यमंत्री की छाया में पला जोरावर इस घटना को हत्या के बदले आत्महत्या में बदलने में सफल हो जाता है। इतना सब कुछ जानने पर भी उच्चस्तरीय जाँच के लिए एस.पी.सक्सेना गाँव में आते हैं। जोगेसर साहू, महेश शर्मा, हीरा, बिंदा आदि के बयानों के पश्चात सक्सेना इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बिसू ने आत्महत्या नहीं की है, जरूर उसकी हत्या कर दी गई है। पर डी.आई.जी. सिन्हा ने तो पहले से ही रिपोर्ट तैयार कर ली है कि बिसू ने आत्महत्या की है। दा-साहब ने सक्सेना द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट देखी। उन्होंने डी.आई.जी.सिन्हा को बुलवाकर विस्तारपूर्वक चर्चा की। साथ में अपना संदेह भी बताया कि बिसू का हत्यारा बिंदा ही हो सकता है। आखिर बिसू की हत्या के जुर्म में बिंदा को गिरफ्तार किया जाता है। दा-साहब के संकेतों पर चलनेवाले डी.आई.जी. सिन्हा

को आई.जी.बना दिया गया है। "मशाल" के संपादक दत्ता बाबू सत्तारूढ़ पार्टी के गुणगान गाने लग जाते हैं तो उन्हें अनेक सरकारी सुविधाएँ मिलने लगती हैं। दिनों-दिन बढ़ते अन्याय-अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाने वाले शिक्षामंत्री त्रिलोचनसिंह रावत को पार्टी के अध्यक्ष सदाशिव अत्रे पहले तो बहुत समझाते है, लेकिन उनको इस प्रकार समझाने का कोई असर नहीं होता। अन्ततः उन्हें मंत्रिमंडल से बर्खास्त कर दिया जाता है। अपने अनुकूल बयानों की रिपोर्ट तैयार नहीं करनेवाले एस.पी. सक्सेना को भी सस्पेंशन का ऑर्डर मिल जाता है।

"महाभोज" उपन्यास के प्रायः सभी अध्यायों में मुख्यमंत्री दा-साहब का उल्लेख मिलता है। दा-साहब का चरित्र विकसित किए बिना रचना की माँग, दा-साहब का विकसित होता एकांगी चरित्र है या कि दा-साहब के वजन के नीचे दबती चली जा रही हरिजन-त्रासदी की मुख्य समस्या और उसके कारण उठनेवाला बीसू का यह ईमानदार विद्रोह......? उपन्यास की आवश्यकमता मानकर चलता है। मूलतः मानवीय दुःख दर्द का पक्ष, करुणा, ममता आदि भावनाएँ-इन राजनीतिक गिद्धों के लिए भोजन, इस्तेमाल की खोज मात्र है। पत्रकारों के लिए क्यों नहीं? अफसरशाही के लिए क्यों नहीं? दा-साहब ही वे गिद्ध हैं जिनके लिए सब कुछ भोज्य है और महाभोज का आयोजन समय-समय पर अपने लिए करते रहते हैं। लेखिका ने स्वयं उनके महत्वपूर्ण व्यक्तित्व का परिचय इस प्रकार दिया है-"शहर के सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति दा-साहब अपने निजी कमरे के एक कोने में अकेले बैठे हैं-मौन, गंभीर, कुछ-कुछ चिंतित और परेशान भी। पर चिंता का कोई असर बाहर नहीं है। चेहरे की सौम्यता ने उसे भीतर ही ठेल रखा है। फिर भी इतना जरूर लग रहा है कि गहरे में डूबे हुए हैं। हाँ, बीच-बीच में फोन की घंटी बजती है तो कुछ क्षणों को उबर आते हैं। पर बात में कहीं कोई हड़बड़ी या परेशानी नहीं। वही उनका अपना खास अंदाज-कम शब्द, सधी आवाज। बात को अपने से, अपने मन में होनेवाली उथल-पुथल से काटकर भी किया जा सकता है-यह गुर कोई दा साहब से सीखे। सीखना चाहे तो इतनी विशेषताएँ हैं दा-साहब में कि सीखनेवाला मजे में पूरी जिंदगी खपा सकता

है। पर आज के इस हाय-हाय वाले जमाने में किसके पास रखा है इतना धैर्य! तभी तो कोई छाया तक नहीं छू सकता है उनकी।"[1]

दा साहब का एक कर्मयोगी, गांधीवादी, सच्चरित्र त्यागी और संतुलित व्यक्ति के रूप में मन्नू जी ने चित्रण किया है। लेकिन उनका क्रूर व्यक्तित्व इस प्रकार है जैसा कि गिद्ध का अपना स्वभाव होता है। वह हर जगह होता है जहाँ शव की गुंजाइश होती है। अगर शव न भी हो, जीव अशक्त होकर ही गिर जाए तो भी उसके पौबारह होते हैं। ऐसे शवों और शवनुमा शरीरों को पहचानने की उसकी दृष्टि सैकड़ों मील तक देखने की सामर्थ्य रखती है। इस उपन्यास के अनुसार उनमें अपने आपको और अपनों के हितों को सुरक्षित रख सकनेवाली दृष्टि है।

गिरिराज किशोर जी के शब्दों में "यथार्थ का निर्माण अंतर्द्वन्द्व की संपूर्ण प्रक्रिया से गुजरने पर ही होता है। जो सामने देख रहे हैं वह यथार्थ होता तो है क्योंकि सामने घटता है। परंतु संवेदना से वह तब तक नहीं जुड़ता जब तक अपनी संपूर्ण प्रक्रिया के साथ उजागर नहीं होता। अपने पूरे आंतरिक संघर्ष और अंतर्द्वन्द्व के साथ सामने आने पर ही वह सांगोपांग यथार्थ होता है और संवेदना की सीमाओं का विस्तार करने की सामर्थ्य सँजो पाता है।"[2] दा-साहब का विचार है कि मनुष्य का दुःख पैसे से दूर नहीं होता। जीवन में विवेक और धीरज बनाए रखना कोई दा-साहब से ही सीखे। लेखिका प्रत्यक्ष रूप में इस प्रकार स्पष्ट करती है-"राजनीति मेरे लिए स्वार्थनीति नहीं है और चाहता हूँ कि मेरे साथ काम करनेवाले लोग भी इस बात को अच्छी तरह समझ लें।"[3] दा साहब के संकेतों पर चलनेवालों को कहीं पर भी हानि नहीं पहुँचाती है। और वे जन विश्वास को भी कभी नहीं खोते। दा-साहब की हिम्मत और विश्वास के बारे में मन्नू भण्डारी इस प्रकार दर्शाती है-"जिस दिन अपने लोगों का विश्वास खो दूँगा, उस दिन कुर्सी पर

---

1 महाभोज, पृ.सं.10

2 पूर्वग्रह, पृ.सं.120

2 महाभोज, पृ.सं.133

नहीं बैठूँगा। सबके विश्वास पर ही टिकी हुई है मेरी कुर्सी। सबके सद्भाव पर ही जिंदा हूँ मैं। विश्वास-सद्भाव ही नहीं रहा तो मेरे रहने का क्या मतलब?"[1] दा-साहब पुलिस क्षेत्र से लेकर शिक्षा विभाग तक बड़े-बड़े अफसरों को खरीदकर अपने हाथों में यानी कि मुट्ठी में बंद कर रखते हैं। अपने ही आदेशों के अनुसार ही चलाना चाहता है। अपने आदेशों का उल्लंघन करने से दा-साहब तीक्षण नजर से ऐसे लोगों को भस्म कर देते हैं। बिससेर एक गरीब किसान हीरा का सबसे बड़ा बेटा था। मेहनत या मजदूरी करके हीरा ने उसे चौदहवीं कक्षा तक पढ़ाया था। क्योंकि हीरा के मन में बिसेसर को लेकर बहुत आशाएँ थीं। बड़े-बड़े सपने देखे थे। एक बड़ा आदमी बनेगा। कुर्सी पर बैठा हुआ अफसर दिखाई देगा-पर हीरा की कल्पनाएँ और सपने सपने जैसे रह गये हैं। बिसेसर को बिसू नाम से भी पुकारा जाता है। बिसू बहुत स्वाभिमान युवक होने के नाते किसी के पास नौकरी करना पसंद नहीं करता है। खेती करने लगा और साथ-साथ गाँववालों को पढ़ाने के लिए एक स्कूल भी खोल दिया है। बिसू हरिजनों का उद्धार करने की कोशिश करता है। हरिजनों को शिक्षित कर ग्रामवासियों को अपने अधिकारों के प्रति सतर्क रहने की शिक्षा देता रहता था।

जमींदार और साहूकार के प्रति बिसू के दिल में सख्त नफरत थी। गाँव के जमींदार खेत-मजदूरों को सरकारी रेट पर मजदूरी नहीं देते थे। इस प्रकार का शोषण बिसू को बिल्कुल पसंद नहीं है। आदमियों को जिंदा जला देना, दिनों-दिन बढ़ते अनेक प्रकार के अत्याचार और असुरक्षा सुशिक्षित बिसू को चैन से नहीं बैठने देते थे। बिसू ग्रामवासियों की नजर में भगवान के समान है। जोरावर जैसे जमींदार बिसू की ऐसी हरकतों से बहुत ही नाराज थे। दूसरी तरफ पुलिस की नजर में वह नक्सली था। पर वास्तव में तो वह नक्सलियों की आलोचना किया करता था। अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने के कारण बिसू को सुकुल बाबू के राज में बिना कोई कारण, बिना मुकदमा चलाए चार साल तक जेल में रखा जाता है।

---

1 महाभोज, पृ.सं.133

मगर सुकुल बाबू की सरकार के समय गिरफ्तार हुआ बिसू दा-साहब की सरकार के समय छोड़ दिया जाता है। जेल से आने के बाद बिसू की शारीरिक और मानसिक अवस्था का चित्रण करते हुए हीरा कहता है-"एक-दुइ महीना तो पड़ा रहा। न काहू से बोतल न चालब! न कहूँ आउन न जाब। बस, गोड़न में मुँह दिहे बइठा रहत......... जो खटिया पे लेटिगा तो लेटिके, आसमानै ताकत रहत.......जो खाय का कहौ तो खाय लै........न कहो तो भूखै......"[1] जेल के चार वर्ष ने बिसू को बिसू नहीं रहने दिया था। उसका सारा शरीर जख्मों से भर गया था। हीरा अपने बेटे बिसू के बाहरी और भीतरी असह्य जख्मों को देखकर कहता था, "बहुतै मुलायम रही खाल हमरे बिसू की साहब.....बहुतै मुलायम।"

नयी सरकार ने बिसू को जेल से मुक्त करवाया है। नयी सरकार यानी कि दा-साहब। वर्तमान सरकार के शासनकाल में गरीब किसान-मजदूरों की स्थिति और भी दयनीय हो गयी है और इसके साथ-साथ अभी भी साहूकारों और जमींदारों के द्वारा गाँववासियों का शोषण हो रहा है। इन सारी स्थितियों ने उसके मन को बेचैन कर दिया था और बेचैन होकर वह इधर-उधर घूमता रहता था। बिसू की इस परिस्थिति को देखकर उसकी माँ बहुत क्रोधित होती थी। बिसू कभी भी गाँव छोड़कर भागने का प्रयत्न भी नहीं किया था। क्योंकि गाँव सरोहा के प्रति उसे बहुत प्यार था। बिसू अपने गाँव का ओर हरिजनों का उद्धरण करना चाहता था। इसलिए बिसू सरकारी रेट पर मजदूरी न देनेवालों के खिलाफ आवाज उठाता था और मजदूरों को अपने अधिकार के लिए प्रोत्साहित जरूर करता था। बिसू के इस प्रकार के व्यवहार जोरावर सिंह जैसे भूमिपति को बिल्कुल पंसद नहीं था। कभी-कभी जोरावर बिसू को बुलाकर जेल भिजवा देने की धमकी भी देता था। बिसू ऐसी धमकियों से जरा भी विचलित नहीं होता था। लेकिन उन लोगों से खूब बहस और झगड़ा किया करता था। मगर कभी भी किसी के साथ मारपीट नहीं की थी।

---

1 महाभोज

बिसू और बिंदा मित्र थे। बिंदा से उसका परिचय जेल से छूटकर आने के बाद हुआ था। बिसू अक्सर बिंदा के घर में ही खाना खाया करता था। और ज्यादातर गाँववासियों की समस्याओं को लेकर बिसू और बिंदा के बीच में चर्चाएँ हुआ करती थीं। लेकिन चर्चाओं के द्वारा महेश शर्मा नामक एक युवक गाँव की क्लास-स्ट्रगल और कास्ट-स्ट्रगल विषय पर रिसर्च करने आया है तो बिसू को लगता था कि इन पढ़े-लिखे लोगों की वजह से थोड़ा बहुत ग्रामवासियों के उद्धार के लिए सहायता मिलेगी लेकिन ऐसी मदद से महेश से नहीं मिलता था। बिसू इस विषय को लेकर महेश से इस प्रकार कहता है-"केवल नाराज़ ही नहीं, लड़ता था बाक़ायदा हमसे कि आप जैसे पढ़े-लिखे लोग खाली तमाशबीन बनकर बैठे रहेंगे तो इन गरीबों की लड़ाई कौन लड़ेगा? जहाँ दिन-दहाड़े इतना जुलुम होता हो वहाँ कोई कैसे अलग-अलग बैठकर खाली कागज़ पोतता रह सकता है?"[1] चूँकि बिसू को पुलिस वर्ग पर बिल्कुल विश्वास नहीं था। क्योंकि हरिजनों की झोपडियाँ ही नहीं, आदमियों को जिंदा जला देनेवाले जोरावरसिंह जैसे जमींदारों का कूटनीति को दिल्ली जाकर प्रधानमंत्री के सामने खुलवाना चाहता था। शायद इस काम के लिए बिसू महेश शर्मा से मदद माँगता था। आगजनी की घटना का असली मुजरिम भूमिपति जोरावर है इसलिए क्रूर जोरावार सिंह बिसू को अपने मार्ग का काँटा ही समझता था और वह मौके की तलाश में था। मौका मिलते ही जोरावर गाँव के दो युवकों के द्वारा चाय में जहर मिलवाकर उसकी जान लेने में सफल हो जाता है तथा उसकी लाश सड़क के किनारे पुलिया पर डाल दी जाती है। और इसी लाश के जरिए भूतपूर्व मुख्यमंत्री सुकुल बाबू सरोह उपचुनाव में लाभ उठाना चाहते हैं। सही अपराधी को सारा गाँव जानता है पर पकड़ा नहीं जाता। दा-साहब का संकेत पाकर बिसू के मित्र बिंदा को हत्यारा बनाता है और उसे कैद कर लिया जाता है तथा पुलिस बुरी तरह से उसे पीटती है।

अब सच में खाने के लिए सही भोजन मिल गया है क्योंकि यही सुअवसर जानकर विरोधी दल के खिलाफ अपना सत्ता के द्वारा गाँववालों में विश्वास प्रकट

---

1 महाभोज-पृ.सं.91

करना चाहता है। अपनी सत्ता और धन से पुलिस अफसरों, डाक्टरों, वकीलों, शिक्षामंत्रियों को और पत्रकारों को खरीदकर अपनी मुट्ठी में बंद कर रखता है। दा-साहब अपनी ओर एक राजनीति की चाल चलाना चाहता है। दा-साहब बहुत शांत स्वभाव के हैं। आवेश से नहीं, आलोचना के साथ लोगों के प्रति अन्याय करना उनका मुख्य उद्देश्य है। एक बार लखनसिंह को समझाते हुए दा-साहब इस प्रकार कहता है-"आवेश राजनीति का दुश्मन है। राजनीति में विवेक चाहिए। विवेक और धीरज!" प्रवचनीय मुद्रा में दा-साहब ने जीवन के अनुभवों से निचुड़ा हुआ वाक्य उछाला। फिर कुछ क्षण रुककर हौसला बँधाते हुए बोले "आयेगा, पद पर बैठोगे तो पद की जिम्मेदारी स्वयं सब सिखा देगी।"[1] आवेश और क्रोध को कम करने के लिए लखन को समझाते हुए अपने व्यक्तित्व के बारे में दा-साहब इस प्रकार स्पष्ट करता है-"देखो भाई! मेरे लिए राजनीति धर्मनीति से कम नहीं। इस राह पर मेरे साथ चलना है तो गीता का उपदेश गाँठ-बाँध लो-निष्ठा से अपना कर्तव्य किए जाओ, बस। फल पर दृष्टि ही मत रखो। फिर एक क्षण ठहरकर पूछा; पढते हो गीता या नहीं? पढ़ा करो। चित्त को बड़ी शांति मिलती है।"[2]

और दूसरी ओर सुकुल बाबू विरोधी दल के मुख्य पात्र हैं। सुकुल बाबू को ज्योतिष पर अनंत विश्वास था। हम यह भी समझ सकते हैं कि सुकुल बाबू अंधविश्वास को मानता है। सुकुल बाबू सरोहा की सीट पर विरोधी दल के नेता के रूप में चुनाव लड़ रहे थे। उसी समय पर हरिजन युवक बिसू की मौत हो जाती है। यही सुअवसर मानकर सुकुल बाबू अपनी हार को जीत में बदलने के लिए मौके का फायदा उठाना चाहते थे। बासठ वर्ष के सुकुलबाबू कभी-कभी राजनीति के बारे में उन्हें इस प्रकार लगता था कि - पर मन बेहद क्षुब्ध हो गया है उनका। उन्हें खुद लगने लगा कि राजनीति गुंडागर्दी के निकट चली गयी है। जिस देश में देव-तुल्य राजनेताओं की परंपरा रही हो, वहाँ राजनीति का ऐसा पतन! कभी-

---

1 महाभोज-पृ.सं.15

2 वही, पृ.सं.21

कभी मन में एकदम वैराग्य जाग जाता है। पर राजनीति में जहाँ तक अपने को धँसा लिया, वहाँ से निकल भी तो नहीं सकते। निकलने का सीधा अर्थ है-हार मान लेना। और जीवन में एक यही तो बात है जिसे वो कभी नहीं मान सकते। पिछले चुनाव में हारकर भी मन से वे उस हार को एक दिन के लिए भी स्वीकार नहीं कर सके। उस हार को जीत में बदलना ही है-जो भी हो.....जैसे भी हो। कृतसंकल्प है उसके लिए।"[1] और सुकुल बाबू लोगों में विश्वास दिलाने के लिए बिसू की हत्या के बारे में और हरिजनों के प्रति स्नेह की भावना इस प्रकार प्रकट करता है-"क्या दोष था इन हरिजनों का? यही न कि सरकारी रेट पर मजदूरी माँग रहे थे? गुनाह था यह? पर शायद था-तभी तो जिंदा जला दिये गये और जिन्होंने जलाया, उन पर कोई उँगली उठाने वाला तक नहीं। बेचारे बिसू ने उँगली उठाने की कोशिश की तो हमेशा के लिए चुप कर दिया गया उसे। अब होगी किसी की हिम्मत जो चूँ भी कर जाए! हो ही नहीं सकती। पुलिस गवाही लेने आयी। तब भी किसी की हिम्मत नहीं हुई कि सच बात कह दे। जानते हैं, सच बोलते ही गला दबा दिया जाएगा और जहाँ सच का ही गला दबाता हो, वहाँ न्याय की उम्मीद की जा सकती है? भूल जाइए कि आपको कभी न्याय मिलेगा।"[2]

इस प्रकार सुकुलबाबू ने झूठी तसल्ली के साथ लोगों के मन में विश्वास की भावना भर दिया और अपनी ओर से नाटकीय रूप से सहानुभूति प्रकट किया।

लेकिन सुकुलबाबू स्वयं जानते हैं कि इन हरिजन बस्ती वालों को किसी तरह से भी सहायता नहीं मिलेगी। सुकुलबाबू जनता से इस प्रकार कहता है-"हर हालत में। और चुनाव जीतने के लिए गाँव के धनी किसानों के वोट भी चाहिए और पैसा भी। इसलिए अभी उनकी हर ज्यादती पर, हर अन्याय पर परदा डाला जाएगा....उन्हें बचाया जाएगा। इसलिए अच्छी तरह जान लीजिए कि इस हत्या के लिए कुछ नहीं होने जा रहा है। कौन करेगा? पंचायत इनकी.....पुलिस इनकी, और अब तो विश्वास हो गया होगा आपको कि सरकार भी इन्हीं की है। तब कौन

---

1 महाभोज, पृ.सं.24
2 वही -पृ.सं.28

लड़ेगा आपकी लड़ाई?.....आपको न्याय दिलाने के लिए.....आपका हक दिलाने के लिए कौन आएगा?"[1] और आगे सुकुलबाबू हरिजनों में विश्वास भरकर वोट पाने की भावना से गाँववालों के मन में अन्याय के प्रति लड़ने के लिए झूठी तसल्ली दिलाकर इस प्रकार कहता है-बात केवल बिसू की मौत की नहीं है....यह आप सब लोगों के जिंदा रहने का सवाल है.....अपने पूरे हक्र के साथ जिंदा रहने का। यह मौत कुछ हरिजनों की या एक बिसू की नहीं.....आपके जिंदा रहने के हक्र की मौत है। आपका यह हक्र ज़रा-से स्वार्थ के लिए गाँव के धनी किसानों के साथ बेच दिया गया है.....और यही हक्र मुझे आपको वापस दिलवाना है। जुलुम ने आप लोगों के हौसले तोड़ दिए हैं। इसलिए मैं लड़ूँगा आपकी यह लड़ाई। ....आखिरी दम तक लड़ूँगा। आप लोग साथ देंगे तो भी.....नहीं देंगे तो भी.....।"[2] तुरंत इस भाषण पर जनता इस प्रकार आवाज़ दती है-"सुकुल बाबू, जिंदाबाद!....हरिजनों के हमदर्द, जिंदाबाद!"[3] सुकुलबाबू से भी दा-साहब दस कदम आगे हैं। दा-साहब, पत्रकारों की सहायता से विषय बदलवाने के लिए कहता है और एस.पी. सक्सेना से लोगों के मन में झूठी तसल्ली दिलाने के लिए बिसू की हत्या रिपोर्ट लेने के लिए कहता है। एस.पी.सक्सेना साधारण इन्सान होने के नात सही सही रिपोर्ट तैयार करता है। दा-साहब के अनुकूल बयानों की रिपोर्ट तैयार नहीं करनेवाले एस.पी. सक्सेना को सस्पेंशन का आर्डर मिल जाता है। डी.आई.जी. सिन्हा को न्याय के खिलाफ लड़ने के कारण आई.जी. का पद मिलता है। ये सब दा-साहब के संकेतों के अनुसार चलते हैं। देश और समाज की रक्षा करनेवाले इन पुलिस वर्गों में डी.आई.जी.सिन्हा जैसे लोग अपने कर्तव्यों को भूलकर देश के रक्षक बन जाते हैं।

कानून के क्षेत्र भी अनुमान पर नहीं प्रमाण के साथ न्याय दिया जाता है। पूरे गाँववाले बिसू की आत्महत्या नहीं हत्या का नारा लगाते हैं। इस बात को

---

1 महाभोज-पृ.सं.29

2 वही -पृ.सं.30-31

3 वही -पृ.सं.31

सुनकर लखनसिंह थोड़ा घबरा जाता है। दा-साहब लखन को समझाते हुए इस प्रकार कहता है-"कानून अनुमान पर नहीं, प्रमाण पर चलता है और पुलिस प्रमाण जुटा रही है। कानून के सामने मेरी-तुम्हारी हस्ती ही क्या है भला?"[1]

दा-साहब "मशाल" के संपादक दत्ताबाबू नामक पत्रकार को उनकी पत्रकारिता पर लक्ष्य कर कहते हैं-"आपके अखबारों को पूरे हक़ मिल गये, अब आप लोगों को पूरा कर्तव्य भी निभाना चाहिए। अपने देश के प्रति, समाज के प्रति और खास करके इस देश की गरीब जनता के प्रति। बहुत सारी जिम्मेदारी होती है अखबार-नवीसों के कंधों पर। और मैं चाहता हूँ कि उसके प्रति पूरी तरह सचेत हों....आप.....।"[2]

पत्रकार समाज और देश के लिए एक आईना जैसा है। लेकिन पत्रकार अपनी मर्जी से न्याय, अन्याय के बारे स्पष्ट करने की स्वतंत्रता नहीं है क्योंकि दा-साहब के अनुसार ही लिखना पड़ेगा अगर कोई दा-साहब के बातों की उल्लंघन करने से प्रतिफल क्या हुआ उन्हीं बातों को पिछले पत्रकार के बारे में दा-साहब इस प्रकार कहने लगे - "पिछली सरकार ने कुछ अखबारों को विज्ञापन न देने का आदेश दे रखा था सरकारी महकमों में। सही बात कहने का साहस दिखलाया था इन अखबारों ने। उसकी सजा थी यह शायद। पर भाई मेरे, साहस को तो पुरस्कृत होना चाहिए। मैंने वै सारी पाबंधियाँ हटा दी हैं। अखबारों पर किसी तरह की भी पाबन्दी हो, प्रजातन्त्र की हत्या है यह।"[3]

अगर दा-साहब की बातों में हाँ में हाँ मिलाने वाला दत्ताबाबू नामक पत्रकार कोसरकारी पूरी सुविधाएँ मिल जाती हैं।

बिसू की हत्या सही रिपोर्ट डाक्टर द्वारा नहीं मिलती है। दा-साहब के कारण डाक्टर रिपोर्ट भी झूठ लिखता है। लेकिन किसी में भी यह अन्याय देखने की हिम्मत नहीं है। वास्तविक रूप में देखा जाय तो डाक्टरी रिपोर्ट में कोई जहर

---

1 महाभोज-पृ.सं.14

2 वही -पृ.सं.41

4 वही , पृ.सं. 41

पीने से कब कितने घंटों में आदमी मर सकता है? इसका वास्तविक रूप मन्नू भण्डारी इस प्रकार स्पष्ट करती है - "डाक्टरी रिपोर्ट में जिस जहर की बात है, यह दस-बारह घंटे बाद असर करनेवाला है।"[1]

लेकिन सब कुछ जानने के बाद भी गाँववालों के मन में झूठी तसल्ली दिलाने के लिए दा-साहब पीछे से यह सब कुछ करवाते हैं।

पवित्र गंगा की तरह बहनेवाली शुद्ध स्वच्छंद रूप में लोगों के दिल और दिमागों में ज्ञान की ज्योति जलानेवाली शिक्षा संस्था को भी दा-साहब छोड़ना नहीं चाहता है। दा-साहब के संकेतों के अनुसार काम नहीं करने की वजह से शिक्षा मंत्री को बदल कर वह स्थान दूसरे आदमी को दिया जाता है। रावत नामक अपने वफादार आदमी से दा साहब कहता है - "शिक्षा-मंत्री का पद खाली हो रहा है। राव, तुम सँभालो इस भार को। लोचन ने वैसे भी कोई सन्तोषजनक काम किया नहीं इस क्षेत्र में। मेरे हिसाब में सबसे महत्वपूर्ण है यह पद-भावी पीढ़ी का निर्माण करने का सारा दायित्व इसी मंत्रालय पर है। स्वीकारो इस चुनौती को।"[2]

इस प्रकार दा-साहब ने शिक्षा-संस्था को भी खरीद लिया है और दा-साहब गरीब लोगों के बारे में व्यंग्य के साथ इस प्रकार दत्ताबाबू को समझाता है - "ठीक है भाई, तुमको चुनाव जीतना है......पर लोगों की शान्ति और आपसी सद्भावना पर तो मत जीतो। होगा क्या, गाँव में पहले ही तनाव है, और बढ़ जायेगा। आपस में ही मार-काट मचेगी। और इस सबका परिणाम? पिसेगा बेचारे गरीबों का तबका। सम्पन्न लोग तो जैसे-जैसे बच ही जाते हैं - पैसे के जोर से, ताकत के जोर से। मरता तो गरीब ही है न? नहीं......नहीं......।"[3]

जब बिसू की हत्या हुई थी तब पूरा गाँव एक हो गया था। न सुकुल बाबू न दा-साहब किसी से भी मदद नहीं मिलती है तो तब गाँववालों की इस एकता को देखकर दा-साहब गाँववालों से कहने लगा - इस बार तो देख लिया सबने कि

---

1 महाभोज, पृ.सं. 157
2 वही , पृ.सं. 135
2 वही , पृ.सं. 40

जनता की एकता में बड़ा जोर है। तूफानी जोर। तूफ़ान आता है तो बड़े-बड़े पेड़ों को जड़ सहित उखाड़ फ़ेंकता है। जनता एक होती है तो बड़े-बड़े राज्य उलट देती है। फिंका हुआ आदमी ही इस बात को सबसे ज्यादा महसूस करता है। कुर्सी पर बैठना है तो जनता में फूट डालो......कुर्सी बचानी है तो जनता में फूट डालो। जनता की एकता-कुर्सी के लिए सबसे बड़ा खतरा है। समझ रहे हैं न आप लोग मेरी बात? आप लोग खुद.......।"[1]

इस प्रकार गाँववालों के साथ दा-साहब जूठी तसल्ली दिलाने का प्रयास करता है। अंत में ये सारे बड़े-बड़े लोग मिलकर अपने-अपने अन्याय रिपोर्ट के माध्यम से बेकसूर, बिंदा को हत्यारा बनाते है। लखन सिंह को बिन्दा की गिरफ़तारी के समय बिंदा किस प्रकार व्यवहार करता है उस दृश्य को मन्नू भण्डारी ने इस प्रकार स्पष्ट किया है - "गिरफ़्तारी के समय वह स्वयं उपस्थित था, और शहर के थाने तक भी साथ गया था। बिन्दा का बेशुमार चिल्लाना और अंगारे की तरह धधकती हुई उसकी आँखें! भूल ही नहीं पा रहा है वह उन आँखों को, बल्कि अब तो हालत यह हो गयी है कि शहर के हर आदमी के चेहरे पर उसे वे ही आँखें दिखाई देने लगी हैं। एक अजीब-सी दहशत समा गयी है उसके मन में। शुरू से दा-साहब के साथ रहने के बावजूद राजनीति में इतना पगा नहीं है कि ऐसी बातें का कोई असर ही न हो।"[2]

इस प्रकार अंत में बेकसूर बिंदा को सजा मिलती है। तब गाँव के जोरावर सिंह अपनी खुशी बड़े-बड़े अफसरों के साथ किस प्रकार मिलकर मनाते हैं मन्नू भण्डारी इस प्रकार स्पष्ट करती है - "बड़े-बड़े सरकारी अफ़सर, व्यापारी, वकील, डॉक्टर- कहना चाहिए - क्रीम आफ द टाउन - जुटा हुआ है इस समय सिन्हा साहब के लॉन में। वर्दीधरी बैरे ट्रे में साफ्ट ड्रिंक्स लेकर घूम रहे हैं। यहाँ से वहाँ तक फैली, सजी-सँवरी मोटी-छरहरी महिलाएँ ही उपकृत कर रही हैं इन लोगों को। पुरूषों की भीड़ तो टुकड़ों-टुकड़ों में ऊपर-नीचे आ-जा

---

1 महाभोज, पृ.सं. 68
2 वही , पृ.सं. 148-149

रही है। यों महिलाओं के लिए भी वह क्षेत्र वर्जित कतई नहीं, पर कम ही है उनकी संख्या जहाँ। ऊपर के कमरे में बाकायदा बार बना हुआ है। शीवाज-रीगल, ब्लैक-डॉग से लेकर देशी रम तक कम-से-कम पच्चीस किस्म की शराबें रखी हुई हैं वहाँ और सिन्हा साहब के दोनों पुत्र बड़ी शालीनता और मुस्तैदी के साथ सबको अपनी-अपनी पसंद का ड्रिंक डाल-डालकर दे रहे हैं। सिन्हा साहब शिष्टता के नाते हर किसी के पास दो-दो मिनट जाकर बधाई के बोझ से बोझिल होते जा रहे हैं। श्रीमती सिन्हा बिना किसी काम के ही अपने भारी-भरकम शरीर को बड़ी फुर्ती से इधर-उधर घुमाकर ऐसी व्यस्तता का आभास दे रही हैं कि लगता है जैसे इनके चलने से ही पार्टी चल रही है।"[1] और थोड़ी देर के बाद इन्कमटैक्स कमिश्नर वर्मा भी आते हैं। इसका चित्रण लेखिका इस प्रकार दर्शाती है - "तभी इन्कमटैक्स कमिश्नर वर्मा - जो उम्र में कुछ बड़े होने के बावजूद अपने को सिन्हा का लंगोटिया यार कहते हैं - गेट से ही गुहारते हुए घुसे, "अरे सिन्हा, मुबारक हो भाई", और बड़ी गर्मजोशी से सिन्हा के गले मिले। फिर बड़ी शरारत-भरी मुस्कान के साथ कहा, "यार, बड़ी रौनकें लगा रखी हैं? लगता है, बिना डिजर्व किये प्रमोशन मिल गया है तुझे.....वरना रुटीन में ऐसा क्या रखा है?"[2]

और उसी समय कुछ लोग आपस देश के बारे में इस प्रकार चर्चा करते हैं - "हाथ में कीमती गिलास थामे हुए कोई दल देश में बढ़ते भ्रष्टाचार पर चिन्ता कर रहा था, तो कोई फैलती हुई अव्यवस्था पर। किसी के सोच और शेष का विषय था - देश का तेजी से गिरता हुआ नैतिक स्तर, तो किसी को दिन-ब-दिन बढ़ते हुए मूल्य परेशान कर रहे थे। रोग़न-पॉलिश से चमकती हुई, लक़दक़ कपड़ों में लिपटी स्त्रियाँ पुरूषों की हाँ में हाँ मिला रही थी।"[3] और आगे भवानी अपनी कलम खोलते ही दत्ताबाबू से इस प्रकार कहता है - "देश में क्रान्ति जब

---

1 महाभोज, पृ.सं. 149-150

2 वही , पृ.सं. 150

3 वही , पृ.सं. 151

आयेगी तब आयेगी ..... और कम्बख्त कभी आयेगी भी या नहीं, भगवान जाने, पर "मशाल" के दफ़्तर और मशाल के संपादक, सह-संपादक की जिन्दगी में तो क्रान्ति दरवाजें पर आकर खड़ी हो गयी समझो। अभी सारा हिसाब समझाकर तुम्हें क्रान्ति की झलक भी दिखा देता हूँ।"[1]

यहाँ सच्ची देश भक्ति को मन्नू भण्डारी बड़े-बड़े नेताओं के शराबी ग्लासों में शराबी के रूप में तैरने की स्थिति या चेष्टा यथार्थ के रूप में स्पष्ट करती है। धन और अधिकार के सामने गरीब स्वाभिमान के साथ खड़े होने के लिए कोशिश करता है मगर कोशिश, कोशिश ही रह जाती है प्रस्तुत उपन्यास में बिन्दा के द्वारा मन्नू भण्डारी इस प्रकार स्पष्ट करती है - "पुलिस की बेतों और ठोकरों की बौछार के बीच बिन्दा कह रहा है, मैंने बिसू को नहीं मारा.....मैं बिसू को मार ही नहीं सकता। मुझे तो उसकी आखिरी इच्छा पूरी करनी है। मैं उसे पूरा करके ही रहूँगा.....चाहे जैसे भी हो, जो भी हो.....।"[2] हाथी के सामने चींटी की जैसे हुआ था बिन्दा का हाल लेकिन फिर भी बहुत जोश से पुलिस के बेतें खाते हुए भी जोर से इस प्रकार चिल्लाने लगा - "मार डालो, मार डालो। तुमने बिसू को मार डाला, मुझे भी मार डालो, लेकिन देखना बिसू की इच्छा को कोई नहीं मार सकता।"[3]

इस प्रकार मन्नू भण्डारी ने गाँव के हरिजनों के साथ होनेवाले अन्याय और अत्याचारों के द्वारा गरीब और अमीर, नेताओं की सत्ता और उनकी अन्दरुनी हकीकत के बारे में यथार्थ चित्रण कर एक प्रकार से "महाभोज" को राजनीति का भविष्य के रूप में प्रस्तुत किया है। वस्तुतः "महाभोज" आज की कुत्सित राजनीति का एक ऐसा परिदृश्य है जिसे पढ़ कर राजनीति के वर्तमान और भविष्य के "यथार्थ" को समझा जा सकता है।

* * *

---

1 महाभोज, पृ.सं. 152
2 वही , पृ.सं. 158
3 वही , पृ.सं. 158

अध्याय छह

# मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में मनोवैज्ञानिक यथार्थबोध

## मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में मनोवैज्ञानिक यथार्थबोध :-

मनोविज्ञान ने आधुनिक विचारकों को सर्वाधिक प्रभावित किया है। मनोविज्ञान के व्यापक अध्ययन के कारण साहित्यकारों के दृष्टिकोण में महान परिवर्तन हुए। साहित्य के क्षेत्र में मनोविज्ञान का सर्वाधिक प्रभाव कथा-साहित्य पर पड़ा। मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, "यथार्थवाद" का वह रूप है जिसका विकास आधुनिक हिंदी साहित्य में मनोविश्लेषणात्मक विचारधारा के समानांतर हुआ। स्थूल रूप से मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, समाजवादी यथार्थवाद के विपरीत मनुष्य की वैयक्तिक चेतना की विवृत्ति हुआ करता है। वह उसके समष्टिगत महत्व और मूल्यों को अस्वीकारता नहीं है, फिर भी वह बाह्य सत्ता का विश्लेषण करने के स्थान पर उसके अचेतन, उपचेतन तथा अवचेतन मन के रहस्यों को उद्घाटित करता है।

अपने व्यापक स्तर पर मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद मनुष्य के अंतर के समस्त भावनात्मक उतार-चढ़ावों का विश्वसनीय चित्रण साहित्य में प्रस्तुत करता है। जो साहित्यकार उसके व्यापक अर्थ को मान्यता देते हैं वे मानव मन की विवृत्ति के साहित्य के अनुगामी हैं और उसके निर्बाध चित्रण पर बल देते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान के प्रवर्तक फ्रायड ने अपने सिद्धांतों में मनुष्य की अंतर चेतना की जो व्याख्या की है वह मानव के अचेतन और अर्धचेतन के महत्व को असाधारणता प्रतिपादित करती है। फ्रायड के एक अन्य सिद्धांत को "स्वप्न सिद्धांत" कहते हैं, जो परोक्ष रूप में मानव मन की अस्पष्ट इच्छाओं का परिचायक है। साहित्य में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का जो रूप दृष्टिगत होता है, इसके अंतर्गत फ्रायड के मनोविश्लेषण और स्वप्न सिद्धांत दोनों का समावेश हुआ है। इस प्रकार से मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, "यथार्थवाद" का एक प्रमुख रूप है जिसका विकास कथा-साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट मनोविश्लेषण शास्त्रियों के सिद्धांतों का आश्रय ग्रहण करके हुआ है।

मनोवैज्ञानिक "यथार्थवाद" का सामान्य अर्थ है-मनुष्य की मनःस्थिति जाने बगैर उसका यथार्थ चित्रण नहीं करना। त्रिभुवन सिंह के शब्दों में "जहाँ तक यथार्थ चित्रण का प्रश्न है, उपन्यासकार यदि मनुष्य के कार्यों का तद्भव चित्र उतारना चाहेगा तो उसे उसके कार्य व्यापारों की भाँति ही उसके विचारों का भी लेखा जोखा लेना ही पड़ेगा कि वे करने के साथ ही साथ सोच क्या रहे हैं। इस प्रकार उपन्यासकार को बाध्य होकर लोगों के मस्तिष्क से भी संबंध रखना पड़ेगा और उसके भीतर (उपन्यासों में) अधिक पृष्ठों की व्यवस्था उसे केवल मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मातिसूक्ष्म मानसिक क्रियाओं तथा दिवा स्वप्न आदि को चित्रित करने के लिए सुरक्षित रखना होगा। मानव का क्रियाशील जीवन ही उसका संपूर्ण जीवन नहीं है, यहाँ तक कि वह उसका सबसे महत्वपूर्ण जीवन भी नहीं है। सबसे अधिक महत्व है विचारों तथा भावनाओं से निर्मित आंतरिक जीवन का। इसलिए उपन्यासों को यथार्थवादी बनने के लिए उन्हें मनोवैज्ञानिक बनना ही पड़ेगा।"[1]

कोई भी रचना निरुद्देश्य नहीं होती, उसकी सर्जना के पीछे कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। इस मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में प्रेमचंद को प्रमुख स्थान दिया गया है। प्रेमचंद की दृष्टि में मनुष्य कल्याण सर्वोपरि है। इसलिए वे आदर्शोन्मुख यथार्थवादी रचनाकार माने जाते हैं। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में नारी मनोविज्ञान को भी अत्यंत निकट से परखा है। भारतीय नारी आदिकाल से ही आभूषणप्रिय रही है। एक प्रकार से नारी आभूषणों के बिना स्वयं को अधूरी समझती है। चाहे वह उच्च वर्ग की स्त्री हो या निम्न वर्ग की स्त्री, सभी को आभूषणों से प्रेम रहा है। उसके जीवन में सब प्रकार की सुख-सुविधाएँ होने पर भी उसके पास इच्छित आभूषण नहीं हैं तो वह खुद को हीन समझती है और वह आभूषण को पाने के लिए हर प्रकार की कोशिश करती है। बचपन से ही अबोध कन्या के मन में नकली आभूषण पहनाकर आभूषण के प्रति प्रेम

---

1 त्रिभुवन सिंह-हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद-पृ.सं.21-22

उत्पन्न करा दिया जाता है और लड़कियों में इस प्रकार का आश्वासन दिया जाता है कि विवाह के पश्चात् उसे उसकी ससुराल से असली सोने के जड़ाऊ गहने मिलेंगे।

इस प्रकार कन्या के मन में क्रमशः गहनों की लालसा आयु बढ़ने के साथ-साथ उद्दीप्त होती जाती है। "गबन" में प्रेमचंद ने नारी की आभूषण के प्रति लालसा के मनोविज्ञान को दर्शाया है। "गबन" में नारी के आभूषण-प्रेम और मध्यमवर्ग के प्रदर्शन प्रियता की भावना से उत्पन्न समस्या को भी चित्रित किया गया है। आमदनी कम होने के कारण तथा नौकरी की प्रतियोगिता के कारण उत्पन्न मानसिक तनाव को नारी किस प्रकार से सहन करती है-यह मनोभाव भी "गबन" में है। मध्यमवर्गीय नारी की आर्थिक रूप से पराधीनता संयुक्त परिवार की समस्या, जाति-प्रथा, दहेज-प्रथा की समस्या आदि कई कठिनाइयों को दिखलाकर लेखक ने जालपा, रतन, जग्गो, जोहरा, मानकी, जागेश्वरी जैसी नारियों के मनोविज्ञान को प्रस्तुत किया है। नारी-मनोविज्ञान में इतना निश्चित है कि नारी में पति-सेवा, आत्म-सम्मान की भावना, परिवार के प्रति समर्पण भाव भी रखती है। स्त्री सुलभ संकोच, लज्जा, अभिमान सभी भावों को हम "गबन" उपन्यास के नारी पात्रों में पाते हैं।

"कर्मभूमि" की नायिका "सुखदा" के माध्यम से प्रेमचंद ने नारी चेतना को दर्शाया है। "सुखदा" धनवान परिवार की इकलौती पुत्री है। अपने पति की त्याग प्रवृत्ति से वह खिन्न रहती है। तनाव की स्थिति में अमरकांत के घर छोड़कर चले जाने पर उसके यथार्थ चरित्र का विकास आदर्श की ओर होता है। वह अछूतों के मंदिर में जाती है, प्रसिद्धि पाती है। उसके बाद गरीबों के लिए हड़ताल का आयोजन करने के कारण जेल जाती है। जेल में भी अपने सुंदर स्वभाव से कैदियों का मन जीतती है। इस प्रकार प्रारंभ से अंत तक स्त्रीयोचित्त, तेजस्विता और कर्तव्य-परायणता जैसे आदर्शवादी आधार पर सुखदा को प्रस्तुत किया गया है। जब सुखदा गिरफ्तार हो जाती है तब वह घोषणा करती है-"इसी राख से वह आग प्रज्जवलित होगी जिसकी आंदोलित शिखाएँ आकाश को हिला देंगी।"

"सेवासदन" उपन्यास की नायिका सुमन के माध्यम से प्रेमचंद ने नारी चेतना को प्रस्तुत किया है। सोलह वर्षीय सुमन अत्यंत सुंदर है। उसके विवाह में दहेज जुटाने के लिए पिता रिश्वत लेता है और जेल चला जाता है। सुमन का विवाह तीस वर्षीय दुहाजू गजाधर से होता है। यहाँ सुमन को सम्मान नहीं मिलता। परिणामस्वरूप नगर के अन्य संभ्रांत व्यक्तियों द्वारा वेश्या के रूप में ही आदर मिलता है। अपरिपक्व अवस्था वाली सुमन पति की बात को मानने के कारण वह अंततः वेश्या बन जाती है। विट्ठलदास जी जैसे समाज-सुधारक के द्वारा समाज में अपने स्थान के बारे में पता चलता है और उसके साथ वहाँ से भाग कर विधवा आश्रम में अपनी बहन शांता के साथ रहने लगती है। रात-दिन घर और बाहर का काम करने के बाद भी उसे तिरस्कार ही मिलता है। अंततः अनेक संघर्षों के बाद उसे अनाथालय याने कि संचालन का रचनात्मक कार्य मिलता है। सुमन की बहन शांता का विवाह सदन से होने के बाद उसका चरित्र उस समय अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।

"निर्मला" में नायिका निर्मला के माध्यम से दहेज और अनमेल विवाह की करुण वेदना और नारी मन के अंतर्द्वन्द्व का अप्रतिम चित्रण हुआ है। पिता की असमय मृत्यु के बाद निर्मला की सगाई का टूटना, फिर अपने से उम्र में कहीं बड़े तीन बच्चों के पिता से उसका विवाह होना आदि के रूप में, नारी के जीवन संघर्षों की दारुण नियति का रोमांचक उल्लेख "निर्मला" में हुआ है।

निर्मला को इस घर में प्रेम तो बहुत मिलता है। लेकिन नारी होने की विडम्बनाओं से उसे यहाँ भी दो-चार होना पड़ा। वह तोताराम के बड़े पुत्र मंसाराम को सहज-स्नेह करती है। मगर इस स्नेह को संदेह की दृष्टि से देखकर, उसका पति उससे घृणा करने लगता है। फलस्वरूप बड़ा पुत्र इस आघात को सहन न कर अकाल मृत्यु का वरण करता है। मंझला लड़का चोरी के अपराध में पकड़े जाने पर आत्महत्या करता है। छोटा पुत्र दुनिया की माया से विरक्त होकर साधु बनकर गृह-त्याग देता है। और अंततः पुत्र वियोग में तड़प-तड़प कर तोताराम, निर्मला को

अकेला छोड़कर घर से निकल जाता है। इतनी सारी समस्याओं को सहने के बाद भी निर्मला के दुःखों का अंत नहीं होता। जिस व्यक्ति ने निर्मला का विवाह वृद्ध तोताराम से कराया था, वह निर्मला को अपने प्रेमपाश में फंसाने का प्रयत्न करता है। असफल होने पर वह आत्महत्या करता है। सारा जीवन दुःखों का सामना करते-करते निर्मला टूटने लगती है। अंत में विषम परिस्थितियों के चक्रवात में घुल-घुल कर निर्मला की मृत्यु होती है। पारिवारिक जीवन में निर्मला कई बातों को पसंद-नापसंद करती है। परिवार में हर प्रकार से सुख-शांति बनी रहे, इस बात का हमेशा ध्यान रखती है। अपने चरित्र पर किसी प्रकार आँच नहीं आने देती। पत्नी के कर्तव्य का पालन बड़ी ईमानदारी से करती है। "निर्मला" की दूसरी नारी पात्र सुधा है। सुधा के चरित्र में आदर्श अधिक है, जबकि निर्मला में यथार्थ। सुधा अपने सुंदर स्वभाव से निर्मला का मन बहलाती है और यथाशक्ति सहायता भी करती है। सुधा में निर्मला से अधिक ओज और आत्मबल है। निर्मला अपने दुश्चरित्र पति को फटकारने का साहस नहीं रखती अपितु अपमान का घूंट पीकर शांत रहती है। परंतु सुधा कामुक पति की मृत्यु के पश्चात् भी कहती है "ऐसे सौभाग्य से तो मैं वैधव्य को बुरा नहीं समझती।" पर निर्मला की सहनशीलता और शालीनता से प्रभावित होकर उसका हृदय परिवर्तित हो जाता है। वस्तुतः "निर्मला" नारी मनोभावनाओं के कई स्वरूपों को प्रस्तुत करता हुआ एक सफल और यथार्थपरक उपन्यास है।

"गोदान" एक सामाजिक उपन्यास है जिसमें भारतीय समाज के दोनों अंगों-ग्राम्य और नगर की कथा है। दोनों समाजों की प्रतिनिधि नारियों का चित्रण-(जैसे धनिया, मुनिया, मिस मालती, सरोज, वृन्दा, चुटिया, गोविन्दी, दुलारी, सोना, रूपा, सिलिया, कलूटी आदि) है। होरी की पत्नी धनिया छत्तीसवें साल में ही अधेड़ उम्र की दिखने वाली झुर्रीदार चेहरा, सुंदर-सांवला रंग, मेहनती, नारी की साकार प्रतिमा है। वह दुनियादारी की बातों में कुशल, उदार, स्वाभिमानी, साहसी और दृढ़ मातृत्व आदि गुणों से युक्त नारी है। इसी के साथ-साथ उसमें ग्राम्य-नारियोचित कमियाँ,

आत्म प्रशंसा की भूखी, क्रोधी, वाचाल, उपशब्दों का खुला प्रयोग करनेवाली, अंधविवासी है। अपने इन्हीं गुण-दोषों से युक्त चरित्र एक ऐसा दर्पण है जिसमें निम्न वर्ग की ग्रामीण नारी प्रतिनिधित्व गुणों का वर्णन किया जा सकता है। होरी के शब्दों में "वह सेवा और त्याग की देवी है। जबान की तेज मोम जैसा हृदय। पैसे-पैसे के पीछे प्राण देनेवाली पर मर्यादा की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व होम कर देने को तैयार।" डॉ.त्रिलोकी नारायण दीक्षित के शब्दों में "धनिया भारतीय नारी की प्रतीक है जो आजीवन अधखाए और अर्द्ध-नग्न रहकर परिवार के हित के लिए स्व-व्यक्तित्व का बलिदान कर देती है। धनिया पत्नी, माता और सीधीसादी ग्राम्य नारी है। उपन्यास के प्रारंभ से ही वह होरी के कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करती दिखाई पड़ती है। जमींदार, पुलिस, महाजन, पंचायत आदि प्रसंगों में सभी सुख-दुःख में अपने पति का साथ देती है। इसी प्रकार गोबर-झुनिया के प्रेम प्रसंगों में वह एक ओर जहाँ गोबर को बुरा भला कहती है वहीं दूसरी ओर निस्सहाय झुनिया को समाज की परवाह न करके आश्रम देती है। सोना के विवाह के समय सामर्थ्य से अधिक दहेज देती है। इसी प्रकार देवरों से लड़ाई, सिलिया की मदद उसके स्वाभाविक गुण हैं। अपमान, उपेक्षा, लांछन को सहकर भी परिवार में स्नेह की वर्षा करती है।

मिस मालती, गोविन्दी, मीनाक्षी आधुनिक फैशन से युक्त रमणियाँ हैं। मिस मालती सुंदर, चंचल, निःसंकोची, मेकअप में प्रवीण, हाजिरजवाब, पुरुष-मनोविज्ञान की जानकार, आमोद-प्रमोद को जीवन का सही तत्व समझनेवाली आकर्षक युवती है। वह घर की सारी जिम्मेदारी संभालती है। दोनों बहनों की पढ़ाई-लिखाई का प्रबंध करती है-अपने शराबी पिता को सात्विक बनाने की चेष्टा में लगी रहती है। वह मूलतः भारतीय नारी है परंतु पाश्चात्य सभ्यता की साकार प्रतिमा भी है। किंतु अंत में पाश्चात्य वातावरण का असर मुलम्मा साबित होता है।

खन्ना की पत्नी गोविंदी उच्च वर्ग की नारी है जो आधुनिकता के नाम पर पति द्वारा किए गए अत्याचारों और अन्यायों को सहन करके चुप रहती है। कामुक,

अत्याचारी पति उसके लिए स्वर्ग है। इसलिए विवाह विच्छेद की बात वह सोच भी नहीं सकती।

"गोदान" में सभी नारी पात्र आदर्श और पूजनीय हैं। भारतीय संस्कारों से युक्त हैं। उन्होंने अपने सभी उपन्यासों में नारी-मनोविज्ञान के गहन तथ्य का निरूपण किया है।

प्रेमचंद की दृष्टि में स्त्री पृथ्वी की भाँति धैर्यवान है, शांति सम्पन्न है, सहिष्णु है। नारी केवल माता है और इसके उपरांत वह जो कुछ है वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र है। नारी मंगल, पवित्रता और त्याग की साक्षात् प्रतिमा है।

"कमरे, कमरा और कमरे" कहानी में मन्नू भण्डारी ने नारी के अकेलेपन का चित्रण स्पष्ट किया है। आधुनिक समाज में बढ़ते हुए मानसिक तनाव का सुंदर चित्रण "नीलिमा" नामक एक युवती को माध्यम बनाकर किया है। स्त्री के जीवन में बदलती हुई अनेक जीवन परिस्थितियाँ इस कहानी में देखी जा सकती हैं। पूर्व के भारतीय समाज में स्त्री को "अबला" के रूप में प्रदर्शित कर किसी के सहारे निर्भर रहता हुआ चित्रित किया जाता था। लेकिन आधुनिक समाज की स्त्री अकेली होकर भी जीवन चला सकती है। लेकिन उसे आधुनिक समाज की विडम्बनाओं से भी दो-चार होना पड़ता है जिससे उसमें विभिन्न प्रकार की कुंठाओं से भी गुजरना पड़ता है।

"कमरे, कमरा और कमरे" की नायिका "नीलिमा" बचपन से ही अपने माता-पिता के पास एक ही कमरे में रहकर अनुशासनबद्ध रहकर अपनी शिक्षा पाती है। पिताजी अपनी बेटी नीलिमा को डॉक्टर बनाना चाहते है। नीलिमा अंततः अपने पिता की आकांक्षा पूर्ण करती है। पहली बार नीलिमा घर छोड़कर नौकरी करने दिल्ली जाती है। वहाँ पर लड़कियों के होस्टल में, एक कमरे में रहकर प्राध्यापिका का काम करती है और साथ ही साथ पी.एच.डी. भी करती है। पढ़ाई के क्षेत्र में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त करती है कि "मीरा पटेल स्कॉलरशिप" लेकर अपनी योग्यता साबित करती है। मगर नीलिमा, एक ओर से मानसिक रूप से काफी उद्वेलित रहती

है। मन्नु भण्डारी ने उसका चरित्र स्पष्ट करते हुए लिखा है कि-"वह बड़ी लगन के साथ उन्हें रास्ता देती गयी और सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ती गयी। पर वह अपने मनोवांछित रास्ते पर जितनी आगे-बढ़ती जा रही थी, घर से, घरवालों से अनजाने और अनचाहे उतनी ही दूर होती जा रही थी। पहले की तरह उसने हर छुट्टी में घर जाना बंद कर दिया। लंबी छुट्टियों में भी वह केवल पाँच-सात दिनों के लिए ही घर जाती थी और हर बार उसे यह लगता था कि घर और उसके बीच की खाई बढ़ती जा रही है। अब घर जाने के पीछे अपनेपन की भावना कम और कर्तव्यभावना ज्यादा रहती थी।"[1]

इसके पहले रंजना घर में एक कमरे में रहना चाहती थी। मगर आज वह इस तरह रहने में बहुत अकेली और एक प्रकार का घुटन महसूस करती है। एक संदर्भ में रंजना सोचती है-"जैसे पूरे कॉलेज की चहारदीवारी उसके कमरे में बदल गई है, जो निरंतर सिमटता जा रहा है। तब वह कोई साथ मिलता, तो उसे लेकर या अकेले ही घूमने निकल जाती थी, पर वह चाहे सड़कों पर घूमती, चाहे किसी रेस्तराँ में या सिनेमा में बैठती.....रात को सारी सड़क और सारे स्थान उसे वापस उसके कमरे पर ही छोड़ जाते। और वह हैरान थी कि जिस अकेले कमरे की उसके इतनी कामना की, जिस कमरे ने उसे कहाँ से कहाँ लाकर खड़ा कर दिया, वही कमरा आज उसकी सीमा बन गया है। गर्मी की छुट्टियों में स्थिति और भी बुरी हो गयी। मीरा की अनुपस्थिति में उसका मन कहीं भी जाने को नहीं हुआ। लड़कियाँ सब अपने घरों को चली गयी थीं और बिना लड़कियों के हॉस्टल के लॉन और अधिक लम्बे चौड़े हो गये थे, जिनमें सारे दिन सांय-सांय करती लूएँ चला करती थीं। उसक बड़ा मन होता था कि वह अपने कमरे से निकलकर दूसरों के कमरों पर जाए, पर सारे कमरों में ताले लटके हुए थे और खीझकर उसे अपने ही कमरे में लौटना पड़ता था। ऐसी बात नहीं कि वह अपनी इस खीझ और ऊब का कारण नहीं समझती हो। पर उसे दूर करने का उपाय

---

1 एक प्लेट सैलाब, पृ.सं.115

उसे सचमुच ही समझ में नहीं आता था। उसने अपने चारों ओर नज़र दौड़ाई, पर कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखाई दिया जिस पर उसकी नज़र ठहरती।"[1]

श्रीनिवास एक विवाहित है और उससे रंजना का परिचय होता है। उसे लगता है कि वही आदमी सिर्फ उसकी मानसिकता को समझ सकता है। रंजना उससे शादी करके अपने अकेलेपन को दूर करना चाहती है। रंजना विवाहोपरांत कॉलेज और हॉस्टल छोड़कर श्रीनिवास के घर आ जाती है। पति की सेवा और पति के दफ्तर के काम में मदद करती है। पति आफिस के काम में बहुत बिज़ी रहता है। श्रीनिवास की व्यस्तता एक बार फिर रंजना को एकाकीपन के अंधेरे में धकेल देती है और रंजना के जीवन में पूर्व की तरह एक बार फिर घुटन की प्रक्रिया शुरु होती है।

"यही सच है" में मन्नू जी ने एक प्रेमिका की मानसिक वेदना को स्पष्ट किया है। आजकल की नारी संघर्षमय जीवन बिता रही है। अनेक समस्याओं का सामना करने के लिए वह तैयार है। बदलते हुए समाज के साथ आज की नारी बदली रही है। मगर मनासिक स्थिति में तो बदलाव नहीं आया। इस कारण शायद चाहे वह स्त्री हो या पुरुष समाज और जीवन में आगे तो बढ़ रही है। लेकिन मानसिक कुंठा के साथ जीवन बिता रही है। इसमें नायिका दीपा निशीथ से प्यार करती है। मगर कुछ कारणों की वजह से उन दोनों का प्यार टूट जाता है। दीपा निशीथ से धोखा खाती है। मगर आधुनिक स्त्री के रूप में वह निशीथ को भूलकर संजय से प्यार करती है। लेकिन वह अपने प्रथम प्यार को भुला नहीं पाती। दीपा संजय के हर क्रियाकलाप की तुलना अपने पूर्व प्रेमी निशीथ के साथ करती रहती है। एक अंतर्द्वन्द्व-सा उसके मन में हमेशा चलता रहता है। उसे अक्सर लगता है कि उसका पहला प्यार ही यथार्थ है।

दीपा के अंतर्द्वन्द्व का चित्रण मन्नू जी ने इस प्रकार किया है-"कैसे उसे बताऊँ कि निशीथ ने मेरा अपमान किया है, ऐसा अपमान, जिसकी कचोट से मैं आज भी तिलमिला जाती हूँ। संबंध तोड़ने से पहले एक बार तो उसने मुझे बताया होता कि

---

1 एक प्लेट सैलाब, पृ.सं.116

आखिर मैंने ऐसा कौन-सा अपराध कर डाला था जिसके कारण उसने मुझे इतना कठोर दण्ड दे डाला। सारी दुनिया की भर्त्सना, तिरस्कार, परिहास और दया का विष मुझे पीना पड़ा। .... विश्वासघाती! नीच कहीं का!.....और संजय सोचता है कि आज भी मेरे मन में उसके लिए कोई कोमल स्थान है! छिः! मैं उससे नफ़रत करती हूँ! और सच पूछो तो अपने को भाग्यशाली समझती हूँ कि मैं एक ऐसे व्यक्ति के चंगुल में फँसने से बच गई, जिसके लिए प्रेम एक सहज खिलवाड़ है।"

अपने पूर्व और वर्तमान प्रेम के अन्तर्द्वन्द्व के कारण वह एकनिश्चित निर्णय तक नहीं पहुँच पाती है। वह संजय के द्वारा उसके प्रति संशय किये जाने पर अपने पूर्व प्रेम के बारे में निशीथ को कहती है-"मैं तुम्हारे आगे, तुम्हारी हर उचित-अनुचित चेष्टा के आगे, यों आत्मसमर्पण करती? तुम्हारे चुंबनों और आलिंगनों में अपने को यों बिखरने देती? जानते हो, विवाह से पहले कोई लड़की किसी को इन सबका अधिकार नहीं देती। पर मैंने दिया। क्या केवल इसीलिए नहीं कि मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, बहुत-बहुत प्यार करती हूँ? विश्वास करो संजय, तुम्हारा मेरा प्यार ही सच है, निशीथ का प्यार तो मात्र छल था, भ्रम था, झूठ था।"[1]

बावजूद इसके वह अपने मन की द्विविधा को नहीं मिटा पाती और अक्सर उसे पहले प्यार की याद आती और कभी-कभी तो वही "सच्चा" लगने लगता है। एक बार इंटरव्यू के लिए दीपा कानपुर से कलकत्ता जाती है। वहाँ निशीथ को देखती है तो उसे लगता है-"कल्पना चाहे कितनी ही मधुर क्यों न हो, एक तृप्तियुक्त आनंद देनेवाली क्यों न हो, पर मैं जानती हूँ यह झूठ है। यदि ऐसा ही था तो कौन उसे कहने गया था कि तुम इस संबंध को तोड़ दो! उसने अपनी इच्छा से ही तो यह सब किया था।"[2] और दूसरी ओर इस प्रकार सोचती है-"अच्छा है, आए कल! मैं उसे बता दूँगी कि जल्दी ही मैं संजय से विवाह करनेवाली हूँ। यह भी बता दूँगी कि मैं पिछला सब

---

1 मन्नू भण्डारी : श्रेष्ठ कहानियाँ-(यही सच है)-पृ.सं.121-122

2 वही -पृ.सं.125

कुछ भूल चुकी हूँ। यह भी बता दूँगी कि मैं उससे घृणा करती हूँ और उसे जिंदगी में कभी माफ नहीं कर सकती।....."[1]

दीपा को लगता है-"एक बात अच्छी तरह जान गई हूँ कि प्रथम प्रेम ही सच्चा प्रेम होता है, बाद में किया हुआ प्रेम तो अपने को भूलने का, भरमाने का प्रयास मात्र होता है....."[2]

"जीती बाजी की हार" में मन्नू जी ने आधुनिक समाज की मानसिक कुंठाओं को स्पष्ट किया है। आशा, नलिनी और मुरला तीनों मित्र हैं। तीनों के आचार और विचार कालेज के दूसरी लड़कियों से बिलकुल भिन्न हैं। तीनों सहेलियाँ फैशन की दुनिया से दूर रहती हैं। कालेज की पढ़ाई में ध्यानमग्न रहने वाली तीनों सहेलियों में धीरे-धीरे बदलाव आता है। इसका प्रभाव आशा और नलिनी में देख सकते हैं। इस बदलाव के परिणामस्वरूप आशा और नलिनी का विवाह हो जाता है। लेकिन मुरला अपने निर्णय को बदलना नहीं चाहती। वह विश्वविद्यालय में ही रहकर पी.एच.डी. करती है। वह शादी नहीं करना चाहती। वह समाज में रहकर और उन दोनों मित्रों की शादी को देखकर भी ऐसा नहीं करती और पढ़ाई के महत्व को स्थापित करने का बहुत प्रयास करती है। बीच-बीच में अपने दोनों मित्रों से मिलती रहती है। एक बार नलिनी ने आशा से इस प्रकार कहा-"वह आजकल केवल किताबी कीड़ा ही नहीं रही, काफी काम की लड़की हो गयी है। उसने सिलाई सीख ली है और घर पर ही सिलाई करके काफ़ी किफ़ायत कर लेती है। घर के बाद पति का नम्बर आया तो उसके विद्यार्थियों की समस्याओं पर, आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के दोषों पर, अनुशासन की कमी पर एक सधा-सधाया भाषण ठोक दिया। मानो उसके पति नहीं, वह स्वयं ही

---

1 मन्नू भण्डारी : श्रेष्ठ कहानियाँ-पृ.सं.125

2 वही -पृ.सं.137

प्रोफेसर हो और रोज़ ही इन समस्याओं का सामना करती हो। साथ ही यह बताने में भी नहीं चूकी कि विद्यार्थियों में उसके पति कितने सर्वप्रिय है।"[1]

ये सब बातें सुनने के बाद मुरला को लगता है कि यह सब व्यर्थ है क्योंकि मुरला की नज़र में विवाह से पढ़ाई महत्वपूर्ण है। और मुरला आशा से मिलती है तो आशा भी नलिनी की तरह बताने लगती है। अपने होनेवाले पति के बारे में आशा ने इस प्रकार महसूस किया-"व्यक्ति प्रभावशाली है, प्रतिभा संपन्न है, उसकी बातों में सत्य है और कहने का ढंग ऐसा है कि वह अपनी बात मनवा ही लेता है। कवि महाशय रोज संध्या को आते, घंटों बैठते, साहित्य पर लंबी-लंबी बातें होतीं। कविता पाठ होता। उस समय आशा एक दूसरे ही लोक में होती। आशा ने महसूस किया कि वह कवि की प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकता से करती है, देरी होने से कुछ बेचैनी-सी भी महसूस करती है। साथ ही उसने यह भी महसूस किया कि कवि की बातों में, उसके व्यक्तित्व में, पुस्तकों की अपेक्षा कुछ अधिक आकर्षण है। वह स्वयं अपने मनोभावों में भारी परिवर्तन महसूस करने लगती है। अब चाहकर भी बिखरे बालों और अस्त-व्यस्त कपड़ों में कवि के सामने नहीं आ पाती। कभी उमंग में वह बालों में फूल भी लगा लिया करती है। मामा ने लक्ष्य किया तो समझ गये कि लक्षण शुभ हैं। दोनों को काफी निकट लाकर, अपना उद्देश्य पूरा करके उन्होंने आशा को रवाना कर दिया।"[2]

इस प्रकार दोनों मित्रों ने अपने-अपने वैवाहिक जीवन के बारे में बताया। उसके बाद मुरला अकेली हो जाती है। लेकिन मुरला इन दोनों से बिल्कुल अलग रहना चाहती है। आधुनिक समाज के साथ वह भी आगे बढ़ना चाहती है। मगर धीरे-धीरे वह अकेलापन महसूस करती है। विवाह का विरोध करके पढ़ाई में आगे बढ़ना चाहती है। लेकिन समाज में और परिवार में वह अकेली हो जाती है। पढ़ाई के क्षेत्र में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त करती है। कालेज के समय मुरला, आशा से यह वादा करती

---

1 मैं हार गई, पृ.सं.37-38

2 वही , पृ.सं.39

है कि वह कभी भी शादी नहीं करेगी। इस विषय में अगर मुरला जीत प्राप्त कर ले तो वह जो भी चाहेगी वह देने के लिए आशा तैयार है। अंत में मुरला जीत प्राप्त करती है तब आशा अपने वादे को पूरा करना चाहती है तब आशा मुरला से कहती है-"नहीं, नहीं! तुझे माँगना ही होगा। जो चाहे सो माँग ले।"[1] मुरला एक क्षण सोचकर आशा से कहती है-"अच्छा माँग लूँ, इन्कार तो नहीं करेगी?"[2] आशा हँसकर कहती है-"अरे माँग ले ना! बहुत बड़ा दिल पाया है, फिर तू तो यों भी कुछ माँग ले तो मना न करूँ, और अभी तो हारकर बैठी हूँ, किस मुँह से मना करूँगी।"[3] मुरला ने सकपकाते हुए आशा की छोटी बच्ची पर नज़र रखकर आशा से कहा-"तो अपनी यह बिटिया मुझे दे दे।"[4]

इसमें मन्नू जी ने नारी की मानसिकता को इस प्रकार स्पष्ट किया है। नारी जितना भी आधुनिक क्यों न हो, हर दूसरी लड़की अपने पति के साथ वैवाहिक जीवन बिताना चाहती है और यही यथार्थ है। इस प्रकार मन्नू जी यथार्थबोध को अपने इस कहानी के द्वारा दर्शाती हैं और इसके साथ-साथ एक अविवाहित नारी अंदर की मासिक कुंठा को छिपाकर जीवन बिताने की चेष्टा को भी स्पष्ट किया है।

"कील और कसक" कहानी में शादी के बाद पति से प्यार न मिलने के कारण स्त्री किस प्रकार कुंठित होकर जीवन बिताती है इसका प्रत्यक्ष रूप से मन्नू जी ने वर्णन किया है। इस कहानी में शादी के पहले किए गए ऋण को चुकाने के लिए पति रात और दिन प्रेस में काम करता है।नये विवाह के बाद स्त्री के मन में उत्पन्न होनेवाली इच्छाओं और युवा अवस्था की आकांक्षाओं को मन्नू जी ने एक संदर्भ में इस प्रकार स्पष्ट किया है-"साल भर पहले जब वह ब्याह कर इस घर में पहुँची थी तो अरमानों की आँधियाँ उसके मन में मचल रही थीं। चढ़ती जवानी और चाँद को

---

1 मैं हार गई, पृ.सं.43
2 वही , पृ.सं.43
3 वही , पृ.सं.43
4 वही , पृ.सं.43

शरमाने वाले रूप ने सुहाग-रात की कल्पना को और अधिक चटकीला रूप दे दिया था। औरतों के बीच वह घिरी बैठी थी, पर मन उसका इस सारे कोलाहल को पार कर, दोपहर की उबा देनेवाली इस नीरस लंबी घड़ियों को पीछे छोड़, रात के उस मदिर पहर की ओर दौड़-दौड़ कर जाता था, जब कोई बड़े दुलार से उसका घूँघट हटाकर, अपने रोम-रोम को आँख बनाकर उसके रूप को निहारेगा और प्रशंसा के पुल बाँधकर दो अपरिचित हृदयों की दूरी के अस्तित्व को ही मिटा देगा। यह कल्पना यहाँ बैठे-बैठे भी उसके गालों को सुर्ख बना देती, और एक मादक-सी सिहरन उसके सारे शरीर में दौड़ जाती। उसको लगता, उसका अंग-अंग जैसे बेकाबू हुआ जा रहा है। अपने पति की सूरत के सौ-सौ काल्पनिक नक्शे उसकी आँखों के आगे दौड़ जाते-कैसे होंगे वे? और प्रश्न के साथ ही वह कल्पना में डूबने-उतरने लगती। जब बारात चढ़ी तो बड़ा मन हुआ था उसका कि सहेलियों के साथ वह भी छज्जे पर चढ़कर एक बार अपने प्रियतम की एक झलक तो देख ले। पर दादी-बुआ के बीच घिरी, वह वहाँ से हिल भी नहीं सकी। उसकी उत्सुक आँखें-लौटकर आई हुई सहेलियों पर ही टिक गईं। पर वह इतना कुछ न जान पाई, जिसका आसरा लेकर मन के कौतूहल को मिटा पाती। हाँ, इतना उसने अवश्य सुना कि पति उसके काले हैं। दादी कह रही थी-"अरे, मर्दों का क्या रूप देखना? और फिर रंग का क्या-काला या गोरा! रानी खाने पीने की सार रखेगी तो रंग भी निखर आएगा। कमाबै तो तीन सौ है। भाग जाग गये रानी के-बस रानी बनकर ही रहेगी। फिर परिवार का टंटा नहीं, सास है तो गाँव में। बस दोनों मौज करेंगे।"[1] और इस प्रकार रानी बनकर रहने की कल्पना केवल निज जीवन में भी कल्पना ही रह गयी है।

इस कहानी का नायक कैलाश नया-नया शादी करने के बाद अपनी पत्नी की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं रखता। सिर्फ लिए गए ऋण को चुकाने के लिए रात-दिन काम करता है। पत्नी अपने पति की राह देखती है। पति अपनी पत्नी से कहता है-

---

1 मैं हार गई, पृ.सं.118-119

"इतनी देर जागने की कोई जरूरत नहीं थी, तुम्हें सो जाना चाहिए था। मेरा तो काम ही ऐसा है। आज भी माँ जबरदस्ती बुला लायीं, अब सबेरे तक सारा काम ख़तम न हुआ तो मुसीबत हो जाएगी।"[1] इस प्रकार कहकर पति सो जाता है। सोये हुए पति के प्रति पत्नी की भावनाओं को मन्नू जी ने एक संदर्भ में इस प्रकार स्पष्ट किया है- "वह अपने पास सोये इस आदमी का मुँह नोच ले, अपने बाल नोच ले, फूट-फूटकर रो पड़े और आँसुओं से सारे घर को और नोच ही निरंतर धड़धड़ करनेवाले इस प्रेस को डुबो दे। पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ और खामोशी से आँसू बहाते और सर्द आहें भरते-भरते रानी सो गई।"[2]

इस कहानी में मन्नू जी ने नारी की मानसिक-स्थिति के साथ-साथ वेश-भूषा को स्पष्ट किया है। स्त्री को पहनने के लिए कुछ अलग सा पोषाक है। इस विषय को इस कहानी में देख सकते हैं। कैलाश की माँ अपने बहु से घूँघट के बारे में एक संदर्भ में इस प्रकार कहती है-"सिर का पल्ला जरा नीचे रखा करो बहू-पचास तरह के लोग यहाँ आवै-जावै हैं। फिर कैलाश को बेशर्मी पसंद भी नहीं।"[3]

कैलाश की पत्नी रानी को न पति से और न ही सास से प्यार मिलने के कारण वह अपने घर में पेंग गेस्ट के रूप में रहनेवाले शेखर नामक लड़के के प्रति आकर्षित होती है। इसका प्रत्यक्ष रूप यह है कि एक दिन बहुत जल्दी-जल्दी अपने पति की सेवा करते करते नीचे गिर जाती है। तब बाल्टी से उसकी अँगुली कट जाती है और खून बहने लगता है। पति यह दृश्य देखकर पत्नी से इस प्रकार कहता है-"देखकर क्यों नहीं चलती हो। अब जाकर कपड़े बदलो, गीले कपड़े पहिने, यहाँ सब के सामने क्यों बैठी हो?"[4] लेकिन वही स्थिति शेखर भी देखता है। मगर शेखर तुरंत रानी से इस प्रकार पेश आता है-"हाथ पकड़कर उठाया, खून देखते ही बोला, अरे, यह

---

[1] मैं हार गई, पृ.सं.119
[2] मैं हार गई, पृ.सं.119-120
[3] मैं हार गई, पृ.सं.120
[4] मैं हार गई, पृ.सं.122

क्या? तुमने तो अँगुली काट ली। और झट से जेब से रुमाल निकाल उसने बड़े दुलार से उसके हाथ में बाँध दिया।

इन संदर्भों के द्वारा हमको यह पता चलता है कि रानी को चोट से ज्यादा पति के प्रेमहीन बातों का दर्द महसूस हुआ। लेकिन वहीं शेखर की बातों से रानी के हृदय की पीड़ा दूर हो जाती है। लेकिन अचानक एक दिन शेखर की शादी हो हाती है तो रानी बहुत दुःखी होती है। वह मानसिकता स्वार्थ का ही एक रूप है। यह रानी के वक्तव्य से स्पष्ट होता है। इसका प्रत्यक्ष रूप इस संदर्भ में प्रकट होता है। रानी, शेखर से कहती है-"भला करने का ज़माना नहीं रहा। अरे साल भर तक रोटियाँ ठोंक-ठोंक कर खिलाई, उसकी कौन कहे? चार दिन इसे आए नहीं हुए कि सब किए-कराए पर पानी फिर गया। ऐसे नमक हराम भी नहीं देखे होंगे कहीं?"

स्त्रियों की मानसिक भावनाओं को मन्नू जी ने यथार्थ के धरातल पर स्पष्ट किया है।

हर एक को अनुशासन और कर्तव्य के साथ ही जीवन बिताना चाहिए। कभी-कभी ज्यादा अनुशासन बच्चों की मानसिकता पर ज्यादा असर डालता है। इसी बात को प्रस्तुत किया गया है मन्नू जी ने "सयानी बुआ" नामक कहानी में।

अन्नू के पिताजी अन्नू को सयानी बुआ के पास पढ़ने भेजते हैं। क्योंकि बुआ के अनुशासन में अन्नू वहाँ खूब पढ़ती है। बुआ जी के यहाँ खाने-पीने और उठने-बैठने आदि हर चीज पर बहुत सतर्कता रहती है। इसका प्रभाव बच्ची पर पड़ता है। शायद इस कारण अन्नू को बुखार आता है। डॉक्टर सलाह देता है-"आखिर डॉक्टरों ने सब प्रकार की परीक्षाओं के बाद राय दी कि बच्ची को पहाड़ पर ले जाया जाए, और जितना अधिक उसे प्रसन्न रखा जा सके, अच्छा है। सब कुछ उसके मन के अनुसार हो, यही उसका सही इलाज है।"[1]

---

1 मैं हार गई, पृ.सं.70

ज्यादा अनुशासन से बच्चों के मन पर पड़ने वाले प्रभाव का परिचय इस कहानी से मिलता है।

आधुनिक समाज में बढ़ती हुई मानसिक कुंठाओं के बारे में मन्नु भण्डारी ने "एक कमज़ोर लड़की की कहानी" में दर्शाया है। यह मानसिक कुंठा बड़े लोगों में ही नहीं बच्चों में भी है। बालकों की मानसिकता पर आधारित इस कहानी में रूप नामक लड़की के द्वारा मिलता है। बचपन में ही रूप की माँ का हार्टफिल हो जाने के कारण उसके सिर से माँ का साया सदा के लिए उठ गया। कुछ ही दिनों के बाद रूप के पिता ने नई माँ की व्यवस्था तो कर दी मगर पहली माँ जितना प्यार करती थी वह प्यार दूसरी माँ से न मिला। दूसरी माँ के कठोर नियम के साथ उसको जीवन निर्वाह करना पड़ता था। उसे मौन होकर पढ़ाई से लेकर विवाह तक अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। बचपन में ही रूप के हृदय में एक प्रकार की मानसिक कुंठा उत्पन्न हो गई थी। इस कारण वह अपनी जिंदगी को अपनी इच्छा से नहीं अपने माँ-बाप के इच्छानुसार जीने लगी।

दूसरी माँ से प्यार न मिलने के कारण वह ठीक से पढ़ नहीं पाती। स्कूल भी छुड़वा दिया जाता है। पिताजी उसे अपनी दूसरी माँ से एवं घर से दूर उसके मामा के पास भेजने का प्रबंध करते हैं। इस संदर्भ में रूप की मानसिकता को मन्नू जी ने इस प्रकार स्पष्ट किया है-"मैं नहीं जाऊँगी मामा-बामा के यहाँ। अपना घर क्यों छोड़ूँ, स्कूल भी छुड़वा दिया। इतना काम भी करती हूँ, फिर भी ये लोग मुझे अपने घर नहीं रखना चाहते। इस बार मैं साफ साफ कह दूँगी कि मैं कहीं भी नहीं जाऊँगी।"[1] रूप इस बात पर हिम्मत के साथ बहुत सोच विचार करके ललित के साथ भाग चलने का निर्णय लेती है। मगर अपने पति वकील साहब की बातों से वह एकदम सकपका जाती है। वकील साहब अपने एक मित्र की पत्नी के बारे में एक संदर्भ में इस प्रकार बताते हैं-"बड़ी मुसीबत में था बेचारा। उसकी स्त्री अपने किसी आशिक के साथ भाग

---

1 मैं हार गई, पृ.सं.46

गई।"[1] और तुरंत अपनी पत्नी रूप को लेकर फिर इस प्रकार वकील साहब कहने लगते हैं-"मैंने तो साफ कह दिया, पढ़ी-लिखी है तो सिर पर बिठाओ! पढ़ी लिखी है, पढ़ी-लिखी है। अरे पढ़ी-लिखी तो तुम भी हो, भागने की बात तो दूर रही, दो साल हो गए, मुझे कभी याद नहीं पड़ता कि तुमने आँख उठाकर भी किसी पुरुष से बात भी की हो। यह भी कोई बात हुई भला।"[2]

"क्षय" नामक कहानी में कुंती को अविवाहित और घर की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण अकेली होकर मानसिक कुंठा के साथ जीवन बिताना पड़ता है। सोमा बुआ के बेटे की मृत्यु के बाद पति विरक्त और दुःखित होकर घर और बुआ को छोड़कर सन्यासी बन जाता है। हर साल में एक महीने के लिए उनके पति उनके पास आकर रहते हैं। बुआ पति के बिना ही खुश थी। वह अकेलेपन को दूर करने के लिए हर दिन अपने ही घर के आस पडोसवालों की सेवा करती रहती है। पति आने से किसी के घर नहीं भेजता है। मन्नू भण्डारी एक संदर्भ में बुआ के मन की व्यथा को इस प्रकार स्पष्ट करती है-"पर कभी उन्होंने पति की प्रतीक्षा नहीं की, राह में आँखें नहीं बिछाई। जब तक पति रहते, उनका मन और भी मुरझाया हुआ रहता। क्योंकि पति के स्नेहहीन व्यवहार का अंकुश उनके रोजमर्रा के जीवन की अबाध गति से बहती स्वच्छंद धारा को कुंठित कर देती है।"[3]

और एक संदर्भ में रिश्तेदारों से भी एक प्रकार की मानसिक कुंठा के साथ दुःखित होना पड़ता है। मन खोलकर आस पड़ोस वालों की सेवा करने से अपने ही रिश्तेदारों के पास मन की चिंता दूर करना चाहता है। इस प्रकार सोचकर रिश्तेदारों के घर में शादी की बात सुनकर वह बहुत खुश हो जाती है। बुलावे के पहले ही वहाँ जाने के लिए अपने ही एकमात्र बेटे की निशानी अंगूठी को बेचकर तोफे के रूप में

---

1 मैं हार गई, पृ.सं.66
2 वही , पृ.सं.67
3 मन्नू भण्डारी, श्रेष्ठ कहानियाँ-पृ.सं.55

सब कुछ खरीद कर बुलावे के लिए इंतज़ार करती है। मगर वहाँ से कभी बुलावा नहीं आती है। मुहूरत तो पाँच बजे को है, लेकिन बुलावा अभी नहीं नहीं आया। एक संदर्भ में पड़ोसी राधा बुआ को देखकर इस प्रकार कहती है-"सात बजे के धुँधालके में राधा ने ऊपर से देखा तो छत की दीवार से सटी, गली की ओर मुँह किए एक छाया-मूर्ति दिखाई दी। उसका मन भर आया। बिना कुछ पूछे इतना ही कहा -"बुआ! सर्दी में खड़ी-खड़ी यहाँ क्या कर रही हो? आज खाना नहीं बनेगा क्या? सात तो बज गए।" तब बुआ होश में आयी और इस प्रकार कहा-"पर सात कैसे बज सकते हैं, मुहूरत तो पाँच बजे का था।" इस प्रकार बुआ पहनी हुई नई साड़ी को उतार कर मन ही मन अपनी मानसिक स्थिति के साथ कुंठा पूर्वक जिंगदी बिताती है।

"क्षय" कहानी के द्वारा मन्नू भण्डारी ने अविवाहित मध्यमवर्गीय लड़कियों के मन:स्थिति और आर्थिक स्थिति के ठीक न होने के कारण बच्चों के मन पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ता है इस बात पर प्रकाश डाला है।

बचपन में ही कुंती की माँ की मृत्यु हो जाती है। क्षयग्रस्त पिता की देखभाल, छोटे भाई की पढ़ाई का पूरा बोझ कुंती के ऊपर आ जाता है। इस कारण कुंती के मन में एक प्रकार की मानसक कुंठा उत्पन्न हो जाती है। क्योंकि घर में कभी भी शांति नहीं है। हमेशा रोगग्रस्त पिता के खों...खों कर खांसने की आवाज़ के कारण वह बिल्कुल शांति से जी नहीं पाती है। वह एक समझदार स्कूल टीचर भी है। रात-भर पिता की सेवा करके दिन में बच्चों को पढ़ाने स्कूल जाती है। उसका छोटा भाई पिताजी लाड से ठीक से पढ़ता नहीं और आठवीं कक्षा फेल हो जाता है। अगर कुंती के मन में स्वाभिमान की भावना न होती तो अपने ही हेडमास्टर से बात करके भाई को नौवीं कक्षा में भेज देती थी। मगर कुंती उस स्कूल से निकालकर दूसरे स्कूल में फिर से आठवीं क्लास पढ़ने के लिए भेजती है। शायद इस कारण टुन्नी के मन में एक तरह की मानसिक चिंता उत्पन्न होती है। एक संदर्भ मं दीदी इस प्रकार शिकायत करती है-"दीदी, मेरा मन यहाँ जरा भी नहीं लगता। सारे समय पापा की और

तुम्हारी याद आती रहती है। स्कूल वालों ने भी मुझे आठवीं में ही भरती किया है। उस दिन तुम मेरे हेडमास्टर साहब से पास चली जातीं तो कितना अच्छा होता। पूरा एक साल बच जाता। तुमने मेरा इतना सा काम भी नहीं किया। दीदी, पूरा एक साल बिगड़वा दिया....।"[1]

इस प्रकार मन्नू भण्डारी ने बालक के मनोविज्ञान के बारे में स्पष्ट किया है। और दूसरी ओर कुंती के मनःस्थिति को इस प्रकार स्पष्ट किया है कि अपने ही हमउम्रवाली लड़कियों के साथ अपने आप को इस प्रकार एक संदर्भ में तुलना करती है-"बिस्तर पर लेटे हुए पापा और काम में व्यस्त बुआजी। उसके बराबर की और लड़कियाँ कितनी मौज करती हैं। घूमना-फिरना, सैर-सपाटे, हँसी-मजाक....उसके जीवन में तो यह सब दूर-दूर तक भी नहीं हैं....क्या कहीं भी नहीं होगा? जितना रुपया वह कमाती है, उसमें कितने ठाठ से वह रह सकती है। पर वह तो जानती ही नहीं कि ठाठ क्या होता है। मौज क्या होती है। पापा क्या अब कभी अच्छे नहीं होंगे?....कितने दिन तक वह इस तरह पड़े रहेंगे?....टुन्नी होता तो वह कल ही उसके साथ सिनेमा जाती। कब टुन्नी बड़ा होगा और उसके कन्धों का भार हल्का करेगा? सच, अब तो वह ऊब गई है।"[2]

"चश्मे" कहानी में प्रेम के रूप में किए गए अपराधों के द्वारा दूसरी जिंदगी कैसे बिताना पड़ता है इस प्रकार की मनःस्थिति को मन्नू जी ने चश्मे कहानी में दर्शाया है।

इस संसार में "प्रेम" जो शब्द के लिए अधिक महत्व स्थान दिया गया है। छल कपट और स्वार्थ के साथ कोई किसी से प्यार नहीं प्राप्त कर सकता है। इस संदर्भ में एक महान कवि "कबीरदास" का एक दोहा आपके सामने स्पष्ट किया जा रहा है-

---

1 मन्नू भण्डारी, श्रेष्ठ कहानियाँ-(क्षय)-पृ.सं.72

2 वही -पृ.सं.82

"पीया चाहे प्रेम-रस राखा चाहै मान।

एक म्यान में दो खडग, देखा सुना न कान।।"

लेकिन इस कहानी में मिस्टर वर्मा ने अपनी पहली जिंदगी में शैल नामक युवती से प्यार किया था। शैल निस्वार्थ भावना के साथ मिस्टर वर्मा से प्यार करती है। इसका एक वास्तविक रूप यह है कि मिस्टर वर्मा को एक बार चिकेन पॉक्स आने से दिल खोलकर उनकी सेवा करती है। मगर उसी शैल को टी.बी.(क्षय) आने से मिस्टर वर्मा उसे छोड़कर चला जाता है। और अंत में मिस्टर वर्मा के धोखेबाजी की शिकार हो शैल की मृत्यु हो जाती है। अपनी पत्नी मिसेज वर्मा के द्वारा रचित एक कहानी सुनते-सुनते शैल को याद कर रहा है एक संदर्भ में - "वह स्वयं नहीं समझ पा रहा था कि वह कौन-सी मजबूरी है, कैसी बेबसी है जो उसे खुलकर हँसने नहीं देती। विचित्र-विचित्र शंकाएँ उसके मन में उमड़-घुमड़ रही थी और उनके नीचे दबा भावशून्य नजरों से वह दूर कहीं देख रहा था, मानो उसे शैल की उपस्थिति का अहसास ही न हो।......."[1]

अंत में अपना साहस छोड़कर पत्नी से इस प्रकार पूछता है - "मैं कहता हूँ मेरा चश्मा दो, नहीं तो मेरा दम घुट जायेगा!"[2]

इस प्रकार मिस्टर वर्मा को मानसिक कुंठा के साथ जीवन बिताना पड़ता है।

इस कहानी के द्वारा मन्नू जी ने मनोवैज्ञानिक यथार्थ को स्पष्ट किया है। इस कहानी में मुख्य पात्र आशा है । आशा नौंवी क्लास की छोटी बच्ची है। आशा को मन्नू नामक एक छोटा भाई भी है। पहले मध्यमवर्गीय जीवन में अपने माता पिताजी के साथ रहकर भी बहुत खुश थे। लेकिन अचानक परिस्थितियाँ बदल गयीं। क्योंकि आशा के पिताजी नौकरी से सस्पेण्ड किये गये और कानून से दो साल की सजा भी मिल गयी है। यह खबर सुनकर घर में पूरे रोने लगते हैं तो इन सब दृश्यों से

---

1 मन्नू भण्डारी: श्रेष्ठ कहानियाँ, (चश्मे) पृ.सं. - 49

2 वही, पृ.सं.- 54

बालिका आशा प्रभावित हो जाती है। वह बहुत समझदार है, इतनी समझदार बन गयी है कि घर की और बाहर की याने कि कानून तक की विषयों को समझने लगी है। लेकिन आशा के माँ-बाप उसको बच्ची ही समझते हैं। सच में वह बच्ची है मगर वह समझदार बच्ची है। पप्पा को कानून से सजा मिलने के बाद इंग्लैंड से कान्ता मामा आए और बहुत दुःखित होकर कहते है कि - "आज के ज़माने में तो गुनहगार अपने को साफ बचाकर ले जाते हैं। लाखों हज़म करके मूँछों पर ताब देते घूमते हैं। फाइलें की फाइलें गायब करवा देते हैं। और एक ये है कि बिना गड़बड़ किए जेल भोग रहे हैं।"[1] उसके बाद कान्त मामा ने अपील मंजूर करवा दी। इसलिए पापा को कानून ने छोड़ दिया है लेकिन केस तो चल रहा है। उस समय आशा मन ही मन बहुत खुश होती है क्योंकि आज पापा घर आने से हम से बहुत ही प्यार से बात करेंगे लेकिन पापा तो घर आया है किसी से बिना बात किये ऊपर अपने कमरे में चला गया है। थोडी देर के बाद अम्मा पिताजी से बातें करने गयी तो इस तरह की जवाब मिला है- "दरवाजा ही नहीं खोलते। बहुत खटखटाया तो यही कहा - चली जाओ, मुझे अभी परेशान मत करो।"[2] इस घटना से आशा की मानसिकता और भी बदल गई है। वह मन ही मन सोचती है कि ये मेरा पिताजी नहीं है क्योंकि पहले जैसे हम से प्यार से बात नहीं कर रहे हैं। जैलवालों ने पापा को बदल दिया है और इस तरह अपने रिश्तेदारों के बारे में सोचती है कि - "पप्पा हमारे हैं और ये सब इस तरह कर रहे हैं मानो हम कुछ हैं ही नहीं। पापा पर पहला हक़ मेरा हैं। मैं मनाने लगी थी कि ये सब लोग जल्दी से जल्दी अलीगढ़ से चले जाएँ तो अच्छा हो । तभी शायद पप्पा हमसे पहले की तरह प्यार करेंगे। सबके सामने शायद उन्हें शर्म आती हैं। शर्म की बात तो है। स्कूल में मुझे क्या कम शर्म आती थी!" [3] इसके बाद दूसरे

---

1 सजा, पृ.सं. - 61

2 वही , पृ.सं. - 62

3 वही , पृ.सं. - 62

दिन अम्मा पप्पा से बात करके आयी थी और माँ जी से कहा - "माँ जी, मन्नू को आप गाँव लेती जाइए, वहाँ के स्कूल में डाल दीजिए। यहाँ तो अब उसकी फीस जुटाना भी भारी पड़ेगा। आशा का तो इस साल फ़ाइनल है, वरना उसे भी उमेश भैया के पास भेज देती। नीचे का घर अब खाली कर देंगे।"[1] फिर भी पप्पा कुछ नहीं बोले और रो- धोकर मन्नू को घर से चाची के पास भेज दिया गया है। मन्नू जाने के बाद एक सप्ताह के अंदर ही पूरा सामान चला गया और नीचे का मकान भी खाली हो गया है। पासवाली एक छोटी कोठरी सिर्फ आशा को पढ़ने के लिए मिला है। इससे आशा को वास्तविकता के बारे में पता चल गयी है। कभी-कभी आशा अपने पिताजी के बातें याद करती है वह बात इस प्रकार हैं कि "दुःख में हिम्मत रखनेवाले ही सच्चे वीर होते हैं। हँसते-हँसते जो सारे दुःखों को झेल जाए, वही सच्चा पुरूष है।"[2] आशा को एक तरफ पप्पा की मनःस्थिति के बारे में और दूसरी तरफ अपनी आर्थिक स्थिति के बारे में सोचना पढ़ता है। घर में कितनी भी आर्थिक स्थितियाँ होने दो वह सहने के लिए तैयार थी लेकिन पप्पा घर पर ही मौन रूप में बैठने से उसको बिलकुल अच्छा नहीं लगती है। आशा कभी-कभी सोचती है कि असल में पप्पा सचमुच ही रूपये चोरी किये तो आज इस तरह की आर्थिक परिस्थितियों के साथ जीवन क्यों बितानी पड़ेगी। और मन्नू को पढ़ाने के लिए दूसरी घर में क्यों भेज सकते हैं। घर पर एक पंखा भी नहीं है और इस तरह सोचने लगती है- "ईमानदारी करके ही कौन बड़ा सुख मिल रहा है!"[3] इन समस्याओं को पप्पा ही नहीं मम्मी भी भोग रही है। लेकिन आशा की जीवन में एक ऐसी दिन थी वह कभी भी भूल नहीं सकती है। इतनी बड़ी होने के बाद भी एक बार मम्मी आशा को मारा तब सामने पिताजी भी बैठे थे लेकिन कुछ नहीं कहा। इस संदर्भ में - "शरीर से

---

1 सजा, पृ.सं. - 63
2 वही , पृ.सं. - 64
3 वही , पृ.सं. - 65

ज्यादा मन आहत हुआ। चोट से ज्यादा इस बात का दुःख था कि पप्पा बैठे देखते रहे, पर कुछ नहीं कहा। न अम्मा को मना किया, न मुझे ही प्यार किया।"[1] तब मन ही मन भगवान से प्रार्थना करती है कि मेरा पिताजी को पहले जैसे करो। लेकिन ऐसी स्थिति में भी आशा मैट्रिक सेकण्ड-डिविजन में पास हो गई है। पास होने पर भी घरवालों से किसी तरह की खुशी प्राप्त नहीं कर सकती है और ऊपर से आशा को कालेज में भर्ती कराने की समस्या सामने आयी है तो एक दिन पप्पा से मम्मी ने कहा "मैं सोचती हूँ, आशा को भी वहीं भेज दो। वहीं कालेज में भरती हो जायेगी।"[2] तब आशा को पहले लगा कि मम्मी व्यंग्य कर रही है लेकिन यह तो सच है कि फिर से मम्मी ने कहा "लीला का स्वभाव तो तुम जानते ही हो। आशा मन्नू के पास रहेगी तो उसक तसल्ली तो रहेगी। सोने की एक गोद तो रहेगी।"[3] और उसके बाद उमेश भैया इस तरह लिखने के लिए कहा - "उमेश भैया को लिख देना, जो भी वह खर्च करें, हम पर कर्ज ही समझें। मैं उसकी पाई-पाई चुका दूँगी। भगवान् कभी हमारे दिन भी बदलेगा ही, नहीं तो अपने को बेचकर उनका कर्ज अदा करूँगी। पर मेरे बच्चों पर थोड़ा रहम करें। ये दुखियारे यों ही अनाथ हो रहे हैं, थोड़ा प्यार इन्हें भी दें, थोड़ा लीला को भी समझा दे।"[4] और उसके बाद कान्त मामा अपने ही काम पर दिल्ली आये थे और लौटते समय घर आया है। मामा के साथ ही आशा को इलाहाबाद जाना पड़ा। आशा के पढ़ाई के बारे में कान्त मामा ने एक बार कहा है - "कलकत्ता भेज दो, वहाँ पढ़ लेगी।"[5] लेकिन आशा पढ़ने के लिए नहीं जा रही है सिर्फ इसलिए वहाँ जा रही है कि अपना छोटा भाई मन्नू को तसल्ली दिलाने के लिए और रोते समय अपनी गोदी में सुलाने के लिए। तब वह सच्ची में अपनी मम्मी की

---

1 सजा, पृ.सं. - 65
2 वही , पृ.सं. - 66
3 वही, पृ.सं. - 66
4 वही, पृ.सं. - 67
5 वही, पृ.सं. - 67

तरह बढ़ी हो गई है । वह घर छोडते समय मम्मी का तबीयत बिलकुल अच्छी नहीं थी लेकिन मम्मी के इच्छानुसार घर छोड़ना पड़ा। इस संदर्भ में मन ही मन आशा इस तरह सोचती है- "पर अम्मा को तसल्ली देनेवाले पप्पा हैं, रोने के लिए पप्पा की गोदी है। मन्नू तो वहाँ अकेला है। अभी मेरी सबसे ज्यादा जरूरत मन्नू को ही है"[1] हमको यह समझना चाहिए कि आशा एक छोटी बच्ची है लेकिन वह बच्ची होकर भी बड़ों के जैसे सोचने लगी है। आशा को देखते ही मन्नू बहुत खुश हो गया है। उस संदर्भ में आशा - "मन्नू को गले लगाकर मुझे कैसा लग रहा था, मैं नहीं बता सकती। इतना जरूर लगा कि उसे सचमुच किसी गोदी की जरूरत थी- किसी सहारे की। मैं चाची से बातें कर रही थी। उन्हें मेरा आना अच्छा नहीं लगा था, यह साफ था, पर मैं ही कौन अपनी इच्छा से आई हूँ। मन्नू का रंग काफी साँवला पड़ गया था। चेहरा सूखकर मुरझा गया था और आँखें बड़ी सहमी-सहमी लग रही थीं। लगा, बहुत डरकर दबकर रहता है शायद यहाँ। घर में तो कितना ऊधम करता था। इतना सा बच्चा, कैसे उसने अपने को बदला होगा, दबाया होगा? देखा, उसका काम था साल-भर के बिट्टे को खिलाना। सारे दिन वह होम-वर्क करता होगा।"[2] इस तरह अपना भाई के बारे में सोचकर बहुत दुःखित होती है और अपना भाई चाची के बच्चों के साथ किस तरह सताया जाता है अपनी दीदी आशा से इस तरह कहा - "दीदी कल मुझे बुढ़िया के बाल खिलाना। टिल्लू और पम्मी रोज खाते हैं। चाची उन्हें पैसे देती हैं, और कहती है छिपकर खा लिया करो। पर वे सामने ही खाते हैं। एक दिन टिल्लू मुझे चिढ़ाकर खा रहा था, मैंने उसके बाल छीन लिये। उसने चाची से शिकायत कर दी। चाची ने मुझे बहुत मारा। चाची बहुत जोर से मारती है।"[3] इस तरह भाई अपनी मन की व्यथा दीदी के सामने स्पष्ट करता है। यह सब सुनने के

---

1 सजा, पृ.सं. - 67
2 सजा, पृ.सं. - 68
3 सजा, पृ.सं. - 68

बाद उसकी मानसिकता और भी ऊब जाती है। और इस तरह कहती है कि - "हम बड़े हैं, हम सब समझते हैं और सह सकते हैं, पर यह बेचारा कैसे समझे? समझ तो गया ही होगा: पर सहे कैसे?"[1] इस तरह वह छोटी होकर भी बड़प्पन दिखाकर अपनी भाई को प्यार देना चाहती है और इस तरह निर्णय लेती है - "मैं कॉलेज नहीं जाऊँगी। घर का सारा काम मैं करूँगी जिससे चाची को पूरा आराम मिले और उनका गुस्सा ठण्डा रहे। चाची कुछ भी कहेंगे तो चूँ तक नहीं करूँगी। वह प्रसन्न रहेंगी तो मन्नू सुरक्षित रहेगा। मन्नू को रात में बैठकर पढ़ाया करूँगी।"[2] और वह इसके साथ-साथ चाची को भी रसोई काम में मदद करनी चाहती है। चाची से भी पहले उठकर घर का पूरा काम करती है और चाची से भी प्रशंसा प्राप्त करना चाहती है लेकिन उस घर में जितना भी काम करो कुछ प्रशंसा या प्यार नहीं मिलने वाला है। एक दिन बहुत काम करके थक जाती है तो अपना छोटा भाई को बुलाकर अपने पैरों पर खड़ाकर लेने के लिए कहती है क्योंकि इस तरह करने से थोडा आराम मिल जाती है उस समय अपने पिताजी के बारे में सोचती है कि कभी उसे मम्मी गाँव में काम करवाने के लिए भेजने से पप्पा बहुत गुस्से से मम्मी को डाँटते थे और इस तरह कहते हैं- "मैं अपनी आशा को डाक्टर बनाऊँगी, विदेश भेजूँगा, यह भटियार - खाना करवा कर क्या मुझे अपनी बिटिया की जिंदगी खराब करनी है।"[3] इस तरह अपनी खोये हुए जिंदगी के सपनों के बारे में सोचती रहती है। कभी अपनी मम्मी से नहीं कहा कि कॉलेज में भरती नहीं हुई है। कभी चाची से मार भी खाती है लेकिन हँसी के साथ भूलने के लिए कोशिश करती है। इस घटना को अपना छोटा भाई बहुत करुणामय दृष्टि से दीदी को देखता रहता है तब अपना भाई को समझाते हुए कहा - "थोड़े दिनों की बात और है भैया, फिर हम अपने घर चलेंगे, अम्मा और पप्पा के

---

1 सजा, पृ.सं. - 68

2 वही , पृ.सं. -68 - 69

3 वही , पृ.सं. - 69

पास, बस।"[1] यहाँ और एक बात को समझना चाहिए कि खून का रिश्ता में बहुत ही ज्यादा दृढ़ बंधन रहता है वही बंधन के साथ यहाँ लीला याने कि चाची अपने बच्चों से प्यार करती है लेकिन आशा और मन्नू को अपनाने के लिए तैयार नहीं रहती है। उन दिनों बच्चों को बहुत ही बोज मानती है तब इस संदर्भ में चाची इन दो बच्चों के सामने कहती है - "आफिस के बीस हजार गायब करके गाढ़ दिये और हमारा खून चूस रहे हैं! ये हमारे बड़े हैं! लानत है ऐसे बडप्पन पर।"[2] तब आशा मन ही मन सोचने लगती है - "यदि आज उनके पास पैसा होता तो क्या हमें यों छोड़ देते? और अपने सारे पिछले दिन आँखों के आगे घूम जाते। कितना प्यार करते थे पप्पा.....कितना! मैं चाहे कुछ भी लिखूं; पर क्या वह जानते नहीं कि हम पर यहाँ क्या गुजर रही है?"[3]

हर एक महीना चाचाजी अपने माता और पिताजी को पन्द्रह रूपया भेजते थे लेकिन इस बार चाची ने चाचाजी से कहा - "अब भाई साहब को लिख दो कि पन्द्रह रुपये नहीं भेज सकेंगे। इस महँगाई के ज़माने में दो को पालना ही बहुत भारी पड़ रहा, फिर हमारे भी तो बच्चे हैं। कौन यहाँ खान गड़ी है।"[4] यह बातें आशा के मन पर असर पढ़ती है और सोचती है कि ये पन्द्रह रूपए नहीं भेजने से पप्पा और मम्मी कैसे रहेंगे? क्या खायेंगे? और घर का किराया कैसे देंगे? इस तरह मम्मी और पप्पा के बारे में सोचकर बहुत रोने लगी। बहुत दिन बीच चुके हैं लेकिन मम्मी से एक पत्र भी नहीं आया। सितम्बर में कान्त मामा का पत्र आया.......उसमें इस तरह लिखा हुआ है - "शारदा की तबीयत खराब थी, सो उसे यहाँ ले आया। यहाँ उसका इलाज चल रहा है। दिनेश जी ने कमरा बदल लिया है, उसका पता...... है। किस्मत के अलावा क्या कहूँ कि तारीख जल्दी नहीं मिलती। तुम घबराना मत।

---

1 सजा, पृ.सं. - 70

2 वही , पृ.सं. - 70

3 वही , पृ.सं. - 70

4 वही , पृ.सं. - 70

भगवान् सब ठीक करेंगे। गर्मियों तक कुछ न कुछ अवश्य हो जायेगा।"[1] यह पत्र से आशा को मम्मी और पप्पा के बारे में समाचार पता चल गया फिर सोचने लगी कि मम्मी अस्पताल में है तो पप्पा अकेले हो गये हैं तब आप कहती है - "अम्मा और पप्पा की गोद भी छीन गयी जिसमें वे रो सकते थे।"[2]

बच्चें अपनी माता और पिता के पास पलने से खुश रहते हैं और पढ़ाई में ध्यान रख सकते हैं सब विषयों में ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। बच्चों की मानसिकता बढ़ाने के लिए यहीं एक मुख्य साधन है। इस कहानी में भी इस तरह की मानसिकता को देख सकते हैं। यहाँ चाची की बेटी को खाना खिलाकर और काम करके पढ़ाई करना मन्नू से नहीं होता है इसलिए इसका नतीजा पास नहीं होता लेकिन प्रमोट होता है। तब चाची के बच्चों के सामने बहुत ही शर्मिंदा होता है और रोता भी है। तब चाची ने कहा - "फेल हो गये न? पढ़ने लिखने में मन लगाओ मन्नू साहब, तबटिल्लू की तरह पास होओगे। सारे दिन बैठे-बैठे टसुए बहाने से पास नहीं हुआ जाता"[3] तब चाची के बच्चे बहुत चिढ़ाने लगा कि "फेलूराम........फेलूराम!"[4] पहली बार पापा चिट्ठी आयी है तो आशा उस चिट्ठी को हजार बार छूती है और पढ़ती है। कान्त मामा आशा और मन्नू को अंतिम फैसला सुनाने के लिए साथ में लेकर गया है इन बच्चों को धर्मशाला में छोड़कर मामा, पप्पा को लेने चले गये। यह बच्चे अपनी मम्मी की राह देख रहे हैं लेकिन कहा - "उसकी हालत लाने जैसी नहीं थी।"[5] तब आशा को लगता है कि मामा हमसे कुछ छिपा रहे हैं तो आशा ने इस तरह मन ही मन सोचा कि - "मैंने भी अम्मा से कितना कुछ छिपा रखा है। आज कौन किसके बारे में सही बात जानता है? दूसरे को हलका रखने के लिए सब अपने-अपने दुःख से ही भारी हो रहे

---

1 सजा, पृ.सं. - 70 - 71
2 वही , पृ.सं. - 71
3 वही , पृ.सं. - 72
4 वही , पृ.सं. - 72
5 वही , पृ.सं. - 73

हैं।"[1] पप्पा आते ही आशा और मन्नू उनसे लिपट गये और तीनों मिलकर रो पड़े। उसी शाम को दाढ़ी-बाबा भी आये थे। उस दिन रात में मन्नू दादी से पूछ रहा था - "दादी, अब तो हम पप्पा के पास ही रहेंगे न? तुम इतनी पूजा करती हो, अपने भगवान् से कहो कि हमारे पप्पा को छोड़ दें।"[2] दादी ने कहा - "हाँ बेटा, अब तू पप्पा के पास ही रहेगा। रात-दिन भगवान् से यही तो कहती हूँ।"[3] फिर से मन्नू दादी से कहा - "चाची के पास तो मैं अब कभी नहीं जाऊँगा। टिल्लू अपने को समझता क्या है? मैं अपने पप्पा के पास रहूँ और फिर आ जाये! हरेक चीज में पछाड़ सकता हूँ - पढ़ने में भी, कुश्ती में भी! पहले फर्स्ट भी आया हूँ एक बार क्लास में..... क्यों दीदी आया था न?"[4] इन संदर्भों से हमको लगता है कि कितनी मानसिकता के साथ चाची के घर में रहना पड़ा। कहीं दूर से अपनी भाई के सब बातें बहुत दुःख के साथ आशा सुन रही है तब अपनी भाई के बारे में इस तरह सोच रही थी कि "क्या इतनी - सी उम्र में हम लोग सब-कुछ सहने के लिए ही बने हैं।"[5] कानून में अंतिम फैसला चल रहा है सब लोग फैसला के लिए इंतजार कर रहे हैं आशा अपनी छोटा भाई का हाथ पकड़कर जार्ज के मुँह क्या निकलेगा उस शब्द के लिए इंतजार कर रहे हैं, उसी समय जर्ज साहब ने कानूनी भाषा में कुछ बोलने लगे तो आशा को पूरा समझ में नहीं आया लेकिन यह बात तो समझ गयी कि "मुजरिम को रिहा किया जाता है........।"[6] बहुत ही खुशी से मन्नू की हाथ पकड़कर आशा चिल्लाने लगी और दौडकर पप्पा के पास गयी और उनसे कहा - "पप्पा आप बरी हो गये! सुनते हैं, आप को सजा नहीं हुई.......सजा नहीं हुई है आपको!"[7] लेकिन पप्पा को विश्वास नहीं हो रहा है कि

---

1 सजा, पृ.सं. - 73
2 वही , पृ.सं. - 73
3 वही , पृ.सं. - 73
4 वही , पृ.सं. - 73 - 74
5 वही , पृ.सं. - 74
6 वही , पृ.सं. - 74
7 वही , पृ.सं. - 75

उन्हें सजा नहीं हुई है। इस तरह इस कहानी में मन्नू जी बच्चों का मानसिकता एक प्रबोधात्मक ढंग से स्पष्ट किया है।

"रेत की दीवार" नामक कहानी में मन्नू भण्डारी एक मध्यवर्गीय परिवार में उत्पन्न होनेवाली समस्याओं के साथ-साथ मानसिक रुग्मता का कई कारण स्पष्ट करती है।

अगर समस्याओं का खज़ाना को देखना है तो सिर्फ मध्यवर्गीय परिवार में ही देख सकते हैं। सब प्रकार की इच्छाओं को पूरा न कर पाने के कारण मनुष्य में एक प्रकार मानसिक तनाव उत्पन्न होती है। इस कारण से शायद मनुष्य चिन्ता में रहता है। कहानी में रवि नामक युवक को पढ़ने में बहत इच्छा है। रवि का पिताजी बहुत मेहनत करके उसे इंजीनियर की शिक्षा दिलाता है। रवि को एक बहन है और छोटा भाई है। रवि के पिता अपनी बहन को कॉलेज में भर्ती नहीं करता है, भाई को इलाज नहीं करवाता है और माँ को चश्मा नहीं खरीत है सिर्फ रवि के पढ़ाई के ऊपर खर्च करता है, क्योंकि अगर रवि कल इंजीनियर बनने से समाज में नाम के साथ-साथ धन भी कमायेगा। इन तमाम जिम्मेदारियों के साथ-साथ पढ़ाई करता और परिवारों के बारे में भी सोचता है। एक बार रवि अपनी पिताजी के मुँह से माँ की आँखों का ऑपरेशन के बारे में इस प्रकार सुनना पड़ता है - "तुम्हारी अम्मा की आँख के लिए औपरेशन बताया है डाक्टर ने। करवाना तो है ही पर अगले साल करवायेंगे। तुम्हारी पढ़ाई खत्म हो जाएगी तो तुम निश्चिन्त मन से पास रह सकोगे..... इन्हें भी तसल्ली रहेगी।"[1] पिताजी को माँ से ज्यादा होनी की चिन्ता है।इसलिए टोनी के बारे पिताजी, रवि से इस प्रकार कहता है- "बडी बेशरम है भैया, तुम्हारी अम्मा। कुछ नहीं होगा उनको और उनकी आँखों को। मुझे तो बस चिन्ता टोनी की है। अगले साल तुम आ जाओ तो इसे एक बार सेनिटोरियम में और भर्ती कराके देख लूँ। मेरा क्या,

1 त्रिशंकु, पृ.सं. 131

तीन-चौथाई तो बीत ही गई।" [1] इस प्रकार रवि के पिताजी की मन में त्यागकी भावना प्रकट होती है।

बहन चन्दा, पढ़ाई को छोड़कर रसोई काम करती है और रवि अपनी बहन के बारे में इस प्रकार सोचता है कि कहीं मेरी पढ़ाई को लेकर चन्दा के मन में ईर्ष्या तो नहीं है। इस संदर्भ में रवि अपनी बहन चन्दा, के मुँह से यह सुनता है -"किस बात की जिद करती? क्या मैं समझती नहीं? अम्मा बाबू का दम चलता तो क्या ये बिठाते मुझे घट? टोनी की दवाइयों का खर्चा पूरा करने के लिए बाबू ने शाम का काम लिया, और क्या करते बेचारे? कितना ही संभल कर चलती, आखिर फीस-किताबें जुटाने जितना तो मुझे भी चाहिए था। फिर घर का काम भी तो रहता है आजकल।"[2] इस प्रकार रवि अपनी बहन की सहनशीलता और त्याग भावना के बारे में सुनकर आश्चर्यचकित हो जाता है।

इन सारे समस्याओं के साथ आगे बढ़नेवाले रवि को अपने दोस्तों के द्वारा यह पता चलता है-"यहाँ कोई भविष्य नहीं है इन लोगों का-आजकल सैकड़ों इंजीनियर्स मारे-मारे फिरते हैं..... किसी तरह फ़ॉरिन जाने की तिकड़म भिड़ाओ-कनाडा में बहुत लोगों की आवश्यकता है। इंजीनियर्स के लिए जर्मनी में सबसे ज्यादा स्कोप है। एक बार जाने को मिल जाए तो जिन्दगी बन जाए...... पर बच्चू इस सबके लिए फुल और पुश चाहिए। मैरिट को कोई नहीं पूछता आज दो कौड़ी की भी....."[3]

इस प्रकार मन्नूभण्डारी आधुनिक समाज में बढ़ते हुए बेरोजगार की समस्याओं का सुंदर चित्रण करते-करते रिश्वत के बिना मैरिट छात्र और छात्राओं को नौकरी न मिलने की संभावना को स्पष्ट किया है।

---

1 त्रिशंकु, पृ.सं. 131-132

2 वही , पृ.सं. 133

3 वही , पृ.सं. 137

अंत में रवि बहुत चिन्तित रहता है क्यों कि नौकरी के बिना वह परिवार को कैसे मदद करेगा? इन सारे कारणों के वजह रवि के मन में मानसिक कुंठा उत्पन्न होती है और पापा के मन में रवि को लेकर बहुत आशा थी अब शायद इन आशाओं का दीवार रेत से यानी की बालू सं बनाया हुआ दीवार जैसी हो गया है।

मन्नूभण्डारी इस कहानी में एक मध्यवर्गीय परिवार में आर्थिक स्थिति अच्छा न होने के कारण किस प्रकार की मानसिकता के साथ नहीवन बिताना पड़ता है? माँ-बाप के मन में बच्चों के प्रति त्याग की भावना और इसके साथ-साथ बेरेजगार, रिश्वतकोर जैसी समस्याओं के द्वारा आजकाल यानी की आधुनिक समाज में होनेवाले अत्याचारों का चित्रण यथार्थबोध के धरातल पर स्पष्ट किया है।

"त्रिशंकु" कहानी में मन्नूभण्डारी आधुनिक और पुरातन सभ्यता संस्कारों के बीच में अत्पन्न हुए समस्याओं के बारे में स्पष्ट किया है। तनु त्रिशंकु में तनु की माँ आधुनिकता को अपनाते हुए अपनी बेटी तनु को कुछ विषयों में अनुशासन के बारे में सिखाती है। तनु को पहले अपनी माँ आधुनिकता सिखाती है। जैसे कि चार कमरे में बंद होकर ही नहीं पुरुष मित्रों से भी दोस्ती रखने का आदेश अपनी माँ से मिलती है। गली के कुछ लड़के तनु को छेड़ते है तो स्वयं तनु की माँ लड़कों को अपने ही घर बुलाकर तनु से दोस्ती करवाती है। इस संदर्भ में तनु की माँ अपने जमाने के साथ आधुनिक समाज को को तुलना करते हुए तनु से इस प्रकार कहती है-"हाँ, क्यों क्या हुआ? अरे, यह तो हमारे जमाने में होता था कि मिल तो सकते नहीं, बस, दूर से ही फ़ब्तियाँ कस-कस कर तसल्ली करो। अब तो जमाना बदल गया"[1] आज सिर्फ अपनी बेटी से ही नहीं दूसरे स्त्रीयों के साथ भी बहुत हिम्मत से आधुनिकता के बारे में इस प्रकार स्पष्ट करती है- "और नही तो क्या? मुक्त रहो और बच्चों करे मुक्त रखो। हम लोगों को बचपन में यम मत करो..... यहाँ मत जाओ-कह कहकर कितना

---

[1] त्रिशंकु, पृ.सं. 109

बाँधा गया था। हमारे बच्चे तो कम से कम इन घुटन के शिकार ने हों।"[1] तब से तनु बहुत आराम से और खुशी से पुरुष मित्रों से बात करती थी। शेखर, दीपक और रवि इन तीनों में से शेखर तनु से ज्यादा बात करता है हमेशा तनु के घर आता जाता है। तनु की माँ को धीरे-धीरे अपनी बेटी तनु के साथ पुरुष मित्र रोज-रोज अपना घर आकर बात करना बिल्कुल पंसद नहीं था। इनके पहले तनु की माँ तनु को मुक्त रहो और मुक्त रखो इस प्रकार बोलनेवाली माँ की मनः स्थिति मन्नूभण्डारी इन प्रकार स्पष्ट करती है -"अब तो उन्हें इस नंगी सच्चाई को झेलना था कि उनकी निहायत ही कच्ची और नाजुक उम्र की लडकी तीन-चार लड़कों के बीच घिरी रहती है। और सभी की स्थिति यह थी कि वे ने इस स्थिति को पूरी तरह स्वीकार कर पा रही थी और न अपने ही द्वारा बड़े जोश में शुरु किये इस सिलसिले को नकार ही पा रही थीं।[2] और अंत में अपनी बेटी तनु इस प्रकार कहती है- "तनु बेटे, ये लोग रोजरोज यहाँ आकर जम जाते हैं। आखिर तुम को पढ़ना-लिखना भी तो है। मैं तो देख रही हूँ कि इन दोस्ती के चक्कर में तेरी पढ़ाई-लिखाई सब चौपट हुई जा रही है। इस तरह तो यह सब चलेगा नहीं।"[3]

दूसरी ओर तनु का मानसिक स्थिति में भी धीरे-धीरे बदलाव आने लगी एक संदर्भ में तनु की मानसिकता को मन्नूभण्डारी इस प्रकार स्पष्ट करती है -"मेरी भीतर अपनी ही एक दुनिया बनती चली जा रही थी बड़ी भरी पूरी और रंगीन। आजकल मुझे किसी की जरुरत ही महसूस नहीं होती। लगता जैसे मैं अपने में ही पूरी हूँ। हमेशा साथ रहने वाली सभी भी आउट होती जाती है और शायद यही कारण है कि इधर मैंने सभी पर ध्यान देना ही छोड़ दिया है।"[4]

---

1 त्रिशंकु, पृ.सं. 111
2 वही , पृ.सं. 112-113
3 वही , पृ.सं. 113
4 वही , पृ.सं. 115-116

तनु की इस व्यवहार से माँ बहुत दुःखित थी क्यों कि उन्होंने खुद आजाद होकर जीने के लिए कहा तो इस संदर्भ में तनु अपनी माँ को समझाते हुए कहती है "सभी, जो चलेगा, वह गिरेगा भी और जो गिरेगा, वह उठेगा भी और खुद ही उठेगा, उसे किसी की जरुरत नहीं है।"[1]

आधुनिक समाज में स्त्री पुरुष के साथ बराबर काम रही है और जीवन में आगे बढ़ रही है। मगर जितना आगे बढ़ रही है उतना मानसिक कुंठा के साथ जीवन बिताना पढ़ रहा है। मन्नूभण्डारी त्रिशंकु कहानी द्वारा तनु की माँ तनु को पूरा आधुनिक नहीं बनने देती है। इसका मतलब यह है कि न स्वर्ग में न नरक में रहने का स्थिति आधुनिक और पुराना जमाने के माध्यम से यथार्थ बोध का चित्रण किया है। इच्छाओं का मानसिकता का सुंदर चित्रण किया है। बच्चों की मानसिकता को लेकर लिखी गई कहानी "संख्या के पार" में माँ और बच्चे का यथार्थवादी चित्रण है। बच्चों की मानसिकता बहुत कोमल है अगर बचपन में ही बच्चों के मन में कोई एक भयंकर दृश्य या घटना के बारे में बार-बार सोचता रहता है और हर एक विषय के प्रति भयभीत हो जाते है। इसलिए बड़े और छोठे लोग में काफी अंतर तो है। सेल-समझने की प्रक्रिया बच्चों में छोटे से ज्यादा बड़ें लोग में है। इसलिए बच्चों को हर विषय को प्यार और बहुत सहनशीलता के साथ सिखना चाहिए। इस बात को "संख्या के पार" कहानी में प्रमीली के माँ के कारण घर में उत्पन्न होनेवाले भयंकर दृश्य और घटनाओं को बच्ची की मनःस्थिति के माध्यम से एक संदर्भ के द्वारा इस प्रकार स्पष्ट किया है - "माँ आयी और चली गयी। कहते हैं माँ के प्यार और उसकी ममता की कोई बराबरी नहीं कर सकता, पर मैं नहीं जानती माँ का प्यार क्या होता है, उसकी ममता कैसी होती है। मैंने तो बचपन से ही आजी का प्यार पाया है, बाबा का प्यार पाया है, और उसके बाद संसार में मैंने कभी किसी चीज की कभी महसूस नहीं की, न पैसे की, न प्यार की । सब लोग ईर्ष्या करें - ऐसी पूर्णता है मेरे जीवन में।

1 त्रिशंकु, पृ.सं . 122

जिस दिन से होश संभाला उसी दिन से देखती आयी हूँ कि आजी सबसे ज्यादा खयाल घर में मेरा रखती हैं और बाबा सबसे ज्यादा प्यार मुझे करते है। यह तो बाद में मालूम पड़ा कि बाबा-आजी मेंरे माँ-बाप नहीं हैं।" [1]और दूसरी ओर प्रमिला की माँ विधवा होने के नाते किसी और एक पुरुष से भाग जाती है तो घर में प्रमीला की माँ से खुद का दादा नफरत करता है। कभी भी घर नहीं आने देता है । लेकिन माँ के ममत्व के कारण अपनी बच्ची को देखने के लिए कभी-कभी छुप-छुप कर आता है तो तब घर में प्रमीला का दादा बहुत क्रोधित हो जाता है। इसका प्रत्यक्ष रुप मन्नूभण्डारी एक संदर्भ के द्वारा इस प्रकार स्पष्ट करती हैं - "टन.....टन करके घड़ी के घंटे बजे तो एकाएक ही मुझे ऐसा अहसास हुआ कि घर में मौत का सन्नटा छाया हुआ है। जाने कब से इस ख़ामोशी के बीच में पड़ी हूँ मैं। एकाएक ही इच्छा हुई कि बाबा इस सन्नाटे को चीर कर चीख़ना-चिल्लना शुरु कर दें - झनझना कर घर की चीजें फेंकने लगें। सच, इस सन्नाटे में तो दिल डूबता जा रहा है। और मुझे ही ऐसा क्या हो गया है? मैं ही क्यों नहीं दौड़कर बाबा के कमरे में चली जाती हूँ? मुझे ऐसा क्यों लग रहा है कि अपराध माँ का नहीं, मेरा था? लगता है, जो अब तक नहीं हुआ वह अब होकर रहेगा। कल से आज तक घर के हर व्यक्ति ने अपनी सहजता ही खो दी है। यह घटना क्या जिन्दगी भर छाया की तरह मेरे पीछे लगी रहेगी? क्या इन दो घंटो में, एक बार भी यह बात मेरे मन में नहीं आयी कि इस सारे ऐश्वर्य और असीम लाड़-प्यार के बीच भी मैं कितनी तुच्छ हूँ...... कितनी हीन हूँ? मैं भागी हुई स्त्री की सन्तान हूँ? नहीं...... नहीं....... कोई भी ऐसी भावना मेरे मन में नहीं है।"[2]

लेकिन प्रमीला को अपनी माँ को देखने के लिए मन करती है। अंत में एक बार प्रमीला की माँ रहस्य से उसे मिलने आयी थी इस संदर्भ में एक बार प्रमीला "भंडार में जाकर देखा जमीन पर बिछी चटाई पर माँ और आजी आमने सामने बैठी हैं, और

---

1 एक प्लेट सैलाब, पृं.सं. 87

2 वही , पृं.सं. 88

दोनों ही रो रही हैं। मैं घुसी तो माँ एकटक मुझे ही देखती रहीं। मानो उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा हो कि मैं इतनी बड़ी हो गई हूँ। फिर सहसा उन्होंने मुझे खींच कर अपने सीने से लगा लिया। इस प्रकार के अप्रत्याशित व्यवहार से मैं अस्त-व्यस्त हो उठी। तभी मैंने बाबा के खड़ाऊँ की खट-खट सुनी तो लगा जैसे शरीर का सारा खून जम गाया। मैं झटके से छिटक कर इस तरह अलग आ खड़ी हुई मानो कोई अपराध करते हुए रंगे हाथों पकड़ ली गई हूँ। झटपट वहाँ से खिसक जाने की ताक में ही थी कि देखा-बाबा सामने आ खड़े हुए हैं। अपने आप ही मेरी आँखें मूँद गयी और ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की नीचे अटकी रह गयीं। जानती थी अब क्या होनेवाला है और उसे देखने-सुनने की सामर्थ्य मुझ में नहीं थी। कल तो बाबा जाने क्या सोचकर जैसे-तैसे गुस्सा पी गये थे, पर आज .....?[1]

प्रमीला से और बाबा प्रमीला की माँ को दुबरा कभी भी न मिलने का चेतावनी देते हुए दस हज़ार की चेक फेंकता है। मैं और दूसरी ओर माँ प्रमीला के हाथ में पाँच का नोट रखकर चली गयी थी इस संदर्भ में प्रमीला की मानसिक स्थिति इस संदर्भ में स्पष्ट होती है -"मैंने देखा, मेरे सामने दस हज़ार का चेक पड़ा था और हाथ में पाँच का नोट...... आँसू भी आँखों के पार मुझे लगा जैसे दोनों के रुप अस्पष्ट से अस्पष्टतर होते चले जा रहे हैं...... धीरे......धीरे। उस चेक और नोट का रुप-रंग, आकार का अंतर घुलकर एक हो गया...... यहाँ तक कि संख्याँए भी अनपहचानी हो उठीं और रह गये केवल मेरे गालों से दुलकते आँसू...... बाबा की लौटती खट-खट, और पत्थर बनी बैठी आजी......"[2]

इस प्रकार प्रमीला मानसिक द्वन्द्व के बीच में बचपन से ही दुःख की जिंदगी बिताती हैं।

---

[1] एक प्लेट सैलाब, पृ. सं. 94

[2] वही , पृ. सं. 95

इस कहानी में मन्नूभण्डारी नारी मनोवेदना को यथार्थधरातल पर चित्रित किया है। हर एक पत्नी या हर एक पति वैवाहिक जीवन खुशी से बिताना चाहता है। अगर दोनों में कोई किसी में कुछ अंसुतलन की भावना है तो उन दोनों के बीच में तनाव उत्पन्न होती है। इस प्रकार के तनाव के लिए देशकाल की परिस्थितियों के अंतर्गत देखा नहीं जायेगा। यह स्थिति कभी भी उत्पन्न हो सकती है। कहानी की नायिका रमा कुंदन से विवाह करती है। रमा एक कालेज में पढ़ाती है और कुंदन एक छोटा नौकरी करता है। हर दिन कुंदन रमा को कालेज तक छोडता है। एक तरफ से उन दोनों सुखमय जीवन बिता रहे है। अचानक कुंदन को पहले से ज्यादा अच्छा नौकरी मिल जाती है। तब से अपनी पत्नी के हर बात की ओर कम ध्यान देखता है। नौकरी के साथ-साथ थीसीस भी लिखती है लेकिन अब वह पूरा नहीं कर पाती है क्योंकि कुंदन के नई नौकरी के कारण बहुत सारे मेहमानों को खाना-पकाना, घर डेकोरेट करने में लग जाती है। वेद्काल से नारी की सहन शक्ति की चर्चा हो रही है। शायद रमा में ज्यादा सहन शक्ति होने के कारण अफिस और पति की सेवा करती है।

मन्नू भण्डारी प्रस्तुत कहानी के द्वारा रमा की मानसिकता इस प्रकार स्पष्ट करती है -"रमा को लगा जैसे कुन्दन उसे पीछे छोड़कर आगे निकल गया है.....बहुत आगे। जैसे वह अकेली रह गई है। एक महीने पहले वह भी कुंदन के साथ ही निकला करती थी, कुन्दन उसे कॉलेज छोड़ता हुआ आफ़िस जाया करता था। पर अकेलेपन की यह अनुभूति तभी तक रहती जब तक वह पोर्टिको में खड़ी रहती। जैसे ही फ्लैट का दरवाजा खोलकर वह भीतर घुसती-लक-दक फर्नीचर, शीशों के दरवालों और खिड़कियों पर झूलते लम्बे- लम्बे पर्दे, मिस्त्रियों की खटपट, नये-नये डिसटेम्पर और वार्निश की हल्की-सी गन्ध के बीच न जाने कहाँ डूब जाती।" [1]

---

1 एक प्लेट सैलाब, पृ. सं. 10

रमा अपने सहकर्मचारियों के द्वारा किए गए अपने फेयरवेल पार्टी को याद करने की स्थिति को मन्नू भण्डारी इस तरह स्पष्ट करती है - " साढ़े दस साल की सर्विस थी। प्रिन्सिपल ने अनेकानेक शुभकामनाओं के साथ फूलों के बड़े-बड़े गुलदस्तों के बीच पार्कर पेन का एक सैट रखकर दिया था"[1] और आगे इस प्रकार कहते है-"मिसेज चोपड़ा, आप इसी पेन से अपनी थीसिस पूरी करिए। जब भी वापस काम करने का मन हो, बिना किसी संकोच के चली आइए, यहाँ आपका हमेशा ही स्वागत है।"[2] और पूरे डिपार्टमेंट के लेक्चरर्स गाड़ी तक छोड़ने आई थीं और इस प्रकार रमा से कहते है - "भई रमाजी, कॉलेज भले ही छोड़ दीजिए, पर लंच के समय खाना लेकर जरुर आ जाया करिए."[3]

इस प्रकार रमा अपनी बिते हुई दिनों को याद करते हुए मन ही मन बहुत दुःखित हो जाती है। पत्नी की मानसिकता को पति, कुंदन समझने के लिए जरा सा भी कोशिश नहीं करता है और अपनी पत्नी से कहता है - "तुम वहाँ पढ़ाने जाती हो या खाने। फोन पर भी जब तुम लोगों की बातें होती हैं तो खाना ही डिस्कस होता है।"[4] कुंदन अपने नौकरी और कैरियर को ही ज्यादा प्रमुख स्थान देता है मगर पत्नी के कैरियर के बारे में कभी नहीं सोचता है।

रमा नौकरी इसलिए छोड़ती है कि वह घर और बाहर का काम संभाल नहीं कर पाती है। एक संदर्भ के द्वारा मन्नूभण्डारी रमा की दैनंदिन जीवन में उत्पन्न होनेवाले कठिनाईयों को एक कामकाजी महिला का जिम्मेदारियाँ इस प्रकार स्पष्ट करती है -"पर घर के लिए नया फ़र्नीचर बनवाने, चुन-चुनकर चीजें खरीदने के लिए दोनों में से किसी के पास भी समय नहीं था। कुंदन चाहता था यह काम रमा को करना चाहिए; उसकी रुचि बहुत अच्छी थी, यों भी यह काम उसी का था। पर रमा के पास

---

1 एक प्लेट सैलाब, पृ. सं. 12

2 वही , पृ. सं. 12

3 वही , पृ. सं. 12

4 वही , पृ. सं. 12

समय ही नहीं रहता। सबेरे उठकर वह बण्टी को तैयार करके स्कूल भेजती। फिर खुद तैयार होती । तैयार होते-होते ही वह नौकर को आदेश देती जाती, सारे दिन का काम समझाती; नाश्ता करते-करते वह अपना लेक्चर तैयार करता, तैयार तो क्या करती बस सूंघ भर लेती। फिर नौ बजे कुंदन के साथ ही निकल जाती। तीन के करीब वह लौटती...... थोड़ा आराम करती और फिर शाम की तैयारी। बाहर नहीं जाना होता था तो घर में किसी को आना रहता था।"[1] पुरुष एक स्त्री की मानसिकता को समझ नहीं पाता है

प्रस्तुत कहानी के द्वारा मन्नूभण्डारी कामकाजी महिलाओं के वैवाहिक जीवन में पति-पत्नी के बीच में प्यार की कमी के यथार्थ रुप को स्पष्ट किया है और इसके साथ-साथ हर एक क्षेत्र में पत्नी को पति के ओर से समझौता की भावना न होने के कारण एक प्रकार की मानसिक कुण्ठा उत्पन्न होती है। इस मानसिकता को कहानी में चित्रण किया है।

स्त्री सुवोधिनी नामक कहानी में मन्नू भण्डारी ने एक अविवाहित औरत की मानसिकता को स्पष्ट किया है। नारी के प्रति चलते आ रहे पुरुष अन्याय को मन्नू भण्डारी ने यथार्थ के रुप में दर्शाया है। "अभिनेता" नामक कहानी में जिस तरह एक शादीशुदा आदमी प्रेम का नाटक करता है उसी प्रकार प्रस्तुत कहानी में शिंदे नामक शादीशुदा आदमी एक अविवाहित स्त्री के साथ प्रेम का नाटक करके उसके दिल में चोट पहुँचाता है। शदिशुदा शिंदे नामक आदमी से नाषिका प्यार करती है। अपने आफीस की बॉस है। आठ साल का प्रेम विफल होने के बाद नायिका दूसरे औरतों का संबोधित करते हुए एक संदेश देती है।

"प्यारी बहनो, न तो मैं कोई विचारक हूँ, न प्रचारक, न लेखक ने शिक्षक। मैं तो एक बड़ी मामूली-सी नौकरी-पेशा घरेलू औरत हूँ, जो अपनी उम्र के बयालीस साल पार कर चुकी है। लेकिन इस उम्र तक आते-आते जिन स्थितियों से मैं गुजरी

---

[1] एक प्लेट सैलाब, पृ. सं. 13

हूँ, जैसे अहम् अनुभव मैंने पाया.... चाहती हूँ, बिना किसी लाग-लपेट के उसे आपके सामने रखूँ और आपको बहुत सारे खतरों से आगाह कर दूँ, मैं जानती हूँ कि अपने जीवन के निहायत ही निजी अनुभवों को दो टूक सरेआम कह कर मैं खुद अपने लिए बहुत बड़ा ख़तरा मोल लूँगी। मेरे मात्र पाँच साल के अल्पकालीन विवाहित जीवन पर भी संकट आ सकता है। पर क्या करूँ, मेरा नैतिक दायित्व मुझे ललकार रहा है कि अपनी हजार-हजार मासूम किशोरी बहिनों को ..... जो या तो ऐसी ही स्थिति में पड़ी हैं, या कि कभी भी पड़ सकती हैं..... अपने अनुभव से कुछ नसीहत दूँ, बरबादी की ओर जाने से बचा लूँ ख़तरा उठाकर भी यदि मैं दो-चार बहिनों की.....

क्या कहा, आपकी दिलचस्पी बेकार की लफ़्फ़ाजी में नहीं है। आप असली बात जानना चाहती हैं। बहुत अच्छे। लफ़्फ़ाजी के प्रति यदि आपके मन में अरुचि है, तो यह शुभ लक्षण है। बहुत शुभ। आप शर्तिया बहुत सारे खतरों से बची रहेंगी। साँप का काटा और बातों का मारा व्यक्ति बेचारा उठ ही नहीं पाता। मुझे ही देखिए, मेरी जो दुर्दशा हुई थी, उका कारण......"[1]

"त्रिशंकु" में मन्नूभण्डारी ने शादीशुदा व्यक्तियों की मनःस्थिति के बारे में नायिका के द्वारा प्रकार स्पष्ट किया है - "अब भी मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि यहाँ के हर पुरुष के भीतर एक ऐसा ही फिल्मी हीरो आसन सारे बैठा रहता है और जब तक वह पूरी तरह तृप्त न हो जाये, मरता नहीं। उम्र के किसी भी दौर पर, उस समय चाहे वह छह बच्चों का बाप ही क्यों न हो..... जरा- सा मौका मिलते ही भड़भड़ा कर जाग उठता है और पूरी तरह अपनी गिरफ्त में जकड़ लेता है। फिर तो बड़ी-बड़ी तोपें तक ऐसी बचकाना और बेकूफाना हरकतें करती हैं कि बस तौबा। न कोई शर्म उम्र का लिहाज।"[2]

---

1 त्रिशंकु, पृ. सं. 65-66

2 वही , पृ. सं. 67

मन्नू भण्डारी नायिका के द्वारा बचपन की पढ़ाई को जीवन रुपी यथार्थ से तुलना करते हुए एक संदर्भ में इस प्रकार कहती है - " मीरा का पद - "अंसुवन जल सींच-सींच....." बचपन से पढ़ा था। पर हम सबकी ट्रेजडी यही है कि स्कूली शिक्षा को जीवन में गुनते नहीं। शिक्षा एक तरफ जीवन एक तरफ और इसीलिए ठोकर खाते है।"[1]

भारतीय नारी विवाह के बाद अपनी आजादी को छोड़ करके पति की सेवा करने चार दीवारों के अंदर बंद हो जाती है। और इस बीच में पति दूसरी स्त्री के साथ संबंध रखने से भी अपनी पति को छोड़ना नहीं चाहती है। ऐसी लडकियों की मनःस्थिति के बारे में "स्त्री सुबोधिनी" नामक कहानी की नायिका के द्वारा स्पष्ट किया गया है। "मैं उसकी बीवी को त्रस्त करने गयी थी, पर खुद त्रस्त और पस्त होकर लौटी। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि यह औरत है या माँस का लौंदा? इसका आदमी तीन साल से एक दूसरी लड़की के साथ मस्ती मार रहा है और इसे न कोई तकलीफ़, न कष्ट। मैं इसकी जगह होऊं, तो शायद एक दिन भी इस तरह की अपमानजनक स्थिति को बर्दाश्त न करुँ। इसके शरीर पर चमड़ी लिपटी है, या गेंडे की खाल? यह तो मुझे बहुत बाद में अपने अनुभव ने सिखाया कि अधिकतर शादी-शुदा औरतें ऐसी होती हैं, जिन्हें अपने घर की दीवारों से बेशुमार लगाव होता है। इतना ज्यादा कि धीरे-धीरे उन दीवारों को ही अपने शरीर के चारों ओर लपटे लेती है। फिर मान-अपमान के सारे हमले उनसे टकरा कर बाहर ही देर हो जाते हैं और वे उनसे बे-असर सती-साध्वी-सी भीतर सुरक्षित बैठी रहती हैं।"[2]

इस प्रकार शिंदे की पत्नी की मनःस्थिति के बारे में यथार्थ के धरातल पर स्पष्ट हुआ है।

---

1 त्रिशंकु, पृ. सं. 70

2 वही , पृ. सं. 73

"महाभोज" नामक उपन्यास में पूरा राजनैतिक होने पर भी उसमें थोड़ा बहुत मनोवैज्ञानिक रस भी है। लेखिका के अनुसार चाहे स्त्री हो या पुरूष किसी के अंदर यह मानसिक कुण्ठा तो वह किसी के साथ भी खुशी से नहीं रह सकता है। प्रस्तुत "महाभोज" नामक उपन्यास में दा-साहब की पत्नी जमुना बहिन में थोड़ा बहुत मानसिक कुण्ठा देखने को मिलती है। दा-साहब अपने राजनैतिक कार्य में बहुत ध्यान से काम करता है। इतना ध्यान है कि उनकी संतान, बहू-बेटी, भाई-बन्धु उस बंगले में रहते हैं या नहीं। अगर रहते हैं तो दा-साहब का उनसे कितना और किस सीमा तक राजनीतिक और वैयक्तिक संबंध है यह कहीं दिखाई नहीं पड़ता। उदाहरणतः लेखिका दा-साहब और उनकी पत्नी जमुना बहन के बीच की संभाषण को इस प्रकार स्पष्ट करती है - "हूँ ! मुस्कराये दा-साहब। पत्नी की समझ पर थोड़ा प्रसन्न भी हुए, कोई एक महीने पहले ही बुलाकर समझाया होगा इसके संपादक को, और अखबार का रंग ही बदल गया। कमी नहीं है समझदार लोगों की, बस सही ढंग से दिशा-निर्देश करनेवाला कोई नहीं।" और इस वाक्य के साथ ही मन अखबार से छिटककर एकाएक देश के साथ जुड़ गया - "देश की दुरवस्था का सबसे बड़ा कारण ही है - सही नेतृत्व का अभाव। छात्रों को देखो - युवकों को देखो - किसान-मजदूरों को देखो, सब-के-सब दिशाहीन से भटक रहे हैं - कोई दिशा दिखानेवाला ही नहीं।" लोगों के भटकाव का जरा-सा दुख दा साहब के स्वर में भी उभर आया। उस दुख से उन्हें मुक्त करने के लिए जमुना बहन ने तुरंत कहा - "शुक्र है भगवान का कि सब बातें सलट गयीं। आजकल राजनीति में घटिया तरह की जो घालमेल चलती है उसे देखकर लगता है कि तुम जैसे सन्त आदमी को तो सन्यास ले लेना चाहिए। तुम्हारे बस का है यह सब करना?" हल्के-से-मुस्कराये दा-साहब, "गीता पढ़कर भी तुम ऐसी बात करती हो? स्थितियों की चुनौती स्वीकारना तो कर्मयोगी का

सबसे पहला धर्म होता है। अर्जुन भी ऐसे ही हताश हो रहा था जब भगवान कृष्ण ने कहा.......।"[1]

इस प्रकार जमाना बहिन पर अपने पति दा-साहब के किये गए दुर्व्यवहार को लेखिका ने यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया है।

"एक इंच मुस्कान" राजेन्द्र यादव एवं मन्नू भण्डारी लिखित एक प्रयोग-प्रधान उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में त्रिकोणात्मक प्रेम विधान है। अमर, रंजना और अमला की यह प्रेम कहानी है। परंपरावादी त्रिकोणात्मक उपन्यासों से वह इसे अलग नहीं कर पाये हैं। यहाँ प्रेम-कथा के पुराने फार्मूले दोहराये नहीं गये। रंजना, अमला एक ही पुरुष से प्यार करती हैं। रंजना, अमला भावुकता के कारण दाम्पत्य जीवन को मिटा देती हैं। अमला बुद्धिवती होने के कारण जीवन से समझौता नहीं कर पाती। अमला अमर की सृजनात्मक शक्ति को आगे बढ़ा देती है और एक दिन जगन्नाथपुरी की लहरों में समा जाती है। इन दो नारी-पात्रों के बीच अमर अकिंचन बन जाता है। दोनों ही कलाकार अपने-अपने पात्रों को सँवारने में इतने अधिक व्यस्त हो गये हैं कि इन लोगों ने सामूहिक दायित्व का निर्वाह आवश्यक नहीं समझा। यहाँ तक कि दोनों रचनाकार सहयोगी कम और प्रतिद्वंद्वी अधिक हो गये हैं। इस प्रतिद्वंद्विता में मन्नूजी राजेन्द्र जी से बहुत आगे हैं। रंजना की भावुकता, अमला का अहम् कुछ भी हो, पति-पत्नी का यह प्रयोग किसी को हार या जीत नहीं है।

अमर "एक इंच मुस्कान" का नायक है। वह अपने लिए नहीं जीता, इतिहास के लिए जीता है। रंजना और अमर के बीच में तीसरी लडकी के प्रवेश के करण रंजना और अमर में थोडा बहुत अलगाव उत्पन्न होता है, मगर रंजना के आगे चलकर दूसरी शादी करने की स्थिति के द्वारा मन्नू भण्डारी वास्तविकता को इस प्रकार स्पष्ट करती हैं। जैसे की "आपका बंटी" नामक उपन्यास में शकुन और अजय

---

[1] महाभोज, पृ.सं. 147

के बीच अलगाव उत्पन्न होने से दोनों अपने-अपने अंह को एक दूसरो को दिखाने के लिए विवाह करते है उसी प्रकार रंजना भी दूसरा विवाह करती है।

अमर का एक साहित्यकार होने के कारण उसका अमला से परिचय होता है। क्योंकि अमला, अमर की हर एक पुस्तक पढ़ती है और उन पुस्तकों को पढ़ने के बाद अपना अभिप्राय पत्रों के द्वारा लिखकर स्पष्ट करती है धीरे-धीरे इन दोनों के बीच में गहरा दोस्ती बनती है। अमला एक परित्यकता नारी है। और वह बहुत धनिकवर्ग की इकलौती बेटी है। अमला स्वतंत्र रुप से जीवन बितानेवाली औरत है। लेकिन उसकी स्वतंत्रता को कैलाश नामक युवक रोकना चाहता है क्योंकि वह अमला से शादी करना चाहता है कि अमला के पास ज्यादा धन है। कैलाश में प्यार से ज्यादा धन पाने का लालच है। अमला को सोने के पिंजडे में रहना बिलकुल पसंद नहीं। इसलिए एक साधारण कवि रुपी साहित्यकार अमर के साथ दोस्ती करना चाहती है और इस बहाने अमला अमर को अपने घर आने का निमंत्रण देती है। अमर अमला जैसी धनी परिवार में कदम रखने से डरता है। मगर अमला की ओर से जितना सत्कार मिलना चाहिए था उतना अमर को मिल गया।

अमला की स्वतंत्र व्याक्तित्व के चित्रण की बानगीः"सिद्धांतों का सवाल जहाँ तक है, मैं छिपाऊँगी नहीं (और अब छिपा भी नहीं है) कि मैं उस वर्ग की लड़की हूँ जिसे तुम घृणा से "पूँजीपति"या "शोषक" वर्ग कहते रहे हो। अपने इस वर्ग पर गर्व हो या न हो, मुझे अफसोस कतई नहीं है कि क्यों इसका अंग हूँ। लेकिन तुम तो जाति-पाँति नहीं मानते न, फिर मैं नहीं समझती कि यह "जाति" हमारी दोस्ती के बीच आएगी। तुम्हारा पता नहीं, लेकिन अपनी और से आश्वासन देती हूँ। अच्छा एक कड़ी बात कहूँ तो माफ करोगे..... ? तुम्हारे वर्ग के लोग जिन हीनताओ और कुण्ठाओं के शिकार हैं-मुझे डर है कहीं वे हमारे बीच में ने आ जाएं । यों तुम पर मुझे बहुत-बहुत विश्वास है.....।"[1]

[1] एक इंच मुस्कान, पृ. 62

इस प्रकार अमला, अमर के सामने अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट करती है। अमर भी अपना व्यक्तित्व अमला के सामने इस प्रकार प्रस्तुत करता है - "जब मैं तुम्हें नहीं जानता था, और तुम्हारे पत्रों से तुम्हें किसी कॉलेज में पढ़नेवाली लड़की समझता था - तब भी शायद तुम्हारी बातों को इतनही ही गंभीरता से लेता था। किसी को "बड़ा आदमी" पाकर उसके प्रति "विशेष" भाव रखना उसी गुलामी के लक्षण हैं। जब तुम "सामान्य" लड़की थीं तब भी मेरे लिए उतनी ही विशेष थीं- .......।"[1]

इन दोनों के व्यक्तित्व को मन्नूभण्डारी ने बहुत सुंदर ढंग से स्पष्ट किया है।

रंजना अमर को बहुत चाहती है और अपने माँ-बाप से लड़कर अमर के यहाँ दिल्ली आकर उससे शादी करती है। अमर भी रंजना को चाहता है। रंजना खुद कमाती है और अमर को बिना तकलीफ दिए, लिखने के लिए जिसनी सुख सुविधाएँ चाहिए वह सारी सुविधाएँ जुटाता है।

विवाह के पहले अमर की अमला से मुलाकात होती है। अमला एक धनिक और स्वतंत्र रुप से जीनेवाली नारी होने के नाते अमर से शादी करना पंसद नहीं करती है। अमला के पहले जिंदगी के बारे में मन्नू भण्डारी इस प्रकार दर्शाती है - "एक साल में कोई क्या समझेगा कि कोई सुखी था या नहीं - फिर न वह उम्र ही यह सब समझने लायक थी, न वैसी बुद्धि ही थी। याद तो पड़ता है कि उस समय शायद मैं सुखी ही थी। अब तो खुद मुझे भी विश्वास नहीं होता, पर सच मानना, उस समय बढ़िया कपड़े और हीरे-मोती का जेवर पहनकर पति के साथ सिनेमा देख आना ही मेरे लिए शायद चरम सुख था और मेरे पास कपड़ों और जेवर का अभाव नहीं था। वे मुझे कभी-कभी सिंनेमा भी ले ही जाया करते थे...... हाँ, ये सब सुख शायद मुझे प्राप्त ही थे ....... "[2] मन्नूभण्डारी परंपरागत विवाह के द्वारा भी अमला की मन के

---

1 एक इंच मुस्कान, पृ. 65

2 वही , पृ. 24

मानसिकता को स्पष्ट करती हैं। और मन्नू जी विवाह की आवश्यकताओं के बारे में अमला के द्वारा इस प्रकार स्पष्ट करती है - "हाँ, जीवन की स्वाभाविकता को बनाए रखने के लिए आवश्यक ही समझता हूँ। शुरु में चाहे न लगे, पर बाद में फिर बड़ी कुण्ठाएँ और विकृतियाँ आ जाती हैं। यों फिर अपवाद तो सभी नियमों के होते हैं।"[1]

जाने-अनजाने में की गयी शादी के बजाय सही उम्र और समझने की शक्ति पाने के बाद शादी करना चाहिए तभी इस मानसिक कुंठा को दूर कर सकती है।

मन्नूभण्डारी अमर की मानसिकता एक पुरुष के माध्यम से इस प्रकार स्पष्ट करती है - बड़ी अजब है यह मुस्कराहट भी ...... अभी-अभी अमला गई है; लेकिन लगता है जैसे अपनी इस जवाब, सुगंधित मुस्कराहट को यहीं छोड़ गई है - मंडराते हुए....... भरमाते हुए। मन में इतना कुछ भर गया है कि चाहूँ तो आज की डायरी को पूरी पुस्तक बना डालूँ..... जोश आ रहा है, किस इण्टरव्यू के चक्कर में पड़ूँगा.......घर जाऊँ और बैठकर खूब लिखूं - खूबलिखूं। आज कितनी बातें कही हैं अमला से। लेकिन नहीं, न वे बातें सच थीं, न वह भावस्थति। सच था सिर्फ वह स्वर...... वह होंठों का मुस्काराहट के आकार में मुखर स्पन्दन........ वह जो कुछ उसने अपने अंतर ने संजोकर मुझे सौंपा था...... लगा था, हम तो केवल चुप हैं और स्तब्ध उस वार्तालाप को सुन रहे हैं....... सच है सिर्फ यह तथ्य कि हर समझौता कला को पथभ्रष्ट कर देता है........

इसमें एक पुरुष की मानसिकता देखने को मिलती है। वह जहाँ है वहाँ तक संतृष्ट नहीं है। यहाँ पर भी रंजना से ज्यादा अमला की ओर अमर आकर्षक होता जाता है।

वैवाहिक जीवन से मुक्त होकर लेखक के रुप में अकेला जीवन बितने के लिए अमला कहती है। दूसरी ओर रंजना पुरुष की द्वन्द्व मानसिकता के बारे में अमर से इस प्रकार कहती है - "मैंने सोचा, तुम्हें अमला की याद आ रही है। कौन जाने बाबा,

---

1 एक इंच मुस्कान, पृ. 24

एक ओर उसका छा जाने वाला व्यक्तित्व और दूसरी ओर हर किसी लड़की को अपने पर छा जाने का निमन्त्रण देने को आतुर अमर का मन। क्यों?"[1]

पुरुष विवाह को एक बंधन मानता है क्यों कि विवाह के बाद स्वतंत्र जीवन में कही बाधा पहुँचेगी। इसी प्रकार की मानसिकता को लेकर अमर, रंजना से कहता है - "विवाह अपने-आप में एक समझौता है। सोचो, विवाह के लिए नौकरी करनी होगी, बंधी हुई निश्चित जिन्दगी बितानी होगी....... और जैसे-जैसे उत्तरदायित्व बढ़ता जाएगा, सीमाएँ और संकीर्ण होती जाएगी....... इतनी संकीर्ण....... इतनी संकीर्ण ........नहीं, नहीं रंजना, "यह सब करने का मतलब होगा अपनी हत्या करना, तुम्हारी हत्या करना, तुम्हारी हत्या - यह सब मैं नहीं कर सकूँगा।"[2]

विवाह को लेकर भारतीय नारी के मानसिकता को मन्नूभण्डारी रंजना के माध्यम से स्पष्ट करती हैं - "अमर, तुम्हें एकाएक ही यह सब क्या हो गया? तुम तो जानते हो मैं स्वयं कमाती हूँ, समय आने पर और अधिक परिश्रम करने की क्षमता भी मुझ में है। मैं तुमसे कुछ नहीं चाहूँगी....... मैं तो सिर्फ तुम्हें एक ऐसा घर, एक ऐसा वातावरण देना चाहती हूँ जहाँ तुम सब ओर से निश्चिन्त होकर लिख सको। तुम्हें यों कहीं खाते, कहीं सोते देखती हूँ तो यही मन करता है, तुम्हारी सारी चिन्ताएँ, सारा बिखराव अपने ऊपर ले लूँ....... मुझे तो बदले में भी कुछ नहीं चाहिए, न धन न वैभव। तुम लिखोगे, चारों और तुम्हारा यश-प्रसन्न फैलेगा, तुम प्रसन्न होओगे और इस सबमें ही मैं अपने परिश्रम की सार्थकता खोज लूँगी।"[3]

यह एक भारतीय विवाहित स्त्री की इच्छाओं और भावनाओं का यथार्थ रुप है। लेकिन अमर स्वतंत्र रुप से बिना विवाह के जीवन बिताना चाहता है। और रंजना से यह भी कहता है - " तुम किसी सुपात्र से विवाह कर लो...... अब मैं कभी बीच में

---

1 एक इंच मुस्कान, पृ. 44
2 वही , पृ. 49
3 वही , पृ. 49

बाधा नहीं आऊंगा। नया घर, नया जीवन, धीरे-धीरे सब कुछ भुला देगा।"[1] अमर, इतना कहने पर भी रंजना सुनती नहीं है। एक दिन रंजना मंदा भाभी और टण्डन के घर चली जाती है। और वहाँ जाकर अपनी व्यथा प्रकट करती है।

"बंबई से घसीटा गया तुम्हारा पत्र मिला था। कुछ उससे और कुछ तुमसे सुनकर रंजना और तुम्हारे परिचय की सारी कहानी जानी। रंजना की दृष्टि से सोचती हूँ तो तुम्हारा धोखा लगता है और तुम्हारे कोण से सोचती हूँ तो लगता है तुम कोई गलती नहीं कर रहे-रंजना और अमला जिन्दगी में बहुत आएंगी, लेकिन न अमर की प्रतिभा आएगी, न प्रतिभा के स्फुरण के क्षण आएंगे........। एक बात कहूँ, बुरा तो नहीं मानेगे। तुम्हारे विवरणों से लगता है, तुम्हारी ये रंजना जी बहुत "पजेसिव" हैं...... व्र आखिर क्यों तुम्हें संदूक में बन्द करके रखना चाहती हैं...... वे इस सीधी-सी बात को भूल जाती हैं कि कलाकार बंधकर नहीं रहता। वह तो एक उन्मुक्त धार है - जो खेतों, जंगलों और पहाड़ों में समान निष्ठा से बहती है - वहाँ की धरती को अपनाती है..... एक "धरती" उसे बांध लेगी तो वह "धार" कहाँ रह जाएगी? पोखर और तालाब हो जाएगी और पानी वहीं सड़ेगा......"[2] इस प्रकार अमला, अमर के अंदर की साहित्यकला को जगाकर एक प्रसिद्ध लेखक बनाने का मार्ग प्रशस्त करती है। शायद अमला की इस प्रोत्साहन के द्वारा अमर दुविधा में पढ़ जाता है। और अमर में मानसिकता उत्पन्न होती है। अमला अमर की सिर्फ मित्र बनना चाहती है। लेकिन रंजना अमला को लेकर बहुत घबरा जाती है कि कहीं अमला अमर के जीवन में प्रवेश करने की कोशिश कर रही है क्या?

अमला के मित्र कैलाश बार-बार अमला को बंद रखने के लिए कोशिश करता है। लेकिन अमला अपनी मुक्ति को छोड़कर किसी के हाथ में बंद होकर रहना नहीं चाहती है, इसलिए अमला, कैलाश को लेकर एक बार अमर से अपनी व्यथा को

---

1 एक इंच मुस्कान, पृ. 51

2 वही , पृ. 63

इस प्रकार स्पष्ट करती है - " तुम भी जानती हो, पिछले कई दिनों से हमारे आपसी संबंधों में एक तनाव आ गया है और हर छोटी-बड़ी घटना और बात ने उस तनाव को और अधिक बढ़ाया ही है। क्या अच्छा न होगा कि आज हम सारी स्थिति पर बहुत ही स्पष्ट रुप से बात कर लें और रोज-रोज के बढ़ते और परेशान करते इस मानसिक तनाव से मुक्ति पाएं?"[1]

मन्नू भण्डारी जीवन में छिपी हुई मानसिकता को एक बार अमर और टण्डन के माध्यम से इस प्रकार स्पष्ट करती हैं - कभी - कभी आदमी का मन होता है कि वह घोर निराशा - भरी बातें करे ....... वैराग्य और खानाबदोशी की बातें करे, तब सभी कुछ बड़ी निराशा और उदासी से भरा-भरा लगने लगता है। लेकिन स्वंय उसको अपने भीतर यह उदासी और व्यर्थता एक स्थायी और चिरन्तन तत्व जैसी लगती है....... यही हर समय बनी रहनेवाली मनःस्थिति है....... बाकी जो कुछ आता है....... वह तो केवल धुएं के बादलों की तरह।" यह तो जीवन की यथार्थ है।

इस त्रिकोण उपन्यास में तीनों अपने-अपने भावनाओ को लेकर चिन्तित है। किसी में भी खुशी, शांति नहीं है। अपने-अपने विचारों में दर्द भरा जीवन बिताते है। दुविधा में होने के कारण अमर को कभी -कभी रंजना का प्यार अच्छा लगता है तो कभी-कभी अमला का स्नेहभरी बातें। एक बार अमर उपन्यास लिखते - लिखते बीमार पड जाता है तो मंदा भाभी की सहायता से रंजना अमर की सेवा करती है। तब अमर रंजना को लेकर इस प्रकार सोचता है - "उपन्यास समाप्त हो गया है और अब बहुत ही खाली-खाली महसूस कर रहा हूँ। बीमारी के दौरान रंजना दो दिन तक मेरे पास रही। उसके हाथ से रखी हुई यूडीकोलोन की पट्टियों ने मेरे शरीर सें अधिक, मेरे मन को राहत पहुँचाई थी, और एकबात मैं अच्छी तरह समझ गया था- रंजना मेरे जीवन की पूरक है। उसके बिना मैं अधूरा हूँ, अपूर्ण हूँ। वह मेरी आत्मा का अंश है। और इस सत्य को मैं शायद अब अधिक दिन तक नहीं झुठला सकूंगा। कितनी

---

1 एक इंच मुस्कान, पृ. 73

विचित्र बात थी कि दो दिन साथ रहकर भी हम एक शब्द न बोले। पर मौन रहकर भी जिन भावों का आदान-प्रदान हो गया, उन्हें हज़ार-हज़ार शब्द भी अपने में नहीं समेट सकेंगे...... उपन्यास लिखने के दौरान में हर क्षण मैंने एक अजीब-सी बेचैनी महसूस की, एक विचित्र-सा दर्द मुझे पल-पल टीसता रहा और मैं समझता रहा कि यह दर्द-बेचैनी, सृजन-प्रक्रिया का परिणाम है। किन्तु जब आधी बेहोशी की स्थिति में मन्दा भाभी ने अपने माथे पर रंजना के अधरों का स्पर्श महसूस किया, तो लगा कि जैसे उसने मेरी सारी बेचैनी, सारे दर्द को ही पी किया। दो-दिन रहकर वह चली गई, पर लगता है, बहुत जल्दी ही मुझे उसे फिर से लाना होगा- अपने जीवन में, अपने घर में। मुझे तुम्हारी बात याद है कि हर प्रकार का समझौता कला को पथभ्रष्ट कर देता है। विवाह, जिम्मेदारियाँ कलाकारों के लिए घातक हैं; वे उसे मार देता हैं। मैं इस बात की सच्चाई को झुठला दूं इतना साहस भी नहीं, फिर भी इतना तो तुम स्वीकारोगी ही कि कला के सृजन के लिए कलाकार का जीवित रहना आवश्यक है और मैं शायद रंजना के बिना जीवित ही नहीं रह सकूँगा। एक ओर यह सब महसूस करता हूँ और दूसरी ओर कहीं बहुत भीतर से मुझे कोई बराबर चेतावनी देता रहता है कि विवाह करके मैं अपने लेखन की हत्या कर दूँगा। सच मानना अमला, दुविधा ओर असमंजस की इस स्थिति में अब एक पल भी गुज़ारना भारी पड़ रहा है। एक ओर रंजना और अमर के व्यक्ति को जीवित रखने का प्रश्न है तो दूसरी ओर अमर के लेखक को। बड़ा ही निर्णय-दुर्बल व्यक्ति हूँ। पल-पल मन की स्थिति बदलती है और साथ निर्णय भी बदल जाते हैं। तुम बताओ और खूब सोचकर बताओ मैं क्या करुँ?"[1]

इस प्रकार अमर, अमला और रंजना को लेकर मानसिक कुण्ठा के साथ जीवन बिताता है।

---

[1] एक इंच मुस्कान, पृ. 117

अमला भी सही है क्योंकि वह घुटन भरी जीवन जीना नहीं चाहती है। लेकिन यह उनका स्वतंत्र जीवन एक हद तक यहीं आकर रुक जाता है। तब अमला अपने जीवन को लेकर सोचने लगती है - "सोचती थी, इन दीवारों को पार करके "हर कोई" मेरे पास नहीं आ सकेगा। पर कितनी बड़ी ट्रेजेडी है यह मेरी जीवन की, कि आज चाहकर भी मैं "किसी के" पास नहीं जा सकती। ये दीवारें मेरा मार्ग रोक्कर खड़ी हो जाती हैं।" [1] और आगे अमला इस प्रकार भी सोचती है - "वह पत्नी भी बनी है, प्रेयसी भी और मित्र भी........ पर न वही किसी के जीवन को संवार सकी, न कोई उसके जीवन को संवार सका....... और सारे सम्बन्ध एक असफल प्रयोग की तरह मन पर एक असहय बोझ-सा छोड़कर टूटते चले गए। अब वह अमर की प्रेरणा बनेगी...... इन प्रयोग में चाहे सम्बंध टूट जाएं, चाहे वह स्वयं टूट जाए, पर यह टूटना सार्थक होगा क्योंकि यह सृजनात्मक होगा।"[2]

मन्नू भण्डारी अमला की बातों से यह स्थापित करती है कि इस आधुनिक समाज में आधुनिक रुप में स्त्रियों की मानसिकता पर बहुत बदलाव आया है। इस आधुनिक समाज की स्त्री पुरुष के जैसे हर एक क्षेत्र में समानता प्राप्त करने के कारण, किसी से भी दबकर, घुटन भरी जीवन बिताना नहीं चाहती है। वह स्वतंत्र रूप से जीना चाहती है, मगर वास्तविक रुप में देखा जाय तो इस आधुनिक समाज में स्त्री को अपने अंह और स्वाभिमान के कारण, मन ही मन घुटन भरा जीवन बिताना पड़ता है।

रंजना से शादी होने के बाद अमर अपने ही घर में अपने स्थान के बारे में यह सोचकर चिन्तित होता है कि मुझे लगता है, मैं यहाँ मेहमान बनकर रह रहा हूँ....... मैं तो केवल कुछ दिनों को यहाँ आया हूँ, मेरा वास्तविक घर तो वही कमरा है, जिसकी चारपाई के सिरहाने सारे धोबी के धुले कपड़े तकिये का काम देते हैं......

1 एक इंच मुस्कान , पृ. 124

2 वही , पृ. 124

दरवाज़ों के पर्दे और तौलिया में कोई भेद नहीं है। मन को समझाता हूँ कि आखिर वह जिन्दगी तो बहुत चलती नहीं - जब भी, इस तरह की जिन्दगी की शुरुआत होती हो। फिर आदमी को यह तो मानकर ही चलना चाहिए कि अकेले रहने और किसी के साथ रहने में कहीं तो अन्तर है ही......। कभी-कभी अपने पर ही दया आती है, देखो व्यवस्था और सुख मेरे लिए कितने पराये हो गए हैं कि उनके बीच में मैं मेहमान अनुभव करने लगता हूँ.........।"[1]

इस प्रकार अमर अपने वैवाहिक जीवन से भी सुख प्राप्त नहीं करता है। अमर का अमला के सामने रोने की चेष्टा देखकर रंजना सोचती है - "जैसे अमर उससे बहुत दूर चला गया है।"[2] इसलिए रंजना अमर के सामने इस प्रकार रोने लगती है - "मुझे मार डालो अमर, मुझे मार डालो। नहीं तो मैं खुद मर जाऊँगी। पोटेशियम साइनाइड खाकर मर जाऊँगी...... इस तरह मुझसे नहीं जिया जाता।" [3] किसी भी स्त्री आपने वैवाहिक जीवन में दूसरी स्त्री को चाहे वह मित्र हो या और एक हो बिलकुल जगह नहीं दे सकती है। वही स्थिति रंजना के साथ हो रही है। और अमर अमला के बारे में रंजना को इस प्रकार समझाता है - "रंजना, अमला से तुम्हें ईर्ष्या नहीं, सहानुभूति होनी चाहिए। इतने ऐश्वर्य और वैभव के बीच भी कितनी निर्धन है वह, कितनी रिक्त है। उसका दर्द मुझे छूता है। वह ऊपर से हंसती है, मस्त रहती है, पर मन के घाव - जो सच्चे स्नेह के अभाव में नासूर बन गए हैं - रात - दिन रिस्ते रहते हैं; और उस सारी पीड़ा को अपने में ही समेट वह जीती है। उसके पास तो तुम्हारी तरह एक अमर भी नहीं है जिसकी छाती पर सिर पटक-पटक्कर अपना दुःख, अपना दर्द ही उंडेल सके।"[4] इस कहानी में लेखिका यह भी स्थापित करना चाहती है कि, आखिर पुरुष अपने पत्नी के रूप में एक बार स्वीकार करने के बाद

1 एक इंच मुस्कान, पृ. 133-134
2 वही , पृ. 154
3 वही , पृ. 154
4 वही , पृ. 155

दूसरी औरत के साथ मित्रता स्थापित करता है और इस पत्नी के सुख - दुःख में काफी कम दृष्टि रखता है शायद रंजना भी इसका प्रत्यक्ष रुप है। रंजना, अमर से इस प्रकार पूछती है-एक बात पूछूँ अमर? तुम्हारी पत्नी बनकर ही आखिर मैंने ऐसा कौन-सा अपराध कर दिया कि मेरे प्रति तुम्हारा सारा प्यार ही सूख गया? मानती हूँ, साथ रहने की कठिनाइयाँ और समस्याएँ तो है ही, पर मैं तो सोचती थी कि ये कठिनाइयाँ हमें और पास लाएंगी और निकट लाएंगी; हमें एक बना देंगी। यों अलगाव तो तुमसे मैंने कभी भी महसूस नहीं किया। विवाह के लिए इंकार करके एक महीने तक तुमने मेरी सूरत तक न देखी थी, तब भी मन में एक अटूट विश्वास था कि अमर मेरा है, आज नहीं तो कल वह अवश्य मुझे मिलेगा। पर जब अमर मुझे मिल गया तो लगा कि वह पहले जैसा अमर नहीं है....... कोई और चीज हमारे बीच आ गई है, और हम दिनों - दिन दूर होते जा रहे हैं।"[1]

आधुनिक समाज में पति -पत्नी अपने वैवाहिक जीवन बिना दबाव के साथ जीवन जीना चाहता है। ऐसी स्थिति में रहनेवाला अमर रंजना के प्यार में बंद करके रहना नहीं चाहता है इसलिए अमर रंजना से इस प्रकार कहता है - मैं तुमसे कुछ नहीं चाहता रंजना।सब कुछ तो तुमसे ले लिया, अब और क्या चाहूँगा? बस इतना ही चाहता हूँ कि तुम मुझे इतना प्यार मत करो। जिस प्यार का मैं प्रतिदान नहीं दे सकता, वह मेरे लिए बोझ बन जाता है....... एक असहय बोझ। इसी बोझ के नीचे मैं रात -दिन घुट रहा हूँ। तुम चाहे कुछ न कहो, पर मैं जानता हूँ कि तुम्हें कुछ नहीं दे पाया...... न घर, न धन, न सुख, न प्यार। तुम्हारे सामने जब अपने को देखता हूँ तो पाता हूँ कि मैं बहुत छोटा हूँ, बहुत नीच हूँ, बहुत स्वार्थी हूँ....... और यही भावना मुझे पल - पल सालती रहती है। तिल -तिल समर्पित होता तुम्हारा यह व्यक्तित्व,

---

1 एक इंच मुस्कान, पृ. 157

तुम्हारा यह एकान्तिक प्यार……. मुझे मत दो रंजना……. बस और मैं कुछ नहीं चाहता।"[1]

अमर अपनी इच्छाओ को और स्वतंत्र जीवन को दबाकर रंजना को खुश रखना चाहता है। और इस प्रकार रंजना से कहता है -"पर नहीं रंजना, अब मैंने सोच लिया है कि तुम्हें सुखी करना ही मैं अपने जीवन का चरम लक्ष्य बना लूँगा। मैं सब कुछ छोड़ दूँगा - घूमना - फिरना, मित्रों का साथ, अमला से संबंध, यहाँ तक कि लिखना - पढ़ना भी। कहीं नौकरी करूँगा और एक सद्‌गृहस्थ और अच्छा पति बनकर रहूँगा। अब से मैं अमर होकर ही जिऊँगा, रंजना का पति होकर जिऊँगा, केवल रंजना का पति। तुमने मेरे लिए घर - बार, परिवार छोड़ा, मैं भी तुम्हारे लिए सब कुछ छोड़ दूँगा…… फिर तो तुम खुश रहोगी न?" [2] अपनी से भी दूसरों को खुशी रखने की मानसिक घुटन को अमर के द्वारा दर्शाया गया है।

सीढ़ी और धरती की सहज जीवन के साथ तुलना करते हुए अमर, अमला का वास्तविक जीवन के बारे में इस प्रकार समझाता है - "शायद! क्योंकि यह धरती ही हमारे जीवन का यथार्थ है, हमारे जीवन का सत्य है…… वह चाहे कांटों - भरी हो या फूलों - भरी, हरी-भरी हो या पथरीली। कुछ देर के लिए भले ही उसे छोड़कर ऊपर चढ़ जाओ, पर अन्त में आना तो वहीं पड़ता है।"[3]

मन्नू भण्डारी इस प्रकार की मानसिकता को स्पष्ट करना चाहती है कि कुछ लोगों के जीवन में जितना भी दुःख होने पर भी उस दुःख को छिपाने की कोशिश करता है जैसे हँसमुख चेहरे के साथ लोगों के सामने अपने दुःख को अंदर ही दबाकर जीवन जीता है। इसका प्रत्यक्ष रूप लेखिका अमला के पात्र के द्वारा दर्शाती है और अमल की रहस्य को सिर्फ अमर जानता है और अमला से इस प्रकार कहता है -

---

1 एक इंच मुस्कान, पृ. 157

2 वही , पृ. 158

3 वही , पृ. 162

"जानती हो अमला, जो बहुत खिलखिलाकर हंसते है, समझ लो, भीतर ही भीतर वे कहीं बहुत दुःखी होते है। तुम्हारी यह मुस्कराहट...... बात - बात पर फूटती हँसी, मेरे सामने तुम्हारे भटे - पूटे जीवन का चित्र नहीं उभारती, तुम्हारे जीवन की शून्यता और दर्द को ही उभारती है।"[1] और आगे अमर अमला को यह भी समझाता है कि - "फिर तुम बहुत बड़ी भूल कर रही हो अमला। आज चाहे एक बार तुम हिम्मत करके अपने मन में ऊँचाई का भ्रम पैदा कर लो और सारे संसार को खिलौना समझकर छोड़ दिया है। सारा संसार उस दिन भी अपनी हंसी-खुशी में आगे बढ़ता रहेगा, और तुम एक चाबी टूटे खिलौने की तरह जहाँ की तहाँ पड़ी सिर धुनती रहोगा। उस समय पाओगी कि किसी के पास इतना अवकाश तक नहीं है कि धूमकर एक बार तुम्हारी ओर देख तक ले।"

पुरुष हो या स्त्री अकेला रहने का निर्णय ले सकता है या किसी को दिखाने के लिए भी यह काम कर सकते है मगर असल में देखा जाय तो इस प्रकार की लोगों में मानसिक कुंठा ज्यादा होती है। इस यथार्थ को लेखिका ने इन संदर्भो के द्वारा स्पष्ट किया है। ठीक है कोई मनुष्य अकेला नहीं रह सकता है अगर रहने से घुटन भरी जीवन जीना पड़ता है। इसलिए मन्नू भण्डारी वैवाहिक स्त्रियों की जीवन के बारे में स्पष्ट करना चाहती है। प्रस्तुत अपन्यास में परित्यकता अमला स्वतंत्र रूप से जीना चाहती है तो अमर उसे विवाह की प्रस्तवना से अमला की मन को शांति देना चाहता है लेकिन विवाहित अमर अपनी पत्नी रंजना के साथ क्यों सुखी नहीं रहता है। इसका मूल रूप अमला, अमर से इस प्रकार पूछती है - "एक बात पूँछू अमर? तुम विवाह करके बहुत सुखी हो? नारी के अभाव ने ही तुम्हें विवाह करने के लिए विवश किया, भाग्यवान थे कि तुम्हारा परिचय एक ऐसी नारी से था जो तुम्हें प्यार करती थी, तुम्हारी सारी अच्छाइयों और बुराइयों को प्यार करती थी, एकान्तिक और एकनिष्ठ प्यार। फिर भी पूछती हूँ क्या तुम सुखी हो? जो किसी भी व्यक्ति के लिए जीवन का

---

1 एक इंच मुस्कान, पृ. 163

चरम सुख हो सकता है वही तुम्हें कष्ट दे रहा है..... और यहीं आकर लगता है कि हम दोनों के जीवन में कहीं साम्य है और तभी तुम मुझे बहुत अपने - अपने - से लगते हो। शायद अपने - अपने व्यक्तित्व के एक सिरे पर हम दोनों ही बहुत ही साधारण हैं, बहुत ही साधारण....... वही हविसें, वही इच्छाएँ, वही कमजोरियाँ, पर व्यक्तित्व के दूसरे सिरे पर कुछ ऐसे विशिष्ट हैं कि साधारण बातों की प्रतिक्रिया और परिणति भिन्न ही होता है।"[1]

लेखिका ने अकेले जीवन और वैवाहिक जीवन के अंदर की मानवीय त्रुटियों के अंतर्द्वन्द्व को स्पष्ट किया है।

"एक इंच मुस्कान" में रंजना का अमर के नाम पर लिखा हुआ एक पत्र के द्वारा भी अमर की मानसिकता उजागर होती है। रंजना अमर को इस प्रकार पत्र लिखती है - "मैं जानता हूँ कि अमला को लेकर कुछ भी सोचना मेरे लिए न तो उचित है न श्रेयस्कर, फिर भी जाने क्यों, एक विचित्र - सी कमजोरी मन में घट करती जा रही है। जितना उसे भूलने की कोशिश करता हूँ पर मन जैसे हमेशा उसी के साथ रहता है - लगता है, वह मेरे व्यक्तित्व का, मेरी आत्मा का अभिन्न अंश है। हालांकि मैं इस भावना से मुक्ति पाना चाहता हूँ, पर मन यही करता है, कि कुछ दिनों तक उसके पास जाकर रहूँ। शिमला में वह अकेली थी और उसने बुलाया भी था; मैं जानता हूँ, मैंने कैसे अपने पर नियन्त्रण किया।"[2] कोई भी स्त्री पत्नी साथ में रहते हुए भी दूसरी स्त्री के साथ इस प्रकार संबंध के बारे में सोच भी नहीं सकती है। प्रस्तुत उपन्यास में रंजना के पति अमर अमला के साथ इस प्रकार दोस्ती के नाम पर एक घनिष्ट संबंध रखता है तो तब रंजना की मानसिकता को लेखिका इस प्रकार स्पष्ट करती है - "इसका एक - एक शब्द मानो किसी ने लोहे की गर्म सलाख से मेरे हृदय पर दाग दिया। मन हुआ, चुपचाप घर से निकल जाऊँ, पर निकली नहीं। रात तुम

---

1 एक इंच मुस्कान, पृ. 165

2 वही , पृ. 188

लौटकर आए तो इच्छा हुई कि तुम्हारी छाती पर सिर पटक-पटककर पूछूँ कि यह विश्वासघात मेरे साथ क्यों कर रहे हो? प्यार उससे करोगे, पर क्योंकि उसे ला नहीं सकते, इसलिए रहोगे मेरे साथ ? पर पूछ भी नहीं सकी, क्योंकि जानती थी कि तुम अपने इस गुरुतर अपराध की बात को भूलकर इसी पर नाराज़ होओगे कि मैंने तुम्हारी डायरी क्यों पढ़ी? पर मन की घुटन बढ़ती गई, बढ़ती गई। फिर भी मन में जाने क्या था कि लगता रहता था कि एक दिन ऐसा आयेगा कि यह सब ठीक हो जाएगा और मैं अपने अमर को पा लूंगी। अपने सुखी भविष्य के प्रति बड़ी आस्था थी मन में, और उससे भी अधिक आस्था तुम्हारे प्रति थी, क्योंकि दुःखी मैं चाहे कितनी भी हुई पर अपने मैत्री के मधुर दिनों की याद ने फिर भी मुझे टूटने नहीं दिया, पर जब भविष्य में दुःख ही लिखा हो तो आस्था को अपने - आप टूटना पड़ता है और मेरे विश्वास और मेरी आस्था को बिखराकर चूर - चूर कर देनेवाली वह शाम आ पहुँची जब तुम मुझसे झूठ बोलकर अमला के पास गए और मैंने तुम्हें देख लिया। उस दिन लगा, जिस धरातल को अपनी समझकर मैं खड़ी हूँ, वह खोखला है।"[1]

अंत में जगन्नाथपुरी की लहरों में हमेशा हँसनेवाली अमला एक शव रुप में देखी जाती है।

वस्तुतः लेखक की जीवन दृष्टि में अकेलेपन की अनुभूति और मानवीय संबंधों की अर्थ - हीनता को भी देखा जा सकता है। अमला पति द्वारा परित्यकता और अकेली है। वह अपने रीतेपन को भरने के लिए कैलाश और अमर का साथ चाहती है। कैलाश उसकी बौद्धिक भूख नहीं मिटा पाता तो वह अमर की ओर आकर्षित होती है। रंजना अपने दायरे में अकेली और असहाय है। पूर्ण समचिति होने पर भी उपेक्षित। और अमर इन दो विरोधी ध्रुवों में सामंजस्य बिठाने में ही अकेले से अकेला हो जाता है। इस अकेलापन को भरने के लिए एक ही उपचार है और वह है सहज मानवीय संबंध - प्रेम। इसका कारण यह है कि अकेलापन को मानव की नियति

---

[1] एक इंच मुस्कान, पृ. 188-189

मानने से इंकार जबकि आज इस यांत्रिक और जटिल युग में मनुष्य यंत्र का दास बनता जा रहा है। मनुष्य टूटन और अकेलापन की नियति के लिए मजबूर - सा हो गया है। इसलिए अकेलापन मनुष्य की नियति बनता जा रहा है। इसे बन्द करना नामुमकिन - सा है। अमर रंजना और अमला के माध्यम से इस रीतेपन को भरने का स्वाँग भरता है। यह मानव की स्थिति तथा नियति है जिसका सामना अमर तथा अमला को करना पड़ता है। अमर को अमला तथा रंजना के बिना अकेले रह कर और अमला को अकेलेपन से खुलकर आत्महत्या द्वारा। रंजना मात्र अपवाद है जो सम्बंधो के टूटने के पश्चात् दूसरा विवाह कर लेती है।

इस प्रकार विवाहित जीवन की अर्थ - हीनता का सशक्त रुप से तीनों ही खण्डित होकर, टूट कर अपनी - अपनी धूरियों से खिसक जाते है और छोड़ जाते हैं शून्य, आज के वैवाहिक जीवन की अभिशप्तता, मध्यवर्गीय और उच्चवर्गीय इन्सान की नियति।

"आपका बण्टी" की मुख्य समस्या विभिन्न स्तरों पर अकेलेपन से निस्तार पाने और जीवन के साथ सामंजस्य स्थापित करने की अकुलाहट है। प्रत्येक पात्र अपने साथ अतीत की स्मृतियों का बोझ लिए घूम रहा है। इन्हीं स्मृतियों में उनके जीवन से जुड़े प्रसंग है जो इन्हें कही न कहीं किसी न किसी स्तर पर विघटित करते रहते हैं। इसी कारण प्रत्येक पात्र अपने - अपने दायरों के चारों ओर लक्ष्मण रेखा खींच लेता है जिसमें किसी का प्रवेश नहीं। अपनी छोटी सी समस्या को भी अंह के कारण दूसरों के सामने रखने में असमर्थ पाता है, जिससे धीरे -धीरे उनके अकेलेपन की खाई और भी अधिक गहराती जाती है। इसी अंह के कारण शकुन और अजय में समझौता नहीं हो पाता। अगर कभी ऐसा होता भी है तो इस "समझौते का प्रयत्न दोनों में एक अंडरस्टैंडिग पैदा करने की इच्छा से नहीं होता था वरन दूसरे को पराजित कर अपने अनुकूल बना लेने की आकांक्षा से।" और यही आकांक्षा इतनी गहरी होती चलती जाती है कि दोनों एक दूसरे की हर बात को, हर व्यवहार और हर

अदा को एक नया दांव समझने को गजबूर थे। और इस मजबूरी ने दोनों के बीच की दूरी धीरे - धीरे इतनी बढ़ जाती है कि फिर बण्टी उस खाई को पाटने के लिए सेतु नहीं बन सका। बण्टी के सेतु बनने की सम्भावनाओं के समाप्त हो जाने के बाद तो शकुन और अजय के साथ रहने की यंत्रणा भी बड़ी विकट थी और अलगाव का त्रास भी। अलग रहकर भी वह ठंडा युद्ध कुछ समय तक जारी ही नहीं रहा बल्कि अनजाने ही अपनी जीत की सम्भावनाओं को एक नया सम्बल मिल गया था वह सम्बल था बण्टी। किन्तु जब उसे अजय के किसी के साथ संबंध बढ़ने और फिर साथ सेटल हो जाने की सूचना मिली है तो अकेले रहने के बावजूद तब एक बार फिर नये - नये सिरे से शकुन के मन में अकेलेपन का भाव जागा था जो कि बहुत तीखा और कटु था। मन्नूभण्डारी का यह विश्वास है कि जीवन का परिवेश जब व्यक्ति को अपनी मानसिक आवश्यकताओं के लिए यथेष्ट नहीं प्रतीत होता, तो वह क्षुब्ध होकर नए जीवन - दर्शन की खोज करता है। यह परिवेश जब जीवन की गतिशीलता में अवरोध उपस्थित करता है, तो व्यक्ति उतने ही आक्रोश से नई दिशाओं का अन्वेषण करने का प्रयत्न करता है। जब कभी भी अकेलापन आता है, तो अपने चारों ओर के जीवन के कारण ही आता है और फिर वह व्यक्ति के जीवन को और अधिक व्यापक धरातलों से जोड़ देता है। और यही भाव "आपका बंटी" के प्रमुख पात्रों द्वारा अभिव्यक्त होते हैं। प्रत्येक पात्र अपने - अपने अंह से त्रस्त है। पति या पत्नी की उच्च महत्वाकांक्षाएँ या अहम - भाव की तुष्टि करने के सतत प्रयास भी कई बार विरहकारक बनते हैं और यही अह्म - भाव प्रतिशोध में परिणत हो जाता है। शकुन में यह बात अधिक ही स्पष्ट है। शकुन का मनोभाव वहाँ स्पष्ट होता है जहाँ वकील चाचा अजय की मनस्थिति को बताते हैं और कहते है कि "क्या बताएं, कुछ समझ में नहीं आता। बंटी को लेकर उसके मन में एक कचोट है और यही कचोट कभी - कभी......."[1] तब वह ऊपर से नीचे तक एक क्रूर सन्तोष से भट

---

1 आपका बंटी-पृ.सं.

जाती है। इसीलिए संबंध विच्छेद के बाद शकुन का प्रिंसिपल बनना या फिर डॉ. जोशी से शादी करना अजय को पराजित करने, टारचर करने या नीचा दिखाने की भावना से होता है। इतना ही नहीं बंटी को प्यार करने के पीछे भी यही भावना कार्यरत रहती है। शकुन सोचती है कि वह स्वंय कभी अपना लक्ष्य रही ही नही। पर इतने पर भी जब सामनेवाला नहीं टूटता तो उसकी सारी प्रगति और प्रयत्न जैसे निरर्थक हो जाते हैं, और यही सब वह अजय की जगह अपने ही लिए करती तो शायद उसे इतनी यातना नहीं झेलनी पड़ती। वह स्वंय भी इसे महसूस करती है कि "दस वर्ष का यह वैवाहिक जीवन एक अंधेरी सुरंग में चलते चले जाने की अनुभूति से भिन्न न था। आज जैसे एकाएक वह उसके अंतिम छोर पर आ गई है। पर आ पहुँचने का संतोष भी तो नहीं है। ढकेले जाने की विवशता कचोट भर है। पर कैसा है यह छोर? न प्रकाश, न वह खुलापन, न मुक्ति का एहसास। लगता है जैसे इस सुंरग ने उसे एक दूसरी सुरंग के मुहाने पर छोड़ दिया है - फिर एक ओर यात्रा - वैसा ही अंधकार, वैसा ही अकेलापन।"[1]

शकुन बार -बार अतीत में जाकर अपने और अजय के संबंधों के रेशे -रेशे उधेड़ती है। अपना अंह और अंह के कारण वह स्वतंत्र रहना चाहती है। पर नारी कितनी ही स्वतंत्र हो जाए, लेकिन कहीं ने कहीं वह कुछ दायरों में सीमित ही रहना चाहेगी। और यही सीमाएँ शकुन में बण्टी को लेकर है वह उससे प्यार करती है उसको चाहती है यही उसकी सीमाएँ बनती है, चूँकि बण्टी एक मात्र उसका आधार, सहारा, आशा सभी कुछ तो वही है। लेकिन फिर भी उसके मन में एक दंश हमेशा कचोटता रहता है और वह दंश शायद इस बात का है कि "किसी और ने अजय से वह सब प्राप्त कर लिया जो उसका प्राण था।" यही बात उसे सदैव कचोटती रहती है और साथ ही इस बात का दंश था कि वह अजय को हरा नहीं पाती है या फिर उसे अजय के हाव-भाव और चेहरे से कहीं भी कुछ ऐसा नहीं लगता कि वह कृत्य पर

---

1 आपका बंटी-पृ.सं.

पश्चाताप कर रहा हो या फिर शकुन की प्रगति से उसका अहं टूटा हो। इसीलिए बार-बार अजय उसके मानस-पटल पर उभर आ खड़ा होता है किंतु बंटी के माध्यम से उसके मन में आशा की किरण बनी रहती थी। परंतु बण्टी को प्यार किया तो अजय हो टारचर करने के लिए। डॉ.जोशी से शादी करने के पूर्व बण्टी से प्यार का दूसरा कारण था जिसमें वह अपनी शून्यता को और रिक्तता को भरना चाहती है किंतु शादी के बाद सोचती है "बण्टी उसके और अजय के बीच में सेतु नहीं बन सका तो वह उसे अपने और डाक्टर के बीच में बाधा नहीं बनने देगी।"[1]

उपन्यास के सभी पात्रों के अहं और स्वाभिमान की पूर्ति तो होती है लेकिन उसकी सजा मिलती है बण्टी को। जब कि बण्टी का कहीं कोई भी दोष नहीं है। फिर भी धीरे-धीरे एक-एक कर वह एक-एक को छोड़ता चलता है और जिनसे जुड़ना नहीं चाहता उनसे मजबूरन जुड़ता है। और यहाँ से बण्टी के जीवन में एक नया मोड़ आ जाता है। बण्टी में अकेलापन, घुटन, अहं सभी कुछ परिस्थितियों के अनुरूप विवश होकर उभरने लगता है। शकुन का डॉ.जोशी के साथ शादी कर लेना, बण्टी के लिए असह्य हो जाता है। शकुन का विवाह के बाद बण्टी से धीरे-धीरे प्रेम कम हो जाता है, शायद बण्टी को ऐसा लगता है। बण्टी भीतर ही भीतर घुटता चला जाता है। किंतु वह अपने अहं के कारण अपने दायरों को किसी को छूने तक नहीं देता। जो कि उसके लिए असह्य भी है। बण्टी की खामोशी शकुन को यह सोचने पर मजबूर कर देती है कि जीवन के प्रति उसका यह निर्णय गलत तो नहीं है। वकील चाचा ने स्पष्ट कह दिया था कि भविष्य की दृष्टि से शकुन बण्टी की माता ही न बनी रहे, अपने लिए भी जिए, अन्यथा बण्टी की माँ बनी रहकर भी जीवन के साथ और बण्टी के साथ वह न्याय नहीं कर सकेगी। उसे भी अपने लिए नयी राह अपनाने के लिए विवश होना पड़ा। शकुन जीवन के एक ऐसे मोड़ पर खड़ी है जहाँ डॉ.जोशी को अपनाने के सिवा कोई दूसरा विकल्प सामने दिखाई नहीं देता। आधुनिकता के इस अभिशाप में

---

1 आपका बंटी-पृ.सं.

बण्टी पिसता चला जाता है। किंतु बण्टी अपने को "एडजस्ट" न कर पाने के कारण उसे अनेक पीड़ाओं और भावनाओं को झेलना पड़ता है। साथ ही शकुन भी उन सभी को झेलने के लिए बाध्य हो जाती है। शकुन, बण्टी और डॉ.जोशी का साथ एक नयी स्थिति को जन्म देता है। जो शकुन अजय के साथ एडजस्ट नहीं हो पाती वही डॉ.जोशी के साथ संपर्क होने पर उसे लगता है कि-"छोटा बन कर जीना उसके अहं को बर्दाश्त नहीं और बड़ा होकर जीने लायक उसके पास कोई पूंजी नहीं।"[1] तब एक अजीब सी मानसिक यातना में वह अपने को पाती है। यह आधुनिक नारी की मनःस्थिति को उजागर करती है। छोटा होकर, दब कर जीना उसके लिए बर्दाशत नहीं। शायद यही कारण है कि अंतिम स्थिति तक उसे समझौता करना मुश्किल पड़ जाता है। "अपने को पूरी तरह निर्द्वन्द्व-भाव से समर्पित करके आदमी कितना कुछ पा लेता है।"[2] आधुनिक परिवेश में उपजे अहं, अकेलापन, क्रोध, विवशता, अभिमान, द्वेष, घृणा आदि का एक मिला जुला रूप लेखिका ने शकुन के द्वारा स्पष्ट किया है। किंतु साथ ही बण्टी के प्रति उपजे स्नेह को दिखाकर एक भारतीय नारी की भावनाओं को भी संजोये रखा है। नारी कितनी ही आधुनिक हो जाए उसे कुछ परंपरागत तन्तुओं से जुड़ा ही रहना पड़ता है। यही शकुन के जीवन की विवशता है। जहाँ वह पूर्ण रूप से आधुनिक होते हुए भी बण्टी के संदर्भ में परंपरागत मूल्यों को ही पकड़े रहती है।

शकुन और डॉ.जोशी के शादी के बाद बण्टी की स्थिति की विकटता मानसिक और शारीरिक स्तर पर बढ़ती ही जाती है। शकुन का बण्टी के प्रति जो स्नेह, ममता, प्यार था वह डॉ.जोशी के घर जाने पर खुलकर प्रकट नहीं हो पाता चूँकि जोशी के अपने पुत्र और पुत्री हैं जिनके प्रति भी उसका कुछ कर्तव्य बन जाता है। इसी कारण बंटी को जोशी के घर की परिस्थितियाँ बड़ी ही अस्वाभाविक लगती हैं और जैसे इस

---

1 आपका बंटी-पृ.सं.

2 वही -पृ.सं.

वातावरण में उसका दम घुटने लगता है और अनायास ही वह अपने पापा को पत्र लिखता है। जिसमें मुख्य रूप से इसी घुटन भरे वातावरण से निकाल ले जाने का आग्रह छुपा रहता है। यह दूसरी बात है कि वह इन पत्रों को पोस्ट नहीं कर पाता। शकुन के जीवन की एक और महत्वपूर्ण विडम्बना वही जहाँ वह बण्टी के लिखे पत्रों को देखती है किंतु परम्परागत ममत्व के कारण वह उसे भेजे देने के लिए पहली बार तैयार होती है चूँकि यह बण्टी की इच्छा थी। अजय की इच्छा पर तो वह समझौता करने ही तैयार नहीं थी। इसीलिए बण्टी से कहती है "मैं सोच रही थी कि यह उनका अपना आग्रह है, अपनी ही जिद है। पर अगर तूने लिखा है तब तो....."[1] यहीं पर आकर शकुन के जीवन में आधुनिक और परंपरागत मूल्यों की परस्पर टकराहट होती है। इन टकराहटों के परिणाम स्वरूप अजय बण्टी को लेकर चला जाता है।

इसी स्थान से शकुन के मन में फिर एक बार खालीपन आ जाता है। जिसमें बण्टी का अभाव है। वह अचानक ही "जस्टिफिकेशन" की बात सोचती है। तब अतीत की स्मृतियाँ अजय को फिर से एक बार उसके मानस पटल पर लेकर खड़ा कर देती है। वह अजय और बण्टी की तुलना करती है और उससे अपना संबंध देखती है। वह यह सोचती है कि "अजय ने भी न जाने क्या चाहा था उससे। वह नहीं दे पायी तो अजय उसकी जिंदगी से निकल गया। अब बण्टी भी कुछ चाहता था। पता नहीं बण्टी ही चाहता था या कि अजय ही बण्टी में उतरकर नये सिरे से फिर वही चाहने लगा था। जो तब वह उसे नहीं दे पाई थी।"[2] किंतु वह सोचती है कि सब लोग केवल उसे चाहते हैं और वह उनकी घटनाओं को पूरा करती रहे और वह कुछ न चाहे।

शकुन के वास्तविक जीवन की यही सबसे बड़ी विसंगति है कि जहाँ उसे केवल देना ही देना है। चाहे वह अजय हो, बण्टी हो या फिर डॉ.जोशी। परिस्थितियों

---

1 आपका बंटी-पृ.सं.

2 वही -पृ.सं.

के साथ टूटती जुड़ती शकुन के हृदय में इसी कारण धीरे-धीरे एक-एक स्थान रिक्त होता है और उसमें एक खालीपन, खोखलापन या रीतापन आ जाता है। अतः वह एक ऐसे मोड़ पर पहुँच जाती है जहाँ बण्टी भी, सेतु बनने की बात तो दूर उसका सहारा भी नहीं बन पाता।

शकुन के चरित्र की यह विशेषता अंत में प्रकट होती है जिसे वह स्वयं ही स्वीकार करती है कि अपने अहं और वैयक्तिक विचारों की पुष्टि के लिए एवं अजय को पराजित करने की भावना के साथ उसे जैसा समृद्ध जीवन जीना पड़ा उसके स्वयं ही उसे पराजित कर दिया। अजय न जाने कब से परिदृश्य से हट भी गया और वह तब भी उसी मुद्रा में, उसी स्थिति में खड़ी रही-सांस रोके, दम साधे, घुटी-घुटी और कृत्रिम और जब उसे लगा कि अपनी दृष्टि अजय के स्थान अपने ही ऊपर रखती, तो कदाचित उसे इतनी मानसिक यातना तो न भोगनी पड़ती। इस बात का अहसास होते ही वह अपने जीवन में नए संदर्भों को खोजने का प्रयास करने के लिए विवश हो जाती है। और अपने को लक्ष्य कर जीने की चेष्टा करती है।

आधुनिकता के अहं को लेखिका ने बण्टी के द्वारा अन्य सभी पात्रों के माध्यम से अंकित किया है। किंतु आधुनिकता की भूमि पर बण्टी में कुछ अस्वाभाविकता आ जाती है। यद्यपि उपन्यास का केंद्र बिंदु बण्टी है तथापि उसके चरित्र में दुर्बलता छिपी हुई है। पापा-मम्मी के बीच तनाव को जानने की जिज्ञासा, डॉ.जोशी को पापा न कह पाने की यंत्रणा (शायद कुछ हद तक यह ठीक भी है) मम्मी का नई साड़ी पहनना, सेंट की शीशी के प्रति घृणा का भाव, डॉ.जोशी और मम्मी के संबंधों को लेकर बाल अंतर्विरोध आदि प्रक्रियाओं से वह अपनी उम्र से कहीं ज्यादा समझदार दिखाई पड़ता है। 8-9 वर्ष के लड़के की मनःस्थिति शायद इतनी परिपक्वता प्राप्त नहीं कर सकती।

किंतु उपन्यास की विशेषता के कारण कई त्रुटियाँ नहीं उभरतीं। उपन्यास में सबसे बड़ी विशेषता पात्रों का अंतर्द्वन्द्व जिसे लेखिका ने बड़ी सफाई से तराशा है।

जिसमें सबसे अधिक उभर कर आयी है नारी की वेदना। आधुनिक जीवन अंतर्द्वन्द्व और खोखलेपन की समस्या का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। उपन्यास के पात्र अपनी वैयक्तिक भूमि पर अंकित हैं। एक दूसरे से संतुलन बनाए रखने का प्रयत्न असंतुलन में बदलता जाता है। यही इस उपन्यास की विडंबना है कि हर पात्र अंतर्विरोधों के मार्ग से गुजरने के लिए विवश हो जाता है। "वे किसी अग्निकुण्ड में छटपटाती हुई जिंदा लाशों की तरह हैं, जो निरंतर अपनी अस्तित्व को पाने की चेष्टा में रत रहती है।"[1] इस तरह लेखिका ने परिस्थितिजन्य स्थितियों को यथार्थ धरातल प्रदान किया है।

राजा राममोहन राय के भाई की मृत्यु हो जाने पर जब भाभी सती होने लगीं, उनके मन में कैसा तूफान उठा था, एक जीवनीकार ने उसका वर्णन इस प्रकार किया है, राममोहन ने ऐसा दुखद काम करने से मना किया, पर सब व्यर्थ। चिता पर बैठी भाई की पत्नी को ज्यों ही आग की लपटों ने छुआ, उसने व्याकुल होकर वहाँ से निकल भागना चाहा। लेकिन रूढ़िवादी रिश्तेदारों तथा पंडितों ने उसे बांस से जबर्दस्ती आग में वापस ढकेल दिया और जब तक वह मर न गई, उसे निकलने नहीं दिया।

उपर्युक्त शब्दों में एक ओर जिंदगी के लिए स्त्री की चीखें हैं तो दूसरी ओर एक आदमी का दुःख दर्द है। वास्तविक रूप में देखा जाए तो 19 वीं सदी के सभी, समाज सुधारक पुरुष थे। स्त्री हजारों साल से लिंगभेद की शिकार है, वह अभी भी किसी न किसी रूप में पुरुष का उपनिवेश है। फिर भी भारतीय समाज में उसकी स्थिति कुछ ज्यादा विचित्र और विडंबनापूर्ण है। उसको पुरातन सभ्यता और संस्कारों के साथ देखा जाए तो वह बार-बार देवी बताई गई, पर यथार्थतः उसकी जिंदगी बंधुआ मजदूर की थी। सामाजिक वास्तविकता यह है कि वह बचपन में पिता, यौवन

---

1 आपका बंटी-पृ.सं.

में पति तथा बुढ़ापे में पुत्र के अधीन रहकर पुरुष की निरंतर गुलामी के लिए बाध्य की जाती रही है। यह सारा कुछ धर्म का अंग और स्त्री-स्वभाव बन गया है।

पितृसत्तात्मक समाजों में पुरुष और स्त्री के आचार-विचारों में एक कृत्रिम फर्क पैदा हो जाए। पुरुष-नारी विषमता बढ़ती थी। स्त्रियाँ धर्म में जकड़ दी गई; जबकि पुरुष अपने स्वतंत्र आर्थिक जीवन के कारण धर्म को मनोनुकूल मोड़ता-जोड़ता रहा है। आज भी बड़ी चालाकी से पुरुष हितों की सुरक्षा के उद्देश्य से कहा जाता है, "स्त्रियाँ हैं तो धर्म है"। जबकि धर्म में मनुवादी फेरफार और विकृति की वजह से मध्यकाल में स्त्री ने पिता की संपत्ति पर प्राचीन अधिकार भी खो दिया। पति का घर जाना मतलब स्त्री का पराधीनता की अनगिनत श्रृंखलाओं में जकड़ जाना। पढ़ी-लिखी स्वच्छंद लड़कियाँ भी विवाह के बाद बंध जाती हैं। क्या आज भी आम भारतीय स्त्रियों की जिंदगी बचपन में चूल्हे-चौके और गुडियों के खेल से शुरु होकर जिंदगी के वास्तविक चूल्हे चौके और बच्चों की देखरेख में ही बीत नहीं जाती? स्त्री पितृसत्तात्मक धार्मिक उपनिवेश में सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की नज़र में स्त्री की सबसे बड़ी संपत्ति उसका रूप और यौवन है। लेकिन आजकल की स्त्रियाँ राजनैतिक-आर्थिक संघर्ष में हिस्सेदारी के साथ-साथ, नारी मुक्ति आंदोलनों में भी रुचि लेने लगीं।

स्त्रीवाद सदियों की नैतिक वर्जनाओं और कुंठाओं के विरुद्ध एक विस्फोटक प्रतिक्रिया हो सकती है। यह स्त्री को यातना देनेवाले मक्कार और व्यसनी पुरुषों को अंगूठा दिखाना हो सकता है। आज की स्त्री यानी कि बीसवीं सदी के शुरू की नारी और स्वाधीनता आंदोलन दोनों ने एक दूसरे को प्रेरित-विकसित किया था। हर युग में स्त्री स्वाधीनता का आंदोलन किसी न किसी बड़े जन आंदोलन का अंग रहा है।

एमपावरमेंट ऑफ वुमेन के इस दौर में एक अंग्रेज़ी पत्रिका ने अभी अपने हाल के ही एक अंक में एक "कवर स्टोरी" प्रकाशित की है। इसके लिए दस शहरों की दो हज़ार से भी अधिक स्त्रियों के बीच सर्वेक्षण करवाया गया कि आखिर पुरुष से

वे क्या अपेक्षा रखती हैं। सबसे ज्यादा स्त्रियों ने माना कि उन्हें ऐसे पुरुष पसंद हैं जो उनकी आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील हों, ईमानदार हों, स्त्रियों को बराबरी का दर्जा देते हों। हाँ, होशियार तो उसे होना ही चाहिए। आजकल स्त्रियों की साक्षरता बढ़ रही है। भारत में कामकाजी स्त्रियाँ बढ़ी हैं, उनकी जीवनशैली बदल रही है।

आधुनिक समकालीन हिंदी जगत् में मन्नू भण्डारी ने आजकल की नारी के दुःख दर्द को पहचाना। उपन्यास मानव जीवन का विराट "केनवास" है तथा इसमें जीवन की भीतरी और बाहरी घटनाओं का वैचारिक अंतर्लोक अपने समस्त सौंदर्यानुभवों से गुजरता है। आधुनिक उपन्यास अपनी निरंतरता में सदैव समकालीन है और यह आधुनिक मनुष्य की अपनी ही आत्मकथा है। हिंदी उपन्यास में यह आधुनिक मानसिकता "गोदान" से शुरु होती है। गोदान में नैतिकता के प्रति एक गहरा आघात मिलता है जहाँ प्रेमचंद की आदर्शवादी दृष्टि जीवन के यथार्थ का सामना करती है। इसमें नैतिक धारणाओं का आरोप नहीं है, बल्कि सामाजिक यथार्थ का ही अंकन किया गया है।

"आपकी बंटी" उपन्यास में तलाक-शुदा पति-पत्नी के प्रश्न को मन्नू भण्डारी ने बच्चे की समस्या के बिंदु से उठाया है। डॉ.रामदरश मिश्र के अनुसार "जहाँ उषा प्रियंवदा ने अपने "रुकोगी नहीं राधिका" जैसे उपन्यासों में आधुनिक पढ़ी-लिखी नारी के स्वतंत्र निर्णय लेने की शक्ति को भी एक अजीब बेबसी और सामाजिक घिराव के यथार्थ में व्यक्त किया है वैसे ही मन्नू भण्डारी ने इस नये प्रश्न को बच्चे, पत्नी और पति तीनों की मानसिकता चित्रित करते हुए बच्चे के जीवन की अनिश्चितता और उसकी "ट्रेजेडी" के अहसास को उभारा है। लेखिका बच्चे को केंद्र में रखने के बावजूद पत्नी के दर्द को अधिक प्रामाणिक रूप से उभार सकी है।

"आपकी बंटी" के कथानक विश्लेषण से जो मनोवैज्ञानिक और सामाजिक संदर्भ उभरते हैं। वे एक घर की, पारिवारिक समस्या में सिमटकर भी आधुनिक जीवन की असीम और भटकती हुई जीवन श्रृंखला की कड़ी बन जाते हैं। "आपका

बंटी" एक मनोवैज्ञानिक मात्र न रहकर बालक के चिरंतन और आदिम रूप का "केनवास" बन जाता है। आज की यह तथाकथित आधुनिकता और स्वतंत्रता कितनी खोखली है, जो सामान्य "एडजस्टमेंट" नकार कर अंत में उसी को स्वीकार करती है।

आजाद देश में रहने के लिए उन्होंने कुछ सपने संजो रखे थे किंतु उनका भ्रम टूटा तो सब कुछ कितना असहनीय हो उठा था। इस तरह का कथन भी उपन्यासों को सर्वश्रेष्ठ राजनीतिक भूमिका नहीं प्रदान कर सका और न ही स्वतंत्रता सेनानियों के संघर्ष को व्यक्त कर सका। पूरा उपन्यास नर-नारी के संबंधों पर ही अधिक लिखा गया है। लेखिका ने नारीत्व की सहज आकांक्षाओं, अस्तित्वबोध और दैहिक कामेक्षाओं को प्रतीकात्मक रूप से प्रस्तुत किया है।

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में महिला लेखिकाओं द्वारा महत्वपूर्ण योगदान दिया गया है। उपन्यास क्षेत्र में मन्नू भण्डारी ने पुरातन संस्कारों और रूढ़ियों से अपने सहज मन को सरलता से तोड़ लेती है और अपने अनुभवों के आधार पर आज की नारी की सामाजिक नियति और मानसिकता को बड़ी गहराई से उभारती है। उनके सृजन क्षेत्र और तीखे लेखन के द्वारा नैतिक संबंधों के बदलाव और उसमें पड़नेवाली दरार को लेखिका ने अपनी विशिष्ट दृष्टि प्रदान की है। महिला होने के बावजूद स्त्री और पुरुष संबंधों के चित्रण में मन्नू जी ने जिस प्रामाणिकता और तटस्थता का परिचय दिया है वह निश्चित ही अद्भुत है। यथार्थ सत्य तो यह है कि मन्नू जी अपने उपन्यासों में आविष्कार करती हैं और उनकी संवेदनाएँ एवं परिवेश के प्रति गहरी सहानुभूति उनकी पहचान बनाती हैं। हिंदी कथा-साहित्य में एक लंबे समय के बाद दाम्पत्य-जीवन की समस्याओं से उभरकर यह उपन्यास नये चरित्रों के साथ सामने खड़ा है।

आजकल की स्त्री पुरूष के बराबर हर एक क्षेत्र में आगे बढ़ रही है। विवाह के मामले में आजकल की स्त्री पति को स्वयं चुन रही है। अगर पति से विवाह के

बाद कुछ समस्याएं उत्पन्न होने से एड्जेस्ट होकर जीना नहीं चाहती है। चाहे तो पति को छोड़ सकती है मगर अपनी इगो को कम करके जीना नहीं चाहती है। स्वतंत्र रूप से जीना चाहती है। प्रस्तुत उपन्यास "आपका बंटी" की नायिका शकुन इसका ज्वलंत उदाहरण है। शकुन और अजय पति-पत्नी है। इन दोनों का बच्चा बंटी है। मगर उनका वैवाहिक संबंध अधिक देर तक टिक नहीं सका, क्यों कि पति-पत्नी अपने-अपने अंह को लेकर आपस में टकराते रहते हैं। अजय शकुन से अलग रहने लगता है। परंतु शकुन अजय से अलग होकर भी मानसिक रूप से उसी से जुड़ी रहती है। अजय के चले जाने से अपने जीवन में घिर आई शून्यता को वह बंटी पर अतिरिक्त स्नेह उड़ेल कर भरना चाहती है। उसे विश्वास है कि बंटी के कारण अजय एक दिन अवश्य लौटेगा। परंतु जब अजय शकुन से तलाक माँग कर मीरा नाम की एक लड़की से शादी कर लेता है तो शकुन को बहुत धक्का पहुँचाता है। तलाक के बारे में उसने कभी सोचा ही नहीं था। अजय को दिखाने के लिए, प्रतिशोध के रूप में शकुन भी डाक्टर जोशी के साथ नए जीवन की शुरूआत करती है। अजय के सम्मुख न झुकने वाली शकुन डा.जोशी के साथ पग-पग पर समझौता करती है। अपनी इस नई जिन्दगी में वह अपनी संतान बंटी की भी नितांत उपेक्षा करती है। छत्तीस वर्षीया आधुनिक विचारधारा वाली, स्वतंत्र व्यक्तित्व से संपन्न शकुन अपने को आत्मनिर्भर नारी समझती है। वह एक कालेज की प्रिंसिपल है, एक कुशल और दबंग प्रशासक भी है। कालेज के प्रत्येक कार्य को वह सफलता से निपटाती है। प्रिंसिपल की कुर्सी पर बैठते ही उसके व्यक्तित्व का अधिकारी रूप उस पर पूरी तरह हावी हो जाता है। कालेज में किसी को आदेश देती हुई, किसी से सलाह-मशवरा करती हुई, किसी को डांटती हुई, शकुन अपने सहज, सरल और स्वाभाविक घरेलू रूप से नितांत भिन्न प्रतीत होती है। घर में शकुन का एक अलग ही रूप है। पत्नी के रूप में वह पति से बार-बार समझौता करती है पर पूर्ण समर्पिता नहीं बन पाती है। बंटी की ममी के रूप में उसके चेहरे की कठोरता, तनाव

न जाने कहाँ गायब हो जाता है। कोमल, सुंदर और स्नेह से भरपूर माँ है वह अपनी संतान के लिए।

आधुनिक चेतना से संपन्न अपने दांपत्य जीवन को कलह से बचाने के लिए पति अजय से समझौता तो करती है, परंतु एक सीमा तक ही। अजय को शकुन बहुत अधिक स्वतंत्र और दबंग लगती है। शकुन भी मानती है कि अजय के लिए वह अपने संपूर्ण व्यक्तित्व को नितांत शून्य में बदल कर नहीं जा सकती है। अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग और सचेत शकुन एक परंपरागत भारतीय पत्नी की भाँति अपने को पति अजय के प्रति पूर्णतया समर्पित नहीं कर पाती। इन समस्याओं के बीच में बेगुनाह बंटी ही ट्रैजडी के त्रास को सबसे अधिक भोगता है।

"आपका बंटी" में बच्चे की मानसिकता को लेकर लेखिका द्वारा किया गया चित्रण उल्लेखनीय है। "ममी ड्रेसिंग टेबुल के सामने बैठी तैयार हो रही है। बंटी पीछे खड़ा चुपचाप देख रहा है। ममी जब भी कालेज जाने के लिए तैयार होती है, बंटी बड़े कौतूहल से देखता है। जान तो वह आज तक नहीं पाया, पर उसे हमेशा लगता है कि ड्रेसिंग टेबुल की इन रंग-बिरंगी शीशियों में, छोटी-बड़ी डिब्बियों में जरूर कोई जादू है कि ममी इन सबको लगाने के बाद एकदम बदल जाती है। कम से कम बंटी को ऐसा ही लगता है कि उसकी ममी अब उसकी नहीं रहीं, कोई और ही हो गई।"[1] इस प्रकार बंटी अपनी ममी की हर एक स्थिति को देखकर मन ही मन सोचता है। जब ममी कालेज में पढ़ाने के लिए घर से निकलती है तो फूफी को बंटी के देखभाल का आदेश देकर जाती है तब बंटी कालेज जाते हुए ममी के बारे में इस प्रकार सोचता है-"उनकी चप्पल की खटखट जब बरामदे की सीढ़ियों पर पहुँची तो बंटी कमरे के दजवाजे पर आकर खड़ा हो गया। और ममी जब फाटक खोलकर, सड़क पार करके, घर के ठीक सामने बने कालेज में घुसी तो बंटी दौड़कर अपने घर के फाटक पर खड़ा हो गया। सिर्फ दूर जाती हुई ममी को देखने के लिए। वह जानता है,

---

1 आपकी बंटी, पृ.सं.7

ममी अब पीछे मुड़कर नहीं देखेंगी। नपे-तुले क़दम रखती हुई सीधी चलती चली जाएंगी। जैसे ही अपने कमरे के सामने पहुँचेंगी, चपरासी सलाम ठोंकता हुआ दौड़ेगा और चिक उठाएगा। ममी अंदर घुसेंगी और एक बड़ी-सी मेज के पीछे रखी कुर्सी पर बैठ जाएंगी। मेज पर ढेर सारी चिट्ठियाँ होंगी। फाइलें होंगी। ममी चिट्ठियों और कागजों को अपनी तरह खीचेंगी और फिर उन्हीं में डूब जाएँगी। उस समय तक ममी एकदम बदल चुकी होंगी। कम से कम बंटी को उस कुर्सी पर बैठी ममी कभी अच्छी नहीं लगीं।"[1] बंटी को ममी इसलिए पसंद नहीं है कि कालेज में प्रिंसिपल की कुर्सी पर बैठनेवाली ममी कालेज के सभी लोगों से नाराज़ रहती है। यह एक प्रकार से बालक की मानसिकता है।

शकुन के घर की व्यवस्था का संचालन करती हुई उसकी सेविका फूफी बंटी से अतिशय प्रेम करती है। घर में भोजन आदि वही बनाती है और बंटी की प्रत्येक सुख-सुविधाओं का ध्यान रखती है। वह अजय से मात्र इसलिए नाराज रहती है क्योंकि उसने प्रेम के महत्व को न समझते हुए मात्र अपने अहंकार की तुष्टि हेतु शकुन को तलाक देकर अधार्मिक कार्य किया है। फूफी थोड़ी कटु जबान की लेकिन अत्यन्त सहृदय महिला है। और फूफी बंटी की मानसिकता को समझकर बड़ी होने पर भी बच्चों के जैसी मानसिकता बनाकर बंटी के साथ खेलती है और अच्छे-अच्छे राजकुमारों की कहानियाँ सुनाती है। बंटी भी फूफी को सताता है। इसके साथ-साथ कभी-कभी ममी भी बंटी को गोद में बिठाकर इस प्रकार की कहानियाँ सुनाती है- "ऐसे-ऐसे राजकुमारों की जो अपनी माँ को बहुत प्यार करते थे और जो अपनी माँ के लिए बड़े-बड़े समुद्र तैर गये थे और ऊँचे-ऊँचे पहाड़ पार कर गये थे।"[2]

इस प्रकार शकुन अपनी बंटी से पूरा प्यार पाना चाहती है। इसका मतलब यह है कि इस संसार में कोई भी प्राणी अकेला नहीं रह सकता है एक दूसरों के साथ जीवन

---

1 आपका बंटी-पृ.सं.8

2 वही -पृ.सं.11

बिताना पड़ता है और वह प्यार भरा जीवन बिताना चाहता है। बचपन में माँ-बाप की प्यार से फलती हुई एक बच्चा, बढ़ा होकर सद-बुद्धि सीखकर विवाह करता है। विवाह के पश्चात् पत्नी हो या पति के प्यार में फलता है और बुढ़ापे में और फिर अपने बच्चे की देखभाल में पनपने लगता है। इन दशाओं में कहीं कोई किसी से दरार उत्पन्न होने से इस दुनिया में अकेला महसूस करता है। जिस प्रकार की प्यार की कमी को वह महसूस करता है उस प्रकार की प्यार को खोजने लगता है। और एक कारण यह है कि स्त्री-पुरूष की आकर्षण, वह आकर्षण सिर्फ पति-पत्नी की रिश्ते में नहीं हर रिश्ते में देख सकते हैं। एक ही परिवार के अंदर भाई-बहन के बीच के आकर्षण पिता अपनी बेटी की ओर माता अपनी बेटा की ओर आकर्षित होना सर्वसाधारण है। शायद यही कारण हो सकता है कि शकुन अपने पति से दूर होने के बाद बेटा बंटी से दुनिया भर की प्यार करती है। कहीं घूमने-फिरने, खेलने-कूदने के लिए भी शकुन अपनी ममत्वमयी दुनिया से बाहर नहीं भेजती है। लेकिन छोटा बच्चा होने के कारण वह बिना ममी से बताये पडोसिन के टीटू से खेलता है। टीटू बार-बार बंटी के पापा के बारे में पूछता और तंग करता है। और इस प्रकार यदि टीटू, बंटी को अपने माता पिता के बारे में पूछता है और याद दिलाता है कि ममी और पापा एक दूसरे के साथ लड़ाई करते हैं। कभी पापा बंटी को देखने आता है तो सरकिट हाउस में ठहरते हैं। बंटी यह भी सोचता है कि पापा ममी को क्यों नहीं बुलाता है। और यह भी सोचने लगता है कि "क्या इतने बड़े-बड़ें लोग भी लड़ते हैं? ऐसी लड़ाई जिसमें कभी दोस्ती ही न हो। क्या ममी को पापा की याद नहीं आती होगी?"[1]

इस प्रकार मन्नू भण्डारी का बंटी कुछ हद तक बच्चों की मानसिक समस्याओं को दर्शाती है। उसकी पैदाइशी मानसिक जटिलता को सुलझाने एवं "एडजस्ट" करने में मदद करने के स्थान पर उसके माता-पिता के तनावपूर्ण संबंधों ने

---

1 आपका बंटी, पृ.सं. 16

अधिकाधिक उलझा दिया है। कभी-कभी बंटी अपने माँ के मन के दुःख दर्द को समझने के लिए कोशिश करता है। एक बार शकुन बहुत चिंता में डूब जाती है, लेकिन बंटी अपनी माँ के चेहरे पर खुशी देखना चाहता है। एक बार बंटी के द्वारा मन्नू भण्डारी इस प्रकार दर्शाती है - "पानी दे चुकने के बाद बंटी ने एक बड़ा-सा मोगरे का फूल तोड़ा। इस बगीचे में से फूल तोडने का अधिकार केवल बंटी का है क्योंकि यह बगीचा केवल उसी का है। बिना उससे पूछे तो ममी भी नहीं तोड़ सकती। फूल लेकर वह चुपचाप आया और लेटी हुई ममी के बालों में खोंस दिया। ममी बड़ा मीठा-सा मुस्कराई और पकड़कर उसे अपने पास खींच लिया।"[1] और आगे बंटी यह भी सोच रहा था कि - "इस समय ममी कितनी अच्छी लग रही है। वैसे भी शाम के समय ममी बिल्कुल उसकी अपनी हो जाती हैं। बालों की खूब ढीली-ढाली चोटी और चेहरा भी एकदम मुलायम सा। कोई तनाव नहीं कोई सख्ती नहीं। हमेशा ही इस समय बंटी को ममी बहुत अच्छी लगती हैं। बहुत सुंदर भी। कभी-कभी वह ममी की नजर बचाकर एकटक ममी को देखता रहता है।"[2] बंटी के दिमाग से पापा के प्रति प्यार को कम करने के लिए शकुन, बंटी को इस प्रकार की कहानी सुनाती है - "हाँ, होता है ऐसा। पापा कोई ऐसा-वैसा आदमी था? राजा था। उसके पास राज्य के बहुत सारे काम थे.... बच्चों का खयाल ही नहीं रहा। पापा लोग ऐसे ही होते हैं। उन्हें बच्चों का खयाल कभी रहता ही नहीं। यह तो माँ ही होती है जो...."[3] इतना कुछ बोलने के बाद भी बंटी ममी से पापा के बारे में इस प्रकार पूछता है - "ममी, पापा हम लोगों के साथ क्यों नहीं रहते?"[4]

बंटी में निश्चय ही अजय और शकुन दोनों का प्रचण्ड "अंह" संक्रांत हुआ है। दोनों में "पोजेसिवनेस" है जो बंटी में उतरा है। दूसरे के समर्पण पर

---

1 आपका बंटी, पृ.सं. 16
2 वही , पृ.सं. 16
3 वही , पृ.सं. 18
4 वही , पृ.सं. 18

आत्मविजय के नशे में दोनों अपने को दूसरे के लिए लुटा सकते हैं परंतु तब तक दूसरे को तोड़ने का ही प्रयत्न करेंगे। इन परिस्थितियों का बुरा प्रभाव बंटी पर पड़ता है शायद इस कारण वह कुछ विषयों से भयग्रस्त होता है। हमेशा अंधेरा में रहना दिन के समय में भी कमरे को अंधेरा बनाना चाहता है। यह एक प्रकार की बच्चों की मानसिकता है।

शकुन और अजय के बीच में तलाक के बारे में वकील चाचा बंटी के घर आता और जाता है। कभी-कभी बंटी को पापा वकील चाचा के साथ खिलौने भेजती और साथ-साथ शकुन और अजय के तलाक के बारे में भी बात-चीत करता है। अचानक वकील चाचा के मुँह से कुछ बातें सुनकर शकुन रोने लगती है। यह दृष्य को देखकर बंटी इस प्रकार सोचने लगता है- "चाचा ने शायद कोई बहुत ही खराब बात कह दी है। चाचा को लेकर उसके मन में एक अजीब तरह का आक्रोश घुलने लगा। एक तो कुछ लाये नहीं, फिर झूठ बोला और अब कोई गन्दी-सी बात कहकर ममी को....."[1] बंटी अपने ममी और पापा को लेकर कच्चा उम्र में भी कई तरह सोचने लगता है। और कई बार खिलौने बंटी के नाम अजय भेजता है तो साथ में कहीं शकुन को भी कुछ भेजा हुआ है क्या? इस प्रकार की मानसिक स्थिति शकुन में देखा जाएगा। जब अजय सामने है तो बहुत अहं के साथ बात करेगा लेकिन जितना अहं है उसकी मन में अजय को लेकर उतना ही प्यार है। शकुन और अजय अपने-अपने अहं को कभी भी कम नहीं करना चाहता है। इसका फलस्वरूप एक दिन अजय मीरा नामक एक औरत से शादी करता है। तो शकुन भी अजय के जैसे बराबर स्थान पहुँचने के लिए बच्चोवाला डॉ.जोशी से शादी करता है। इन सबके बीच बंटी का बाल-मनोविज्ञान, उलझनों और तनाव के अंतर्द्वन्द्व में झूलता रहता है। तब बंटी अपने बारे में इस प्रकार सोचता है-"उसकी ममी अब उसकी नहीं रही, कोई और ही

---

1 आपका बंटी, पृ.सं. 27

हो गई। क्या मम्मी को पापा की याद नहीं आती?"[1] बंटी अपने पिता से अपना अलगाव नहीं कर पाता इसलिए शकुन डॉ.जोशी के साथ स्वाभाविक जीवन नहीं जी पाती।

शकुन भी अपने विवाहित जीवन को एक अँधेरी सुरंग समझती है। कभी-कभी बंटी को होस्टल में डालने के लिए कोशिश भी करती है। इस प्रकार दोनों ही माता-पिता अपनी नयी जिंदगी को शुरुआत करने के लिए जैसे बंटी को दी दाँव पर लगा रहे थे। शकुन के मन में भी यह बात आती है कि बंटी उसका बेटा ही नहीं है, हथियार भी है, जिससे वह अजय को "टॉरचर" कर सकती है। डॉ.जोशी को शकुन ने यदि चुना भी है तो अजय के मुकाबले में चुना है। कभी भी शकुन अजय के सामने झुकती ही नहीं मगर डॉ.जोशी के सामने झुक जाती है।

शकुन एक तरह से आधुनिक नारी के सुख-दुःखों, समस्याओं और संघर्षों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। दूसरे शब्दों में आधुनिकता अहं को जितना खाद-पानी डालती है, उतना दूसरे के व्यक्तित्व का आदर करने का, सह पाने का भाव परिपुष्ट नहीं करती। शकुन के प्रेम में मनोविज्ञान का स्पर्श है-उतना ही जितना भारतीय परिवेश के अनुकूल है। प्रेम और घृणा, लगाव और गुस्सा, खीझ और अपनापन, गर्व और विनय, अभिमान और उत्सर्ग, ऊब और आकर्षण के द्वंद्वों में बंटी और शकुन के संबंध अपरिमित कंपनों से लहरदार रूप धारण करते हैं। डॉ.जोशी के साथ शकुन का विवाह के पश्चात एक बार शकुन और डॉ.जोशी रात के समय कार से उतरें तो बंटी लोहे के फाटक के पास खड़ा अपने को फालतू-सा महसूस करता हुआ रोता है। डॉ.जोशी के साथ ममी का शादी होने के बाद घर के सामान के जैसा बंटी को भी एक चीज़ मानकर इस घर में रखती है। नये पापा के साथ एडजेस्ट नहीं हो पाता है। ममी को बंटी बहुत सताना शुरु करता है। एक दिन शकुन तंग आकर बंटी से इस प्रकार कहती है-"रोज़ एक हंगामा खड़ा कर देता है। रोज़ एक तमाशा।

---

1 आपका बंटी

कोई कब तक सहेगा और आखिर क्यों सहेगा?"[1] तुरंत ममी बंटी को यहाँ से अजय के पास भेजना चाहती है वास्तव में बंटी भी पापा के पास रहना चाहता है। ममी यानी कि शकुन ने गुस्से में कह दिया। शकुन बंटी को बहुत चाहती है। शकुन बंटी से इस प्रकार पूछती है-"क्यों बंटी क्या तेरा सचमुच ही मन नहीं लगता? तू पापा के पास जाना चाहता है, जाएगा?"[2] बंटी ममी को प्रॉब्लम देना चाहता है इसलिए पापा के पास जाने के लिए बहुत ज़िद करता है। और इस प्रकार शकुन से कहता है-"जरूर चलूँगा मैं यहाँ बिल्कुल नहीं रहूँगा।"[3] और आगे बंटी इस प्रकार ममी से कहता है-"मैं फिर कभी तुम्हारे पास आऊँगा भी नहीं। पापा के पास ही रहूँगा, हमेशा......"[4] शकुन को और भी इस प्रकार तंग करता है-"मैं बिल्कुल याद नहीं करूँगा, मैं कभी भी चिट्ठी नहीं लिखूँगा। तुम मेरी.....।"[5] आगे कुछ शब्द मुँह के अंदर ही जाते है। लेकिन ममत्व भरी हृदय से शकुन बंटी को इस प्रकार रोकना चाहती है-"बंटी, मत जा बेटे, मैं तेरे बिना नहीं रह सकूँगी।"[6] लेकिन बंटी अजय के पास चला जाता है। शोकमय शकुन अपने आप को इस प्रकार कोसने लगती है-"अजय ने भी न जाने क्या चाहा था उससे। वह नहीं दे पाई तो अजय उसकी जिंगदी से निकल गया। अब बंटी भी कुछ चाहता था। पता नहीं बंटी ही चाहता था या कि अजय ही बंटी में उतरकर नये सिरे से फिर वही चाहने लगा था, जो वह उसे नहीं दे पाई थी। नहीं, यह उसका भ्रम है। अजय उससे कुछ नहीं चाहता। वह अपनी भरी-पूरी जिंदगी जी रहा है। उसने शकुन को काट दिया है, शायद कोई कसक भी बाकी नहीं है। पर जब शकुन

---

1 आपका बंटी-पृ.सं.175
2 वही -पृ.सं.178
3 वही -पृ.सं.183
4 वही -पृ.सं.185
5 वही -पृ.सं.187
6 वही -पृ.सं.188

ने अपने जीवन को भरा-पूरा करना चाहा, अजय की कसक को भी धो-पोंछना चाहा तो बंटी......"[1]

शकुन को लगता है कि बंटी के बारे में अजय कभी नहीं सोचा कि "वह नहीं समझ सका, पर शकुन तो सब समझ रही थी। फिर भी वह चुप रही। क्या वह यह नहीं महसूस करने लगी थी कि बंटी अब उसके जीवन की महज गति में एक रुकावट बन गया है? जिस नई जिंदगी की शुरुआत का सारा आयोजन उसने कर डाला, वह शुरू होकर भी जैसे शुरु नहीं हो पा रही है कि बंटी उसमें जब-तब दरार डाल देता है।"[2]

बंटी अजय के उधर भी एडजेस्ट नहीं हो पाता क्योंकि वहाँ पर नयी ममी है और बच्चे भी है। इस विषय जानकर डॉ.जोशी शकुन से इस प्रकार कहता है-"तुम से कुछ नहीं होगा। मैं ही बंटी को अपने साथ लंबी ड्राइव पर ले जाऊँगा। बहुत प्यार से, विश्वास में लेकर उससे पूछूंगा, उसकी मनःस्थिति जानने की कोशिश करूँगा, क्यों वह यहाँ एडजस्ट नहीं कर पा रहा है.....क्या बताऊँ शकुन, मुझे समय नहीं मिलता।"[3] मन्नू भण्डारी ने यहाँ शकुन के मन की बात को इस प्रकार दर्शाया-"यह सब डॉक्टर कह रहे हैं। एक बार भी यह नहीं कहा कि तुम्हें मुझ पर विश्वास हो तो मैं बंटी को ले जाऊँ? एक बार भी क्या इनको यह ख्याल नहीं आता कि बंटी को लेकर यह डॉक्टर की ओर से उतनी आश्वस्त नहीं हो पाती, कोशिश करके भी नहीं हो पाती कि वह इस प्रसंग को लेकर अपने और डॉक्टर के बीच में एक हल्की, नामालूम-सी दरार महसूस करने लगी है और हमेशा आशंकित रहती है कि वह दरार धीरे-धीरे कहीं खाई न बन जाए। फिर एक और खाई।"

---

1 आपका बंटी-पृ.सं.191
2 वही -पृ.सं.192
3 वही -पृ.सं.199

डॉ.जोशी बंटी को अपने से अलग समझता है इसलिए फिर वापस बंटी को लाना नहीं चाहता है। शकुन बंटी को लेकर इस प्रकार सोचती है-"सच, हम लोग शायद बंटी को मात्र एक साधन ही समझते रहे। अपने-अपने अहं, अपनी-अपनी महत्वाकांक्षाओं और अपनी-अपनी कुंठाओं के संदर्भ में ही सोचते रहे। बंटी के संदर्भ में कभी सोचा ही नहीं।"[1]

बंटी की आंतरिकता को प्रस्तुत करने के लिए लेखिका ने पूरी दुनिया, परिवेश की साधारण-से साधारण चीज़ों को एक गहरी और दोहरी अर्थवत्ता से भर दिया है। आपका बंटी महानगरीय जिंदगी के तलाक पहलू को तीखी वास्तवकिता देता है। बंटी हमारे सामने आधुनिक युग के लिए एक चुनौती बनकर खड़ा है और हम शायद जवाब देने में असमर्थ हैं। यह एक बच्चे की त्रासदी का यथार्थ भी है। बंटी इस उपन्यास का केंद्र है जो शिक्षित मध्यमवर्गीय में पला बढ़ा बच्चा है। उसके भावी चरित्र का पतन अपने परिवेश की परिस्थितियों के कारण हो गया है। बंटी जिद्दी और डरपोक हो गया है। अकेलेपन के डर से उसे भूतप्रेत दिखते हैं। और वह बिस्तर पर सू-सू कर देता है। मम्मी से वह बेहद प्यार करता है इसलिए अनायास ही उसके मन में डॉ.जोशी के प्रति ईर्ष्या जाग उठती है।

शकुन एक नौकरीपेशा मध्यमवर्गीय स्वतंत्र विचारों की वह महिला है। उसका दृष्टिकोण प्रगतिशील है। वह अपने व्यक्तित्व को निखारना चाहती है। डॉ.जोशी से शादी के बाद वह पति का महत्व स्वीकार लेती है। बच्चे के प्रति उसका मातृत्व असफल है। शकुन की तरह अजय भी अहं से पीड़ित है। वह भी शकुन से असंतुष्ट है। पिता के रूप में वह अधिक उदार है। लेकिन अपने नये जीवन में बेटे को आत्मसात नहीं कर पाया। वह उसका हितचिंतक अधिक सिद्ध होता है। उसके बेटे का स्वतंत्र विकास हो, यह वह अवश्य चाहता है।

---

1 आपका बंटी-पृ.सं.203

डॉ.जोशी शकुन के जीवन में अभाव के पूरक बनकर आते हैं। वह भावात्मक संबंधों को शारीरिक संबंधों की अपेक्षा अधिक महत्त्व देते हैं। वे शकुन की आवश्यकता है और शकुन उसकी आवश्यकता। वे एक यथार्थवादी व्यक्ति हैं। एक सहनशील व्यक्ति हैं और बंटी के कई आपत्तिजनक व्यवहारों को सहन करते हैं।

मन्नू भण्डारी का नारी-मनोविज्ञान और बालक मन का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण सफल रहा है। प्रत्येक क्षण में प्रत्येक वस्तु और व्यक्ति के प्रति बंटी की सचेत प्रतिक्रिया और उसका अनावश्यक विस्तार इस अमूर्तता को मूर्त करने के स्थान पर कथन की रूप में लपेट लेता है। बच्चों के मन में वैचारिक स्तर पर निरंतर प्रतिक्रिया की यात्रा सहज नहीं है। बच्चे की मनोवैज्ञानिकता का अंकन बहुत कुछ किताबी है। लेखिका में एक परित्यकता नारी की स्थिति विशेष के मनोवैज्ञानिक चित्रण की क्षमता तो है किंतु नारी के मौलिक अस्तित्व को अन्वेषित करने एवं उसके चरित्र का यथार्थ निरूपण करने के लिए जिस गहरी अंतर्दृष्टि और निःसंग विश्लेषण क्षमता बंटी नामक उपन्यास के द्वारा मन्नू भंडारी ने स्पष्ट किया है।

"बाँहों का घेरा" नामक कहानी में मन्नू भण्डारी "कम्मों" नामक एक विवाहित स्त्री की मानसिकता का चित्रण किया है। भारतीय समाज के दृष्टि में विवाह एक पवित्र बंधन है। इस विवाह रूपी पवित्र बंधन में एक स्त्री और एक पुरूष बंध कर समझौता के साथ जीवन बिताना जरूरी है। अगर विवाह के बाद पति-पत्नी दोनों में किसी एक के मन में सही ढंग से समझौता नहीं है तो ऐसी बंधन या ऐसा परिवार जल्दी ही टूट जाएंगी। कम्मो नामक विवाहित स्त्री को अपना पति से प्यार न मिलने के कारण किस प्रकार की मानसिक कुंठा के साथ जीवन बिताना पड़ता है इसका प्रत्यक्ष रूप "बाँहों का घेरा" कहानी में देखा जा सकता है।

"कम्मो" को सेक्स से ज्यादा प्यार की जरूरत है उसको अपने ही बाँहों में भरकर प्यार करनेवाला सिर्फ एक ही व्यक्ति था वह है "शैलेन", विवाह के पहले शैलेन और कम्मो एक दूसरों को चाहते थे। लेकिन अचानक कम्मो का शादी मित्तल

नामक आदमी से होता है। मित्तल के दृष्टि में कम्मो एक स्त्री के अलावा और दूसरा भाव नहीं है। कम्मो की मानसिकता को मन्नू भण्डारी इस प्रकार दर्शाती है - "धीरे-धीरे मन का क्षोभ ग्लानि में बदलने लगा। वह क्यों यह सब सोचती है? वह विवाहिता है, दो वर्ष के बच्चे की माँ है। यह सब सोचना, यह सब चाहना उसके लिए अनुचित है, पाप है। वह जब पढ़ती थी, डायरी लिखा करती थी। विवाह के बाद भी कुछ महीनों तक यक क्रम चला, पर फिर उसने बंद कर दिया। जैसी बातें उसके दिमाग में उठती थीं, और आज भी उठती हैं, वह सब क्या लिखा जा सकती हैं? लिखना उसने छोड़ दिया, पर बातों का उठना कहाँ छूटा, बल्कि अकेलेपन ने, जीवन के इस रवैये ने उन्हें और अधिक भड़का दिया। ये अनभिव्यक्त भावनाएँ, इच्छाएँ अब रात-दिन उसे मथा करती हैं। किसी को बाँहों में भरकर अपने को उसमें लय कर देने की और उसका संपूर्ण पा लेने की अतृप्त दुर्दमनीय चाह, एक अभिशाप की तरह उसके मन पर छाई रहती है।"[1]

कम्मो की शादी के पहले अपनी सौतेली माँ के व्यवहार के बारे में मन्नू भण्डारी ने इस प्रकार स्पष्ट किया है- "वह शायद पाँच वर्ष की रही होगी। उसकी सौतेली माँ एक साल की टुन्नी को सारे दिन छाती से लगाए-लगाए घूमती। उसकी हर बात, हर अदा पर निछावर होकर उसे गले से लगा लेती और बाँहों में भर चुम्बनों की बौछार कर देती है। कम्मो के अबोध मन में बड़ी लालसा उठती कि माँ ऐसे ही उसे भी प्यार करे। वह संकुचाती-सी माँ के पास जा खड़ी होती। माँ कभी प्यार से उसके गाल पर हल्की-सी चपत लगा देती, या बाल सहला देती- बस। पिताजी आते तो वे भी टुन्नी को ही प्यार करते। सीने से लगाकर उसे कोई प्यार नहीं करता था। शायद वह अब बड़ी हो गई थी। पर कभी तो वह भी छोटी रही होगी। तब शायद उसे भी किसी ने ऐसी ही प्यार किया होगा- उसके गालों पर असंख्य

---

1 एक प्लेट सैलाब, पृ.सं. 97

चुम्बन बरसाये होंगे। पर उसे ऐसा कुछ भी तो याद नहीं आता! कितना अच्छा होता, उस सबकी याद उसे होती और वह उस याद के सहारे ही कुछ संतोष पा लेती।"[1]

इस प्रकार कम्मो अपनी बचपना को याद करती है, क्योंकि बचपन में सौतेली माँ से लेकर विवाह के बाद पति तक किसी से भी कम्मो को सही प्यार न मिला, हाँ प्यार मिलती थी सिर्फ अपने प्रिय शैलेन नामक युवक से ही और एक संदर्भ में कम्मो शैलेन का प्यार को याद करने की स्थिति को मन्नू भण्डारी ने इस प्रकार उकेरा है- "कम्मो, तुम्हारे बिना मैं कितना अकेला हूँ, असहाय हूँ। हर क्षण उस दिन की प्रतीक्षा करता हूँ जब तुम्हारी बाँहों के घेरे में बँधकर मेरे सारे संताप दूर हो जाएंगे, जब मैं अपने अस्तित्व को मिटाकर तुममें ही लीन हो जाऊँगा, फिर हम दो न रहेंगे कम्मो - एक हो जाएँगे, बिल्कुल एक। और तब कम्मो लेटे-लेटे ही महसूस करती कि उसका संपूर्ण अस्तित्व ही जैसे गलकर बह जा रहा है-जैसे वह हाड-माँस की ठोस वस्तु ना रहकर तरल हो गई है, और किसी में मिलती जा रही है। उसका सारा शरीर झन-झनाता रहता, नसों में बहता रक्त खौलने लगता, फिर भी शरीर और मन पर जैसे चंदन का लेप होता रहता। इन दिनों जैसी असहाय जलन उसने कभी महसूस नहीं की थी। तब शायद प्रतीक्षा थी, एक आशा थी और अब.....?"[2]

और एक संदर्भ में कम्मो अपनी भाभी की बेटी शम्मी का विवाह तय होने के बाद कम्मो अपनी वैवाहिक जीवन के बारे में मन ही मन इस प्रकार याद करती है- शैलेन की याद को धो-पोंछकर उसने कितनी उमंग से अपने विवाहित जीवन में प्रवेश किया था। अपनी सुहागरात का एक अजीब-सा चित्र उसके मन पर अंकित हो चुका था- हो सकता है किसी सिनेमा का दृश्य ही उसने मन पर उतार लिया हो, फिर भी वह उसका स्वप्न बन गया था। खिड़कियों और दरवाजों पर लटकते हुए मोर-पंखी रंग के पर्दे, दूधिया चादर, मोगरे के फूलों की लटकती हुई झालरें-स्वेत वस्त्रों में

---

1 एक प्लेट सैलाब, पृ.सं. 96-97

2 वही , पृ.सं. 98-99

लिपटी हुई वह और नीले रंग का जीरो पावर का बल्ब। सब कुछ बड़ा ऐन्द्रजालिक-सा। और फिर उसी इन्द्रजाल की माया के नीचे किसी की बलिष्ठ भुजाओं में कसी हुई वह! पर वैसा कुछ भी नहीं हुआ। यों होने को सभी कुछ हुआ, पर कम्मो ने महसूस किया कि मित्तल बहुत जड़ है- बिल्कुल यांत्रिक। उमंग, उत्साह, प्यार की गर्मी, पागल बना देने वाली आतुरता, कुछ भी तो नहीं था। उसका मन विरक्त से भर गया। दो दिन में ही वह पुरानी भी पड़ गई।"[1] और आगे, कम्मो मित्तल की पाषाण हृदय के बारे में सोचती है-"हर दिन आता और मित्तल की यही अधिक जड़ता उसे अधिक खिन्न बना कर चली जाती। वह चुपचाप रो लेती-पर बेचो-खरीदो, हानि-लाभ के बीच किसी को उन आंसुओं को देखने की फुर्सत भी नहीं थी - उन्हें पोंछना तो कैसे!"[2]

मानसिक कुण्ठा के कारण कभी-कभी अपने गुस्सा दूसरों के ऊपर दिखाने की चेष्टा सर्वसाधारण है। इसी कारण से शायद कम्मो अपने पति के ऊपर गुस्सा बेटी शोन के प्रति इस प्रकार दिखाती है - "हट यहाँ से। अरे खाना खिलाने बैठी है, सो रूला दिया,"[3] कम्मो की मानसिकता कोई नहीं समझता है उसकी दैनंदिन जीवन जो काम करना है वह एक यांत्रिक रूप से करती है। लेखिका कम्मो की दैनंदिन जीवन को इस प्रकार चित्रित करती है- "हूँ", कम्मो ने कहा। मित्तल आया तो अपने हाथ से परोस कर खाना खिला दिया। फिर अम्मा की छाती पर मालिश कर आधा घंटे तक सेंक कर उन्हें भी सुला दिया। शम्मी के कमरे में झाँक कर देखा, वह सो चुकी थी। एक क्षण चुपचाप उसका चेहरा निहारती रही, फिर हल्के हाथ से उस पर चादर डाल दी, देख लिया कि पानी और गिलास रखा है। तब अपने कमरे में लौट आई। सबेरे से लेकर अब तक वह सारे काम यंत्रवत् करती रही, मानो वह वह नहीं। उसके

---

1 एक प्लेट सैलाब, पृ.सं. 103

2 वही , पृ.सं. 103

3 वही , पृ.सं. 105

मन में न कोई व्यथा थी न कोई चाह, पर रात में जैसे ही बिस्तरे पर लेटी कि यह जड़ता गलने लगी, प्रयास करके जमाई गई मन की परतें टूट-टूट कर बिखरने लगीं। फिर वही ललक, वही दुर्दमनीय चाह, नसों का तनाव, बदन की ऐंठन। उसकी आँखों से टप-टप आँसू की गरम-गरम बूँदें ढुलक गई।"[1] कम्मो के मन में शादी के बाद होनेवाली हनीमून की कल्पना सिर्फ कल्पना ही रह गयी है।

कम्मो की पति मित्तल सिर्फ पत्नी को भोग की वस्तुमात्र समझता है मगर कभी कम्मों के मन की इच्छा के बारे में नहीं समझता है। इस प्रकार की मानसिक कुण्ठा को कम्मो और मित्तल के द्वारा कई स्थानों पर मुखरित होता है-"कई बार वह जानबूझकर दस-ग्यारह बजे तक सोने नहीं जाती, सोचती कि घुसते ही मित्तल मुँह फूला लेगा - "कहाँ इतनी देर कर देती हो? यहाँ राह देखते-देखते मर गये। क्या काम रहता है ऐसा तुम्हें भीतर?" पर वैसा कुछ नहीं होता। उसे कभी लगा ही नहीं कि मित्तल को उसकी चाहना है। यों आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तो सब कुछ मशीनी ढंग से होता ही था। पर वह तृप्त नहीं हो पाती थी- भावनाओं की मिठास जो नहीं थी।"[2]

हर एक स्त्री अपने पति से सेक्स से ज्यादा प्यार पाना चाहती है मगर पुरूष प्रेम से ज्यादा स्त्री की शरीर को माँगने की स्थिति को लेखिका ने यथार्थ रूप से स्पष्ट किया है।

अंत में कम्मो ने न शैलेन, न मित्तल को याद नहीं किया सिर्फ अपनी माँ को याद करके रोने लगी है। क्योंकि कम्मो की बचपन में ही माँ मर गई थी, सौतेली माँ से कभी प्यार भी नहीं मिला तब से वह सोचती है कि कोई उसे बाँहों में भर कर प्यार करें शादी के बाद पति से भी उस प्रकार का प्यार न मिलता है। इसलिए अंत में अपने दुःख और दर्द को रोते हुए शोन को अपनी बाँहों में जोर से बंद करके प्यार

---

1 एक प्लेट सैलाब, पृ.सं. 108

2 वही , पृ.सं. 108-109

करती है। इस प्रकार लेखिका ने कम्मो की मानसिक घुटन का सुंदर चित्रण यथार्थ रूप में किया है।

## अध्याय सात

# उपसंहार

# उपसंहार

..... उपसंहार का श्रीगणेश, मन्नू भंडारी जी की ही कथन से, "मैं यथार्थ के धरातल पर कहानियाँ लिखती थी और सपनों की दुनिया में जीती थी।" आदमी के जीवन-क्रम का यही यथार्थ हो जैसा जीवन जैसे दुःस्वप्न हो गया हो आज! सपनों की दुनिया यथार्थ नहीं होता। "विचारों और संस्कारों के द्वन्द्व के बीच अधर में लटकी "त्रिशंकु की माँ हो या मातृत्व और स्त्रीत्व के द्वन्द्व के त्रास को झेलती "आपका बंटी" की शकुन । आदर्श और यथार्थ, स्वप्न और वास्तविकता के बीच टूटती-चरमराती "क्षय" की कुंती हो सभी में प्रकारान्तर से मन्नू भण्डारी का व्यक्तित्व झांकता है। क्षण-क्षण बहलते हुए यथार्थ का व्यक्ति और उसके व्यक्तित्व के क्षरण-पोषण का आधार है मन्नू भण्डारी का कथा-साहित्य।

अलगाववाद की विडम्बनापूर्ण यातना झेल रही मन्नू भण्डारी ने स्वयं "एक कहानी यह भी" में अपने जीवन और अपने कथा-साहित्य को क्रमवार सजाया है। और बताया है कि, "असली मान तो होता है रचनाकार का दायित्व बोध, उसके सरोकार, उसकी जीवन-दृष्टि और उसकी कलात्मक निपुणता।" मन्नू भण्डारी ने इस "कलात्मक निपुणता" को रेखांकित किया है, "क्योंकि यही आपके गहरे-से गहरे यथार्थ-बोध को संवेदना के धरातल तक ले जाती है।"

मन्नू भण्डारी का कथा-साहित्य एक तिहाई भाग खुद की जिन्दगी जीने, आजादी की ललक, नारी स्वतंत्रता की आकांक्षा, आधुनिक दबावों से फ्लैटो में रहने वालों का संकुचन, असहायता और असुरक्षा को दर्शाता है। स्वयं मन्नू भण्डारी ने अपने कहानी लेखन के बारे में बताते हुए, "हंस" के जनवरी-फरवरी दोहजार के अंक में लिखा है- "शीर्षक से लेकर जो कुछ कहना है, वहाँ तक की यात्रा, स्थितियों के अनेक पहलुओं और पात्रों के व्यक्तित्त्व की अनेक परतों को, उनकी सारी बारीकियों के साथ पकड़ कर, उतने ही संयत, संतुलित और सांकेतिक ढ़ंग से उजागर करना ही कहानी लिखना है।

कहानी-लेखन को मन्नू भण्डारी ने "कलात्मक निपुणता" करार दिया है। रचनाकार का दायित्व बोध, उसका सरोकार और उसकी जीवन-दृष्टि से ऊपर। यह यथार्थ के धरातल पर जीने (कहानियाँ लिखने) और स्वप्निल दुनिया में जीना ही तो है। नारी की स्वतंत्रता और उसके लेखन की अहमियत को रेखांकित करते हुए स्वयं मन्नू भण्डारी ने स्वीकारा है कि उनके व्यक्तित्व के निर्माण में उनके पिता की अमिट छाप थी। जिनके बारे में मन्नू भण्डारी ने लिखा है कि, "रसोई को वे भटियारखाना कहते थे और उनके हिसाब से वहाँ रहना अपनी क्षमता और प्रतिभा को भट्टी में झोंकना था।" इसीलिए मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य का लगभग एक तिहाई भाग समाज के इन्हीं यथार्थों का बोध कराता है। "अकेली" कहानी की सोमा बुआ हों, "नशा" की आनन्दी हो या फिर "मजबूरी" की दादी हो.... ये सारे पात्र समाज और जीवन के करुण यथार्थ हैं। स्वयं मन्नू भण्डारी ने स्वीकारा है कि उनकी प्रारंभिक कहानियों के सभी पात्र अजमेर के ब्रह्मपुरी मुहल्ले के जीते-जागते लोग हैं। मन्नू भण्डारी की कहानियों में जिन विद्रोही तेवर वाली स्त्री पात्रों की रचना हुई है उनमें "दीवार बच्चे और बरसात" की विद्रोही तेवर वाली नायिका का स्मरण तो स्वयं लेखिका ने "एक कहानी यह भी" नामक "कहानी" में किया है। यह "कहानी", कहानी के लिए प्रसिद्ध पत्रिका "हंस" के जनवरी-फरवरी, सन् दो हजार के अंक में प्रकाशित है। .... पत्रिका के संपादक (उनके "पति") ने इसे "जनम-पत्री" स्तंभ का नाम दिया है। मन्नू भण्डारी ने इस "एक कहानी यह भी" में नारी लेखन, उसके अहं और अहमियत का रेखांकित करते हुए कहा है- ".... मैं ....धीरे-धीरे वह "मैं" में तब्दील होने लगता है और फिर यह भीतरी "मैं" बाहर के न जाने कितने "मैं" के साथ जुड़ता चलता है... फैलता चलता है। ये सारे बाहरी "मैं" उस भीतरी "मैं" में निरंतर कुछ-न-कुछ जोड़ते-घटाते चलते हैं। बाह्य-भीतर की यह यात्रा... "मैं" और "वह" के एक-दूसरे में तब्दील होने की यह प्रक्रिया कब और कैसे घटित होती है। इसका स्पष्ट बोध तो मुझे भी नहीं रहता। बोध तो उस समय होता है जब अनेक "मैं" का यह बोझ मेरी रचनात्मकता को बुरी तरह कुरेद उकसा कर एक रचना को जन्म देता है।

मन्नू भण्डारी एक महिला लेखिका होने के कारण वर्तमान स्थिति को दृष्टि में रखकर कहानियाँ और उपन्यासों की रचना किया है। मन्नू जी ने नारी-जीवन की अछूती सतह को, अनभिव्यक्त स्थितियों और क्षणों को अपने लेखन में उतारा है। मन्नू जी के पूर्व और समकालीन भी कुछ नारी-लेखिकाएँ साहित्य-जगत् में आईं, लेकिन उन्होंने नारी के दर्द को ही अधिक उभारा। और नारी को अंततः "अबला" ही करार दिया। उसकी आवश्यकताएँ उसकी भूख-प्यास उसका संयम, उसका स्वार्थ और त्याग आदि सभी यथार्थों को समग्र रूप से लेखिकाएँ प्रभावी रूप से प्रस्तुत नहीं कर पाईं। स्वातंत्र्योत्तर युग की अनेक नारी लेखिकाओं ने इस कमजोरी को अनुभव किया और उनमें भी विशेष रूप से मन्नू जी ने इस बात पर ध्यान देकर पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक और मनोवैज्ञानिक यथार्थ के रूप में नारी मन के अमकहे संक्रांत रूप को बड़ी सच्चाई के साथ प्रस्तावित किया है।

मन्नूजी की कहानियाँ सीधी एवं सरल हैं। मन्नू जी के साहित्य में जिन चरित्रों अथवा पात्रों की चित्रण हुई है, वे सभी सामान्य जनजीवन के, रोजमर्रा का साधारण जीवन-यापन करनेवाले पात्र हैं। इनके अधिकांश पात्रों की विशिष्टता को प्रश्रय देने लगते हैं। मन्नू जी की कहानियों और उपन्यासों के संवाद उद्देश्यपूर्ण होने के साथ-साथ सार्थक, अनुकूल, सरस, रोचक और स्वाभाविक हैं।

मन्नू जी की रचनाओं की विशिष्टता है - उनके प्रामाणिक अनुभव। मन्नू जी ने ऐसे जीवन-सत्य को अपने समाज और परिवेश से प्राप्त किया है, जो किसी न किसी कोण से मानवीय हित-अहित से जुड़ा हुआ है और इसी अनुभूत सत्य को उन्होंने एक नवीन और स्वस्थ दृष्टिकोण से सृजित किया है। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में जीवन के यथावत् विस्तार के साथ ही संवेदनाओं का प्रसार भी है।

अध्ययन सुविधा की दृष्टि से संपूर्ण शोध प्रबंध को मैंने उपसंहार सहित सात अध्यायों में विभक्त किया है। प्रथम अध्याय में यथार्थ, यथार्थवाद, यथार्थबोध का अर्थ संदर्भ विश्लेषित किया है। जैसा कि "यथार्थ" जीवन की

सच्ची अनुभूति है। जिसमें हम अपने जीवन में घटित होनेवाले राग-विराग, सुख-दुःख और अन्य भावनाओं का अनुभव करते हैं। अपनी इन्द्रियों के द्वारा समाज में होनेवाली सभी प्रकार के क्रिया-कलापों का अनुभव करना ही यथार्थ है। इस यथार्थ अनुभूति के कारण लेखक अपने अनुभव करते हैं। समाज में घटित होनेवाली घटनाओं की अनुभूति का आकलन, विवेचन और वर्णन करना ही "यथार्थ" है। यथार्थ की अनुभूति के कारण ही हर लेखकों का अपना-अपना अनुभव ज्ञान और दृष्टिकोण होता है। इन सभी अनुभवों के साथ साहित्यकार अपने-अपने दृष्टि के अनुसार यथार्थ को स्थापित करने की प्रयास करते हैं।

यथार्थवाद की चर्चा मैंने इस प्रकार किया है कि यथार्थ को लेकर जब खास तरह की दृष्टि विकसित हुई, तब "यथार्थवाद" का जन्म हुआ। "वाद" का मतलब ही होता है कोई एक सिस्टम। जब कोई एक विचार या दृष्टि एक सिस्टम में ढालकर व्यवस्थित रूप धारण कर लेती है तो उसे वाद के रूप में कहा जाने लगता है। और यथार्थबोध वह है जो यथार्थ के यथार्थवाद की सही ज्ञान ही यथार्थबोध कहलाता है। यथार्थ संबंधी सही दृष्टि के विकास को ही यथार्थबोध कहा जाता है। किसी लेखक में या उसकी रचना में यथार्थ चित्रण तभी अच्छा होगा, जब लेखक की यथार्थ संबंधी समझ स्पष्ट होगी। इस प्रकार मैंने यथार्थ, यथार्थवाद और यथार्थबोध की चर्चा किया है।

द्वितीय अध्याय में मैंने "हिन्दी कथा-साहित्य में यथार्थ बोधः परंपरा और प्रवृत्ति" का रूपांकन किया है। इस अध्याय में पूर्व-प्रेमचन्द युग से लेकर स्वातंत्र्योत्तर युग तक कथा-साहित्य में उत्पन्न होनेवाले यथार्थ को दिखाने की प्रयास किया है। जैसे कि पूर्व-प्रेमचन्द युग के समय, यथार्थ से ज्यादा जासूसी कल्पना जगत् को ही प्रमुखता दी जाती थी। उसके बाद उस जासूसी जगत् केवल भ्रम है। उस भ्रम को निकालकर मानव को धीरे-धीरे वास्तविक यानी कि यथार्थ धरातल पर खड़ा करने की चेष्टा प्रेमचन्द युग और प्रेमचन्दोत्तर युग में मैंने दिखाया है और स्वातंत्र्योत्तर युग में मानव समाज में यथार्थ के साथ जीवन बिताने की कोशिश में अनेक समस्याओं को सामना कर रहा है और इसके साथ-

साथ स्त्री-पुरूष के बराबर हर एक क्षेत्र में आगे बढ़ रही है। शायद इसी कारण हिन्दी साहित्य क्षेत्र में अनेक लेखक और लेखिकाओं ने अपने-अपने यथार्थ अनुभूतियों को चाहे कहानी या उपन्यास के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाने के लिए कोशिश किया है। कुछ महिला लेखकों ने स्त्री के अधिकारों और समाज में स्त्री की स्थान के बारे में ही बताया है लेकिन प्रसिद्ध लेखिका मन्नू भण्डारी अपनी कथा-साहित्य के द्वारा स्त्री और पुरूष के वैवाहिक जीवन में उत्पन्न होनेवाले मानसिक कुण्ठाओं को यथार्थ रूप में स्पष्ट किया है। जैसा कि उन्होंने प्रस्तुत शोध ग्रंथ में स्त्री के पारिवारिक समस्याओं को, आज कल की समाज में मानव की स्थिति, राजनैतिक स्थिति और मनोवैज्ञानिक की स्थिति को यथार्थबोध के धरातल पर स्पष्ट किया है।

अध्याय तीन में मन्नू भण्डारी के कथासाहित्य में पारिवारिक यथार्थबोध के आधार पर यथार्थ की स्थापना करने की प्रयास मैंने किया है। इस पारिवारिक यथार्थबोध में मैंने संयुक्त परिवार और एकाकी परिवार के बीच की संबंधों की कमियों के साथ आजकल की बढ़ती हुई बेरोजगार की समस्या और इस महँगा समाज में उत्पन्नहोनेवाले समस्याओं को मन्नू जी ने कथा-साहित्य के द्वारा यथार्थ को स्थापित किया है।

मन्नू जी की अधिकांश कहानियाँ किसी न किसी संदर्भ से पारिवारिक समस्याओं से जुड़ी हुई हैं, परंतु "दीवार, बच्चे और बरसात", "नकली हीरे", "नई नौकरी", "बन्द दराजों का साथ", "छत बनानेवाले", "संख्या के पार", "कमरे, कमरा और कमरे", "ऊँचाई", "दरार भरने की दरार", "शायद", "रेत की दीवार", "तीसरा हिस्सा", "एखाने आकाश नाई" कहानियाँ और "एक इंच मुस्कान" तथा "आपका बंटी" उपन्यास आदि विस्तृत रूप से पारिवारिक घुटन और त्रासदी को प्रस्तुत करनेवाली रचनाएँ हैं। इनमें भी अधिकांश रचनाएँ दाँपत्य जीवन से उत्पन्न होनेवाली समस्याओं से अधिक जुड़ी हैं। ये पारिवारिक समस्याएँ अधिकांश रूप में पति-पत्नी में जब एक दूसरे को समझने की क्षमता का अभाव होता है, तब ये समस्याएँ अंकुरित होती हैं। और इन समस्याओं का

सूत्रण परिवार की टूटन और विघटन को प्रस्तुत करता जाता है। "दीवार, बच्चे और बरसात", "बन्द दराजों का साथ", "ऊँचाई" आदि कहानियों में यही स्थिति है। इन तीनों कहानियों में पत्नियाँ जब अनुभव करती हैं कि पति से उनका तालमेल ठीक नहीं बैठ पा रहा है तब तनाव की स्थिति प्रारंभ हो जाती है। इस तनाव के फलस्वरूप अंततः कोई परिवार पूरी तरह विघटित हो जाता है और कोई विघटन की त्रासदी को लगातार भोगता रहता है। पति-पत्नी में सामंजस्य न रह पाने की भयावहता "एक इंच मुस्कान" और "आपका बंटी" में तीव्रता से उभरकर प्रस्तुत हुई है। "एक इंच मुस्कान" की रंजना विवश होकर पतिगृह को त्याग देती है और पति-पत्नी एकाकी जीवन का बोझ ढ़ोने की विवश हो जाते हैं। "आपका बंटी" की शकुन, अजय से विवाह-विच्छेद कर दूसरा विवाह कर लेती है लेकिन बंटी की समस्या से इस कदर जकड़ जाती है कि कोई पर्याय उसके समक्ष शोष नहीं रह पाता। "नकली हीरे" और "शायद" कहानियों में पति अर्थोपार्जन के लिए पत्नी से और घर से इस कदर दूर हो जाते हैं कि पत्नी को उसका वाँछित सुख मिल ही नहीं पाता। "नई नौकरी" में पति की व्यस्तताएँ पत्नी के जीवन में ऐसी यांत्रिकता उत्पन्न कर देती हैं कि जीवन नीरस और ऊबाऊ बन जाता है। "रेत की दीवार" कहानी ऐसे मध्यवर्गीय परिवार के सदस्यों की व्यथा को प्रस्तुत करती है, जो अपने पुत्र को उच्चशिक्षा दिलाने की खातिर लगातार मानसिक संत्रासों और आर्थिक विषमताओं को भोगते रहते हैं। "छत बनानेवाले" कहानी ऐसी विचित्र समस्या को प्रस्तुत करती है, जहाँ परिवार रूढ़ और परम्परावादी मुखिया की सत्ता के अधीन है। सभी परिवारजन पिता की तानाशाही के आदि होकर, आँख मूंदकर जीवन यापन करते चलते हैं। इस प्रकार द्रष्टव्य है कि मन्नू जी के साहित्य में पारिवारिक समस्याओं का सूत्रण विभिन्न धरातलों पर हुआ है।

अध्याय चार में मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में सामाजिक यथार्थबोध के अंतर्गत प्रस्तुत समाज की सामाजिक यथार्थबोध को स्थापित करने के लिए मैंने मन्नू भण्डारी की कथा साहित्य को आधार ग्रंथ बनाया है। प्रस्तुत सामाजिक यथार्थबोध के अंतर्गत प्रेम-विवाह, परंपरागत विवाह, धर्म के नाम पर होनेवाले

सामाजिक अत्याचार, अंधविश्वास के नाम पर लोगों में फैली हुई सामाजिक कुरूपता, स्त्री अकेली होने से उस स्त्री पर समाज की बुरी नज़र के साथ-साथ एक स्त्री दूसरी स्त्री की निंदा करना, बेकसूर आदमी के ऊपर झूठमूठ का सजा दिलाना और शादी-शुदा पुरुष प्रेम के रूप में एक अविवाहित स्त्री के मन में चोट पहुँचाना इत्यादि विषयों को यथार्थ धरातल पर मैंने मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य के आधार पर स्थापित किया है। जैसा कि "ईसा के घर इंसान", "अभिनेता", "क्षय", "सजा", "रानी माँ का चबूतरा", "शायद", "रेत की दीवार", "नकली हीरे" आदि कहानियाँ तथा "एक इंच मुस्कान" एवं "आपका बंटी" उपन्यास सामाजिक समस्याओं को पस्तुत करनेवाली रचनाएँ हैं।

धर्म के नामपर बोली-भाली युवतियों को पथभ्रष्ट कर अपनी वासनापूर्ण करनेवाले धार्मिक पाखंडियों से हमारा समाज सदा त्रस्त रहा है। धार्मिक आडम्बरों के बन्धनों में बांधकर जिस वीभत्स प्रकार से समाज में शोषण किया जाता है उसका चित्रण "ईसा के घर इंसान" कहानी में हुआ है। "अभिनेता" कहानी पुरूष के दोगलेपन को उभारकर ऐसी सामाजिक विषमता को प्रस्तुत करती है जहाँ नारी-पुरूष के प्रेमजाल में फँसकर सदा छली जाती है। "क्षय", "सजा", "रानी माँ का चबूतरा" आदि कहानियाँ आर्थिक वैषम्य से जुड़ी हुई हैं और ऐसी सामाजिक स्थिति को प्रस्तुत करती है, जहाँ पतन नैतिक-ह्रास, और भयंकर त्रासदियाँ है। "क्षय" में वैयक्तिक और सामाजिक नैतिकता का पतन, "सजा" में न्याय व्यवस्था की त्रुटियाँ इस प्रकार लेखिका के साथ उभारा है। "रेत की दीवार", "शायद" और "नकली हीरे" भी इसी प्रकार की कहानियाँ हैं, जो विभिन्न सामाजिक समस्याओं को चित्रित करती हैं। "एक इंच मुस्कान" में उच्चवर्ग की विडम्बना समस्या के रूप में प्रस्तुत होती है। "आपका बंटी" में विवाह-विच्छेद और पुनर्विवाह की समस्याओं की प्रस्तुति हुई है।

अध्याय पाँच में राजनैतिक मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में राजनैतिक यथार्थबोध की चर्चा मैंने किया है। वास्तविक रूप में देखा जाय तो मन्नू भण्डारी काम-काजी महिलाओं की समस्याओं को वैवाहिक, अविवाहित स्त्री-पुरूषों के

मानसिकताओं को आर्थिक स्थिति से झेलनेवाली परिवारों की समस्याओं को यथार्थ रूप में चित्रण करनेवाली एक प्रसिद्ध लेखिका होने पर भी दो-तीन कहानियाँ और एक उपन्यास के द्वारा समाज में राजनैतिक क्षेत्र में होनेवाले अत्याचारों को बड़ी महत्वपूर्ण ढंग से चित्रण किया है।

वर्तमान राजनीति में जो भ्रष्टाचार, दिखावा, शोषण, भाई-भतीजावाद, मूल्यों का पतन, नैतिक पतन आदि समाहित हैं, वह किसी से छिपा नहीं है। वास्तव में राजनीति का क्षेत्र ही वह बीज बन गया है। जिससे अनेकानेक सामाजिक असंगतियाँ, दुर्दैव और घोर यंत्रणाएँ मानव जीवन में पल्लवित होती हैं। सत्ता हाथ में लेकर बड़े-बड़े लोग किस तरह का भ्रष्टाचार और धोखा करता है, मंत्री पद प्राप्त करके किस तरह सारे मूल्यों और नैतिकता को खराब कर दिया जाता है, जनसाधारण के मतों को अपने पक्ष में करने हेतु किस तरह के प्रलोभन दिए जाते हैं, पैसा पानी की तरह बहाया जाता है और अपने स्वार्थों की सिद्धि हेतु किस तरह निरपराध तत्वों को बलि का बकरा बनाकर अपराधियों को शरण दी जाती है - इन सारी बातों का चित्रण "अलगाव" कहानी और "महाभोज" उपन्यास में हुआ है।

वस्तुतः ये सारी बातें समस्याएं नहीं हैं, केवल स्थितियाँ हैं, जो समग्र रूप से समाज के सामने, राष्ट्र के सामने ऐसे भयानक परिणामों को जन्म देती हैं कि उनका निदान प्राप्त करना असंभव प्रायः हो जाता है। इन सारी स्थितियों को जब समाज अनुभव करता है, तब ये निकट समस्या का रूप ग्रहण कर लेती हैं। यह गलत नहीं है कि यह सारी स्थितियाँ ही राजनीति के रंगमंच से उभरकर राजनीति और समाज का कोढ़ बन गई हैं।

अध्याय छह में मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में मनोवैज्ञानिक यथार्थबोध की चर्चा मैंने किया है। जैसा कि अविवाहित स्त्रियों के मन की मानसिकता, वैवाहिक जीवन में पति-पत्नी के बीच की दरार के कारण उत्पन्न होनेवाली मानसिक कुण्ठाओं अकेलापन से उत्पन्नहोनेवाली मानसिक स्थिति के साथ-साथ बालकों की मानसिकता और वृद्ध अवस्था में बेसहरा होने के कारण उत्पन्न

होनेवाली मानसिक तनाव आदि समस्याओं को मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य के केन्द्र बनाकर यथार्थबोध को स्थापित करने की प्रयास मैंने किया है।

यौन विषय से संबंधित अनेक समस्याओं का चित्रण मन्नू जी अपने कौशल के द्वारा अनेक कहानियों और दो-तीन उपन्यासों के माध्यम से दर्शाया है। पति से तिरस्कृत, या पति से अतृप्त पत्नी की व्यथा और उसकी अदम्य यौन लालसाएं किस प्रकार यौन विकृतियों को जन्म देती है इसका चित्रण "कील और कसक" तथा "तीन निगाहों की एक तस्वीर" कहानियों में हुआ है। यौन अतृप्ति जिस प्रकार वैयक्तिक पतन अथवा चारित्रिक पतन का कारण बनती है, वह वस्तुतः एक समस्या है। "कील और कसक" की रानी तथा जिस प्रकार का मानसिक तनाव और क्लेष उत्पन्न होता है, उसका चित्रण "घुटन" कहानी में चित्रण किया है। "बाहों का घेरा" भी एक भिन्न प्रकार की यौन अतृप्ति और लालसा को उभारने वाली कहानी है। इन सबके साथ "तीसरा आदमी" कहानी भी ऐसी विषम यौन-समस्या को उभारती है, जहाँ पुरूष पूर्णरूपेण स्वस्थ और योग्य होकर भी, अपने पौरूष के प्रति आशंकित होकर प्रताड़ित होता रहता है। साथ-साथ मन्नूजी की अधिकांश कहानियाँ - "जीती बाजी की हार", "एक कमज़ोर लड़की की कहानी", "दीवार, बच्चे और बरसात", "अकेली", "मजबूरी", "नशा", "रानी माँ का चबूतरा", "यही सच है", "नई नौकरी", "स्त्री सुबोधिनी", "त्रिशंकु" प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इसी समस्या के विविध पहलू उभारती है। प्रेम में असफल नारी की समस्या, पति के हाथों में कठपुतली बनी हुई नारी की समस्या, परिस्थितियों के अनुरूप पराधीन होती हुई नारी की समस्या, दोहरे प्रेम में हिंडोले खाती हुई नारी की समस्या, प्रौढ़ावस्था में नारी मानसिकता आदि समस्याओं के साथ-साथ "जीती बाजी की हार" कहानी मातृत्व के अभाव में नारी के दुरूह जीवन की ओर संकेत करती है। संस्कारों एवं परम्पराओं के जाल में जकड़कर पराधीन बने रहना, भारतीय नारी की विडम्बना है और इसी बात को "एक कमज़ोर लड़की की कहानी" स्पष्ट करती है। संस्कारों और रूढ़ियों के बन्धन नारी को किस कदर दुर्बल बना देती है, इसकी तीक्षण अनुभूति इस कहानी के द्वारा होती

है। "एक बार और", "आते-जाते यायावर", "स्त्री सुबोधिनी" तथा "अभिनेता" कहानियाँ प्रेम में असफल नारियों के मानसिक स्थिति का चित्रण लेखिका ने किया है। "अकेली" और "मजबूरी" कहानियाँ नारी की वृद्धावस्था को विषम स्थिति को उभारती है। "यही सच है" कहानी में किशोरावस्था व युवावस्था के प्रेम संबंधों में पिसती हुई युवती की मानसिक उलझनों का चित्रण हुआ है। और अंत में मुख्य रूप से बालकों की मानसिकता पर अधिक जोर देकर "आपका बंटी" नामक उपन्यास की रचना किया है। बालसमस्या पारिवारिक समस्या से ही जुड़ी हुई है, परन्तु सूक्ष्मरूप से इसका क्षेत्र पारिवारिक समस्या से थोड़ा पृथक और भिन्न है। वस्तुतः इस समस्या का उद्भम पारिवारिक तनाव, संत्रास और विघटन ही है - परन्तु ज्वलंत समस्या के रूप में उभरकर यह एक ऐसा परिक्षेत्र व्याप्त कर लेती है जो समग्र रूप से न केवल परिवार अपितु संपूर्ण समाज के लिए विचारणीय प्रश्न का रूप ग्रहण कर खड़ी हो जाती है।

"आपका बंटी" अद्यतन बाल-समस्या को प्रस्तुत करता है। सच तो यह है कि टूटते परिवार में बालकों की समस्या को लेकर ही इस उपन्यास की रचना हुई है। पारिवारिक विघटन का प्रभाव बालकों के लिए कैसी समस्याएँ खड़ी करता है, शकुन और अजय में अलगाव की स्थिति के बाद दोनों में विच्छेद और अंततः शकुन का दूसरा विवाह, बालक बंटी को इस कदर कचोटता जाता है कि वह एक "प्रौब्लम्ड चाईल्ड" बन जाता है। सारी स्थितियाँ और पति-पत्नी के बिगड़े हुए संबंध ही बंटी को समस्यायुक्त बालक बनाने के लिए उत्तरदायी है।

"क्षय" नामक कहानी में घर की आर्थिक स्थिति सहीं न होने के कारण परिवार का पूरा बोझ कुन्ती अपने कंदों पर लेती है। क्षय ग्रस्त पिता की देखबाल करते-करते कुन्ती अपना भाई के पढ़ाई के ऊपर सही ढंग से ध्यान न देने के कारण अगला साल भी वही क्लास फिर से हास्टल में पढ़ना पड़ता है इसलिए टुन्नी की मानसिकता में थोड़ा सा बदलाव आती है और अपनी दीदी कुन्ती को बार-बार दुबारा वही क्लास पढ़ने की स्थिति को याद दिलाता है। और "रेत की दीवार" नामक कहानी में भी थोड़ा बहुत बालकों की मानसिकता बताया गया है।

प्रस्तुत कहानी मध्यवर्ग की कहानी होने के कारण एक पिता सभी बच्चों को समान रूप से शिक्षा नहीं दे सकता है। प्रस्तुत कहानी में "चन्दा" नामक लड़की पर इसका प्रभाव पड़ता है क्योंकि चन्दा के भाई रवि इंजनीयर का कोर्स दिलाने के लिए चन्दा का छोटा भाई "टोनी" का इलाज नहीं करवाने की चेष्टा लेखिका "रेत की दीवार" नामक कहानी में दर्शाती है।

इस प्रकार श्रीमती मन्नू भण्डारी मानव जीवन के विविध धरातलों से विभिन्न समस्याएँ चुनकर अपने साहित्य में संपूर्ण सजगता के साथ प्रस्तुत करने में प्रभावशाली रूप से सफल रही है।

# ग्रंथानक्रुमणिका

# ग्रंथानुक्रमणिका


| आधार ग्रंथ | | प्रकाशन |
|---|---|---|
| 1. | **मैं हार गई**(कहानी संग्रह).......... | अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002 संस्करण: 1957 |
| | 1. ईसा के घर इन्सान | |
| | 2. गीत का चुम्बन | |
| | 3. जीती बाजी की हार | |
| | 4. एक कमजोर लड़की की कहानी | |
| | 5. सयानी बुआ | |
| | 6. अभिनेता | |
| | 7. शमशान | |
| | 8. दीवार, बच्चे और बरसात | |
| | 9. पंडित गजाधर शास्त्री | |
| | 10. कील और कसक | |
| | 11. दो कलाकार | |
| | 12. मैं हार गई | |
| 2. | **एक इंच मुस्कान** (उपन्यास)....... | राजेन्द्र यादव, मन्नू भण्डारी राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1962 |
| 3. | **यही सच है**(कहानी संग्रह).......... | अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 1966 |
| | 1. क्षय | |
| | 2. तीसरा आदमी | |
| | 3. सजा | |
| | 4. नकली हीरे | |

5. नशा

6. इन्कमटैक्स और नींद

7. रानी माँ का चबूतरा

8. यही सच है

4. **एक प्लेट सैलाब**(कहानी संग्रह).....अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 1968

1. नई नौकरी

2. बंद दराजों का साथ

3. एक प्लेट सैलाब

4. छत बनानेवाले

5. एक बार और

6. संख्या के पार

7. बाहों का घेरा

8. कमरे, कमरा और कमरे

9. ऊँचाई

5. **आपका बंटी**(उपन्यास)............ अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 1971

6. **मेरी प्रिय कहानियाँ**(कहानी संग्रह). राजपाल एण्ड सन्ज,कश्मीरी गेट, दिल्ली, तीसरा संस्करण: 1977

1. अकेली

2. मजबूरी

3. नई नौकरी

4. बंद दराजों का साथ

5. एखाने आकाश नाई

6. यही सच है

7. सजा

8. आते-जाते यायावर

9. शायद

7. **श्रेष्ठ कहानियाँ**(कहानी संग्रह)....... अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 1977

1. रानी माँ का चबूतरा
2. चश्मे
3. अकेली
4. मैं हार गई
5. क्षय
6. एखाने आकाश नाई
7. यही सच है
8. सजा

8. **त्रिशंकु**(कहानी संग्रह)............ अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 1978

1. आते जाते यायावर
2. दरार भरने की दरार
3. स्त्री सुबोधिनी
4. शायद
5. त्रिशंकु
6. रेत की दीवार
7. तीसरा हिस्सा
8. अ-लगाव
9. एखाने आकाश नाई

9. **महाभोज**(उपन्यास)................ राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लि. 2, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002, 1979

## सहायक ग्रंथ सूची


| क्र.सं | ग्रंथकार | ग्रंथ | प्रकाशन संस्करण |
|---|---|---|---|
| 01 | श्री अनिता राजूरकर | कथाकार मन्नू भण्डारी | नेषनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरिया गंज, नई दिल्ली-110002 प्रथम संस्करण 1987 |
| 02 | डॉ.इंद्रनाथ मदान | हिंदी कहानी अपनी जुबानी | |
| 03 | श्री इलाचंद्र जोशी | मेरी प्रिय कहानियाँ | |
| 04 | श्री इंद्रमोहन कुमार सिन्हा | प्रेमचंदयुगीन भारतीय समाज | |
| 05 | प्रो.उमा गुरुपादप्पा | मन्नू भण्डारी की कहानियों में आधुनिकता बोध | चन्द्रलोक प्रकाशन, 1281106, जी-ब्लॉक, किदवई नगर, कानपुर-208011, संस्करण:1997 |
| 06 | श्री उपेन्द्रनाथ अश्क | अश्क की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ | |
| 07 | श्री कुसुम शर्मा | साठोत्तर हिंदी उपन्यास : विविध प्रयोग | श्याम प्रकाशन, फिल्म कालोनी, जयपुर-302003, प्रथम संस्करण:1990 |
| 08 | श्री कमलेश्वर | नयी कहानी की भूमिका | --- |
| 09 | श्री कमलेश्वर | राजा निरबसिया | --- |
| 10 | श्री कमलेश्वर | राजा निरबसिया | --- |
| 11 | श्री कृष्ण बिहारी मिश्र | आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक हिंदी साहित्य | --- |
| 12 | डॉ.कर्णसिंह | पोस्ट इंडिपेंडेन्स जनरेशन | --- |
| 13 | श्री गुरुदयाल सिंह | माटी का दिया | --- |
| 14 | श्री वी.एम.चिंतामणि | ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना और सत्य | --- |
| 15 | डॉ.चंद्रकांत बांदिवडेकर | हिन्दी उपन्यास: स्थिति और गति | --- |
| 16 | श्री जवाहर सिंह | आषाढ़ का एक दिन | |
| 17 | श्री जैनेंद्र कुमार | प्रस्तुत प्रश्न | |
| 18 | श्री जैनेंद्र कुमार | जैनेंद्र की कहानियाँ | वाणी प्रकाशन दिल्ली सन् 1993 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 19 | डॉ.त्रिभुवन सिंह | हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद | हिंदी प्रचारक पुस्तकालय प्रथम संस्करण 1965 |
| 20 | डॉ.देवराज | संस्कृति का दार्शनिक विवेचन | --- |
| 21 | डॉ.देवी शंकर अवस्थी | नई कहानी प्रवृत्ति और संदर्भ | |
| 22 | श्री द्वारका प्रसाद मित्तल | हिंदी साहित्य के वाद | साहित्य निकेतन, श्रद्धानंद पार्क, कानपुर, प्रथम संस्करण 1970 |
| 23 | श्री देवराज उपाध्याय | आधुनिक कथा-साहित्य और मनोविज्ञान | --- |
| 24 | डॉ. धीरेंद्र वर्मा | हिंदी साहित्य कोश | ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी, प्रथम संस्करण, अश्विन संवत् 1043 (1986 ई.) |
| 25 | डॉ.नगेन्द्र | काव्य चिंतन | नव भारती प्रकाशन, मेरठ, द्वितीय संस्करण : 1951 |
| 26 | डॉ.नूरजहाँ | हिंदी कहानी में यथार्थवाद | अभिनव भारती, इलाहाबाद प्रथम संस्करण:1976 |
| 27 | डॉ.नरेंद्र | समकालीन कहानी की पहचान | |
| 28 | नरेंद्र देव | राष्ट्रीय और समाजवाद | |
| 29 | प्रेमचंद | साहित्य का उद्देश्य | हंस प्रकाशन, वर्तमान संस्करण 1967 |
| 30 | प्रेमचंद | साहित्य का उद्देश्य | " |
| 31 | प्रेमचंद | प्रेमचंद साहित्य का विवेचन | वर्तमान संस्करण, प्रथम संस्करण: 1967 |
| 32 | श्री प्रेमनारायण शुक्ल | हिंदी साहित्य में विविधवाद | --- |
| 33 | श्री परमानंद श्रीवास्तव | हिंदी कहानी की रचना प्रक्रिया | --- |
| 34 | फणीश्वरनाथ रेणु | आदिम रात्रि की महक | --- |
| 35 | फणीश्वरनाथ रेणु | ठुमरी | --- |
| 36 | फणीश्वरनाथ रेणु | मेरी प्रिय कहानियाँ | --- |
| 37 | बच्चन सिंह | आधुनिक हिंदी आलोचना के बीज शब्द | राधाकृष्ण प्रकाशन, 2 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1983 |
| 38 | डॉ.बलदेव प्रसाद सिंह | भारतीय संस्कृति | --- |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 39 | डॉ.बूलाकार | अपने समय के साहित्य पर सोचते हुए | रचना प्रकाशन, 57, नाटाणी भवन,मिश्र राजाजी का रास्ता,चांदपोल बाजार,जयपुर-302002 संस्करण:2002 |
| 40 | श्री भैरव प्रसाद गुप्त | सपने का अंत | --- |
| 41 | श्री भैरव प्रसाद गुप्त | महफिल | --- |
| 42 | श्री भैरव प्रसाद गुप्त | बलिदान की कहानियाँ | --- |
| 43 | माखनलाल शर्मा | हिंदी उपन्यास:सिद्धांत और समीक्षा | प्रभात प्रकाशन 205, चावडी बाजार, दिल्ली-6, प्रथम संस्करण 1970 सर्वाधिक सुरक्षित |
| 44 | श्री मोहन राकेश | मेरी प्रिय कहानियाँ | --- |
| 45 | श्री मोहन राकेश | मेरी प्रिय कहानियाँ | --- |
| 46 | डॉ.महीप सिंह | कितने संबंध | --- |
| 47 | यशपाल | पिंजरे की उड़ान | --- |
| 48 | यशपाल | तर्क और तूफान | --- |
| 49 | यशपाल | ओ वैश्वी | --- |
| 50 | यशपाल | अमिता | --- |
| 51 | यशपाल | सिंहावलोकन, प्रथम खंड | --- |
| 52 | राम स्वरूप चतुर्वेदी | हिंदी साहित्य कोश | ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, प्रथम संस्करण-2020 |
| 53 | डॉ. रघुवंश | हिंदी साहित्य कोश | द्वितीय संस्करण-1986 |
| 54 | डॉ.रांगेय राघव | हिंदी साहित्य के वाद | --- |
| 55 | डॉ.रांगेय राघव | साहित्य में यथार्थवाद | --- |
| 56 | डॉ.रामशोभित प्रसाद सिंह | हिंदी उपन्यास : प्रेमचंदोत्तर काल | दिग्दर्शन चरण जैन, ऋषभचरण जैन एवं संतति 4662/21, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 11 गार्डन रीच, कुलडी, मसूर, प्रथम संस्करण-1971 |
| 57 | डॉ.रघुवर दयाल वार्ष्णेय | हिंदी कहानी बदलते प्रतिमान | --- |
| 58 | डॉ. राजेंद्र अवस्थी | श्रेष्ठ कहानियाँ | --- |
| 59 | डॉ.रांगेय राघव | मेरी प्रिय कहानियाँ | --- |
| 60 | राजेंद्र अवस्थी | मेरी प्रिय कहानियाँ | --- |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 61 | डॉ.रामरतन भटनागर | निराला और नवजागरण | --- |
| 62 | डॉ.रामस्वरूप चतुर्वेदी | हिंदी नवलेखन | --- |
| 63 | डॉ.रामविलास शर्मा | प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ | --- |
| 64 | डॉ.रामविलास शर्मा | प्रेमचंद और उनका युग | --- |
| 65 | राल्फ फाक्स | उपन्यास और लोकजीवन | नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110 002, पहला संस्करण-1952 |
| 66 | डॉ.रणवीर रांग्रा | हिंदी उपन्यास में चरित्र चित्रण का विकास | तीसरा संस्करण-1965 |
| 67 | डॉ. राधिका रमण प्रसाद सिंह | राम और रहीम | --- |
| 68 | राजेंद्र सिंह | युगान्तर | --- |
| 69 | राजेंद्र मोहन अग्रवाल | उलझी लकीरें | --- |
| 70 | लाल जी राम शुक्ल | सामान्य मनोविज्ञान | |
| 71 | लाल चन्द्र गुप्त मंगल | हिन्दी कहानी का इतिहास | संजीव प्रकाशन, कुरुक्षेत्र(हरियाणा) के लिए श्रीमती सुदेश क्वातरा द्वारा प्रकाशित, संस्करण:1988 |
| 72 | डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा | हिंदी साहित्य कोश | ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी प्रथम संस्करण-2020, द्वितीय-1986 |
| 73 | विश्वम्भरनाथ उपाध्याय | हिंदी साहित्य के प्रमुख वाद | --- |
| 74 | विजय चौहान | धर्म क्षेत्र कुरुक्षेत्र | --- |
| 75 | विजयचंद्र | स्वतंत्रता के बाद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ | --- |
| 76 | डॉ.वंशी प्रसाद जोशी | हिंदी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन | |
| 77 | डॉ.शिवकुमार मिश्र | यथार्थवाद | दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-1975,द्वितीय-1978 |
| 78 | डॉ.शिवप्रसाद सिंह | इन्हें भी इंतज़ार है | --- |
| 79 | डॉ.शिवप्रसाद सिंह | कर्मनाश की हार | --- |
| 80 | डॉ.शशि भूषण सिंहल | हिंदी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ | --- |
| 81 | शिवदान सिंह चौहान | साहित्य युगीन | --- |
| 82 | डॉ.सन्तबख्श सिंह | नई कहानी-कथ्य और शिल्प | --- |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 83 | सतीश जमाली | प्रथम पुरुष | --- |
| 84 | डॉ.सर्वेपल्ली राधाकृष्णन | धर्म और समाज | --- |
| 85 | ए.सी.सक्सेना | श्रम की समस्याएँ | --- |
| 86 | सत्यकांत विद्यालंकार | भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास | --- |
| 87 | डॉ.सुषमा धवन | हिंदी उपन्यास | --- |
| 88 | हुमायूँ कबीर | ब्रिटेन एण्ड इंडिया | --- |
| 89 | हजारी प्रसाद द्विवेदी | चारु चंद्र लेख | --- |
| 90 | ज्ञान रंजन | मेरी प्रिय कहानियाँ | --- |

पत्रिकाएँ

| क्र.सं | ग्रंथ | प्रकाशक, संस्करण |
|---|---|---|
| 01 | आलोचना | अंक अक्तूबर सन् 1953 |
| 02 | साप्ताहिक हिन्दूस्तान | जून 1955 |
| 03 | धर्मयुग | 16 जुलाई सन् 1967 |
| 04 | नई कहानी | जुलाई सन् 1969 |
| 05 | धर्मयुग | अंक 16 अप्रैल 1970 |
| 06 | नवगीत | मार्च 1972 |
| 07 | धर्मयुग | 14 अप्रैल सन् 1976 |
| 08 | धर्मयुग | 12 अप्रैल सन् 1976 |
| 09 | सरिता | 14 अप्रैल सन् 1976 |
| 10 | पूर्वाग्रह | 1981 संपादक अशोक वाजपेयी |
| 11 | पूर्वाग्रह | 1981 संपादक अशोक वाजपेयी |
| 12 | अभिधा | जनवरी 1999 |
| 13 | हंस | जनवरी-फरवरी 2000 |
| 14 | हंस | फरवरी 2000 |
| 15 | शारदीय विशेषांक | 2000 |
| 16 | नागरी प्रचारिणी | सन् 2021 वर्ष |
| 17 | वर्तमान साहित्य | 5 मई 2002 |